॥ श्रीः ॥ १

बृहन्निघण्टुरत्नाकरान्तर्गते

सचित्रे

शारीरकं शस्त्रचिकित्सितंच

हिन्दीभाषानुवादसमेते ।

मथुरानिवासि-माथुरदत्तरामेण

सङ्कलिते संशोधितेच

सोयं ग्रन्थः

श्रीकृष्णदासात्मज-

गङ्गाविष्णु, खेमराजाभ्यां

तथा

माथुरदत्तरामेण च

मुम्बय्यां

"श्रीवेङ्कटेश्वर" मुद्रालयेऽङ्कित्वा

प्रकाशितः

शाके १८०९ संवत् १९४४.

आयुर्वेदोद्धार के नियम ॥



१ इस पत्र का वार्षिक मूल्य ३।≈) डाक व्यय सहित ग्राहकों से प्रथमही ले लिया जायगा। उधार का व्यवहार नहीं।

२ मूल्य जिस प्रकार जिसे सुभीता हो भेजें, रसीद चाहे तो रिप्लाई कार्ड या टिकट भेजें, हमारी ओर से रसीद यही है कि पत्र पहुंचे।

३ नमूने का अंक भी विना मौल्य नहीं दिआ जायगा। क्योंकि वहुत से मनुष्य नमूने का अंक मगाय कर फिर न तो उस्को वापिसही करते न मगाते इस लिये यह प्रबन्ध रक्खा है कि जो नमूने का अंक देखा चाहे व ह ।॰ ॥ साडेचार आने हमारे पास भेज देवे हम आध आने का टिकट लगाय कर नमूना भेज देवेंगे। यदि वहअंक प्रसन्न न होवे तो हमारावापिस भेज देवें हम उन्को आध आने के लिफाफे में ≈)॥ तीन आने की टिकट वापिस भेंज देवेंगें।

४ बहुतसे महाशय इंग्रेजी उरदू अथवा अन्य भाषाओंमें पत्र लिखते और मनीअर्डरके कूपनपर अपना पत्ताही नहीं लिखते ऐंसे मनुष्योंको जब तक उनका ठीक पत्ता हमको मालूम न होगा कदापि उत्तर और अंक नही भेजनेके.

५ जो आयुर्वेदोद्धार का अंक अथवा और किसी प्रकार की पुस्तक मुंबई काशी कलकत्ते की मगावे परंतु द्रव्य देने में अविश्वासी हों उन्को हम वेल्यूपेविल पारसल द्वारा ५) रुपये तक की पुस्तक भेज सक्ते हैं कि वे डाक में रुपये देकर घर वैठे पुस्तकलेलेवें।

६ विकी पुस्तक वापिस नहीं लीजायगी।

७ जो व्योपारी हम सै पुस्तक लेवेंगे उनको रिआत के साथ पुस्तकें दीजावेगी और जो पुस्तक हमारे पास न होवेगी वह दूसरी दूकान सैं लेकर भेजेगे

योगचिंतामणि

यह जैनियोंका वनाया वैद्यक में बहुत अपूर्व ग्रंथ है इसके सर्व प्रयोग ग्रन्थकर्त्ता के अनुभव करे हुए है, इसको हमने संस्कृत मूल और भाषा टीका सहित छपाहै और बहुतसी वात इसमें बढाई भी हैं तथा मुंबई और मथुरा की छपी हुई पुस्तकों सैं इसमें कामअधिकहै और सर्व साधरणो के लिये मौल्य भी वहुत घटाकर रक्खा है उत्तम कागद का १) डांक महसूल ≈) और घटिया कागद की ।॥॰) डांक महसूल ≈

रसराजसुन्दर

यह रस बनानेका ग्रन्थ ऐसा अपूर्व छपाहै कि अनेक रसके ग्रन्थ न संग्रहकरो केव-

ल एक इसीसे सब रसों के शोधन मारण द्रावण सत्वपातन आदि सहज होसकते हैं और जो रसरत्नाकर आदि बडे २ ग्रन्थों में प्रयोग नहीं है सो इसमें है और बहुत-सी क्रिया सिद्ध वैद्य और महात्माओं की बताई हुई इसमें लिखो है बहुत कहा तक लिखे यदि आपको कुछ अपूर्व रस का चसका चाखना हो तो मगा कर देख लीजिये इसमें भी मूल संस्कृत और भाषा टीका है अभी पूर्व खंड मध्यखंड और उत्तरखंड-का पूर्वभाग छपकर तयारहै किमत तीनों खंडोंकी २॥ डाक महासूल ।० है

रमलनवरत्न

यह संस्कृत ग्रन्थ भाषा टीका सहज्योतिष का है इसमें फांसे (कुरा) गेर कर प्रश्न कहते है और प्रथम यह मूल ग्रन्थ काशीमें छपा था अब हमने इसको भाषा टीका सहित छापा है और सूचीपत्र तथा इसकी सारणी और उचित स्थानोंमें चक्र भी लिखे हैं इसको देखकर बिना पढा मनुष्य भी प्रश्न को बहुत उत्तमता के साथ कह सकता है किमत जिल्द बंधे की ॥) महसूल ⌐) है बिना जिल्द ।०) महसूल।

माधवनिदान

यह ग्रन्थ भाषाटीका सहित बहुत उत्तम कागद पर दूसरी बार अत्यन्त शुद्ध हो कर छपा है इसमें जहा तहा संस्कृत अन्वय भी है मौल्य मोटे कागद का २) मासू ।⌐

प्रथम वर्षका मौल्यप्राप्तिस्वीकार

श्रीयुत गोपालमानगीरजो जलपाई गोरी	असाम	२
कार्तिकप्रसादजी	डिमरूगढआसाम	३ ।०
फकीरचंदजो	लुधियाना	३ ।०
कल्यानमलजो हलवाई	उरई	३ ।०
गिरधारीलालजी	रीवा	३ ।०
गंगारामजो	लाहौर	२
माधोसिंहजी जमींदार	गुदडो	२
जयकृष्णजो	कामयगंज	२
श्रीयुत रामरत्नशर्माजी	कालीकोठी	२
श्रीयुत वैद्य मदनसाहजी	बसेडी	२

☞ यह प्रथम वर्ष पूरा हुआ इसके पहुंचने पर दूसरे वर्षका मौल्य भेजना चाहिये.

अनुक्रमणिका.

बृहन्निघंटुरत्नाकरके शारीरस्थानकी

शिष्योपनयनीयाध्यायः

अध्ययनसंप्रदानीयाध्यायः

प्रभाषणीयाध्यायः

अथ

शारीरस्थान

सर्वभूतचिंताशारीराध्यायः १

शुक्रशोणितशारीराध्यायः

इतिषष्ठतरङ्गः ६

गर्भावक्रान्तिशारीराध्यायः

*इतिसप्तमतरङ्ग ७

गर्भव्याकरणंशारीराध्यायः

अष्टमतरङ्गः ८

शरीरसंख्याव्याकरणाध्यायः

* इतिनवमतरङ्ग ९

प्रत्येकमर्मनिर्देशशारीराध्यायः

दशमतरंग

शिरावर्णविभक्तिशारीराध्यायः

एकादशतरङ्ग

शिराव्यधविधिशारीराध्याय

*इतिद्वादशतरंगः

धमनीव्याकरणंशारीराध्यायः

इतिनवमोध्यायः ९

गर्भिणीव्याकरणाध्याय

इति शारीरभागः समाप्तः

अथ शस्त्रचिकित्सा प्रारंभः

अग्र्योपहरणीयाध्यायः

यंत्राध्यायः

शस्त्रावचारणियाध्यायः

योग्यासूत्रीयाध्यायः

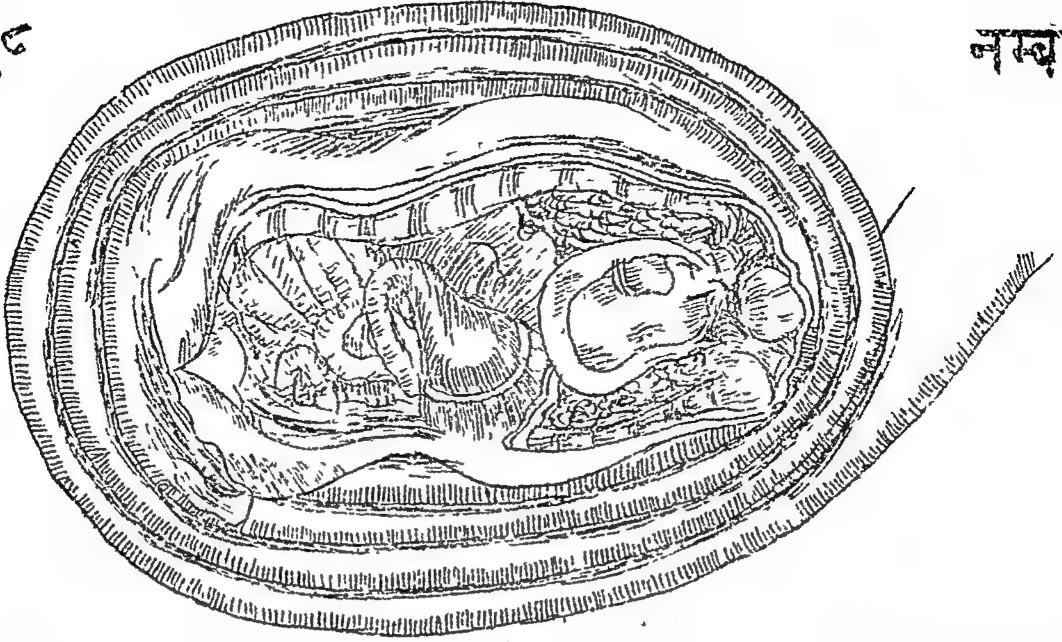
अष्टविधशस्त्रकर्माध्यायः

इति शस्त्रचिकित्सा विधिः समाप्तः

गर्भाशयका चित्र.

पृष्ठ १३८

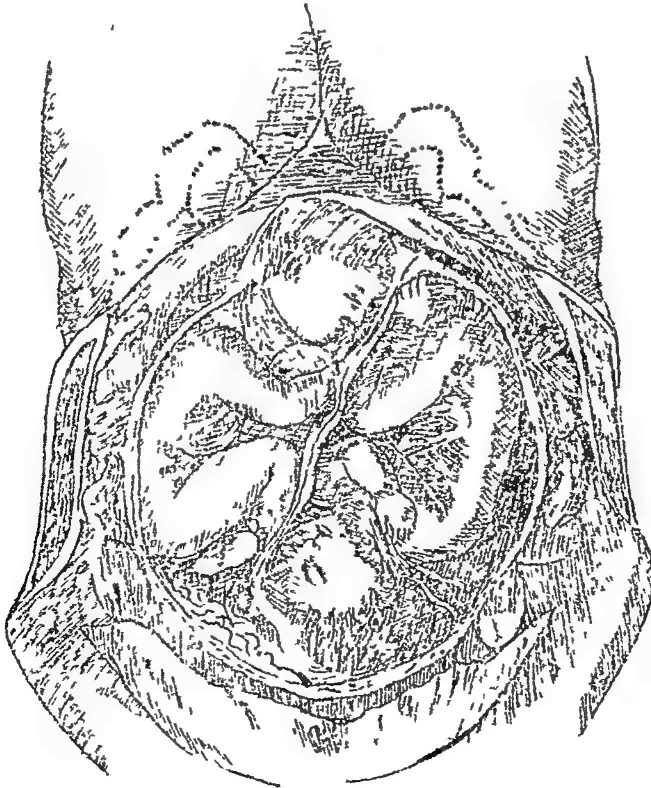
नम्बर १



यमलगर्भका चित्र.

पृष्ठ १५०

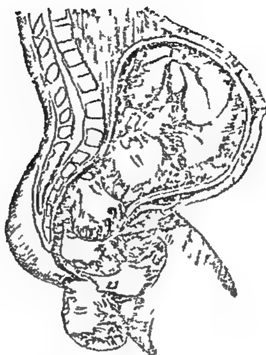
नम्बर २

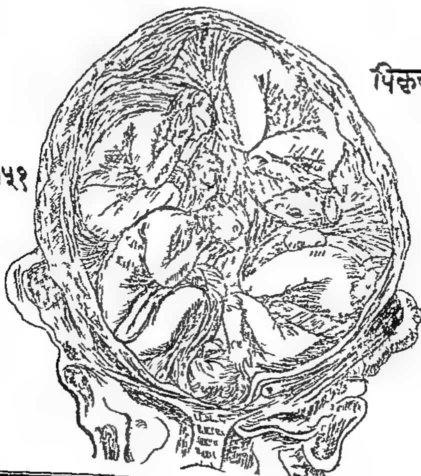


अनेक गर्भका चित्र.

पृष्ठ ३५०

नंबर ३





पिकनाकृति.

पृष्ठ १५१

नंबर ३

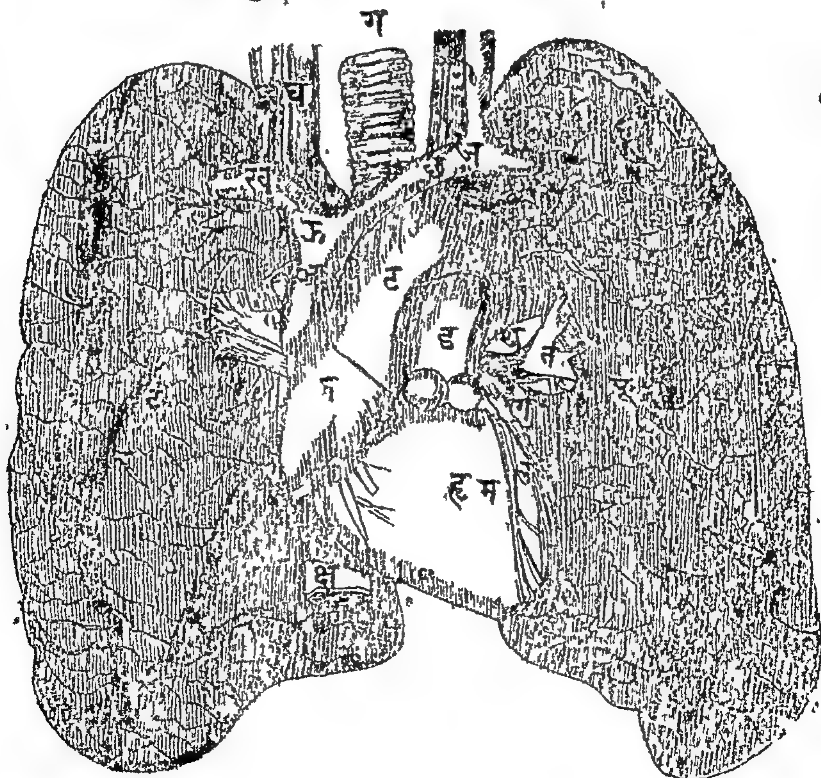
राक्षसीगर्भका चित्र.

पृष्ठ १५७ नंबर ४



फुप्फुस (फेफड़ा)

पृष्ठ २१६ नंबर ५



इस फुप्फुस चित्रमे ग श्वासनाडी इसके द्वारा मुखनासाकण्ठ बाहरकी वायु फुप्फुसमे प्रवेश करे है

घ मूल अन्ननाडी

ड आभ्यन्तरकण्ठशिरा

ज. छ. झ. ञ. ये विशेष२ शिरा

भ ऊर्द्ध्वस्थूल महाशिरा

न धमनीमूल

च ऊर्ध्वस्थ दक्षिण हृत्कोष्ट

ड दक्षिण फुप्फुसधमनी

थ धामनिकप्रणाली

त वामफुप्फुसधमनी

ह निम्नस्थदक्षिण हृत्कोष्ट

म हृद्गर्भोपधमनि

क्ष निम्नस्थूल महाशिरा

ए ऊर्द्ध्वस्थवाम हृत्कोष्ट

ल निम्नस्थवाम हृत्कोष्ट

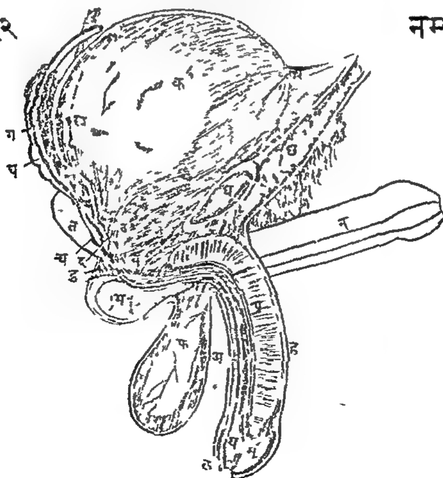
फ फुप्फुस

क फुप्फुसका ऊर्द्ध्वखण्ड

ट फुप्फुसका मध्यखण्ड और नीचे का खण्ड

पुंजननेंद्रिय.

पृष्ठ२३२ नम्बर ६



इस पुंजननेंद्रियसंज्ञक चित्रमें क वस्ति वा मूत्राशय.

ध उपस्थिकास्थि सान्धि.
त ट मेंद्रभूमि.
ड कलायिका
फ अण्डकोश.
घ बीजकोश.
त ट इस जगेसें ल पर्यंत मेढ्र
म लिङ्गमुंड.
य लिंगसरित् वा लिंगग्रीवा.
ल असंसक्त अग्रचर्म.
प लिंगगात्र.

द वस्तीका अधोदेश.
अ मूत्रस्रोत:
च रेतोनाडी शुक्रवाहिनी
ख मूत्रनाडीरन्ध्र
छ त्वक्
न शलाका व्यवहारकी अवस्थालिंग इस प्रकार आकृष्ट तथा गुदा करके इस रन्ध्रमें शलाका प्रवेश करीजाती है.

स्त्रीजननेंद्रिय.

पृष्ठ २३६ नंबर ७

इस स्त्रीजननेन्द्रियसंज्ञकचित्रमें भ भगमणि

न भगोष्ठ
ध भगपक्ष
द भगलिंग
त योनि वा स्त्रीन्द्रियविवर
ग ग जरायु वा गर्भाशय
य डिम्ब कोश
ट मूत्रनाडी
छ बस्ति वा मूत्राशय
प गुदा
ठ उपस्थिकास्थि संधि.
भ्क प्रशस्त रज्जु
क कटिस्थनिम्नकशेरुका
च च च त्रिकास्थीका ऊर्ध्वांश
व त्रिकास्थीका निम्नांश
रव रव कलायन निम्नान्त्र

इस नरकङ्काल सज्ञक चित्रमें न गुल्फ सन्धि और उस जगेकी सात हड्डी इसके अग्रभागमें पाच पैरकी उंगली.

द गुल्फसन्धि
ठ तथा ड जंघास्थि अर्थात् जघाकी दो हड्डी
ञ जानुसन्धि
ट जान्वस्थि वा घोंटू
ऊ उर्वस्थि
ज वङ्क्षणसन्धि
थ श्रोण्यस्थि
छ हृल्लाङ्गुलि मकव
छ यहांसे लेकर च पर्यंतके अंशमें पाच रकभास्थि
च मणिबन्धस्थ पहुंचेकी आठ हड्डी
ड और घ प्रकोष्ठस्थ (कलाईकी) दो हड्डी
ग कूर्परसन्धि अर्थात् कोहनीकी सन्धि
रव प्रगण्डस्थ अस्थि अर्थात् बाजूकी हड्डी.
द स्कन्धसन्धि तथा अंशास्थि.
क पृष्ठवंश इसके सन्मुख उरोस्थि इनके उभयपार्श्वस्थ जत्रुद्वय करके सहित मिलाहुआ है

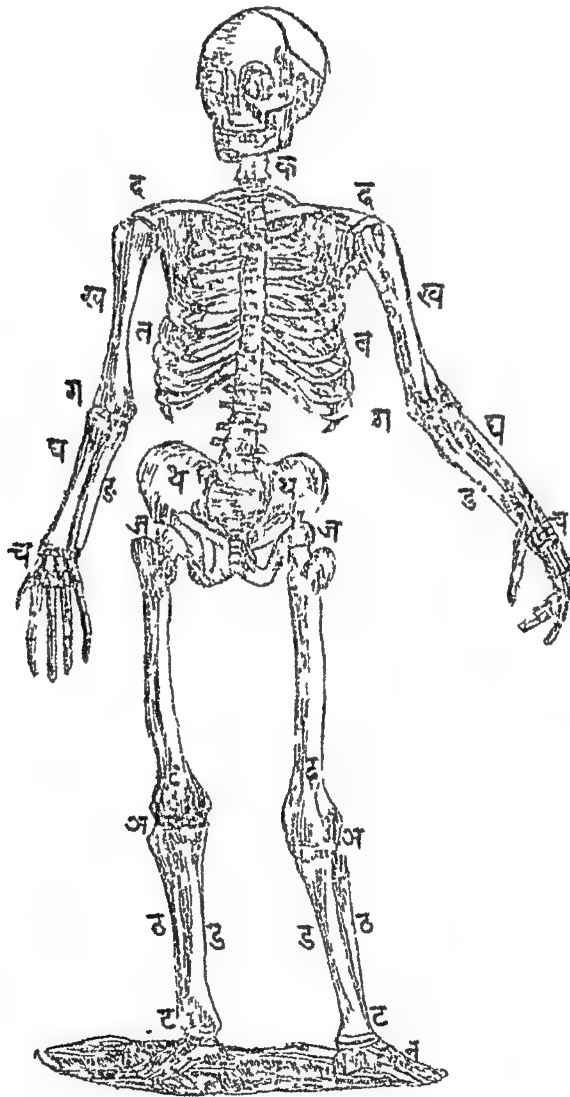
पृष्ठवंश कॢ यहांसें लेकर गुह्यदेशके पश्चात्‌भागमें समाप्त हुआ है. इसके निम्नखंडका नाम त्रिक है.

ह्ृ यहांसें लेकर उरोस्थिपर्यंतजत्रुद्वय कहाती है.

ल्ृ पांशूओका समूह है.

पृष्ठवंश अर्थात् पीठके बांसके ऊपर-में वदनखंडास्थि तथा करोट्यस्थि आदि जाननी.

पृष्ठ २९४ नंबर ८

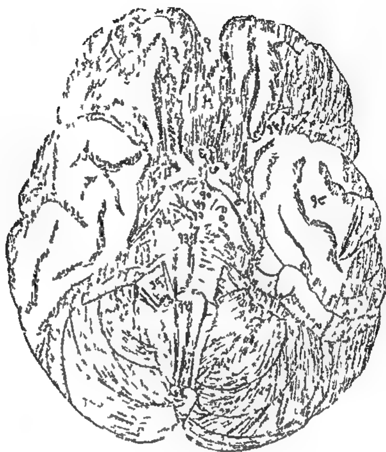


नरकङ्काल

अथवा मनुष्यअस्थिपंजर.

मस्तिष्कसंवन्धिचित्र.

पृष्ठ २८८ नंवर ९

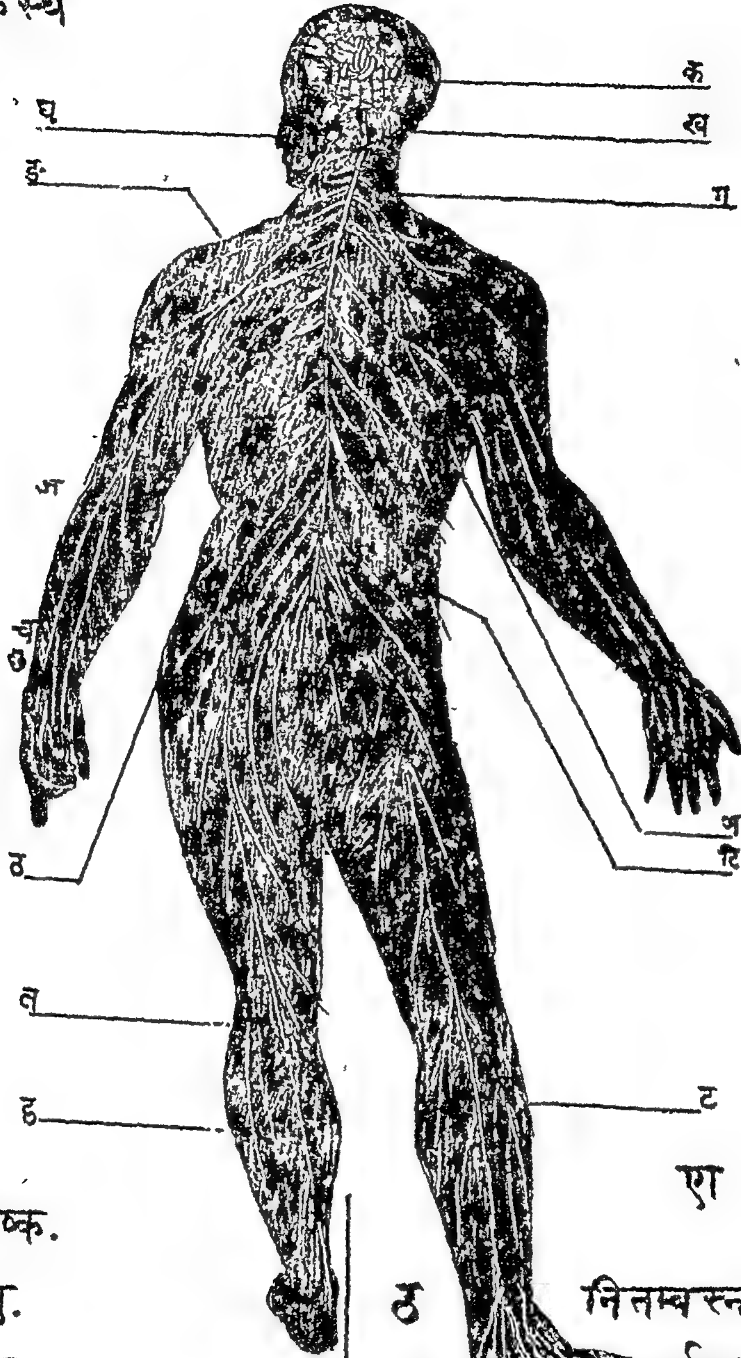


इस मस्तिष्कसवधी चित्रमे १-	२-३-४ चिन्ह इत्यादिसे लेकर
१८-१९-२० चिन्हपर्यन्त	मस्तिष्कका नीचेका प्रतिरूप तिन्हीमे
१ क्षुद्रमस्तिष्क	८ दर्शनस्नायुप्रदेश
३ मस्तिष्कका अग्रखड	९ नेत्रस्पदक स्नायु
४ घ्राणस्नायु	१० दृष्टिसन्धि.
७ दर्शनस्नायु	१२ पश्चाच्छिद्रान्वितप्रदेश.

स्नायुप्रदर्शक चित्र.

इसचित्रमें क मस्तकस्थ बृहत्मस्तिष्क.

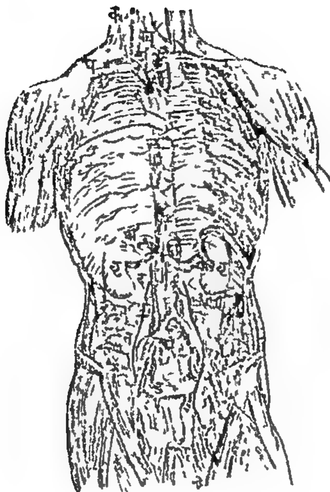
पृष्ठ २८९ | नंबर १०



ख	क्षुद्रमस्तिष्क.	ठ	नितम्बस्नायु.
ग	ग्रीवास्नायु.	ञ	पर्शुकाभ्यंतरस्नायु.
घ	वदनस्नायु.	ड	जानुपश्चात्स्नायु.
ङ	प्रगंडसन्धि स्नायु.	ट	जान्वभिमुखस्नायु.
ञ	प्रगंडस्नायु.	ण	पदतल स्नायु.
च	प्रकोष्ठस्नायु.	ट	कटीस्नायु.
छ	प्रकोष्ठ निम्नस्नायु.		
झ	करतलस्नायु.	त	ऊरुस्नायु.

शिराप्रदर्शक चित्र.

पृष्ठ ३३३ नंबर ११



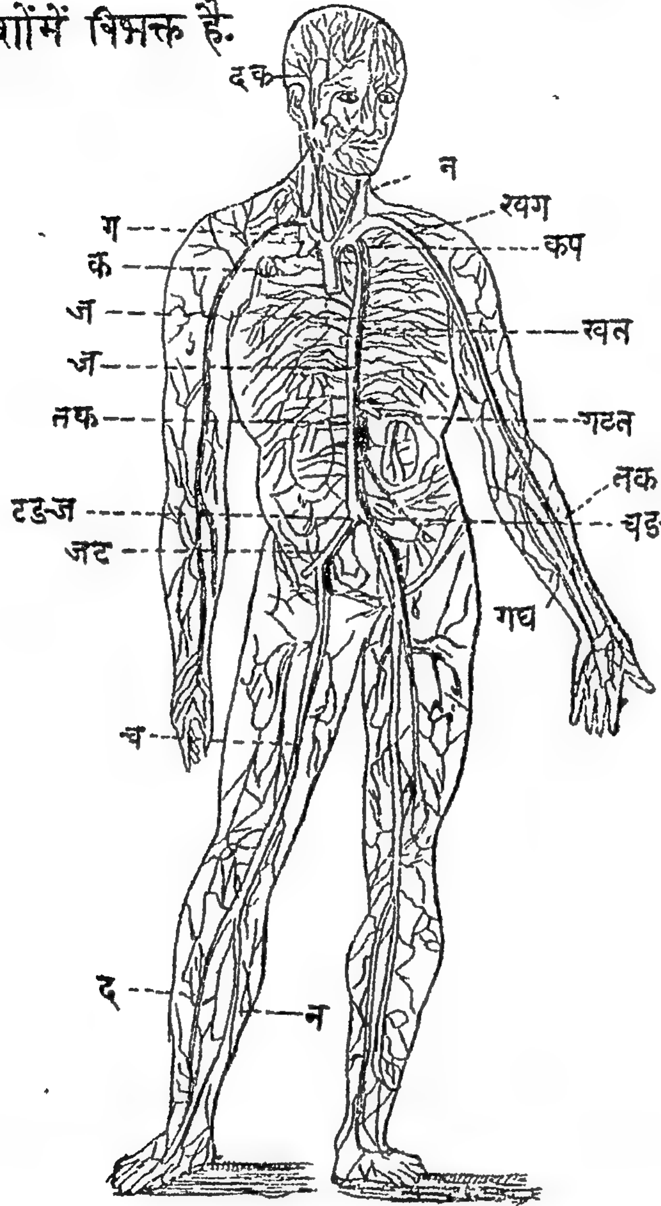
इसशिराप्रदर्शक चित्रमे क ख ग्रीवापार्श्वस्थ बाह्य तथा अभ्यन्तरकण्ठशिरा
ग- अनारव्यात शिरा
घ जत्रु निम्नशिरा
च बृक्कद्वय
द बृक्कशिरा
ध ऊर्द्ध्वबृक्क ग्रंथिशिरा
ड रैनी रज्जू शिरा
थ बाह्यवस्तिशिरा
जत्रुके नीचे ऊर्द्ध्वस्थ महाशिरा तथा वस्तीसे अधस्थ महाशिरा

धमनीप्रदर्शक चित्र.

इस धमनीप्रदर्शक चित्रमें ख ग धमनी मूल यह ऊर्ध्वाभिमुखी· पश्चाद्गामी तथा निम्नमुखी ये तीन अंशोंमें विभक्त है.

पृष्ठ ३६०

नंबर १२



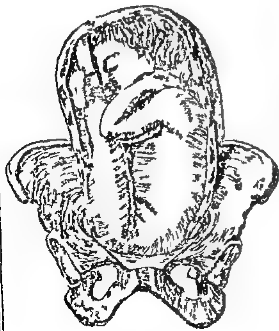
द क	कपालस्थ धमनी.	च	उदरस्थनाड़ी.
क न	गलस्थधमनी.	द	नलकास्थीय धमनी.
ग	कंठस्थधमनी.	न	जानु पश्चात् धमनी.
क	कक्षनाडी	व	जानुस्थ सन्मुखनाड़ी.
ज	धमनीस्कंध वा वक्षःस्थमूलनाड़ी.	ख त	पर्शुकाभ्यंतर धमनी.
त ङ.	उदरस्थमूलनाड़ी.	ह क	प्रगंडीयनाडी.
टङ. ज	अभ्यंतर (भीतरकी) वस्तिनाड़ी.	न क	मणिबंधस्थनाडी.
ज ट,	बाह्य (बाहरकी) वस्तिनाड़ी.	ग घ	मकोष्ठीय धमनी.

मूढगर्भप्रदर्शकचित्र.

पृष्ठ ४०१ नं० १८



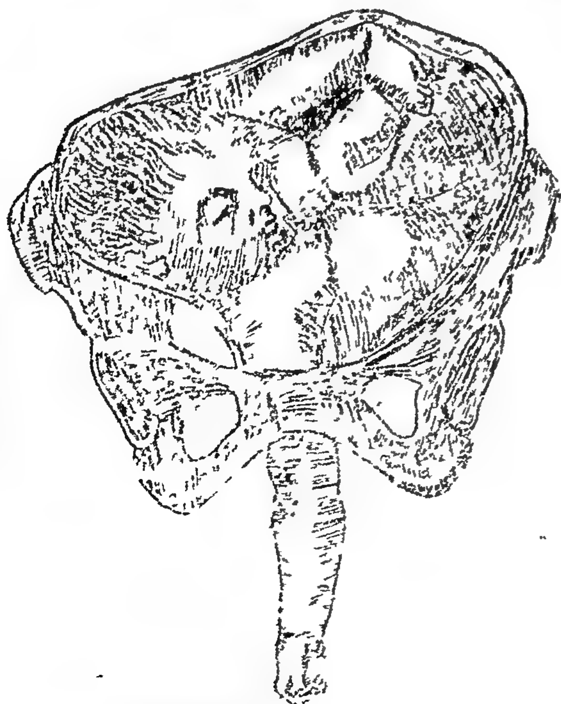


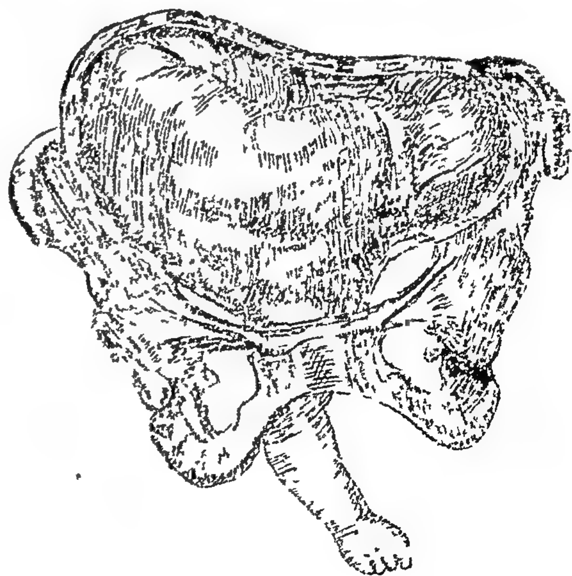




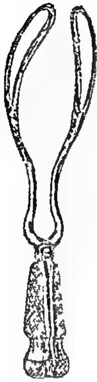
मूढगर्भवेधक विविध शस्त्र.





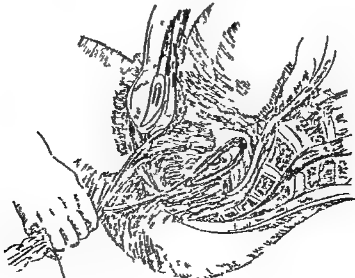


मूढगर्भनिकालनेके शस्त्र.

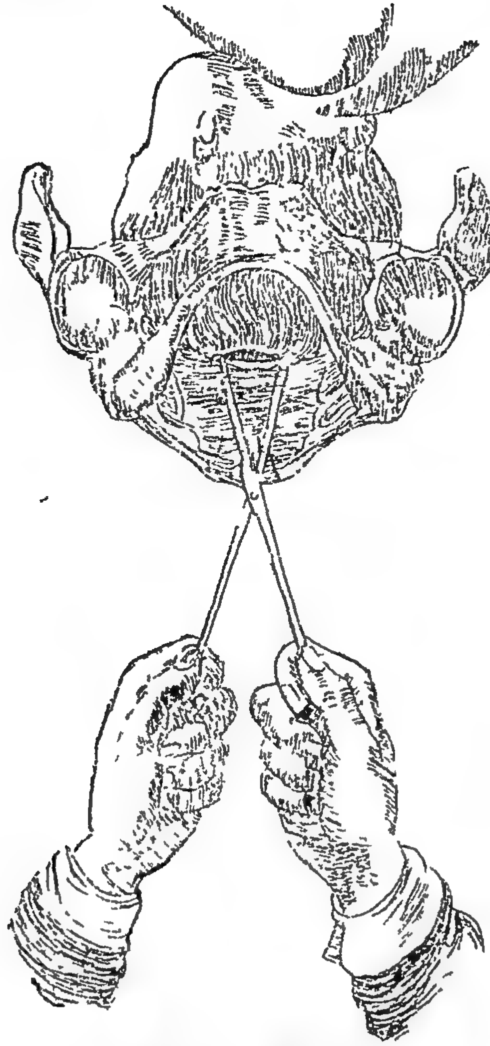





मूढगर्भव्याहरणप्रदर्शक चित्र.



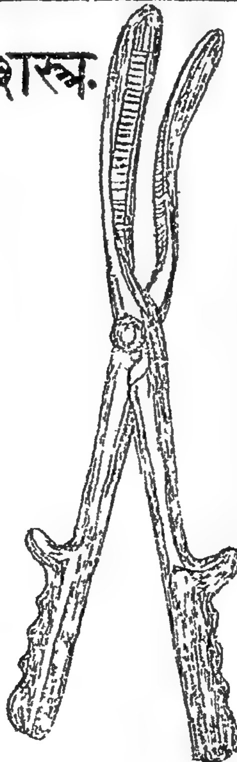
मूढगर्भनिकालनेका चित्र.



मूढगर्भ तोडनेके शस्त्र.



शिरभेदनकर्त्री शस्त्र और उसकी टोंच.



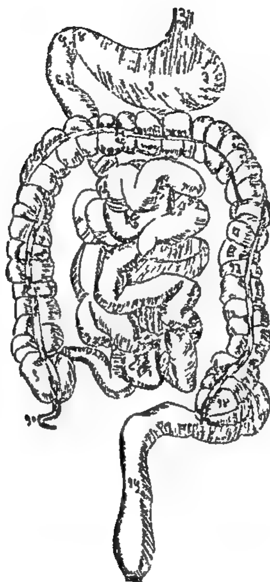
मस्तक भेदन करनेके पिछाडी खोपड़ी पकड़नेका शस्त्र.



शिरमें गड़ायकर ईंचनेका आंकड़ा.

अंत्र (आंतडें) प्रदर्शकचित्र.

पृष्ठ ४०९ नंबर २०



इस आंतडेके चित्रमे २ गलनालीका शेषांश, अन्ननाडी मुखसे लेकर इस स्थान आमाशयसे मिलित होती है

१-२-३-४ ये चिन्ह गर्भप्रवेशित नाडीके है. ५ इस आकृति विशिष्टयन्त्रको आमाशय (पाकस्थली) अन्न मुखसे गलनाडीमे होकर इस स्थानमें

पतित होती है. ५ - ६, चिन्हांकित अधोमुख गामिनी नाड़ी ग्रहणी. इस स्थानमें सूक्ष्म नाड़ी विशेष मार्गमें यकृत् यहांसें पित्तरस आयकर आमाशयगत अन्नके साथ मिलता है.

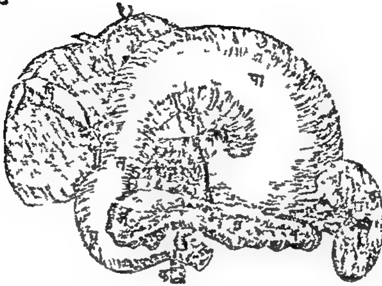
५ - ६ - ७ - ८ - चिन्हांकित बृहत् नाड़ी क्षुद्रांत्र तिनमें ५ - ६ - चिन्हित भागका नाम ग्रहणी है. ग्रहणीके परे जो अंश उसको पक्काशय कहते है. इस जगेसें क्षुद्रान्त्र अतिशय कुंडलाकृति होकर अवस्थित है. भुक्त द्रव्य आमाशयसें समुदाय क्षुद्रांत्र परिवेष्टन करके तथा विविध पाचक रसके साथ मिलकर और जीर्ण होकर रहता है. क्षुद्रांत्रके निम्नवर्ती कोई दो २ अंश कारण विशेष करके कोषादिमें प्रवेश कर इसीका नाम अंत्रवृद्धि पीडा.

९ - १० - ११ - १३ - १४ - इत्यादि चिन्हित नाडी स्थूलांत्र इनमें ९ - ११ चिन्हके तरफ अर्थात् दक्षिण पार्श्वके अंशके ऊर्ध्वगामी स्थूलांत्र तथा १३ - १४ चिन्हवाले अर्थात् वामपार्श्वके अंशके अधोगामीको स्थूलांत्र कहते हैं. इन दोनोंके मध्य क्षुद्रान्त्रोंके ऊर्द्धस्थ अनुप्रस्थ अंशको अनुप्रस्थ स्थूलांत्र कहते हैं. प्रवाहिकादि पीडा स्थूलांत्रमें विशेष करके अधोगामी स्थूलांत्रोंमें क्षत. पीडा होनेसें रक्तादि निस्रुत होता है.

१५ - अंक चिन्हित निम्नाभिमुख अंत्रांशको गुदा कहते है. इसका सर्व निम्नांश गुह्यद्वार रूप परिणामको प्राप्त हुआ है. प्रवाहिकादि रोग इसी स्थानमें तथा क्षतादि होते है. तथा इसी स्थानमें बवासीरके मस्से होते है इस निम्नाभिमुख अंत्र तथा उसके ऊर्ध्वस्थ स्थूलान्त्रांशको मलाशय कहते है. अधोगामी अंश (गुद) पुरीषनिर्गमक है.

पाकस्थलीप्रदर्शक चित्र.

पृष्ठ ४१० | नंबर २०



इस चित्रमें य य यकृत्

पा- आमाशयके (पाकस्थलीके) अधोंश

पि पित्ताशय

त आमाशयके अधःस्थ छिद्र

घ ग्रहणीका अंगविशेष

क उदरप्रविष्ट धमनीस्कंध

क्ल लोम वा तिलयन्त्र

ज क्लोममूर्च्छी

ड- क्लोमदेह

न क्लोमपुच्छ

द प्लीहा

ए आमाशयका ऊर्ध्व छिद्र

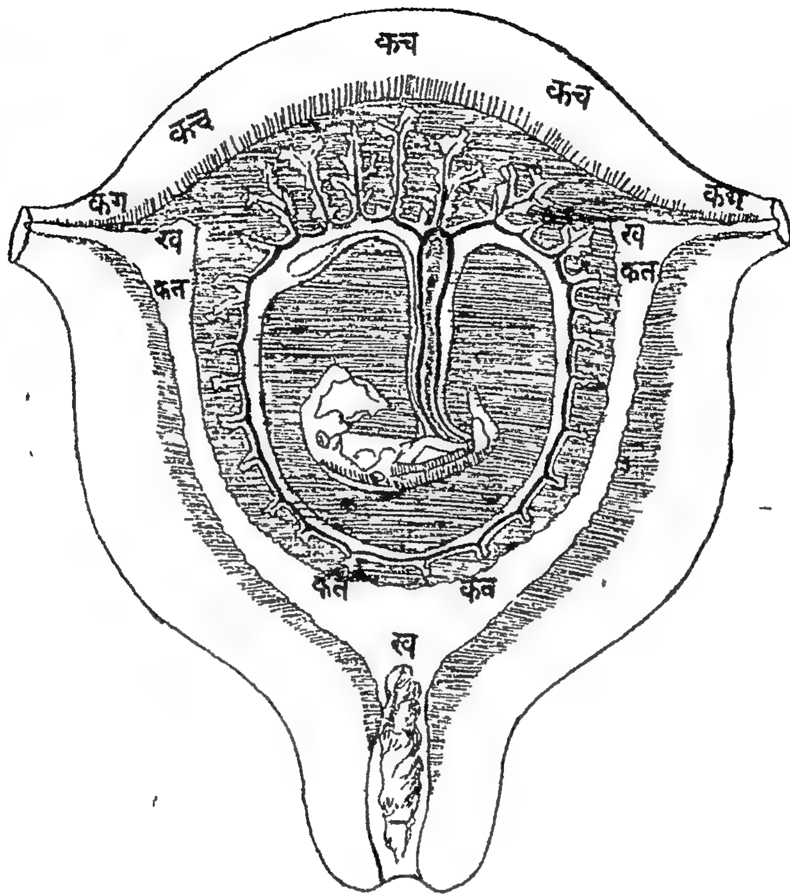
ग ग उदरवक्षोव्यवधायक (वक्षस्थ-लस्थ) पेशीके दो स्तंभ

च मूल पित्तप्रणाली

प्ली- प्लीहस्थान

भ्रूणगर्भस्थितिप्रदर्शक चित्र.

पृष्ठ ४११ नंबर २१



इस चित्रमें **ख ख ख** जरायुगव्हर.

कत-कत-कत-कत- अस्थायिनी भ्रूणावरक कला.

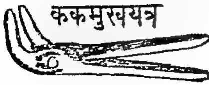
कग-कग- अस्थायिनी जरायु वेष्टिका कला.

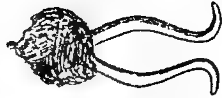
कच-कच- अस्थायि जरायु वेष्टक डिम्बकला.

इस चित्रमें जरायुस्थ भ्रूणकी अवस्थिति प्रदर्शित करी है.

यंत्राध्यायके चित्र.

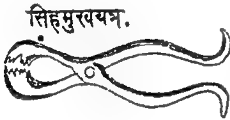
ककमुखयत्र



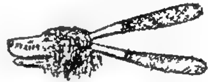


व्याघ्रमुखयन्त्र.

सिहमुखयत्र.



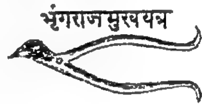
श्वानमुखयन



ऋक्षमुखयंत्र.



भृंगराजमुखयत्र



काकमुखयत्र.



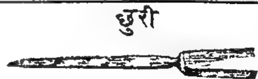
वृकास्ययत्र.



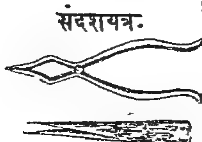
जरखमुखयत्र



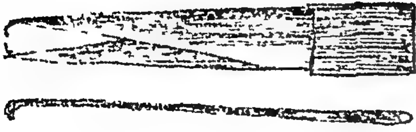
छुरी



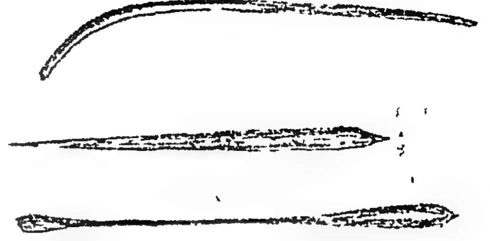
संदशयत्र.



नालयंत्र.



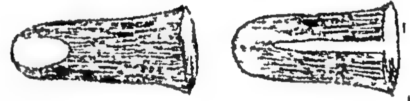
नाडीयंत्र.

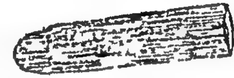


स्नुहियंत्र.



अर्शोयंत्र.

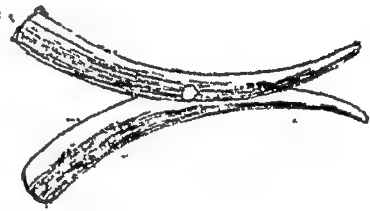




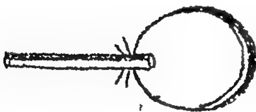
अंगुलित्राणयंत्र.



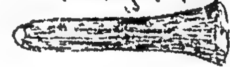
योनिव्रणेक्षणयंत्र.



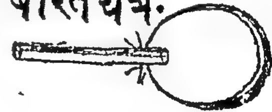
नाडिव्रणक्षालनयंत्र



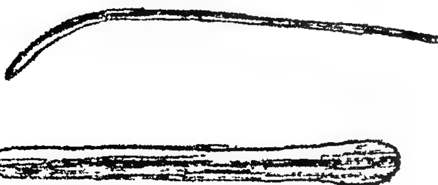
जलोदरयंत्र.



बस्तियंत्र.



शलाकायंत्र.

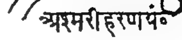


गर्भशंकुयंत्र.



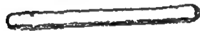
यौग्मशकु यन्त्र





शलाकायन्त्र







छेदनशस्त्र.



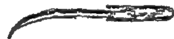
शस्त्राध्यायके चित्र.

मण्डलाग्रशस्त्र

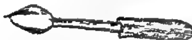


वृद्धिपत्रशस्त्र





उत्पलशस्त्र





सर्पास्य शस्त्र



एषणी शस्त्र



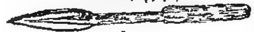




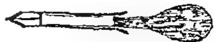




वेतसपत्रशस्त्र.







कुशपत्र शस्त्र.



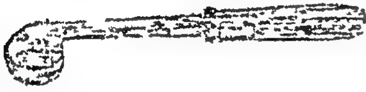


आटीमुख शस्त्र.

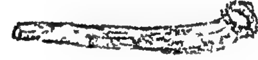
व्रीहिमुख शस्त्र.



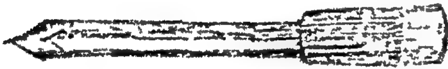
कुठारिका शस्त्र.



शलाका शस्त्र.



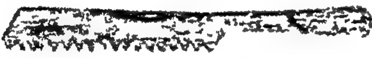
मुद्रिका शस्त्र.



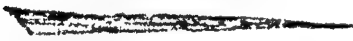
बडिशमुखशस्त्र.



करपत्र शस्त्र.



नखशस्त्र.



दंतलेखन शस्त्र.

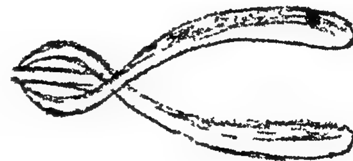


कर्तरी (कैंची) शस्त्र.



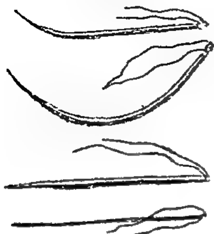








सूचिशास्त्र



कूर्चशस्त्र.



कर्णछेदन शस्त्र.



सूचना

समस्त विद्याओंमे आयुर्वेद विद्या उच्चतम है इसमेभी और अ-शोकी अपेक्षा शारीरस्थान और अस्त्रचिकित्सा प्रकर्णका जानना सर्व वैद्योके आवश्यक है यद्यपि इस शस्त्रचिकित्साका बहुतसें मनुष्य अनादर और निंदा करते है परन्तु वे मूर्ख है हमारे समस्त पूर्वाचार्य शवछेदन करके शिष्यको दिखाते थे असे ग्रन्थ औपधेनव. औरभ्र. सुश्रुत. पौष्कलावतआदि महर्षियोके बनाए हुए अनेक ग्रन्थ थे परंतु हमारे और हमारे शास्त्रोके द्रोही यवनादिकोंके आधिपत्य होनेसें वो ग्रंथ अस्तमायसे हो-गऐ दूसरे इस शस्त्रचिकित्साकबडा भारी प्रमाण वेद रामायण भारतादि ग्रंथ देते है क्यों कि हमारे इस देशमे प्रथम बाणोंसे युद्ध होता था तब-अवश्य शस्त्र वैद्योंकी आवश्यकता रहतीथी इसीसे हम कहते है कि वैद्योको अवश्य पठनीय यह शारीर और शस्त्रविद्याहै. शेष अन्यस्थलमे कहेगे.

भवदीय आयुर्वेदोद्धारसंपादक,

दत्तराम चोबे. श्रीमथुरा.

दृष्टव्य सूचना।



लीजिये! देखिये! अवश्य देखिये! निरन्तर देखिये!
! फिरभी देख लीजियेगा !

एसा कौन मनुष्य होगा कि, जिसको वैद्य विद्या सैं प्रीति न होगी, और साल भर में दो चार दफे इसके अनुशरण कर्त्ता वैद्य का आश्रय न लेता हो। क्योंकि यह देह रोगों का घर है। यथा "शरीरं रोग मन्दिरम्" अत एव सर्व देश हितैषी, राजा महाराजा और सत्पुरुष वैद्य की अत्यन्त तन मन धन सैं प्रतिष्ठा करते हैं तथा वाग्भट, वैद्य को प्राणों का आचार्य्य लिखते हैं। "राजाराजगृहासन्नेप्राणाचार्य्यंनिवेशयेत्" अर्थात् राजा प्राणा चार्य्य (वैद्य) को अपने घरके पास रक्खे। इस वाक्य को भारतवासी राजा महाराजा और सेठ साहूकार आदि तो सामान्य मानते हैं, परंतु मानना अंग्रेजों का सत्य है कि विना डाक्टर के पत्ता भी नहीं हिलाते। इसी कारण देखिये कि जैसै हृष्टपुष्ट अंग्रेज है, वेसै इस आर्यावर्त्त के मनुष्य वहुत थोड़े निकलेंगे। यह वैद्य विद्या एसी वस्तु है कि जो सर्वथा कुछ नहीं पढ़े वेभी एकदो औषधि अवश्य कंठाग्र रखते हैं। और तो क्या पशु, पक्षी, आदि भी जव उनके रोग होते हैं, तो वेभी वनास्पति आदि खाकर बमन, विरेचन द्वारा अपनी देह की रोगों सैं रक्षा करते हैं, अव जो मनुष्य होके रोगों स देह रक्षा न करे, वो पशूओं से भी वढ़कर हैं। इस लिखने से हमारा यह प्रयोजन है, आज कल इस भारतखंड में वहुत से मनुष्यों ने देशोन्नति पर कमर वांध रक्खी है परंतु जिस देह सैं अनेक अलभ्य वस्तुओं का लाभ हो सक्ता है उसकी और कुछ भी दृष्टि नही है। प्रत्येक वर्ष में हजारां मनुष्य इन रोगरूप शत्रुओं के हाथों से वध किये जाते हैं। अतएव हम सव को चाहिये कि, जैसैं वने तैसै अपनी देह रक्षा सर्व प्रकार सैं करे। क्योंकि नीत में लिखा है कि आपत्य के अर्थ धन की रक्षा करे, और धन से स्त्री पुत्रादि की रक्षा करे, तथा धन और स्त्री पुत्रादिं द्वारा अपने आपकी रक्षा करनी चाहिये। सो देह रक्षा वैद्य पर निर्भर है। परंतु

वैद्यों की तरफ देखते हैं तो निरक्षर भट्टाचार्य जिनको यह भी ज्ञान नहीं है कि निदान चिकित्सा किसको कहते है और राजका आतंक नहोने से माली,काछी, धोवी, कोरी, आदि नीच जात जिसकी इच्छा हुई वो दो चार झूठी मूठी दवाई ले वैद्य बन बैठे ।

मालाकारश्चर्मकारोनापितोरजकस्तथा
वृद्धारण्डाविशेषेणकलौपञ्चचिकित्सकाः॥

अर्थ–माली, चमार, नाई, धोवी, और वृद्धरंडा स्त्री, ये पांच कलियुग के वैद्य है। देखो ऐसे वैद्यों के होने से कैसा अनर्थ हुआ है कि, इनके आगे अब पढे लिखे वैद्य की पूछ कम होगई और इसी कारण हिन्दुस्तान में आयुर्वेद शास्त्र का पठन पाठन दिन प्रति दिन अस्त प्रायसा होगया।

दूसरे ऐसे ही वैद्यों से अब वैद्यों की औषध का विश्वास जाता रहा। और मूर्ख मनुष्य कहते हैं कि आज कल हकीमों की और डाक्टरों की औषध तत्काल फल दायक है और जो शारीरक अर्थात् देह के अवयवों का ज्ञान, तथा चीरना फाड़ना, तथा यंत्र और शस्त्र इत्यादि इनके हैं वो हमारे वैद्य शास्त्र में तो देखने को भी नहीं है ऐसे ऐसे अनेक कारणों को सोचा तो यही निश्चय हुआ।

कि यह केवल अपने बड़े २ ग्रन्थों के पठन पाठन उठ जाने का कारण है यदि अपने ग्रन्थों को देखे तो कदापि डाक्टर और हकीमों की विद्या में लालसा न होवे। दूसरे इस उष्ण प्रधान देशमें यूरप आदि शीतदेशोंकी अति तीक्ष्ण औषधों की अपेक्षा हमारी भारतीय मृदुवीर्य्य औषधि सर्वथा कल्याण कर्त्ता है इससे हम को चाहिये कि अपने प्राचीन ग्रन्थों को अवश्य देखें, परन्तु प्रथम उन-ग्रन्थों का मिलना कठिन, यदि मिले भी और शुद्धाशुद्ध मिले तो फिर क्या काम के और शुद्ध ग्रन्थ भी मिले तो उनके पढानें वाले तथा पढ़ने वाले न मिलेंगे, इन सब कारणों को विचार यह निश्चय हुआ कि

कोई ऐसा ग्रन्थ रचाजाय कि जिसके देखने से ही सर्व आयुर्वेद के विषय सुगम रीति से मालूम होजावे और जो जो विषय जिस २ ग्रन्थ के

उत्तम होय वो इसमें यथा क्रम पूर्वक लिखे जांय तथा उचित २· स्थानो में फारसी अंग्रेजी का भी मत प्रकाशित कराजाय यह विचार हमने बृहन्निघंट रत्नाकर ग्रन्थ रचने का प्रारंभ करा।

इस ग्रन्थ में आयुर्वेदोपत्ति नामाध्याय, शिष्योपनयनीयाध्याय, अध्ययन संप्रदानीयाध्याय, प्रभाषणीयाध्या०इसके अनन्तर, १० अध्यायों में शारीरक, जिसमें (गर्भवती के नियम मनुष्य के देह के संपूर्ण अवयवो का प्रथक्२वर्णन विस्तार पूर्वक कियाजायगा)उपरांत बालक के जन्मोत्तर विधि, प्रसूता के नियम,बालक की रक्षा विधान, बालक की प्रकृति वर्णन, देशवर्णन, काल वर्णन, दिन चर्या, रात्रि चर्या, ऋतु चर्या, अवस्था वर्णन, व्याधि आदि के लक्षण, चिकित्सा वर्णन, यँत्राध्याय, शस्त्राध्याय, विशिखानु प्रवेसनीयाध्याय, शकुन दूत, कालज्ञान, औषध के लक्षण, आर ओषध की परिभाषा द्रव्य की परीक्षा, औषध ग्रहण में संकेत, प्रति निधि, द्रव्यगत पंचपदार्थ, दीप्तादिगुण, हरीक्यादि, सर्व औषधो के प्रसिद्ध नाम, संस्कृतनाम, और यथा प्राप्त अंग्रेजी फारसी के नाम, गुण

औषधो की तोल हिन्दी, अंग्रेजी फारसी, स्वरस, मंथ, हिम, फांट, क्वाथ, तैल घृत, आदि की विधि धातून का शोधन मारण सविस्तरवर्णन होगा,वमन,विरेचन,अनुवासन, स्वेदन, और स्नेहन विधि, धूम्रपान, गंडूषविधि, जोकलगाना, दागना, फस्तखोलना, नेत्रप्रसादन कर्म, नाड़ीपरीक्षा, मूत्रपरीक्षा, नेत्रपरीक्षा, जिव्हापरीक्षा, स्पर्श, स्वर, और मलपरीक्षा, अग्रोपहरणीयाध्याय, योग्यासूत्रीय, क्षारपाक, दोषधातुमलक्षय वृद्धि विज्ञान, कर्णवेध और बँधन, आमपक्वैषणीय, त्रिश्रैषणीय, हिताऽहित, कृसाकृस, इन अध्यायोंका वर्णन, निदान, पूर्व रूप, रूप, उपशय, और, संप्राप्ति का वर्णन, ज्वररोग का ज्योतिष द्वारा निर्णय, ज्वर निदान, ज्वर की चिकित्सा, (जिसमें। हिम फाट, क्वाथ, गोली, तैल, घृत, पाक, चूर्ण, आसव, रस और मंत्रादि द्वारा ज्वर का निवारण, तथा फारसी चिकित्सा, अंग्रेजी नि

दान चिकित्सा , भी कुछ कहा है)ज्वर का कर्म विपाक तथा धर्म शास्त्र की विधि से प्रायश्चित वर्णन०इसी प्रकार अतीसार- संग्रहणी , बवासीर , पाडु , रक्तपित्त , खई , खासी , श्वास , सैंआदिले वालनिरोग , स्त्रीरोग और विषरोग पर्यंत की चिकित्सा , लिखी है तिसके पीछे वाजी करणा धिकार अर्थात् नपूंसक की चिकित्सा , और रसायनाधिकार लिखा जा यगा । एसब विषय इस ग्रन्थ में विस्तार पूर्वक वर्णन करे है । प्रथम संस्कृत श्लोक और उस्के नीचे शरल भाषा ठीका लिखी जायगी । और अन्य ग्रन्थों से इस ग्रन्थ में यह अति विचित्रता है कि जो प्रकर्ण लिखा है वो इसमें गुरू शिष्य के संवाद पूर्वक लिखा है इसमें सर्व पठन पाठन कर्त्ता मनुष्यों के इसके विषय बहुत ठीक २ कंठाग्र हो सकते है

इस ग्रन्थ में यह भी नियम रहेगा कि , चरक , श्रुश्रुत , वाग्भट , और भाव प्रकाश में जो विषय उत्तम है उन सब की भाषा टीका कर के इसमें लिखेंगे बहुत कहा तक लिखे यह एक ही ग्रन्थ भारत वासी पुरुषों के लिये ऐसाहै कि अब दूसरे ग्रन्थ लेने का कुछ प्रयोजन न रहेगा जिनको थोड़ाभी शास्त्रमें परिचय है उनको यह ग्रन्थ अति उपकारी होगा सर्व साधारण ग्रह स्थोंको अपने देह की और अपने संतति आदि की रक्षार्थ इस ग्रन्थ की १ प्रतिं घर में अवश्य रखनी चाहिये । अलमति विस्तरेण ।

मानिकचोक प्ट्रीट नं० ११२ } माथुर दत्तराराम चोवे
श्री मथुराजी

ओ३म्



बृहन्निघण्टु रत्नाकरः ॥

श्रीशम्बन्दे

श्री निकुञ्जविहारिणेनमः

मङ्गलाचरणं ॥

भजेराधाराध्यंरमितरमणीरञ्जितपदं ॥
रमातातानन्दातिशयगुरुगर्वापहनखं ॥
रमेशंगोविन्दंसुरवरकिरीटैराभिनुतं ॥
हरन्तंमेविघ्नंसपदिसमलङ्कृत्यवचसाम् ॥

रागादिरोगान्सततानुषक्ता । नशेषकायप्रसृतानशेषान्
औत्सुक्यमोहारतिदान्जघान । योपूर्ववैद्यायनमोस्तुतस्मै ॥२॥

पायाद्वोहरिरुद्भूवकलशंहस्तेसुधासंभृतं ।
देवायेनकृतामराभगवतावारिव्रजाद्यश्वसः
सर्वव्याधिविनाशनेतुकुशलोधन्वन्तरिर्देवता ।
आरोग्यैकनिदानदोमुनिवरैश्चर्कादिभिःसंस्तुतः ३ ॥

यत्करस्पर्शनादेव । विकसन्त्यब्जगाश्रियः
तत्प्रसादेनवैद्यानां । विकसन्तुयशः श्रियः

श्रीखंडभस्मार्चितचर्चिताङ्गौ । मुक्तालिगङ्गोल्लसदुत्तमाङ्गौ ।
शिवाशिवौनौमिसुमाल्यनागौ । रत्नाग्निभाभूषितभालभागौ ॥५॥

हेरम्बोरम्यलम्बोदरमरुणवपुर्मूषकेसन्निविष्टं ।
बिभ्रद्विभ्राजमानंकरकमललसत्पुस्तकंस्वस्तिकञ्च ।
ध्यातुर्विघ्नंविनिघ्नन्मृदुमधुरमहामोदकामोदकामो ।

गौरीसूनुर्गजास्योदिशतुगणपतिर्व्योम्मयाऽभीप्सितार्थान् ॥६॥

स्फटिकाक्षसुधाकलशाभयक। च्छपिकावरपुस्तदरेपुकरा।
धृतशौक्तिकमौक्तिकहारवरा। शरदिन्दुमुखीहृदिमेवसताम् ७

नत्वादृष्टफलस्ययस्यपरमेणेनोदितत्वादिह।
प्रामाण्यंनिगमेपुसिध्यतिकिलादृष्टार्थसामादिपु।
सत्रशाश्वतमुत्तमोत्तमतमंशास्त्रेपुसर्वेपुवा।
आयुर्वेदमुपास्महेचयामिमंतंसर्वविद्याकरम् ॥

अथग्रंथकर्तुर्वंशपरंपरा ॥

श्रीमन्माथुरमण्डलेद्विजकुलेश्रीमाथुरीयान्वये।
गोपीनाथप्रपाठकश्चयशसाश्लाघ्योभवत्सूरिभिः।
तत्पुत्रस्तपसानिधिर्गुणनिधिः श्रीवासिरामोभवत्।
तत्पुत्राःकुलभूपणाःसमभवन्नामानितेपांब्रुवे ॥९॥
श्रीचन्द्रस्तदनुस्वधर्मनिपुणःश्रीरामचन्द्राभिध।
तद्भ्राताातृतियोवभूवसुभगोनाम्नाहरिश्चन्द्रकः।
तत्पौत्रःकिलकृष्णलालजनितःश्रीदत्तरामाभिधः।
रत्नान्तंहिवृहन्निघंटुममलंकुर्वेसतांप्रीतये॥ इति ॥

शिष्य—हेगुरो! इस मनुष्य को परम हितकारी विद्या कौनसी है,
गुरू—आयुर्वेद विद्या,
शिष्य—कौन कारणों से आयुर्वेद हितकारी है,
गुरू—धर्मार्थ काम मोक्ष का कारणभूत देहकी रक्षा कर्ता यही शास्त्र है, अतएव यह ग्रंथ सर्व जनादरणीय है, सो वाग्भट में भी लिखा है।

आयुः कामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनं।
आयुर्वेदोपदेशेपु विधेयः परमादरः॥

अर्थ—धन धर्म और सुख का साधन रूप जो आयु (जीवन) उसकी

कामना करके मनुष्य को आयुर्वेद शास्त्र का अत्यन्त आदर करना चाहिये। अर्थात् आरोग्य के शत्रु रोग हैं, सो इस आयुर्वेद के पढ़ने सें और इसके लिखे अनुसार वर्त्ताव करने सें नष्ट होते हैं, चरक मुनि नैं भी लिखा है ॥

धर्मार्थ काम मोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमं ।
रोगास्तस्यापहन्तार : श्रेय सोजीवितस्यच ॥

अर्थ–धर्म अर्थ काम और मोक्ष का कारण नैरोग्य है, उस आरोग्य के और जीवन द्वारा जो कल्याण होता है उसके रोग हरण करता हैं, उसी प्रकार शार्ङ्गधर में लिखा है ॥

अतोरुग्भ्यस्तनुं रक्षेन्नर : कर्म विपाकवित् ।
धर्मार्थ काम मोक्षाणां शरीरं साधनंयत :

अर्थ–कर्म के विपाक के जाननेवाला पुरुष अपनी देह की रक्षा करे, क्योंकि धर्म अर्थ काम और मोक्ष का साधन देहही है ।

ग्रंथान्तरेच ॥

देहादुत्पद्यतेपुंस : पुरुषार्थ चतुष्टयं ।
ननीरोग : सकुत्रापितच्छान्तिस्तुचिकित्सया ॥

अर्थ–पुरुषार्थ चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम मोक्ष,) पुरुष के देह सें प्रगट होते हैं, वो देह कहीं भी निरोग नहीं है, उन रोगों की शान्ति चिकित्सा करके होय है ॥

शिष्य– प्रथमही आयुर्वेद के अनेक ग्रंथ विद्यमान हैं फिर वृहन्निघंटु रत्नाकर वनाने का क्या प्रयोजन है,

गुरु—इहखलुचतुर्वर्गसाधनंशरीरं, तच्चायु: पराधीनं, तद्विघ्न कारिणोरोगा : तदभावहेतुचिकित्साप्रतिपादकतयातिस्रटाद्या चार्याणामायुर्वेदशास्त्रेप्रवृत्ति : तद्ग्रंथानामतिदुर्ज्ञेयतयाइदा नींतनानामप्रवृत्ते: सुकरोपायेनज्ञानार्थमेतास्मिन्ग्रन्थेप्रयत्न : ॥

तद्वत्पौराणकांश्चापिवाङ्मात्रेणापिनार्चयेत् ॥

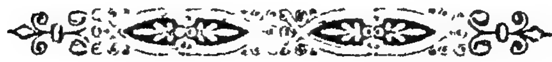
अर्थ–नक्षत्र सूची ज्योतिषी, और मोल लेकर औषध देनेवाला वैद्य, उसी प्रकार द्रव्य ठहरा कर कथा वाचने वाला पौराणिक, इन्हो का वाणी से भी सत्कार न करे। किंतु तिरस्कार करदे। इस शास्त्र का माहात्म्य और वैद्य के लक्षण आगे कहेंगे॥

शिष्य–आपने आयुर्वेद का अच्छा प्रतिपादन करा, इसको सुनके मुझको इसके पढ़ने की अत्यन्त लालसा उत्पन्न हुई है। इससे अब आप आयुर्वेद की उत्पत्ति वर्णन करो।

आयु

॥ गुरु ॥

अथातोआयुर्वेदोत्पत्तिनामाध्यायंव्याख्यास्यामः



यथोवाचभगवान्धन्वन्तरिः सुश्रुताय ः

अर्थ–अव हम आयुर्वेदोत्पत्ति नामक * अध्याय की व्याख्या करेंगे। जैसे भगवान् धन्वन्तरि ने सुश्रुत शिष्य के प्रति सुश्रुत ग्रन्थ में कही है ॥

तत्रप्रथममेवग्रन्थसंदर्भप्रारम्भे,तदसमापनकारणविघ्नविनाशन परमाप्ताचारपरंपरापरिप्राप्तमङ्गलाचरणमुचितमिति,तदाचरणी यत्वेप्रचुरतरविघ्नशंकाशंकितचेतसांप्रचुरतरविघ्नभग्नायप्रचुरतर मङ्गलमेवशिष्यशिशिक्षयिषयाप्रत्याध्यायमग्रतोऽथशब्दोपादा नेनाचचार॥

अर्थ–तहां प्रथम ग्रन्थ के प्रारंभ में, ग्रन्थ की समाप्ति के कारण और विघ्न विनाशनार्थ, मंगला चरण करना चाहिये। यह शिष्टाचार परंपरा चली आती है।, इसीसें तदाचरणीय होने से, और प्रचुरतर शंकाशंकित चित्त वाले पुरुषों के संपूर्ण विघ्न दूर करने के अर्थ, प्रचुरतर मंगल शिष्य शिक्षा के अर्थ प्रत्येक अध्याय के प्रथम, अथ शब्द के उपादान करके करा है। अर्थात् ग्रंथ के वनने में विघ्न न होय, इस कारण प्रत्येक अध्याय के प्रथम अथ शब्द मंगल वाची धरा है।

शिष्य–ननुकिमभिधेयार्थकमिदंशास्त्रप्रयोजनमपिकिं ?

अर्थ–शिष्य प्रश्न करे है, कि हे गुरो ! इस आयुर्वेद शास्त्र में कौन विषय है, और क्या प्रयोजन है, जैसा लिखा है।

ज्ञातार्थज्ञातसंवंध ।श्रोतुंश्रोताप्रवर्त्तते
ग्रन्थादौतेनवक्तव्यः। सम्बन्धसप्रयोजनम् ॥

---

* अक्षरोंसें शब्द, शब्दसें पद, पदके समुदाय सें वाक्य, वाक्यके समूह सें प्रकर्ण, प्रकर्णके समूहसें अध्याय, अध्यायके समुदायसें स्थान, और स्थानके समुदाय सें तंत्र होता है।

अर्थ-ज्ञातार्थ और ज्ञात सबंध सुनने को, श्रोता (सुनने वाले) की प्रवृत्ति होती है, इसी कारण ग्रन्थ के आदि में प्रयोजन सहित संबन्ध कहना चाहिये। अर्थात् जब तक प्रयोजन, संबंध, विषय, और अधिकारी ये ४ नहीं जाने जाँय तबतक मनुष्य किसी शास्त्र के पढ़ने में प्रवृत्त नहीं होता है। अन्यत्र भी लिखा है।

प्रयोजनमनुद्दिश्यनमन्दोपिप्रवर्त्तते ॥

अर्थ-विना प्रयोजन मूर्ख भी किसी कार्य को नहीं करे, अतएव हे गुरो! आप आयुर्वेद शास्त्र के संबंध चतुष्टय कहो, अर्थात् इस शास्त्र में कौन विषय, क्या सबंध, क्या इस शास्त्र का प्रयोजन, और कौन पढ़ने का अधिकारी है।

गुरू-आयुर्वेद का प्रयोजन चरक मुनि ने इस प्रकार लिखा है।

धातुसाम्यक्रियाचोक्तातन्त्रस्यास्यप्रयोजनम् ॥

अर्थ-धातु (रस, रुधिर, मांसादि) के समान करने वाली क्रिया ही इस आयुर्वेद शास्त्र का प्रयोजन रूप है, अर्थात् बढ़ी हुई धातुओं को घटाना और घटी हुईयों को बढ़ाना, तथा जो स्वय समान है उनको घटने बढ़ने से रक्षा करना, यही इस शास्त्र का मुख्य प्रयोजन है। उपाय और उपेय रूप इस शास्त्र में सबंध है. *हेतु, लिंग, और औषधात्मक, तीनस्कंधो का प्रतिपादन यही इसमें विषय है। और ब्राह्मण इसके पढ़ने का अधिकारी है, परंतु कोई आचार्य कहते है कि "तद्‌जिज्ञासु" अर्थात् इसके पढने की इच्छा करने वाले ब्राह्मण, क्षत्री, और वैश्य, त्रिवर्ण को अधिकार है, और कुलगुण संपन्न शूद्र को भी पढ़ने का अधिकार है। यह सुश्रुत कहता है, अब।

* धातु समान करने वाला यह शास्त्र है, इसी से इस्को प्रयोजन वान् शास्त्र कहते है। इस्के पढ़ने से और अर्थ जानने से तथा इस शास्त्र विहित विधि के अनुष्ठान करने से, आरोग्य रूप उपेय की प्राप्ति, और नैरोग्य देह होनेसे अभीष्ट पूर्णआयु की प्राप्ति होती है, उस्सै परम पुरुषार्थ रूप मोक्ष की प्राप्ति सुलभ है, इसी कारण वास्तव से यह शास्त्र उपाय रूप है।

सुश्रुत के मत सें प्रयोजन कहते हैं॥

वत्स सुश्रुत ! इहखल्वायुर्वेदप्रयोजनंव्याध्युपसृष्टानांव्याधि परिमोक्षः स्वस्थस्यरक्षणञ्च ॥

अर्थ—धन्वन्तरि कहते हैं कि हेवत्ससुश्रुत ! इस आयुर्वेद शास्त्र का यही प्रयोजन है। कि रोग ग्रस्त मनुष्यों को रोगों सें (औषधादि देकर) रोग रहित करना, और रोग रहितोंको (हित आहार विहारादि आचरण साधन कराकर) रोगों सें रक्षा करना अर्थात् अहित आचरण के सेवन सै कदाचित् रोगी न होजाय।

शिष्य—हे गुरो ! जिस मनुष्य के प्रारब्ध में जो दुःख या सुख लिखा है वो अवश्य भोगना पड़ेगा, फिर यत्न करना व्यर्थ है, जसै लिखा है "अवश्यमेवभोक्तव्यंकृतंकर्मशुभाऽशुभम्" सौनक भी कहते हैं। यथा

येनतुयत्प्राप्तव्यं। तस्यविपाकंसुरेशसचिवोपि।
यःशाक्षान्नियतिज्ञः। सोपिनशक्तोन्यथाकर्तुम् ॥

अर्थ—जिस को जो वस्तु प्राप्त होने वाली है, उसको विपाक का जानने वाला इन्द्र का सचिव भी अन्यथा नहीं कर सके, इसीसै प्राचीन सदसत् कर्म को अवश्य भावित्व है।

गुरु—ऐसा कहोगे तो औषधादि भक्षण मुहूर्त्तादि देखना, और दुकान आदि करना, तथा पुरश्चरणादि कर्म को असत्यता आवेगी, इसीसैं दैव (प्रारब्ध) और यत्न, (उद्योग) दोनोंही सफल है, केशवार्किने भी लिखा है।

फलेद्यदिप्राक्तनमेवतात्किं। कृष्याद्युपायेषुपरः प्रयत्नः
श्रुतिस्मृतिश्चापिनृणांनिषेध। विध्यात्मकेकर्मणिकिंनिषण्णे इति

अर्थ—प्राक्तन कर्मही फले है। कदाचित तुम ऐसा मानोगे तो खेती करना आदि उपायों में मनुष्य को प्रयत्न करना व्यर्थ है, तथा श्रुतिस्मृति निषेध विधि वाले कर्म करना भी निरर्थक है, "न वृक्ष मारो हे, नकूपमवरो हे, नबाहुभ्यां नदीन्तरे, नप्राण संशयमभ्यापद्येत"। अर्थात् वृक्ष

पर न चढ़े, कूए को उल्लंघन न करे, नदी को हाथो से नतरे तथा जहां प्राण का संदेह होय उस स्थान में न जाय, इत्यादि आश्वलायन के वचनों को और आयुर्वेद शास्त्र को व्यर्थता आवेगी, और शार्ङ्गधर में लिखा है।

दिव्यौषधीनांबहवःप्रभेदा। वृन्दारकाणामिवविस्फुरन्ति
ज्ञात्वेतिसंदेहमपास्यधीरैः। सम्भावनीयाविविधप्रभावाः

अर्थ–दिव्यौषधों के अनेक भेद हैं, और वे देवतों के सदृश प्रकाशवान् हैं, अर्थात् देवतों के समान फलके देने वाली हैं। इस प्रकार जान के धीर पुरुष संदेह को दूरकर अनेक प्रभाव वाली औषधों को जाने इस जगह देवताओं के सदृश जो प्रभाव लिखा है उस्को असत्यता आवेगी, अतएव कर्म की सिद्धि केवल दैव से नहीं है, किंतु पुरुषार्थ से भी होय है सो याज्ञवल्क ऋषि लिखते हैं॥

दैवेपुरुषकारेपिकर्मसिद्धिर्व्यवस्थिता।
तत्रदैवमभिव्यक्तंपौरुषंपौर्वदेहिकं॥

अर्थ–कर्म की सिद्धि, अर्थात् भले बुरे फल की प्राप्ति होना, यह केवल दैवसेही नहीं है, किंतु पुरुषार्थ से भी होती है। क्योंकि पूर्व जन्म कृत पुरुषार्थ कोही दैव कहते हैं। वो अल्प उद्योग सें महाफल देता है, ऐसाही शकुनवसंतराज ग्रंथ में लिखा है।

पूर्वजन्मजनितंपुराविदः। कर्मदैवमितिसंप्रचक्षते।
उद्यमेनसमुपार्जितंतदावाञ्छितंफलतिनैवकेवलम्॥

अर्थ–पूर्व जन्म के कर्म को दैव कहते है। वह उत्तम उद्योग द्वारा वांछित फल देता है। स्वय ही फल नहीं दे सकता, इसी से उद्योग और दैव दोनों कोही मुख्यता है। इसको याज्ञवल्क दृष्टान्त देकर कहते है।

यथाह्येकेनचक्रेण, रथस्यनगतिर्भवेत्।
तद्वत्पुरुषकारेण, विनादैवंनसिध्यति॥

अर्थ-जैसे एक पैये से रथ नहीं चले, उसी प्रकार विना पुरुषार्थ (उद्योग) के दैव सिद्ध नहीं होता, केशवार्क भी लिखता है।

प्राक्कर्मवीजंसलिलानलोर्वी। संस्कारवत्कर्मविधीयमानम्
शोषायपोषायचयस्यतस्य, तस्मात्सदाचारवतांनहानिः॥

अर्थ-पूर्व जन्मान्तरोपार्जितकर्म, दैव कहाता है। उसके निमित्त इस जन्म में क्रियमाण कर्म सुखाने और पोषणार्थ होता है, जैसे वीज को जल, गरमी और पृथ्वी का संस्कार, अर्थात् जैसे उत्तम वीज जल खात आदि के देने सें जल्दी ऊगकर वढ़ता है, उसी प्रकार पूर्व जन्मका कर्म इस जन्म के अच्छे उद्योग से वढ़ता है, अन्यथा क्षीण होजाता है। इसी कारण आयुर्वेद शास्त्र द्वारा, प्रथम निदानादि से परीक्षा कर, औषध सेवन और शांति दुकान और मुहूर्त्तादि देखना आदि सदाचार वाले पुरुषों की हानी नहीं होती *

तथाचचरकेविमानस्थानस्यतृतीयाध्यायेच।

* किन्तु खलु भगवन्! नियत काल प्रमाणमायुः सर्वं नवेति। भगवानुवाच। इहाग्निवेश! भूतानामायुर्युक्तिमपेक्षते। दैवे पुरुष कारेचस्थिते ह्यस्यवलावलम् १ दैवमात्मकृतंविद्यात्कर्मयत्पूर्वदैहिकम्। स्मृतः पुरुषकारस्तु क्रियतेयदिहापरं २ वलावलविशेषोस्तितयोरपिचकर्मणोः। दृष्टंहित्रिविधंकर्म हीनंमध्यम मुत्तमम् ३ तयोरुदारयोर्युक्तिदीर्घस्यस्वसुखस्यच। नियतस्यायुषो हेतुर्विपरीतस्यचेतरा ४ मध्यमामध्यमस्येष्टाकारणंशृणुचापरम्। दैवंपुरुषकारेण दुर्वलंह्यपहन्यते ५ दैवेनचेतरत्कर्म्माविशिष्टेनोपहन्यते। दृष्ट्वायदेकेमन्यन्ते नियतंमानमायुषः ६ कर्माकिंचित्क्वचित्कालेविपाकेनियतंमहत्। किंचिन्न कालनियतंप्रत्ययैः प्रतिवोध्यते ७ तस्मादुभयदृष्टत्वादेकान्तग्रहणमसाधु। निदर्शनमपिचात्रोदाहरिष्यामः। यदिहिनियतकालप्रमाणमायुः सर्व्वंस्यादायुष्कामानांनमन्त्रौषधिमणिमङ्गलवल्युपहारहोमनियमप्रायश्चितोपवासस्वस्त्ययन प्रणिपातगमनाद्याःक्रियाइष्टयश्चप्रयोज्येरन्। नोद्भ्रान्तचण्डचपलगोगजोष्ट्रखर तुरगमहिषादयःपवनादयःदुष्टाःपरिहार्याःस्युः। नप्रपातगिरिविषमदुर्गाम्बुवे-

शिष्य–हे गुरो! मेरे मनमें कर्म और उद्योग इन दोनोंमें कौन बड़ा है यह भ्रम था सो आपने दोनों मुख्य कहे यह ठीक है, मैंने भी बहुतसे प्रार ब्ध मानने वाले देखे परंतु विना उद्योग किसी को न देखा इसी सें उद्योग अवश्य कर्त्तव्य है। अब आप आयुर्वेद किसको कहते हो सो कहो।

गुरु–आयुर्वेद के लक्षण भावप्रकाश में इस प्रकार लिखे हैं।

गाः तथानप्रमत्तोन्मत्तोद्भ्रान्तचण्डचपलमोहलोभाकुलमतयोनारयोनप्रवृद्धोऽग्निर्नचविविधविषयाश्रयाःसरीसृपोरगादयः। नसाहसनदेशकालचर्य्यानननरेन्द्रप्रकोपइत्येवमादयोभावनाभावकराः स्युरायुषः सर्वस्यनियतकालप्रमाणत्वात् नचानभ्यस्ताकालमरणभयनिवारकाणामकालमरणभयमागच्छेत्प्राणिनाम्। व्यर्थाश्चारम्भकथाप्रयोगबुद्धयःस्युःमहर्षीणांरसायनाधिकारे। नापीन्द्रोनियतायुषशत्रुंवज्रेणाभिहन्यात्। नाश्विनावार्त्तंभेषजेनोपपादयेतांनपर्योयथेष्टआयुस्तपसाप्राप्नुयुर्नचविदितवेदितव्यामहर्षयः ससुरेशाः सम्यक्पश्येयुरुपदिशेयुराचरेयुर्वा अपिचसर्व्वचक्षुषामेतत्परंयदैन्द्रचक्षुरिदंचास्माकंमत्यक्षंयथापुरुषसहस्राणामुत्थायोत्थायाऽऽहवकुर्वतांअकुर्वतांचतुल्यायुष्ट्वतयाजातमात्राणाअप्रतिकाराच्चाविषप्राशिनाचाप्यतुल्यायुष्ट्वनचतुल्योयोगक्षेमउपदानघटकानांचित्रघटकानांचोत्सीदताम्। तस्माद्धितोपचारमूलजीवितअतोविपर्ययान्मृत्युरपिचदेशकालात्मगुणविपरीतानांकर्मणामाहारविकाराणाञ्चाक्रियापयोगः। सम्यक्सर्वातियोगसन्धारणमसन्धारणमुदीर्णानाञ्चगतिमतांसाहसानांचवर्जनमारोग्यानुवृत्तौउपलभामहेहेतुरुपादिशामः। सम्यक्पश्यामश्चेति।

अतःपरमग्निवेश उवाच। एवसतिअनियतकालप्रमाणायुषांभगवन्! कथकालमृत्युरकालमृत्युर्भवतीति। तमुवाचभगवानात्रेयः। श्रूयतामग्निवेश? यथायानसमायुक्तोऽक्षः प्रकृत्यैवाक्षगुणैरुपेतः सर्वगुणोपपन्नोवाह्यमानोयथाकालंस्वप्रमाणक्षयादेवावसानगच्छेत्तथायुःशरीरोपगतप्रकृत्यायथावदुपचर्य्यमाणंस्वप्रमाणक्षयादेवअवसानगच्छति। समृत्युकाले। यथाचसएवाऽक्षोऽतिभाराधिष्ठितत्वाद्विषमपथादपथादक्षचक्रभङ्गाद्वाह्यवाहकदोषादनिर्मोक्षात्पर्यसनादनुपाङ्गाच्चान्तराव्यसनमापद्यते। तथायुरप्ययथाबलमारम्भादयथाग्न्यभ्यवहर

आयुर्हिताहितंव्याधिनिदानशमनंतथा ।
विद्यतेयत्रविद्वद्भिःसआयुर्वेदउच्यते ॥

अर्थ—आयु का हित, और अहित, तथा व्याधि (रोग) का निदान, और शमन (चिकित्सा) जिसमें होय उसको आयुर्वेद कहते हैं। तथाचचरके

हिताऽहितंसुखंदुःखमायुस्तस्याहिताहितं ।
मानञ्चतच्चयत्रोक्तमायुर्वेदः सउच्यते ॥

अर्थ—चरक कुछ विशेष कहता है कि हित, अहित, सुख, और दुःख, चार प्रकार की आयू हैं। इन चारों प्रकार की आयून् का हित और अहित तथा आयु का प्रमाण, और अप्रमाण, ये संपूर्ण जिसमें होय, उस को आयुर्वेद कहते हैं। १तहां शरीर मानसिक रोगों सें रहित, यौवनवान्, सामर्थ्य के अनुसार वल, वीर्य, पौरुष, पराक्रम, ज्ञान, विज्ञान, इन्द्रियार्थ वल समुदाय, श्रेष्ठ भोग, और यथेष्ट विचारवान् पुरुष की सुख आयु कहाती है। २ इससैं विपरीत असुख आयु जाननी। ३ सर्व प्राणीयों का हितैषी, सदुप देश कर्त्ता, सत्यवादी, विचार के कार्य कर्त्ता, अप्रमत्त, त्रिवर्गसेवी, पूजनीयों का पूजन कर्त्ता, ज्ञान विज्ञान साधक, वृद्धसेवी, तपस्वी, इस लोक का और परलोक का ज्ञाता, स्मृति और मतिमान् पुरुष की आयु को हित आयु कहते हैं। इससे विपरीत को अहित आयु जाननी।

शिष्य—अव आयुर्वेद की निरुक्ति कहो ।

गुरु—आयुर्वेद की निरुक्ति भी भाव प्रकाश में इस प्रकार लिखी है ।

अनेनपुरुषोयस्मा । दायुर्विन्दतिवेत्तिच ।
तस्मान्मुनिवरैरेष । आयुर्वेदइतिस्मृत ः ॥

णाद्विषमाभ्यवहरणाद्विषमशरीरन्यासादातिमैथुनादसत्संश्रयादुदीर्णवेगविनिग्रहात् । विधार्यवेगाविधारणाद्भूतविषाग्न्युपतापादभिघातादाहारविवर्जनाच्चान्तराव्यसनमापद्यते । तथाज्वरादीनप्यातङ्कान्मिथ्योपचरितानकालमृत्यूनपश्याम इति ।

अर्थ-इस शास्त्र द्वारा पुरुष अपनी आयु को प्राप्त हो, और दूसरे की आयु को जाने, इसी कारण मुनीश्वर इस शास्त्र को आयुर्वेद ऐसे कहते हैं।

शिष्य-आयु किस को कहते हैं।

गुरु—शरीरजीवयोर्योगोजीवनं। तेनावच्छिन्नःकालआयुः॥

अर्थ-देह और जीवके संयोग को जीवन कहते हैं, उस जीवन के अनवच्छिन्न काल को अर्थात् नियमित समय को आयु कहते हैं।

सुश्रुतेच।

आयुरस्मिन्विद्यतेऽनेनवाआयुर्विन्दतीत्यायुर्वेदः

अर्थ-अब सुश्रुत के मत से आयुर्वेद की निरुक्ति कहते हैं, शरीर इन्द्रिय सत्वात्मक संयोग को आयु कहते हैं, सो आयु इस शास्त्र में है, इसी से इस्को आयुर्वेद कहते हैं। अथवा। आयु जिस करके जानी जाय उसको आयुर्वेद कहते हैं। अथवा। जिस्से आयु का विचार करा जाय उसको आयुर्वेद कहते हैं। अथवा। आयु जिस करके प्राप्त हो उसको आयुर्वेद कहते हैं।

शिष्य-अपनी और दूसरे की आयु कौन कारणों से प्राप्त होती है, और जानी जाती है सो हेतु कहो।

गुरु—आयुर्वेदद्वाराऽऽयुष्याण्यनायुष्याणिच, द्रव्यगुणकर्माणिज्ञात्वातेपासेवनत्यागाभ्यामारोग्येणायुर्विन्दति। तेनैवहेतुनापरस्याप्यायुर्वेत्तिच॥

अर्थ-आयुर्वेद द्वारा, आयुष्य के बढ़ाने वाले, और आयुष्य के नाश करने वाले, द्रव्य, गुण, और कर्म, जानकर जो आयुष्य के वृद्धि कर्त्ता होंय, उनका सेवन, और जो आयुष्य के नाशक हैं उनका त्याग करने में आयु की वृद्धि होती है, तब मनुष्य आयुष्य को प्राप्त होता है इन्हीं पूर्वोक्त कारणों से दूसरे मनुष्य की आयु जान सकता है।

आयुर्वेद के सामान्यलक्षण ॥

इहखल्वायुर्वेदोनामयदुपाङ्गमथर्ववेदस्याऽनुत्पाद्यैवप्रजाः श्लोकशतसहस्रमध्यायसहस्रञ्चकृतवान्स्वयम्भूः ॥

अर्थ–यह आयुर्वेद जो अथर्व वेद का उपाङ्ग है, उसको सृष्टि रचने के प्रथमही, ब्रह्मदेव ने एक लक्ष श्लोक और एक हजार अध्याय जिस्में एसा आयुर्वेद संहिता नाम सै निर्माण करा, अर्थात् प्रथम आयुर्वेद प्रगट कर पीछे सृष्टि रचना करी, इस जगह ब्रह्मा को आयुर्वेद कर्त्ता न समझना, किंतु, आयुर्वेद संग्रह कर्त्ता जानना, क्योंकि आयुर्वेद अथर्ववेद का उपाङ्ग होने सैं नित्य और सनातन है,

ततोऽल्पायुष्ट्वमल्पमेधस्त्वञ्चावलोक्यनराणाम्भूयोऽष्टधाप्रणीतवान्॥

अर्थ–तदनन्तर (संसार में अधर्म प्रवृत्त होने सैं) मनुष्यों की अल्प आयु और अल्प बुद्धि देख उसी आयुर्वेद के पुनः आठ विभाग करे, क्योंकि जब थोड़ा जीवन और उसमें भी मंद बुद्धि वाले पुरुष होने लगे, तो पूर्वोक्त १००००० लक्ष श्लोक की संहिता कंठाग्र होना दुर्घट जानके, आठ विभाग (टुकड़े) करे,

शिष्य–आठ विभाग कौनसे हैं सो कहो।

गुरु–हे वत्स आयुर्वेद के आठ विभाग ये हैं।

शल्यं, शालाक्यं, कायाचिकित्सा, भूतविद्या, कौमारभृत्य, मगदतन्त्रं, रसायनतन्त्रं, वाजीकरणतन्त्रमिति॥

अर्थ–अब पूर्वोक्त आठ विभागों को कहते हैं जैसे कि १ शल्य २ शालाक्य, ३ काय चिकित्सा, ४ भूतविद्या, ५ कौमारभृत्य, ६ अगदतन्त्र, ७ रसायनतन्त्र, और ८ वाजीकरणतन्त्र,।

१ शल्य हरण, अर्थात् कांटा, खोवरा, तीरकी भाल आदि, निकालना प्रधान है जिसमें उस तन्त्र को शल्य तन्त्र कहते हैं। २ जिसमें शला का,

(सलाई) का कर्म, अर्थात् नेत्र रोग की चिकित्सा, प्रधान है, उसको शालाक्य तन्त्र कहते हैं, ३ जिसमें काय (अग्नि) की चिकित्सा है, उस को काय चिकित्सा कहते हैं। अथवा। जिसमें काय (देह) की चिकित्सा है, उसको काय चिकित्सा तन्त्र कहते हैं। ४ जिसमें भूत (देव, असुर, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, पित्रीश्वर, नाग, और पिशाच इन आठों को जिससे जाने उस विद्या को भूत विद्या कहते हैं। अथवा। भूत वेशादि शान्ति कर्त्ता विद्याको भूत विद्या कहते हैं। ५ वालकोंका भरण पोषण आदि जिसमें, उस तंत्र को वाल तंत्र कहते हैं। ६ जिसमें विषका प्रतिकार है, उस तंत्रको अगदतन्त्र कहते है। ७ जिसमें रस (रस रुधिर आदि) पुष्ट करने की विधि हो, उसको रसायन तंत्र कहते है। अथवा। रस कहिये रस, वीर्य, विपाकादि, आयु प्रभृति कारणों के विशिष्ट लाभोपाय को, रसायन कहते हैं। उसके अर्थ जो तन्त्र, उसको रसायन तंत्र कहते हैं। ८ जिस्से मनुष्य स्त्री के विषय में, घोडे के सदृश सामार्थ्य को प्राप्त होय, उसको वाजी करण तंत्र कहते है। कोई आचार्य ऐसा अर्थ करते है कि, वाजी शुक्र के वेग का नाम है, वह शुक्र का वेग जिन पुरषो में है, उनको 'वाजिन' ऐसा कहते है। अब जो अवाजी अर्थात् वीर्य वेग रहित पुरषों को वीर्य वेग युक्त जिस्से करा जाय उसको वाजी करण कहते है, कोई आचार्य शुक्र कोही वाजी कहते हैं, अर्थात् वीर्य रहित तों को वीर्य युक्त जिस्से करा जाय उसको वाजी करण कहते है। उसके अर्थ तंत्र को वाजी करणतंत्र कहते है।

अब आयुर्वेद के अंगों के लक्षण कहते है।

शल्य तंत्र ॥

तत्र शल्यं नाम—विविध तृण काष्ठ पाषाण पांशु लोह लोष्टास्थि वाल नखपूयास्त्रावान्तर्गर्भशल्योद्धरणार्थं, यंत्र शस्त्र क्षाराग्नि प्रणिधान व्रणविनिश्चयार्थश्च ॥

अर्थ–पूर्वोक्त आठ भेद कहे उनमेंसे जो अनेक प्रकार के तृण, (तिनका घास, कठोर तृण, खोवरा, कांटा; गोखरू, आदि) काष्ठ, (लकड़ी की

फांस आदि) पाषाण, (पत्थर की कत्तल आदि) धूल, लोह, (सुई आदि) लोष्ट, (कंकर ठीकरी आदि) हाड, वाल, नख, (नाखून) आदि के लगने से अथवा, अंतर्गत शल्य, (तीर वगेरह आदि) से जो घाव होजाता है और उस घाव में उक्त वस्तुओं का कुछ भाग रहजाने से, घाव दुष्ट होकर उसमें से राध, रुधिर, आदि निकले, तथा स्त्रीयों के मूढ गर्भ निकालने के वास्ते, जो यंत्र, (स्वस्तिकादि) शस्त्र, (मंडलाग्र कर पत्रादि) द्वारा पूर्वोक्त शल्यों का निकालना, तथा क्षार, अग्नि दाह (दागना) और व्रण के अच्छे प्रकार से जानने के अर्थ जो शास्त्र हैं उसको शल्य तंत्र कहते हैं।

शालाक्यं

शालाक्यं नाम । ऊर्द्ध्वजत्रुगतानांरोगाणांश्रवणनयनवदन घ्राणादिसंश्रितानांव्याधीनामुपशमनार्थम् ॥

अर्थ–जिसमें जत्रु (कंठ अथवा हासिये के) ऊपर अर्थात् कान, नेत्र, मुख, और नाक आदि शब्द से सिर, कपाल, में होने वाले रोगों के अर्थ जो ग्रंथ उसको शालाक्य तंत्र कहते हैं।

काय चिकित्सा ।

काय चिकित्सा नाम । सर्व्वाङ्गसंसृतानांव्याधीनांज्वरातीसाररक्तपित्तशोषोन्मादाऽपस्मारकुष्ठमेहादीनामुपशमनार्थम्

अर्थ–सर्वांग में होने वाले राग, जेज्वर, अतीसार, रक्त पित्त, कार्श्य, उन्माद, अपस्मार, (मृगी) कोढ़, और प्रमेहादि कोंके शमनार्थ चिकित्सा को, काय चिकित्सा कहते हैं।

भूत विद्या ।

भूतविद्या नाम । देवासुरगंधर्वयक्षरक्षःपितृपिशाचनाग ग्रहाद्युपसृष्टचेतसां, शान्तिकर्मबलिहरणादिग्रहोपशमनार्थम् ।

अर्थ–देव, असुर, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, पित्रीश्वर, पिशाच, और

नाग आदिग्रहोकर के व्याप्त चित्त वाले पुरुषों के ग्रह शांति करने के निमित्त जो शान्ति वलि देना आदि कर्म को भुत विद्या कहते है।

कौमारभृत्यं ॥

कौमारभृत्यंनाम। कौमारभृत्य धात्रीक्षीरदोपसंशोधनार्थं, दुष्टस्तन्यग्रहसमुत्थानाञ्च व्याधीनामुपशमनार्थम् ॥

अर्थ–वालक का पालना, माता के दूध के शोधनार्थ, तथा दुष्ट दुग्ध से होने वाली शरीर की व्याधी, और दुष्टग्रहों से प्रगट आगन्तु व्याधियों के शमनार्थ, तो जो कर्म है, उसको कौमारभृत्य तंत्र कहते है।

अगद तंत्रं

अगदतंत्रं नाम। सर्पकीटलूतावृश्चिकमूषिकादिदष्टविपव्यञ्जनार्थं, विविधविपसंयोगविपोपहतोपशमनार्थम् ॥

अर्थ– सर्प, कीट, (खानखजूरा अथवा विच्छू आदि) लूता (मकड़ी आदि) विच्छू, मूसा, आदि के काटने से जो मनुष्यों के देह में विप फैल जावे उसके ज्ञानार्थ, और अनेक प्रकार के भेद स्थावर जंगम आदि विप, तथा (घृत सहत आदि) संयोग विप से ग्रस्त मनुष्यों के कल्याणार्थ, जिसमें चिकित्सा करी है, उसको अगदतंत्र कहते हैं।

रसायनतंत्रं।

रसायनतंत्रं नाम। वयःस्थापनमायुर्मेधा वलकरं रोगोपहरणसमर्थञ्च ॥

अर्थ–जिस्से मनुष्य अपनी वय का स्थापन अर्थात् १०० वर्ष की आयु हो, तथा आयु की वृद्धि, अर्थात् सौ वर्ष से अधिक दोसौ तीनसो वर्ष की आयु (उमर) करने की, और वुद्धि तथा वल कर्त्ता और रोग नाशक उपाय को, रसायन तंत्र कहते है

वाजीकरणतंत्रं ।

वाजीकरणतन्त्रं नाम। अल्पदुष्टविशुष्कक्षीणरेतसामाप्यायनप्रसादोपचयजननिमित्तंप्रहर्षजननार्थञ्च । एवमयमायुर्वेदोऽष्टांगउपदिश्यते ॥

अर्थ–प्रकृति सेंही अल्प शुक्र वाले मनुष्यों के शुक्र वढ़ाने के निमित्त दुष्ट शुक्र, अर्थात् दूषित वीर्य के शोधनार्थ, और शुष्क वीर्य वाले पुरुषों के वीर्य पुष्ट करने के निमित्त, और क्षीण वीर्य पुरुषों के वीर्योत्पादनार्थ और स्त्रीयों में हर्षोत्पादनार्थ जो उपाय है, उसको वाजीकरण तंत्र कहते हैं। अथवा जिनकी २५ वर्ष की अवस्था नहीं है वो अल्प वीर्य कहाते हैं। और वृद्ध मनुष्यों को क्षीणरेतस कहते हैं। यह सुश्रुत का मत कहा इसमें शल्य तंत्र मुख्य होने सें प्रथम कहा है। परंतु वाग्भट ने दूसरा क्रम कहा है उस को भी कहते है।

कायवालग्रहोर्ध्वाङ्ग, शल्यदंष्ट्राजरावृषान् ।
अष्टावङ्गानितस्याहु, श्चिकित्सायेषुसंश्रिता ॥

अर्थ–काय चिकित्सा, वाल चिकित्सा, ग्रह चिकित्सा, ऊर्ध्वाङ्ग चिकित्सा, (शालाक्य) शल्य चिकित्सा, दंष्ट्रा चिकित्सा, (अगद तंत्र) जरा चिकित्सा, (रसायन तंत्र) और वृष, अर्थात् वाजीकरण चिकित्सा, इस प्रकार कायादि आठ चिकित्सा आयुर्वेद के आठ अंग हैं। इन आठों अंगों में चिकित्सा विद्यमान है, चिकित्सा के लक्षण चरकमुनि ने कहे हैं। यथा (चतुर्णांभिषगादीनांशस्तानांधातुवैकृते प्रवृत्तिर्धातुसाम्यार्थाचिकित्सेत्यभिधीयते) अर्थात् उत्तम भिषगादि चतुष्टय, (रोगी-वैद्य-सेवक और औषध इनकी, दूषित धातु सुधारने के अर्थ जो प्रवृत्त होना उसको चिकित्सा कहते हैं, यह वाग्भट का मत कहा इसमें काय चिकित्सा मुख्य है।

आयुर्वेद के गौरवोत्पादनार्थआगम शुद्धि कहते हैं।

ब्रह्माप्रोवाच। ततः प्रजापतिरधिजगे, तत्स्मादश्विनौ,

अश्विभ्यामिन्द्र, इन्द्रादहंमयात्विहप्रदेयमर्थिभ्यःप्रजाहितहेतोः

अर्थ-प्रथम ब्रह्मदेव ने कहा, उनमें दक्ष प्रजापति ने पढ़ा, तिन सें अश्विनी कुमार, और अश्विनी कुमार से इन्द्र, इन्द्र से धन्वन्तरि कहे हमने पढ़ा, अव में प्रजा के कल्याणार्थ इस विद्या के पढ़ने वाले मनुष्यों को पृथ्वी में देउगा, इस ग्रंथ शुद्धि कहने का यह प्रयोजन है कि यह आयुर्वेद सनातन है, यह सुश्रुत में लिखा है।

अव इस आयुर्वेद की शुद्धी को विस्तार पूर्वक भाव प्रकाश से कहते हैं।

ब्रह्मदेव का प्रादुर्भाव।

विधातार्थर्वसर्वस्व, मायुर्वेदंप्रकाशयन्। स्वनाम्ना संहितांचक्रे, लक्षश्लोकमयीमृजुम्॥ ततःप्रजापतिंवक्षं दक्षं सकलकर्मसु। विधिर्धीनीराधिंसाङ्ग. मायुर्वेदमुपादिशत्॥

अर्थ-अथर्ववेद का सर्वस्व जिसमें ऐसा आयुर्वेद का प्रकाश करते हुए श्री ब्रह्माजी अपने नाम की एक लाख श्लोक की सरल संहिता करते हुए ब्रह्मा इस सर्व कर्म में कुशल और बुद्धि के समुद्ररूप ऐसे दक्ष प्रजापति को अंग सहित आयुर्वेद का उपदेश करते हुए॥

दक्ष प्रजापति का प्रादुर्भाव।

अथदक्षःक्रियादक्षःस्ववैद्यौवेदमायुषः
वेदयामासविद्वांसौसूर्यांशौसुरसत्तमौ॥

अर्थ-तत्पश्चात् क्रिया में कुशल ऐसे दक्ष प्रजापति सों स्वर्ग के वैद्य और सूर्य के अंशरूप विद्वान, तथा देवतों में उत्तम, ऐसे अश्विनी कुमार को आयर्वेद का उपदेश करा॥

अश्विनी कुमार का प्रादुर्भाव।

दक्षादधीत्यदस्रौ. वितनुतःसंहितांस्वीयां।
सकलचिकित्सकलोक. प्रतिपत्तिविवृद्धयेधन्याम्॥२

अर्थ–दक्ष से पढ़कर वे अश्विनी कुमार, संपूर्ण वैद्यलोक को ज्ञान बढ़ाने को, अपनी श्रेष्ठ संहिता का विस्तार करते भए ॥

स्वयम्भुवःशिरश्छिन्नंभैरवेणरुषाथतत् ।
अश्विभ्यांसंहितंतस्मात्तौयातौयज्ञभागिनौ ॥

अर्थ तत्पश्चात भैरव (शंकर) ने क्रोध वश होकर ब्रह्मा का मस्तक छेदन करा, उसको अश्विनी कुमारों ने संधित करा। अर्थात् जोड़ दिया इसी कारण वो दोनों यज्ञ के भागी हुए।

देवासुररणेदेवादैत्यैर्येसक्षता:कृताः।
अक्षतास्तेकृताःसद्योदस्राभ्यामद्भूतंमहत् ॥
वज्रिणोभूद्भुजस्तम्भःसदस्राभ्यांचिकित्सितः
सोमान्निपतितश्चन्द्रस्ताभ्यामेवसुखीकृतः ॥

अर्थ–जब देव और असुरों के युद्ध में देवतों को दैत्यों ने अंग भंग (घायल) करे उस समय अश्विनी कुमारोंने तत्क्षण अंग जोड़ घाव रहित करे यह अद्भुत कर्म करा। (च्यवन ऋषि के प्रताप से) इन्द्र की भुजा का स्तम्भ भया (लंबा संकोच ऊंचा नीचा न होना) उसको भी अश्विनी कुमारों ने चिकित्सा करके अच्छा करा। सोम रहित चन्द्रमा को इन दोनों अश्विनी कुमारों ने सुखी करा।

विशीर्णदशनाःपूष्णोनेत्रेनष्टेभगस्यच। शशिनोराजयक्ष्माऽभूदश्विभ्यान्तेचिकित्सिताः भार्गवश्च्यवनःकामीवृद्धःसन् विकृतिंगतःवीर्यवर्णस्वरोपेतः कृतोऽश्विभ्याम्पुनर्युवाएतैश्चान्यैश्चबहुभिःकर्मभिर्भिषजाम्वरौ। बभूवतुर्भृशंपूज्याविन्द्रादीनांदिवौकसाम् ॥

अर्थ–पूषा देवता के दांत गिर पड़े, भग देवता के नेत्र जाते रहे, चंद्रमा के खई का रोग हुआ, इन सबों को अश्विनी कुमारों ने चिकित्सा कर

अच्छा करा। भृगुऋषि के वंश में प्रगट ऐसे जोच्यवन ऋषि कामी, और वृद्ध अवस्था के प्रभाव से विकार अर्थात् वीर्यादिक के फेर फार से बुरी चेष्टा होगई, उन को अश्विनी कुमारों ने फिर वीर्य, वर्ण, और स्वर, युक्त कर ज्वान कर दीने। इन कर्मों से, तथा ओर बहुतसे कर्मों से, वैद्यों में श्रेष्ठ अश्विनी कुमार इन्द्रादिक देवताओं में पूजनीय हुए। भाव प्रकाश में ब्रह्मा का शिर जोडना लिखा है ओर सुश्रुत में यज्ञ का शिर जोडा है

यथा सुश्रुते।

श्रूयतेहियथारुद्रेणयज्ञस्यशिरश्छिन्नमिति, ततोदेवाअश्विनावभिगम्योचुः। भगवन्तौनः श्रेष्ठतमौयुवांभविष्यथ.। भवद्भ्यायज्ञस्याशिरः सन्धातव्यम्। तावूचतुरेवमस्त्विति। अथतयोरर्थेदेवाइन्द्रंयज्ञभागेनप्रासादयन्। ताभ्यांयज्ञस्यशिर: संहितमिति॥

अर्थ—जैसे सुनते है? कि, रुद्रने यज्ञ का शिर काटा, तब सपूर्ण देवता अश्विनी कुमार दोनों के समीप जाकर यह वाक्य बोले कि तुम दोनों हम लोगों में अत्यन्त श्रेष्ठ होओ, ओर तुम यज्ञका शिर जोड देओ, तब अश्विनी कुमार बोले बहुत अच्छा, ऐसेही होगा, तदनन्तर सब देवता अश्विनी कुमारों के लिये इन्द्र को यज्ञ भाग करके प्रसन्न करते यज्ञ भाग मांगा और अश्विनी कुमारों ने यज्ञ का शिर जोड़ दिया॥

अथ इन्द्र प्रादुर्भावः

संदृश्यदस्त्रयोरिन्द्रः कर्माण्येतानियत्नवान्। आयुर्वेदंनिरुद्वेगंतौययाचेशचीपतिः नाशत्यौसत्यसन्धेनशक्रेणकिलयाचितौ। आयुर्वेदंयथाधीतंददतु शतमन्यवे नासत्याभ्यामधीत्यैवआयुर्वेदंशतक्रतु.। अध्यापयामासवहूनात्रेयप्रमुखान्मुनीन्

अर्थ—इन्द्राणी का पति, तथा यत्नवान् ऐसा जो इन्द्र,. सो उन दोनों

अश्विनी कुमार के इन सब आश्चर्यकारक कर्मों को देख, उद्वेग रहित अर्थात् उत्साह पूर्वक, आयुर्वेद विद्या को अश्विनी कुमारों सैं याचना करता हुआ जब सत्य संध इन्द्र ने दोनों से इस प्रकार याचना करी, तब अश्विनी कुमारों ने जैसैं पढ़ा उसी प्रकार आयुर्वेद इन्द्र को देते भए। अश्विनी कुमारों सैं आयुर्वेद को इन्द्र पढ़कर, आत्रेय हैं मुख्य जिनमें ऐसे अनेक ऋषियों को पढ़ाता हुआ।

आत्रेय प्रादुर्भावः

एकदाजगदालोक्यगदाकुलमितस्ततः। चिन्तयामासभगवानात्रेयोमुनिपुङ्गवः॥ किंकरोमिक्वगच्छामिकथंलोकानिरामयाः भवन्तिसामयानेताव्रशक्नोमिनिरीक्षितुम्॥ दयालुरहमत्यर्थं स्वभावोदुरतिक्रमः। एतेषांदुःखतोदुःखंममापिहृदयेधिकं॥

अर्थ—एक समय चारों ओर रोगसैं व्याकुल ऐसा जगत् को देख, मुनि पुङ्गव भगवान् आत्रेय मुनि विचार करने लगे, क्या करूं किधर जांउ कैसैं मनुष्य रोग रहित होंवे। में इन रोगियों को रोगाकुल देख भी नहीं सकूं क्या करूँ मेरा स्वभाव ही अति दयालु है, यह स्वभाव दुरितिक्रम अर्थात् अमिट है। इन मनुष्यों के दुःख सै भी मेरा हृदय अधिक दुखी है।

आयुर्वेदंपठिष्यामिनैरुज्यायशरीरिणाम्। इतिनिश्चित्य भगवान्आत्रेयस्त्रिदशालयम्॥ तत्रमन्दिरमिन्द्रस्यगत्वाशक्रं ददर्शसः। सिंहासनसमासीनंस्तूयमानंसुरर्षिभिः॥ भासयन्तं दिशोभाषाभास्करप्रतिमन्त्विषा। आयुर्वेदमहाचार्यंशिरोधार्यं दिवौकसाम्॥

अर्थ—अतएव मनुष्यों के रोग दूर करने को में आयुर्वेद पढूंगा। ऐसैं निश्चय कर आत्रेय भगवान् स्वर्ग को गए, तहां स्वर्ग में इन्द्र के भवन में प्राप्त हो इन्द्र के दर्शन करते हुए। दिव्य सिंहासन पर विराजमान, सुर और ऋषि

जिसकी स्तुति कर रहे हैं, सूर्य कासा प्रकाश जिस्मैं सर्व दिशाओं में प्रकाश कर रहा है, सर्व देवमान्य तथा आयुर्वेद का बड़ा आचार्य ऐसे इन्द्र को देखा।

शक्रस्तुतंनिरीक्ष्यैवत्यक्त्वासिंहासनंययौ । तदग्रेपूजया मासभृशंभूरितपःकृशम्॥ कुशलंपरिपप्रच्छतथागमनकारणम् समुनिर्वक्तुमारेभेनिजागमनकारणम् ॥

अर्थ-इन्द्र आत्रेय ऋषि को देखतेही, शीघ्र सिंहासन को परित्याग कर सन्मुख आय बहुत तपसे कृश भए ऐसें मुनि की पूजा करता हुआ मुनिसें कुशल पूछी, और आगमन का कारण पूछा, तब आत्रेय मुनि अपने आने का कारण इस प्रकार कहते हुए।

देवराज! नजानासिदिवएवयतोभवान्। विधात्राविहितो यत्नात्त्रिलोकीलोकपालकः॥ व्याधिभिर्व्यथितालोकाः शोका कुलितचेतसः। भूतलेसन्तिसन्तापंतेषांहन्तुंकृपांकुरु ॥ आयुर्वेदोपदेशंमेकुरुकारुण्यतोनृणां। तथेत्युक्त्वासहस्राक्षोध्यापया मासतंमुनिम् ॥

अर्थ-हे देव! हे राजन्! तुम केवल स्वर्गकेही राजा नहीं हो! किंतु ब्रह्मा नें तुम को यत्न पूर्वक त्रिलोकी का राजा करा है। शोकसें व्याकुल हैं चित्त जिन्के, और व्याधियों से व्यथित (पीडित) मनुष्य पृथ्वी में है उनहों के संताप हरण करने की कृपा करो। मनुष्यों की करुणा विचार मुझ को आयुर्वेद का उपदेश करो, पश्चात् 'ठीक है' ऐसें कहि कर इन्द्र ने आत्रेय ऋषि को आयुर्वेद पढाया।

मुनीन्द्रइन्द्रतः साङ्गमायुर्वेदमधीत्यसः। अभिनन्द्यतमा शीर्भिराजगामपुनर्महीम् ॥ अथात्रेयोमुनिश्रेष्ठोभगवान्करुणा करः स्वनाम्नासंहिताश्चक्रेनरचक्रानुकम्पया ॥ ततोग्निवेशंभेड

चजातूकर्णपराशरम् । क्षीरपाणिश्चहारीतमायुर्वेदमपाठयत् ॥

अर्थ—मुनीन्द्र जो आत्रेय सो इन्द्र से अङ्ग सहित आयुर्वेद पढ़के, तथा इन्द्र को आशीर्वादों सैं प्रसन्न कर, फिर पृथ्वी में पधारे। तदनंतर दया सागर मुनि श्रेष्ट भगवान् आत्रेय ऋषि, मनुष्योंके समूह ऊपर दया विचार अपने नामसै संहिता वनाते हुए। इनकी वनाई तीन संहिता हैं। (बृहत् आत्रेय संहिता. मध्य आत्रेय संहिता, और लघु आत्रेय संहिता, यह वात इनहीं की संहिता में लिखी है) तत् पश्चात् अग्निवेश को, भेडको, जातूकर्ण को पराशरको, क्षीरपाणीको, और हारीत को आयुर्वेद पढ़ाया।

तन्त्रस्यकर्त्ताप्रथममग्निवेशोऽभवत्पुरा । ततोभेड़ादय श्चक्रुःस्वस्वंतन्त्रंकृतानिच ॥ श्रावयामासुरात्रेयंमुनिवृन्देनवान्दितम्। श्रुत्वाचतानितन्त्राणिहृष्टोऽभूदत्रिनन्दनः ॥ यथावत्सूत्रितन्तस्मात्प्रहृष्टामुनयोभवन् । दिविदेवर्षयोदेवाः श्रुत्वासाध्वितितेब्रुवन् ॥

अर्थ—पहले इस शास्त्रके कर्त्ता प्रथम अग्निवेश नामक मुनि भए, तिन् के पीछे भेडादिक ऋषियों ने अपने अपने नाम सें संहिता वनाई। अर्थात् अग्निवेश संहिता, भेड संहिता, जातूकर्ण संहिता, पराशर संहिता, क्षीर पाणि संहिता, और हारीत संहिता, ये छः ऋषियों ने छः संहिता वनाई। ये पुरानी संहिता हैं इसी से इनको प्रधानता है और जहां वैद्यक की छः संहिता कहीं हैं तहां इनहीं का ग्रहण है, जैसै लीलावती में लिखा है "षट्च भिषजांव्याचष्टतः संहिताः" इस प्रकार अग्निवेशादि ऋषि अपनी २ संहिता वनाय, मुनि समूह से वंदित ऐसैं आत्रेय मुनिको सुनाते हुए, वे अत्रि नन्दन इस प्रकार सवों के ग्रंथों को सुन कर अत्यंत हर्षित भए। यथार्थ शास्त्र रचने से सव मुनि आनंदित होते हुए और स्वर्ग में देवता तथा देवर्षि सुन कर वहुत सुन्दर ऐसे वोले।

भरद्वाज मुनि प्रादुर्भावः

एकदाहिमवत्पार्श्वेदैवादागत्यसङ्गता ः मुनयोवहवस्तेषां नामानिकथयाम्यहम् ॥ भारद्वाजोमुनिवरः प्रथमंसमुपागतः । ततोङ्गिरास्ततोगर्गोमरीचिर्भृगुभार्गवौ ॥ पुलस्त्योऽगस्तिरासितो वशिष्ठःसपराशरः । हारीतोगौतमःसांख्योमैत्रेयश्च्यवनोऽपिच जमदग्निश्चगार्ग्यश्चकाश्यप ः कश्यपोपिच । नारदोवामदेवश्च मार्कण्डेयःकपिञ्जल ः॥

अर्थ–एक समय हिमालय पर्वत पर दैव इच्छा से बहुत से मुनि आकर इकट्ठे हुए । उनहों के नाम कहते हैं। मुनिन्में श्रेष्ठ भरद्वाज, प्रथम आए । तिन्होंके पीछे अङ्गिरा, और तत्पश्चात गर्ग, मरीचि, भृगु, भार्गव, पुलस्त्य, अगस्ति, असित, वशिष्ट, पराशर, हारीत, गौत्तम, सांख्य, मैत्रेय, च्यवन, जमदग्नि, गार्ग्य, काश्यप, कश्यप, नारद, वामदेव मार्कंडेय, और कपि ञ्जल आए ।

शाण्डिल्यःसहकौडिन्यःशाकुनेयश्चशौनकः । आश्वला यनसांकृत्यौविश्वामित्रःपराक्षकः॥ देवलोगालवोधौम्य ः काम्य कात्यायनावुभौ । काङ्कायनोवैजवाप ः कुशिकोवादरायणिः॥ हिरण्याक्षश्चलौगाक्षि ः शरलोमाचगोभिल ः । वैखानसावाल खिल्यास्तथैवान्येमहर्षय ः॥

कौंडिन्य सहित शांडिल्य, शाकुनेय, शौनक, आश्वलायन, साकृत्य, विश्वामित्र, परीक्षक, देवल, गालव, धौम्य, काम्य, और कात्यायन, ए दोनो कांकयन, वैजवाप, (वैजपाय भी पाठान्तर है) कुशिक, वादरायण, हिरण्याक्ष, लौगाक्षी, शरलोमा, गोभिल, वैखानस, और वालखिल्य, इन से आदि ले और बहुत से महर्षि आए ।

ब्रह्मज्ञानस्यनिधयोयमस्यनियमस्यच । तपसस्तेजसादी

माहूयमानाइवाग्नयः ॥ सुखोपविष्टास्तेतत्रसर्वेचक्रुः कथामिमा । धर्मार्थकाममोक्षाणांमूलमुक्तंकलेवरं ॥ तपःस्वाध्यायधर्माणांब्रह्मचर्यव्रतायुषां। हर्त्तारः प्रसृतारोगायत्रतत्रचसर्वतः

अर्थ—वे ब्रह्मर्षि ब्रह्मज्ञान, यम, तथा नियम, की निधि और होमी हुई अग्नि का जैसा प्रकाश ऐसे तप के तेज सैं प्रकाशवान् सुख पूर्वक वैठे हुए सब ऋषि, इस प्रकार वार्त्ता करने लगे, कि धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष का मूल देह हैं। इस प्रकार पूर्व कहा है, तप, स्वाध्याय (पढ़ना पढ़ाना) धर्म, ब्रह्मचर्य, व्रत, और आयुष्य के हरण कर्त्ता रोग सर्वत्र फैल रहे हैं।

रोगाः कार्श्यकरावलक्षयकरा देहस्यचेष्टाहराः। दृष्ट्यादीन्द्रियशक्तिसंक्षयकराः सर्वाङ्गपीड़ाकराः॥ धर्मार्थाखिलकाममुक्तिषुमहाविघ्नस्वरूपावलात् । प्राणानाशुहरन्तिसन्तियदितेक्षेमंकुतः प्राणिनाम् ॥

अर्थ—रोग शरीरको कृश करते हैं। वलका क्षय करैं हैं। देह की चेष्टा को हरण करैं हैं। नेत्र आदि इन्द्रियों की शक्ती को क्षय करैं हैं। सव अंग में पीड़ा करते हैं। धर्म, अर्थ, अखिल काम, और मुक्ति में महा विघ्न स्वरूप हैं। वलात्कार स शीघ्र प्राणो को हरण करलेते हैं। ऐसे रोगयावत् पर्यन्त विद्यमान है, तव तक दीन हीन मीन के सदृश विचारे प्राणियों का कल्याण कहां हैं।

तत्तेषांप्रशमायकश्चनविधिश्चिन्त्योभवद्भिर्बुधैः। योग्यैरित्यभिधायसंसदिभरद्वाजंमुनिंतेऽब्रुवन् ॥ त्वंयोग्योभगवन् ! सहस्रनयनंयाचस्वलब्धंक्रमात् । आयुर्वेदमधीत्ययंगदभयान्मुक्ताभवामोवयम् ॥

अर्थ—इसी कारण रोगोंके उपाय करनेमें योग्य और विद्वान् ऐसे तुम करके इन रोगों के निवृत्ति करने को कोई उपाय विचारना चाहिये। इस

प्रकार आपस में एक मती हो, और विचार करके, सभा में बैठे हुए भरद्वाज मुनि के प्रति सब मुनीश्वर बोले। कि हे भगवन! तुम इस कार्य करने योग्य हो, इसी से इन्द्र के पास जाकर याचना करो, और क्रमसे प्राप्त आयुर्वेद को अध्ययन करके, हम रोग के भयसे मुक्ति होवे।

इत्थंसमुनिभिर्योग्यैःप्रार्थितोविनयान्वितैः। भरद्वाजो मुनिश्रेष्ठोजगामत्रिदशालयं॥ तत्रेन्द्रभवनंगत्वासुरर्षिगणमध्यगं। दृष्टवान्वृत्रहन्तारंदीप्यमानमिवाऽनलम्॥ दृष्ट्वैवसमुनिंप्राहभगवान्मघवामुदा। धर्मज्ञस्वागतन्तेऽथमुनिन्तंसमपूजयन्॥

अर्थ–इस प्रकार जब सब योग्य मुनीश्वरों ने विनय पूर्वक प्रार्थना करी। तब उन की आज्ञा ले मुनि श्रेष्ठ भरद्वाज इन्द्रलोक को जाते भये। तहा अमरावती पुरी में इन्द्र के भवन में प्राप्त हो, देवता और ऋषिगण मे विराजमान, अग्नि के समान प्रकाशित, वृत्रासुर का नाशक इन्द्र को देखा, भगवान् इन्द्र भी अपने समीप आए ऐसे भरद्वाज मुनि को देख हर्ष पूर्वक कहने लगा, कि हे धर्मज्ञ! आप भले पधारे, इस प्रकार कहि पीछे मुनी की अर्घपाद्यादि से पूजा करी।

सोऽभिगम्यजयाशीर्भिरभिनन्द्यसुरेश्वरम्। ऋषीणांवचनंसम्यक्श्रावयन्मुनिसत्तमः॥ व्याधयोहिसमुत्पन्नाःसर्वप्राणिभयंकराः। तेषांप्रशमनोपायंयथावद्वक्तुमर्हसि॥

अर्थ–मुनियों में श्रेष्ठ, ऐसे जो भरद्वाज मुनि इन्द्रके समीप जाय, जय शब्द और आशीर्वाद देकर इन्द्र की स्तुति करी, तथा सब ऋषियों के वचन सुनाये, कि सुनो देवेन्द्र! सर्व प्राणियों को भयंकर, ऐसी व्याधि जगत् में उत्पन्न हुई है उन के नाश होने का उपाय होय, वह बराबर हमसे आप कहिये।

तमुवाचमुनिसाङ्गमायुर्वेदंशतक्रतुः। पदैरल्पैर्मतिंवुध्वा विपुलांपरमर्षये॥ जीवेद्वर्षसहस्राणिदेहीनीरुङ्निराम्यर्य। हेतु

लिंगौषधज्ञानंस्वस्थातुरपरायणं ॥ सोनन्तपारंत्रिस्कन्धमायुर्वेदं महामुनिः। यथावदचिरात्सर्वंबुबुधेतन्मनामुनिः ॥

अर्थ–विपुलबुद्धिजान, अल्प पदों करके अंग सहित आयुर्वेद, परमर्षि भरद्वाज मुनि के प्रति कहा। कि जिस आयुर्वेद को सुन कर रोग रहित हो मनुष्य हजार वर्ष जीवे है, तथा हेतु, लिङ्ग, और औषध का ज्ञान जिससे होय और स्वस्थ (सुखी) की रक्षा, आतुर (दुखी) की निवृत्ति रूप प्रयोजन साधन रूप शास्त्र को इन्द्र ने कहा।

वह मुनि भरद्वाज अपार, और त्रिस्कंध (हेतुलिंगौषध) वाले आयुर्वेद को थोड़े कालमें भले प्रकार पढ़े, और उसमें अच्छी रीति सैं मन रखने सें इस शास्त्र का सर्व आशय जाना।

तेनायुः सुचिरंलेभेभरद्वाजोनिरामयं। अन्यानपिमुनींश्च क्रेनिरुजः सुचिरायुषः ॥ तत्तन्त्रजनितज्ञानचक्षुषाऋषयोखिलाः गुणान्द्रव्याणिकर्माणिदृष्वातद्विधिमाश्रिताः ॥ आरोग्यंलेभिरे दीर्घमायुश्चसुखसंयुतं। आयुर्वेदोक्तविधिनाऽन्येऽपिस्युर्मुनयो यथा ॥

अर्थ– इसी आयुर्वेद विद्याके द्वारा भरद्वाज मुनि रोग रहित पूर्ण आयु को प्राप्त भये, और अन्य बहुत सै ऋषियों को निरोगी तथा पूर्णायु करते भये, तिनके तंत्र से उत्पन्न भया ज्ञानरूपी चक्षु ऐसे अखिल ऋषि, गुण, द्रव्य, और कर्म, देख आयुर्वेद की विधि का आश्रय लेते हुए उसी विधी के अनुष्ठान करने सें सर्व ऋषि आरोग्य और सुख संयुक्त दीर्घ आयुष्य को प्राप्त होते हुए। सर्व मुनीश्वर जैसे सुखी हुए उसी प्रकार आयुर्वेद विधि के सेवन सैं और भी मनुष्य सुखी होते हैं।

चरक प्रादुर्भावः

यदामत्स्यावतारेणहरिणावेदउद्धृतः। तदाशेषश्चतत्रैव वेदंसाङ्गमवाप्तवान् ॥ अथर्वान्तर्गतंसम्यक्आयुर्वेदञ्चलब्धवान्

एकदासमहीवृत्तंद्रष्टुंचरइवागतः ॥ तत्रलोकान्गदैर्ग्रस्तान्व्यथयापरिपीड़तान् । स्थलेषुवहुपुव्यग्रान्म्रियमाणांश्चदृष्टवान् ॥ तान्दृष्ट्वातिदयायुक्तस्तेपांदुःखेनदुःखितः । अनन्ताश्चिन्तयामासरोगोपसमकारणम् ॥

अर्थ–जिस समय हरि भगवान् ने मत्स्यावतार धारणकर वेदोंका उद्धार करा, उस समय श्री शेपजी ने उसी ठिकाने अंग सहित चारों वेद पढ़े । और अथर्ववेद के अंतर्गत जो आयुर्वेद है, उस्को भी प्राप्त होते भए. एक समय जैसे राजा का चर (पर राज्य का वृत्तान्त जानने के कारण निर्मित चाकर) होय इस प्रकार, शेपजी आप पृथ्वी का वृत्तान्त देखने को आये तहा पृथ्वी में अनेक ठौर रोगों से ग्रस्त, और पीड़ा से पीड़ित, मुरझाए हुए और मरने को तैयार ऐसे मनुष्यों को देखा, उनको देख अति दया युक्त तथा उनके दुःख से अत्यन्त दुखी ऐसे शेप भगवान् मनुष्यों के रोग शांति होने का कारण विचारने लगे ।

संचिन्त्यसस्वयंतत्रमुनेःपुत्रोवभूवह । प्रसिद्धस्यविशुद्धस्यवेदवेदाङ्गवेदिनः ॥ यतश्चरइवायातोनज्ञातःकेनचिद्यत. । तस्माच्चरकनाम्नासौविख्यातःक्षितिमण्डले ॥ सभातिचरकाचार्योवेदाचार्योयथादिवि । सहस्रवदनस्यांशोयेनध्वंसोरुजाकृतः

अर्थ–इस प्रकार शेप भगवान् अपने मन में विचार करके, वेद वेदाग जानने वाले और प्रसिद्ध ऐसे विशुद्ध मुनि के पुत्र हुए। किसी राजा का नौकर जैसे किसी पर राज्य के वृतान्त जानने को गुप्त होकर आवे उसके आनेको कोई नहीं जाने, इसीसे शेप पृथ्वी ऊपर चरक इस नाम से प्रसिद्ध हुए। शेप नारायण के अंशरूप, तथा जिन्हो ने रोगों का नाश करा, ऐसे चरकाचार्य, जैसे वेद के आचार्य बृहस्पत स्वर्ग में शोभित है। उसी प्रकार पृथ्वी में शोभित हुए।

आत्रेयस्यमुनेःशिष्याअग्निवेशादयोऽभवन् । मुनयो

वहवस्तैश्चकृतंतन्त्रंस्वकंस्वकं ॥ तेषांतन्त्राणिसंस्कृत्यसमाहृत्य विपश्चिता । चरकेणात्मनोनाम्नाग्रन्थोऽयंचरकःकृतः ॥

अर्थ—आत्रेय मुनि के अग्नि वेश सै आदि ले वहुत शिष्य हुए। उन्हो ने इस आयुर्वेद सैं अपने अपने न्यारे न्यारे शास्त्र रचे, उन सव ऋषि यों के ग्रंथ इकट्ठे कर तथा सुधार के विद्वान ऐसे चरक मुनि ने अपने नाम सै यह चरक नाम ग्रन्थ रचा।

धन्वन्तरिप्रादुर्भावः

एकदादेवराजस्यदृष्टिर्निपतिताभुवि । तत्रतेननरादृष्टा व्याधिभिर्भृशपीड़िताः ॥ तान्दृष्ट्वाहृदयंतस्यदययापरिपीड़ितं दयार्द्रहृदयःशक्रोधन्वन्तरिमुवाचह ॥

अर्थ—एक समय देवराज इन्द्रकी दृष्टि पृथ्वी में पड़ी तो अनेक मनुष्य रोगों सें पीड़ित देखे, उन्हो को देख इन्द्र का हृदय दया सैं वहुत पीड़ित हुआ, पश्चात् दयासैं कोमल हृदय वाला इन्द्र धन्वन्तरि से वोला।

धन्वन्तरेसुरश्रेष्ठभगवन्किंश्चदुच्यते । योग्योभवासिभूता नामुपकारपरोभव ॥ उपकारायलोकानांकेनकिन्नकृतंपुरा । त्रैलोक्याधिपतिर्विष्णुरभूत्मत्स्यादिरूपवान् ॥ तस्मात्वंपृथिवीं याहिकाशिमध्येनृपोभव । प्रतीकारायरोगानामायुर्वेदंप्रकाशय

अर्थ—हे धन्वन्तरि! हे सुर श्रेष्ठ! हे भगवन्! में आपसै कुछ कहताहूं सो आप सुनो, कि तुम प्राणियों के उपकार करने योग्य हो, इसी सैं उन के उपकार करने में तत्पर होओ, लोकों के उपकारार्थ पहिले किसने क्या नहीं करा! देखो त्रिलोकी के अधिपति विष्णु भगवान् मत्स्यादि रूपवाले हुए। अतएव आप पृथ्वी में जाय काशी में राजा होओ, तथा रोगोंके उपाय करने के निमित्त आयुर्वेद का प्रकाश करो।

इत्युक्त्वासुरशार्दुलःसर्वभूतहितेप्सया । समस्तमायुषो

वेदंधन्वन्तरिमुपादिशत् ॥ अधीत्यचायुषोवेदमिन्द्रात्धन्वन्तरिः पुरा । अभ्येत्यपृथिवींकाश्यांजातोवाहुजवेश्मनि ॥ नाम्नातु सोऽभवत्ख्यातोदिवोदासइतिक्षितौ । बालएवविरक्तोभूच्चचार सुमहत्तपः ॥

अर्थ-इन्द्र से आयुर्वेद का अध्ययन कर, धन्वन्तरि आप पृथ्वी ऊपर आय काशी में बाहुज (क्षत्री) के घर मे उत्पन्न हुए। पृथ्वी में दिवोदास इस नाम से विख्यात हुए, वे धन्वन्तरि बाल अवस्थामे ही विरक्तता को प्राप्त हुए, और घोरदुष्कर तप करा।

यत्नेनमहताब्रह्मातंकाश्यामकरोन्नृपं । ततोधन्वन्तरिर्लोके काशिराजोऽभिधीयते ॥ हितायदेहिनांस्वीयासंहिताविहिता ऽमुना । अयंविद्यार्थिनोलोकान्संहितान्तामपाठयत् ॥

अर्थ-तदनन्तर ब्रह्माने बड़े यत्नसे उसको काशी मे राजा करा, पीछे उस धन्वन्तरि को मनुष्य (काशी राज) ऐसे कहने लगे, प्राणियों के हित के कारण इन धन्वन्तरि ने अपने नाम की संहिता बनाई, और उसको विद्यार्थियों को पढाई, इस संहिता को धन्वन्तरि संहिता कहते है।

सुश्रुतस्य प्रादुर्भावः

अथज्ञानदृशाविश्वामित्रप्रभृतयोऽविदन् । अयंधन्वन्तरिः काश्यांकाशिराजोऽयमुच्यते ॥ विश्वामित्रोमुनिस्तेषुपुत्रंसुश्रुत मुक्तवान् । वत्स ! वाराणसींगच्छत्वंविश्वेश्वरवल्लभां ॥ तत्र नाम्नादिवोदासःकाशिराजोऽस्तिवाहुजः । सहिधन्वन्तरिः साक्षादायुर्वेदविदावरः ॥

अर्थ-तदनन्तर विश्वामित्र से आदिले सब ऋषि ज्ञान दृष्टि से जान गए कि, यह काशी का राजा काशी मे धन्वन्तरि का अवतार है। यह विचार विश्वामित्र अपने पुत्र सुश्रुत से बोले कि, हेवत्स ! विश्व नाथ की

प्यारी काशीपुरी को जाओ तहां दिवोदास काशी का राजा है, वह आयुर्वेद के जानने वालोमें श्रेष्ठ साक्षात् धन्वन्तारि है।

आयुर्वेदंततोऽधीत्यलोकोपकृतिहेतवे ।
सर्वप्राणिदयात्तीर्थमुपकारोमहामख: ॥
पितुर्वचनमाकर्ण्यसुश्रुत: काशिकांगत: ॥
तेनसार्द्धसमध्येतुंमुनिसूनुशतंययौ ॥

अर्थ– उनके पास से सर्व प्राणियों की दया से पवित्र, एसा आयुर्वेद का अध्यन करो, कारण कि उपकार वडा भारी यज्ञ है, इस प्रकार पिता के वचन सुन सुश्रुत काशी को गए और उनके संग पढ़ने के निमित्त मुनीश्वरों के सौ पुत्र गए।

अथधन्वन्तारिंसर्वेवानप्रस्थाश्रमेस्थितं ।
भगवन्तंसुरश्रेष्ठंमुनिभिर्वहुभि: स्तुतं ॥
काशिराजंदिवोदासंतेपश्यन्विनयान्विताः।
स्वागतंवइतिस्माहादिवोदासोयशोधन: ॥
कुशलंपरिपप्रच्छतथागमनकारणम् ।
ततस्तेसुश्रुतद्वाराकथयामासरुत्तरम् ॥

अर्थ– तहां काशी में जायकर वानप्रस्थ आश्रम में स्थित देवतान्में श्रेष्ठ अनेक मुनि जिन्की स्तुति कर रहे एसैं सर्व सामर्थ्य युक्त धन्वन्तारि काशी के राजा दिवोदास को विनय युक्त अैसे सर्व सुश्रुत आदि देखते हुए। यश रूपी धन वाले दिवोदास, उन ऋषियों को आए हुए देख, वोले कि (तुम भले पधारे)तथा कुशल पूछी और आगमनका कारण पूछा, तव वे सर्व ऋषि पुत्र सुश्रुत द्वारा उत्तर कहते हुए।

भगवन् ! मानवान्दृष्ट्वाव्याधिभि: परिपीडितान् ।
क्रन्दतोम्रियमाणांश्चजातास्माकंहृदिव्यथा ॥

आमयानांशमोपायंविज्ञातुंवयमागताः ।
आयुर्वेदंभवानस्मानध्यापयतुयत्नतः ॥

अर्थ– कि हे भगवन ! रोगों से परिपीडित, पुकारते और मरते हुए मनुष्यों को देख, हमारे हृदय में पीडा उत्पन्न हुई है। इसी कारण रोगों के नाश करने का उपाय पूछने को हम आपके पास आए हैं, सो आप हम सबको यत्न पूर्वक आयुर्वेदका उपदेश करो।

अङ्गीकृत्यवचस्तेषांनृपतिस्तानुपादिशत् ।
व्याख्यातन्तेनतेयत्नाज्जगृहुर्मुनयोमुदा ॥
काशीराजंजयाशीर्भिरभिनन्द्यमुदान्विताः ।
सुश्रुताद्या॰सुसिद्धार्थाजग्मुर्गेहंस्वकंस्वकं ॥

अर्थ– वे काशिराज, उनसुश्रुतादि ऋषियों के वचन अंगीकार कर, आयुर्वेद कहते हुए। उस व्याख्यान को वे ऋषियत्न से बडे हर्ष पूर्वक ग्रहण करते हुए। तदनतर काशिराज को (तुमारी जय होय) ऐसे आशीर्वाद देकर हर्ष युक्त तथा अपने अर्थ को भले प्रकार सिद्धकर सुश्रुतादि ऋषि अपने२घर गए। * इसी प्रकार सुश्रुत में भी लिखा है।

* अथ खलु भगवन्त ममरवर ऋषिगणपरिवृतमाश्रमस्थं काशिराजं दिवोदासं धन्वन्तरिं, औपधेनव, वैतरणौरभ्र–पौष्कलावत करवीर्य्य गोपुर रक्षित सुश्रुतप्रभृतय ऊचुः ॥ भगवन् ! शारीरमानसागन्तुस्वाभाविकै र्व्याधिभिर्विविधवेदनाभिघातोपद्रुतान्सनाथानप्यनाथवद्विचेष्टमानान्विक्रोशतश्च मानवान भिसमीक्ष्य मनसिनः पीडाभवति, तेषांसुखैषिणा रोगोपशमार्थमात्मनः प्राणयात्रार्थञ्च प्रजाहितहेतोरायुर्वेद श्रोतुमिच्छाम इहोपदिश्यमानं। अत्रायत्तमैहिकमामुष्मिकञ्चश्रेयः तद्भगवन्तमुपपन्नाःस्मःशिष्यत्वेनेति ॥ तानुवाचभगवान्स्वागतवःसर्वएवमीमांस्याअध्याप्याश्चभवन्तोवत्साअयमायुर्वेदोऽष्टाङ्गमुपदिश्यते। कस्मैकिमुच्यतामिति। तऊचुः अस्माकं सर्वेषामेवशल्यज्ञानमूलकृत्वोपदिशतुभवानिति। सउवाचैवमस्त्विति। तऊचुर्भूयोपिभगवन्तम

प्रथमंसुश्रुतस्तेषुस्वतन्त्रंकृतवान्स्फुटं । सुश्रुतस्यसखायोऽपिपृथक्तन्त्राणितेनिरे ॥ सुश्रुतेनकृतंतन्त्रंसुश्रुतंवहुभिर्यतः । तस्मात्तत्सुश्रुतंनाम्नाविख्यातंक्षितिमण्डले ॥

अर्थ–तिन औपधेनवादि ऋषियों में सुश्रुतने अपना स्फुट एसा शास्त्र रचा । तथा सुश्रुत के मित्र [औपधेनव पौष्कलावत , वैतरणौरभ्र, करवीर्य गोपुररक्षित , आदि] भी अपने अपने पृथक् पृथक् ग्रन्थ वनाते हुए , सुश्रुत ने जो शास्त्र रचा उसको वहुत से मनुष्यों ने सुना इसीसे वह ग्रन्थ सुश्रुत नाम से पृथ्वीमें विख्यात हुआ । परन्तु सुश्रुत नाम से दो आचार्य हुए हैं । एक सुश्रुत दूसरे वृद्ध सुश्रुत इन दोनों में यह निश्चय नहीं हो सके कि यह प्रसिद्ध सुश्रुत ग्रन्थ किसका वनाया है ।

अथवाग्भट प्रादुर्भावः

ततःकालात्ययेजातेवाग्भटोभिषजाम्वरः । समुत्पन्नोधरण्यांवैधन्वन्तरिरिवाऽपरः ॥ आसीद्राजाऽधिराजस्यसत्यसंधस्यधीमतः । ज्ञानिनःपाण्डवाग्रयस्यसभायांसुचिकित्सकः ॥ प्रवंधावहवस्तेनप्रणीताहितकाम्यया । तेषामष्टाङ्गहृदयसंहिताप्रथिताभुवि ॥ सावाग्भटाऽभिधानेनख्याताधरणिमण्डले ॥

अर्थ– तदनन्तर कुछ काल व्यतीत होनेपर , वैद्यों में श्रेष्ठ , मानोदूसरा धन्वन्तारि एसा पृथ्वी में वाग्भट वैद्य प्रगट हुआ । यह राजा धिराज सत्य संध ज्ञानी एसे युधिष्ठिर महाराज पांडव की सभामें चिकित्सक(वैद्य) था इन्होंने अनेक ग्रन्थ लोक हितार्थ वनाए , तिनमें अष्टाङ्ग हृदय संहिता पृथ्वी में विख्यात हुई , और वही वाग्भट संहिता के नाम से पृथ्वी में विख्यात है ।

स्माकमेकमतीनांमतमभिसमीक्ष्य सुश्रुतोभवन्तंप्रच्छाति अस्मैचोपादिश्यमानं वयमप्युपधारयिष्यामःसहोवाचैवमस्त्विति ।

चरकात्सुश्रुताच्चैवतन्त्रेभ्योऽन्येभ्यएवच । सासंगृह्यप्रयत्नेनलोकाऽनुग्रहहेतवे ॥ विचित्रंकौशलश्चास्यांचिकित्सासुप्रदर्शितम् अनयोपकृतंसर्व्वंजगदेतन्नसंशयः ॥

अर्थ– चरक सुश्रुत आदि ग्रन्थों से लोक के कल्याणार्थ यत्न पूर्वक इस संहिता का संग्रह करा है । इस संहिता में और चिकित्सा में इन्हों ने अद्भुत चतुराई दिखाई है अर्थात् चरक सुश्रुत में वीस पचीस श्लोक में जो कार्य करा है, वो इसमें दो चार श्लोक में ही कर दीना है । इन्होंने यथार्थ में संपूर्ण जगत् का उपकार करा है । इसी कारण इसकी आयुर्वेद की बृहत् त्रयी में गणना है । सो किसी ने कहा भी है ।

सुश्रुतंन श्रुतंयेनवाग्भटोनैववाग्भटः ।
नाधीतश्चरकोयेनसवैद्योयमकिङ्करः ॥

अर्थात् सुश्रुत जिसने सुना नहीं, वाग्भट जिसने जिव्हा गत न करा, और चरक जिसने पढा नहीं, वो वैद्य यम का दूत है इसी कारण बृहत्त्रयी पाठी वैद्य की असन्तप्रतिष्ठा है और कोई वैद्य यह कहते है कि अन्य १८ संहिता औरयुगों के लिये है । परंतु वाग्भट संहिता केवल कलियुग के लिये बनी है । यथा

अत्रिःकृतयुगेचैवत्रेतायांचरकोमतः ।
द्वापरेसुश्रुतःप्रोक्तःकलौवाग्भटसंहिता ॥

अर्थात् सतयुग में अत्रि संहिता, त्रेता में चरक संहिता, द्वापर में सुश्रुत, और कलियुग के लिये तो वाग्भट संहिता है ।

शिष्य–आपने कहा कि अन्य अठारह संहिता है वो कौन सी है सो कृपा पूर्वक कहो ।

गुरु–अठारह संहिताके नाम हारीत संहिता में, इस प्रकार लिखे हैं ।

हारीतसुश्रुतपराशरभोजभेडभृग्वग्निवेशचरकाश्च्यवनोऽप्यगस्तिः ॥ वाराहवाग्भटनरायणनारसिंहाआत्रेयकात्रिशशिनः

शिवभास्करौच। सन्त्यष्टादशशिक्षाधन्वन्तेरर्वाग्भटंवहिष्कृत्य ॥

अर्थ– हारीत, सुश्रुत, पराशर, भोज, भेड, भृगु, अग्निवेश, चरक, च्यवन, अगस्ति, वाराह, वाग्भट, नारायण, नारसिंह, आत्रेय, अत्रि, चन्द्रमा, शिव, और सूर्य, इनमें वाग्भट को त्यागने से अठारह संहिता आयुर्वेद शास्त्र की कही हैं

शिष्य– चरक सुश्रुत वाग्भट आदिग्रन्थों में रस चिकित्सा कहीं नहीं लिखी फिर रस ग्रन्थो का प्रचार कैसे हुआ। गुरू–

रस ग्रन्थानां प्रादुर्भावः।

भूतानुकम्पाप्रवणोमहेशः श्मशानवासीजगदादिनाथः। स्ववीर्ययुक्तागदयोगरत्नैःकीर्णानितन्त्राणिवहूनिचक्रे ॥ रसप्रवन्धास्त्वधुनातनायेतन्मूलकाएवकृताःसुधीभिः। सृष्टिस्थितिध्वंसकृतोऽखिलानामनादिनाथस्यमहाप्रसादात् ॥

अर्थ – सर्व जगत् के आदि भूत, श्मशानवासी परमकारुणिकभूतपति श्रीमहादेव उन्होंने स्वप्रकाशित, विविधतन्त्र स्ववीर्ययुक्त अर्थात् जिन्होंमें पारद सें आदि ले अनेक रसादि औषध रोग दूर करने को कही ऐसे अनेक तंत्र रचते हुए। और जितने आधुनिक रस ग्रन्थ पंडितों ने वनाए हैं वे सब उन्हीं शिवप्रोक्त तंत्रो सें निकाले हैं अतएव सव आधुनिक रस ग्रन्थों की जड़ प्राचीन तंत्र हैं।

रसग्रन्थेषुतंत्रेषुधातुशोधनमारणे। विव्रतेचविशेषेणरसराजस्य संस्कृतिः ॥ चरकादौरसादीनांप्रयोगोनैवदृश्यते। अतःप्रचारएतेषांहितायजगतोमतः ॥

अर्थ – रस के ग्रन्थों में और तंत्रों में धातुओं का शोधन, मारण, और विशेष करके पारद के संस्कार कहे है सो चरकादि(सुश्रुत वाग्भटादि) ग्रन्थों में रस प्रयोग नहीं है। इसी वास्ते जगत् के कल्याणार्थ इनका प्रचार संसार में है।

शिष्य — रस ग्रन्थोंका प्रचार विशेष कब से हुआ, और प्राचीन ग्रन्थों से इनमें क्या विशेषता है।

गुरु— पहले समय में काष्ठादि औषधद्वारा वैद्य चिकित्सा करा करते, क्योंकि रसोंके बनाने में एक तो समय बहुत चाहिये, दूसरे द्रव्य विशेष खर्च होता है, तीसरे इनके बनाने में सहायक भी दो चार मनुष्य अवश्य होने चाहिये। तथा रसआसव और तैल आदि प्राचीन उत्तम कहे हैं। ऐसे ऐसे अनेक कारणों सें प्राचीन वैद्य काष्ठादि जड़ी बूंटी से चिकित्सा करते, इसी से रस ग्रन्थों का प्रचार पहले समय में थोड़ा था, परन्तु जब से इस भारतवर्ष में यवनो का राज्य हुआ और उनके साथ उनके देश के यूनानी वैद्य आए। उन यूनानी वैद्यों ने यहां के राजा बाबू लोगों को अपनी स्वादिष्ठ औषध देकर अपनी और अपने शास्त्र की उत्तमता दिखाय, यहां के वैद्यों की और यहा के शास्त्रों की निंदा करने लगे। इसी करण सें वैद्यों की जीविका नष्ट होने लगी, और दिन प्रति दिन हकीमों की चाह विशेष होने लगी। तब हमारे गुरू घंटाल वैद्यों से न रहा गया शीघ्र अपने प्राचीन रस शास्त्र रूप खजाने को खोला जैसे शत्रु की चढ़ाई देख राजा महाराजा अपने खजाने को खोलते है। बस जो इन्होंने रसो को देना प्रारंभ करा तो यूनानी मुगलानी पठानियो की बानी बंद कर पानी से भी पतले कर दिये। और जो यूनानी वैद्य रुक्का लिख रोगी के द्रव्य हरण करने को सेरों दवाई लिखते थे, तथा अत्तारों से आधा तिहाई ठहरा कर उस रुक्के में दो चार दवाई शंकेत(समस्या)की लिख देते थे, जो दमड़ी की औषध उसके अत्तार साहब रुपया दो रुपे अथवा जैसा रोगी देखा वैसाही दो आने चार आने माँग लेते थे, यह अधर्म रसशास्त्र के प्रकट होते ही नष्ट होने लगा अर्थात् जो हकीमो की सेरो दवाई काम करती वो वैद्यों के रसो की पाव चावल आधे चावल की मात्रा काम करने लगी। इसी कारण काष्ठादि औषधों से रसशास्त्र को श्रेष्ठता है जैसे किसी ने लिखा है।

अल्पमात्रोपयोगित्वात् । दरुचेरप्यसङ्गत ॥

क्षिप्रमारोग्यदायित्वा । दौषधेभ्योरसोधिकः ॥

अर्थ–काष्ठादि औषधोकी अपेक्षासैंरस की थोड़ी मात्रा उपयोगी होती है। तथा काष्ठादि औषधों के खाने सैं अरुचि होती है, सो रस के भक्षण सैं कदाचित् नहीं हो, और काष्ठादि औषध की अपेक्षा रस जल्दी आरोग्य दाता हैं, इसी से काष्ठादि औषधो सैं रस को आधिक्यता है।

अन्यच्च

मुक्त्वैकंरसवैद्यन्तु । लाभंपूजांयशस्तथा ॥
तृणकाष्ठौषधैर्वैद्यः । कोलभेतवराटकाम् ॥

अर्थ– एक रसज्ञ वैद्य को छोड़, लाभ, पूजा, और यश को कौन प्राप्त हो सकता है। तथा तृण काष्ठौषधो कर्के कौन वैद्य कौंडी ले सके है। और चंद्रोदय, मकरध्वज, मृत्युंजय, रूपरस, राजमृगांक, स्वर्णपर्पटी, वसंतकुसुमाकर, नागेश्वर, ताम्रेश्वर, वंगेश्वर, आदि रसो के अनुपान भी दूध, मक्खन, मलाई, सहत, मिश्री, सोने चांदी के वर्क इत्यादि है। वस जव से मुसलमानों का आर्यावर्त्त में आना हुआ, तव से ही रसशास्त्र के प्रचार हो नेकी वहुधा जड़ जमी।

शिष्य–प्राचीन रस ग्रन्थ कर्त्ता कौन से हैं।

गुरु– प्राचीन रसशास्त्र वनाने वाले आचार्यो के नाम रसरत्न समुच्चय में इस प्रकार लिखे हैं।

आगमश्चन्द्रसेनश्चलङ्केशश्चविशारदः। कपालीमतमांडव्योभास्करःशूरसेनकः ॥ रत्नकोषश्चशम्भुश्चतथैकोनरवाहनः । इन्द्रदोगोमुखश्चैवकंवलिर्व्यालिरेवच ॥ नागार्जुनः सुरानन्दोनागवोधिर्यशोधनः । खण्डः कपालिकोव्रह्मागोविन्दोलुंपकोहरिः ॥ रसाङ्कुशोभैरवश्चकाकचण्डीश्वरस्तथा । वासुदेवोऋष्यशृंगोः क्रियातन्त्रसमुच्चयी ॥ रसेन्द्रतिलकोयोगीभालुकीमैथिलाह्वयः महादेवोनरेन्द्रश्चरत्नकारोहरीश्वरः ॥ एतेचान्येचयेसिद्धाःरस

शास्त्रप्रवर्त्तकाः ॥

अर्थ- आगम , चन्द्रसेन , लंकेश (रावण)कपाली , मांडव्य , भास्कर , शूरसेन , रत्नकोश , शम्भू , नरवाहन , इन्द्रद , गोमुख , कंवालि , व्यालि , नागार्जुन , सुरानन्द , नागवोधि , यशोधन , खंड , कपालि , ब्रह्मा,गोविन्द, लुंपक , हरि , रसांकुश , भैरव , काकचंडीश्वर , वासुदेव ऋष्यशृंग , क्रियातत्रसमुच्चयी , रसेन्द्रतिलकयोगी , माल्लुकी , जनक , महादेव , नरेन्द्र , रत्नकार , हरीश्वर , इनसे आदि ले और नित्यनाथ , गोरख , मुछंदर आदि सिद्धरस शास्त्रकेमहर्त्तिकर्त्ता हैं ।

अथसिद्धोनित्यनाथ . पार्व्वतीतनय ः सुधी ः ।
रसरत्नाकराख्यश्चरसग्रन्थंप्रणीतवान् ॥
रसेन्द्रचिन्तामणिनामधेय ः । टुंटुनिनाथोभिषगग्रगन्य ः ॥
रसेन्द्रयुक्तैर्विविधैश्चकार । सुभेषजै कीर्णमतीवचित्रम् ॥
अन्येऽपिवहवोधीराररसग्रन्थान्प्रणीतवान् ।
सर्व्वएवहितेग्रन्थाआश्चर्यफलदायिन ः

अर्थ- पूर्वोक्त ग्रन्थों के अनन्तर पार्वती पुत्र ऐसे सिद्ध नित्यनाथ ने रस का ग्रन्थ रसरत्नाकर वनाया औरभिषगशिरोमणि टुंटुनाथ ने अनेक पारद के प्रयोग सहित सुन्दर औषध जिसमें ऐसा रसेन्द्र चिन्तामणि ग्रन्थ निर्माण करा । तदनन्तर और बहुत से पंडितो ने अनेक रस ग्रन्थ वनाए । वे सव ग्रन्थ आश्चर्य फलदायक हैं । उनमें से जो आज कल प्रचलित ग्रन्थ है उनके कुछ नाम लिखते है । रसार्णव , रसमञ्जरी , रसेन्द्रकल्पद्रुम , रस राज शंकर , रसहृदय , रसदीपक , रससिद्धिप्रकाश , रसेन्द्रकोश , रसालंकार , रसभूषण, इत्यादि है इन सव का संग्रह कर के रसराज सुन्दर ग्रन्थ भाषा टीका सह निर्माण करा गया है ।

श्रीमाधवकरश्चन्द्र ः सूनु ः सूरितमोभिषक् ।
नानाशास्त्रोधृतंचक्रेसंग्रहंरुक्विनिश्चयं ॥

अर्थ— भिषक् शिरोमणि श्रीमाधवकरश्चन्द्र के पुत्र, अनेक शास्त्रोंका संग्रहकर रुग्वि निश्चय नामक ग्रन्थ करते हुए—यद्यपि—अंजननिदान, हंसराजनिदानसुषेणनिदान व्याडि आदि आचार्य्यों के निदान वहुत हैं। परन्तु सर्वोत्तम निदान माधव ही है इस माधव निदानकी मधुकोश टीका करताने और भी ग्रन्थ कर्त्ताओं के नाम लिखे हैं यथा

भट्टारजेज्जटगदाधरवाप्यचन्द्रः । श्रीचक्रपाणिवकुलेश्वरसेनभव्यैः । ईशानकार्त्तिकसुकीरसुधीरवैद्यै । मैत्रेयमाधवमुखैर्लिखितंविचिंत्य ॥ १ ॥ तन्त्रान्तराण्यपिविलोक्यममैषयत्नः । सद्भिर्विधेयइहदोषाविधौसमाधिः । मर्त्यैरसर्व्वविदुरैर्विहितेक्क नाम । ग्रन्थेऽस्तिदोषविरहःसुचिरन्तनेपि ॥ २ ॥

अर्थ— भट्टार, जेज्जठ, गदाधर, वाप्पचन्द्र, श्रीचक्रपाणी, वकुलेश्वर सेन, ईशान, कार्त्तिक, सुकीर, मैत्रेय, और माधव आदि का लेख विचार, तथा और अनेक तंत्रो को देख इस ग्रन्थ वनाने में हमारा प्रयत्न है इस ग्रन्थ में पंडित जनो को समाधान करना चाहिये क्योंकि असर्वज्ञ मनुष्य कृतग्रन्थ में दोषराहित्य कहा है। अर्थात् दोष दृष्टि को परित्याग कर जहां कहीं अशुद्ध रहगया होय उसको सुधार देवे, परन्तु जो दुष्ट जन है वो इस वृहन्निघंटुरत्नाकर ग्रन्थको देखकर दोषारोपण करेहींगे, उन से हम नहीं डरते जैसै लिखा है।

तथापिक्रियतेग्रन्थः सन्तियद्यपिदुर्ज्जनाः ।
नहिदस्युभयाल्लोकोदैन्यवानिहवर्त्तते ॥

अर्थ— यद्यपि संसार में दुर्ज्जन जन है तो भी हम ग्रंथ करते है। क्योंकि संसार चोरों के भय सैं दीनता नहीं ग्रहण करे, अर्थात् सेठ साहूकार चोरों केभय सैं कुछ अपने व्यवहार को नहीं छोंड़ते।

भ्रमद्भ्योव्याधिचक्रेभ्योरक्षितुंह्यवलान्नरान् । नानातन्त्रप्रसूनेभ्योमधून्याहृत्ययत्नतः ॥ शास्त्रचक्राणिसंधूर्ण्यदृष्ट्वासम्यक्फलाफलं । चक्रपाणिश्चिकित्सात्ममधुचक्रंप्रणीतवान् ॥ ग्रन्थेचक्र

कृतेरीतिवैशद्यंपरिदर्शितं । चिकित्सायांविशेषेणस्नेहादिपचने तथा ॥ नान्यस्मिन्दृश्यतेचेदृग्ग्रन्थकौशलवन्धनं । चिरंविद्योततांसूरिहृदयेऽयंसुसंग्रहः ॥

अर्थ– निरंतर भ्रमण शील रोगचक्र से दुर्बल मनुष्य गणों की रक्षा करने के निमित्त, भिषक वरचक्रपाणिदत्त, अनेक शास्त्रों का सार संग्रह कर स्वनामक अर्थात् चक्रदत्त नाम चिकित्सा ग्रंथ बनाया। इस ग्रथ में चिकित्सा कर्म की सुंदर शृंखला दिखाई है और तैल आदि पाचन की विधि उत्तम कही है। जैसी प्रणाली इस ग्रंथ में है ऐसी दूसरे ग्रथ में कुशलता नहीं है, यह ग्रंथ पंडित लोगो के हृदय में बहुत काल पर्यंत प्रकाश करो सुनते है कि चक्रपाणि दत्तकृत चक्रदत्त ग्रथ में निदान, निघंट, और चिकित्सा सर्व वस्तु है परंतु यह कलकत्ते में जो छपा है वह संपूर्ण नहीं है।

राज निघंटुः

नाम्नाश्रीनरसिंहपंडितवरःकाश्मीरदेशोद्भवो । नानाकोषमहाब्धिमन्थनगतंरत्नोच्चयंयत्नतः ॥ एकीकृत्यनिवन्धवन्धनमहो निघण्टुराजाविधं । चक्रेलोकहितेप्सयाहितकरंद्रव्याभिधानार्थकम् ॥ १ ॥

कोषादस्मात्तथाऽन्येभ्योद्रव्याणितद्गुणानगुणान् । यौरूपीयावनीभाषादेशभाषांतथैवच । सामग्र्येणतथालोच्यक्रियास्माभिर्विधीयते ॥

अर्थ–कश्मीर देशीय श्रीनरसिंह नामक पंडितवर, अनेक कोष रूप समुद्र का मन्थन कर उनमें अनेक शब्दो को एकत्र कर, राजनिघटु नामक सर्व लोक के कल्याणार्थ द्रव्याभिधान बनाया। इस कोष से तथा और कोषों से गुण और अवगुण विचार तथा अंग्रेजी यूनानी भाषाओं को विचार इस ग्रंथ में क्रिया लिखी है।

भावप्रकाशः

आसीन्मद्रेजनपदेविप्रोविद्वत्कुलोत्तमः। शिरोमणिःसद्भिषजांधन्वन्तरिरिवक्षितौ ॥ शास्त्राणांपारदृक्सम्यक्भावमिश्रेतिनामकः वाराणस्यामवस्थायभूमिपानांमहात्मनां॥ वहूनांवहुधासम्यग्रुजांकृत्वाप्रतिक्रियां। प्रतिष्ठांमहतींभूमौलब्धवान्साधुपुजितः ॥

अर्थ– ३०० तीन सौ वर्ष व्यतीत हुए तव मद्रदेश में, विद्वान् ब्राह्मणों के उत्तम कुल में, मानो द्वितीय धन्वन्तरि असै शास्त्र के पारदर्शी, भावमिश्रनामक भिषक् शिरोमणि प्रगट हुए। वे काशीपुरी में बास करि तद्देशीय अनेक महात्मा राजाओं की अनेकबार चिकित्सा कर बड़ी भारी प्रतिष्ठा को प्राप्त हुए।

शिष्यानध्यापयामासयोवेदशतसंख्यकान्। महारत्नानिचोद्धृत्यआयुर्वेदमहाम्बुधेः॥ ग्रंथंभावप्रकाशाख्यंलोकानांहितकाम्यया। प्रणीतबान्प्रयत्नेनवैद्यानामुपकारकम्॥आयुर्वेदप्रवंधानांग्रन्थःसचरमःस्मृतः।

अर्थ– जिन्हों ने चारसौ ४०० शिष्यों को आयुर्वेदादि शास्त्र पढ़ाए, तथा आयुर्वेद रूप समुद्र सें महारत्न रूप श्लोकों का संग्रह कर, लोकों के कल्याणार्थ भावप्रकाश नाम ग्रंथ बनाते हुए। यह ग्रंथ वैद्यों का उपकारी है यह जितने आयुर्वेद के ग्रंथ हैं उनमें पिछला ग्रंथ है।

आयुर्वेदाब्धिमध्यादतिमतिमुनयोयोगरत्नानियत्ना। ल्लब्धास्वेस्वेनिबन्धेदधुरखिलजनव्याधिबिध्वंसनाय। तत्तद्ग्रंथाद्गृहीतैःसुबचनमणिभिर्भावमिश्रश्चिकित्सा। शास्त्रेजाढ्यान्धकारंप्रशमायितुमिमंसंबिधत्तेप्रकाशम् ॥

अर्थ– आयुर्वेद रूपी समुद्र में सें, महा बुद्धि मंत मुनश्विरों ने, योग रत्न

रूपी रत्नों को लेकर , अपने अपने ग्रंथों में धरे है। उन रत्नों को समग्र मनुष्यों के रोग नाशनार्थ उन्हीं उन्हीं ग्रन्थों में से ग्रहण करके ओर भाव युक्त अंग सुवचन रूपी मणियों सें इस चिकित्सा शास्त्र मे मूर्खता के अंधकार दूर करने के वास्ते ग्रथ कर्ता आप यह प्रकाश करे है।

पूर्वाचार्य्यैःप्रणीतेषुपूजनीयैर्महार्षिभिः। तन्त्रेषुयानिरत्नानितान्यत्रापिप्रधानतः॥ लभ्यन्तेन्यान्यपितथादृश्यन्तेयानिनक्वचित्तदपिबहुयत्क्वापिनचदृश्यतेपारस्यादिप्रदेशेषुजाताऔषधयश्चयाःआचार्येणग्रहीतास्ताःपूर्व्वाचार्य्यैर्नतत्कृतम्। व्याधेफिरङ्गकाख्यस्यलिखितंचात्रलक्षणम्। तस्यप्रतिक्रियाचापितन्त्रेऽन्यस्मिन्नदृश्यते॥

अर्थ– महर्षियों करके पूज्य ऐसे पूर्वाचार्यों के बने हुए ग्रंथों के श्लोक सब इस भावप्रकाश में है ओर बहुत से ऐसे प्रयोग इसमें है जो कहीं नहीं लिखे-पारसी (मुसलमानी) प्रदेशों में होने वाली औषधियों के नाम गुण, प्राचीन आचार्यों ने नही लिखे। वो सब इन्हों ने लिखे है। तथा फिरंग रोग के लक्षण यत्न किसी ग्रंथ में नहीं है। वो इन्हों ने अपने ग्रंथ मे लिखे है।

अत प्रतीयतेचायुःशास्त्राणांचरमोन्नतिः। जाताश्रीभावमिश्रस्यसमयेकुशलप्रदे। तादिमंचरमंग्रन्थंवैद्यानांजीवनंमतम्। श्रीपतिपदप्रसादादाशीर्भिर्भूमिदेवाना। भावप्रकाशनामाग्रंथोयंपठ्यतांसर्व्वैः॥

अर्थ– इन पूर्वोक्त कारणों सें मालूम होता है कि इस भावप्रकाश ग्रंथ की उन्नति भावमिश्र के समय पीछे हुई है। यह सबके पश्चात् बना हुआ ग्रंथ वैद्यों का जीवन रूप है। श्रीपति के चरणारविंद के प्रसाद सें , और ब्राह्मणों के आशीर्वाद सें भावप्रकाश नामक यह ग्रथ तुम सर्व मनुष्य पढो।

इति आयुर्वेद प्रणेतृणां प्रादुर्भावाः

अस्मिन् शास्त्रे पञ्चमहाभूतशरीरिसमवायः पुरुषइत्युच्य

ते । तस्मिन् क्रियासोऽधिष्ठानं कस्माल्लोकस्यद्वै बिध्यात् ।

अर्थ– इस आयुर्वेद शास्त्र में, पञ्च महाभूत "पृथ्वी. जल. अग्नि. पवन. आकाश," और शरीरी कहिये आत्मा, इन्के संयोग को पुरुष कहते हैं। उस पुरुष में शास्त्रोक्त कर्म हैं, क्योंकि वही पुरुष ब्याधि और आरोग्य का आधार है, अर्थात् पुरुष मेंहीं शास्त्रोक्त चिकित्सा होती है, क्योंकि सर्व जीवों के दो भेद हैं।

लोकोहिद्विविधःस्थावरोजङ्गमश्च । द्विविधात्मकए
वाग्नेयःसौम्यश्चतद्भूयस्त्वात् । पञ्चात्मकोवा

अर्थ– लोक स्थावर और जंगम के भेद सैं दो प्रकार का है वह स्थावर जंगम भी आग्नेय (गरम) और सौम्य (शीतल) के भेद सैं दो प्रकार का है, क्योंकि वहुधा प्राणी मात्र तेज और शीतल स्वभाव वालेही होते हैं। अथवा सर्व प्राणी पृथ्वी, जल. अग्नि. वायु, और आकाश की आधिक्यता सैं पांच प्रकार के हैं।

तत्रचतुर्विधोभूतग्रामः । स्वेदजाण्डजोद्भिज्जरायुजसंज्ञः । त
त्रपुरुषःप्रधानंतस्योपकरणमन्यत् । तस्मात्पुरुषोऽधिष्ठानम्

अर्थ– तहां पूर्वोक्त प्राणियों का समूह चार प्रकार का है। स्वेदज(१)अंडज,(२)उद्भिज, (३)जरायुज, (४)इन चारों प्रकार के प्राणियों में पुरुष (मनुष्य(५) को प्रधानता है। और उस मनुष्य जातिके स्थावर जंगम स्वेदजादि उपकरण (सामग्री) अर्थात् साधन है। इसी सैं आयुर्वेदोक्त क्रियाओं का आधार पुरुष है।

(पंच महा भूत शरीरी समवायः पुरुष) इसके कहने सैं, पुरुष शब्द करके पश्वादिकों का भी वोध होता है। तथापि मनुष्य जाति काही इस जगह पुरुष शब्द वाचक है।

(१)पसीना सैं जो होते हैं जुंआं लीख आदि(२)जो अंडाओंसैं प्रगट होते हैं तोता चिरैया. सर्प आदि. ३ जो पृथ्वी को फोड़ कर प्रगट होते हैं जैसैं वृक्षादि ४ और जो जरा (झिली) सैं लिपटे माता के पेट सैं प्रगट हो जैसैं मनुष्य आदि।

तद्दुःखसंयोगाव्याधय ःइत्युच्यते । तेचतुर्विधाआगन्तव · शारीरा मानसा स्वाभाविकाश्चेति । तेपामागन्तवोऽभिघातनिमित्ता ः। शारीरास्त्वन्नपानमूलावातपित्तकफशोणितसन्निपातवैपम्यनिमित्ता ः।मानसास्तुक्रोधशोकभयहर्पविपादेर्प्याभ्यसूयादैन्यमात्सर्यकामलोभप्रभृतय इच्छाद्वेपभेदैर्भवन्ति स्वभाविका ःक्षुत्पिपासाजरामृत्युनिद्राप्रभृतय ः।

अर्थ– उस पुरुष को दुःख संयोग होने को व्याधि अर्थात् रोग कहते हैं। अथवा जिनके होने में , अथवा जिन कर के , अथवा जिनसे मनुष्य को दुःख हो उनको रोग कहते हैं। वो व्याधि (रोग) चार प्रकार के हैं। आगंतव , शारीरी , मानसिक , और स्वभाविक , तिनमें तीर , तलवार लाठी आदि चोट लगने से जो रोग होवे , उसको आगंतुज कहते है। अन्न अर्थात् विपम भोजन है कारण जिसमें और वात , पित्त , कफ , रुधिर सन्निपात , इन्हों की विपमता हैं निमित्त जिन्हों की उन व्याधियों को शारीरी (अर्थात् शरीर से होने वाली)कहते हैं। क्रोध , शोक , भय, हर्प , (आनन्द) विपाद(पश्चात्ताप)ईर्प्या , निंदा , दीनता , मत्सरता काम , लोभ , आदि शब्द से–मान , मद , दम्भ , इत्यादि इच्छा , और द्वेप सें होने वाली व्याधियों को , मानसिक (अर्थात्) मन से होने वाली व्याधि कहते है। और भूख , प्यास , वृद्धता , मृत्यु , निद्रा , आदि स्वाभाविक व्याधि (रोग)कहाते हैं। अर्थात् भूख प्यास ईश्वर निर्मित हैं। इसीसें इन्हों का निवारण नही होता है। यदि पूर्वोक्त भूख प्यास आदि रोग दोपों के घटने बढने सें होवे (जैसे भस्मकरोग , अतितृपा , विना समय बुढापा)तो इनकी चिकित्सा होसकती है।

तएतेमनःशरीराधिष्ठानाः । तेपांसंशोधन संशमनाहाराचाराःसम्यक्प्रयुक्तानिग्रहहेतव ः॥

अर्थ– पूर्वोक्त चतुर्विधव्याधि , मन और शरीर के आश्रय होती है। अर्थात् काम क्रोधादि रोग मन के आश्रय हैं। और ज्वरादि रोग शरीर के

आश्रय होते हैं तथाअपस्मार (मृगी) आदि व्याधि मन और शरीर दोनो के आश्रित होती हैं इन पूर्वोक्त४प्रकार की व्याधि,(१)संशोधन(२)संशमन (३)आहार,और(४)आचार(५)विधि पूर्वक सेवन करने सै शांति होती हैं।

प्राणिनांपुनर्मूलमाहारोवलवर्णौजसांच । षट्सुरसे ष्वायत्तोरसा : पुनर्द्रव्याश्रया :

अर्थ– प्राणियों का कारण आहार (भोजन)है। केवल प्राणियों का ही मूल नहीं है किंतु वल , वर्ण , और ओज , (लावण्यता)का भी हेतु आहार ही है। वह आहार मधुर आदिछ: रसों के आधीन है रस द्रव्य के आधीन है।

१ शोधन दो प्रकारका एक वाहिराश्रयदूसराअंतराश्रय,तहां शस्त्र,दागना, लेप,आदि को वाहिराश्रय, और वमन, विरेचन, अनुवासन, फस्त खोलने आदि को अंतराश्रय शोधन कहते हैं।

२ जो दूषित दोषों को शोधन न करे , और जो दोष समान हैं उन्को वढ़ावे नहीं , और कुपित दोषों को समान करे , उस द्रव्य को संशमन कहते हैं। वो संशमन वाह्य , अभ्यंतर के , भेद सैं दो प्रकार का है। तहां लेप , परिषेक , स्नान , उवटना, फस्त खोलना , वास्तिकर्म , गंडूष , (कुल्ला) इत्यादि वाह्य संशमन हैं। और पाचन , लेखन , वृंहण , रसायन , वाजीकरण , विषप्रशमनादि , अभ्यंतर संशमन ; हैं।

३ आहार ४ प्रकार का है १ भक्ष , २ भोज्य , ३ लेह्य , ४ चोष्य , फिर वह आहार तीन प्रकार का है। १ दोषप्रशमन , २ व्याधिप्रशमन , ३ और स्वस्थवृत्तिकर

४ देह,वाणी, और मन,इन्के कर्म को आचार कहते हैं। तहां खेलना , कूदना , डोलना , आदि देह का कर्म है। पढ़ना , पढ़ाना , आदि वाणी का कर्म है। ध्यान , चिंता , विचार ; संकल्प , आदि मानासिक कर्म है।

५ विधि पूर्वक कहने का यह प्रयोजन हैं कि , देश , काल , अवस्था , वल , आदि को देख कर शोधनादि कर्म करने चाहिये ,

द्रव्याणिपुनरौषधयस्ता : द्विविधा : स्थावराजङ्गमाश्च। तासां

स्थावराश्चतुर्विधा . वनस्पतयो वृक्षा वीरुध औपधय इति । तास्वपुष्पा : फलवन्तोवनस्पतय : । पुष्पफलवन्तोवृक्षा : । प्रतानवत्य : स्तंविन्यश्चवीरुध : फलपाकनिष्टाऔपधय :

अर्थ– द्रव्य औपध के आधीन है वह औपध दो प्रकार की है , एक स्थावर , दूसरी जंगम, तिन में स्थावर ४ प्रकार की हैं वनस्पती , वृक्ष , वीरुध , और औपधी , तिन में फूल रहित फल वाली (जैसे पाखर , गूलर आदि) वनस्पती कहाती है । और जिन्हों मे फूल फल दोनों आवे(जैसे आम , जामुन आदि को) वृक्ष कहते है , और जो धरती मे फैल जाती है अथवा छोटी गुल्मवान हों (जैसे करेला , गिलोय , शालपर्णी , पृष्ठपर्णी , जवासे आदि) इन्को वीरुध कहते है , और जो फल के पकने मे नष्ट हो वे (जैसे गेहू , जो , चना आदि) इन्को औपधि कहते है ।

जङ्गमास्त्वपिचतुर्विधा : जरायुजाण्डजस्वेदजोद्भिज्जा : । तत्रपशुमनुष्यव्यालादयोजरायुजा : । खगसर्पसरीसृपप्रभृतयो ऽण्डजा कृमिकीटपिपीलिकाप्रभृतय : स्वेदजा : । इन्द्रगोपमण्डूकप्रभृतय : उद्भिज्जा : ।

अर्थ– जंगम प्राणी भी ४ प्रकार के हैं । जरायुज , अंडज , स्वेदज , और उद्भिज , तिन्में पशु , मनुष्य व्याल (सर्प) आदि जरायुज कहलाते है पक्षी (तोता , मैना , कोयल , मोर आदि) सर्प , सरीसृप , आदि अडज कहलाते हैं , १ कृमि , २ कीट , चेटी . (जूंआं , खटमल) आदि स्वेदज अर्थात् पसीने में होने वाले कहाते है , इन्द्रगोप (वीरबहूटी) मेडका , वृक्षादि उद्भिज कहलाते हैं ; व्याल शब्द करके हिंसक जीव सिंह व्याघ्रादिकों का ग्रहण है कोई आचार्य व्याल शब्द करके सर्प विशेष कहते है यथा " सर्पजातिषुअहिपर्ताकाजरायुजेति " अथवा सर्प शब्द सै अजगर आदि मंद गामी सर्प जानने , और सरीसृप शब्द सैं जल्दी चलने वाले काले ,

१ काठ मल में प्रगट होने वाली उन्को कृमि कहते है जैसे गिनार आदि
२ बिच्छू [illegible] वाले उन्को कीट कहते है [illegible]

पानिया आदि सर्प जानने। आदि शब्दसैं मच्छी मगर आदि जानने। कहीं कहीं चेंटी अंडा सैं और पृथ्वी सैं भी होती हैं

तत्रस्थावरेभ्यस्त्वक्पत्रपुष्पफलमूलकन्दनिर्यासस्वरसादयः प्रयोजनवन्तोजङ्गमेभ्यश्चर्मनखरोमरुधिरादयः

अर्थ– तिन स्थावर जीवों सैं त्वचा,(छाल) पत्ता , फूल , फल , जड़ , कन्द , गोंद , रस आदि शब्द सैं तेल , खार , भस्म , काँटे आदि ए काम के हैं अर्थात् स्थावरों सैं ए अंग ग्रहण करने चाहिये। और जंगम जीवों के चर्म (चाम) नख , रोम,(वाल) रूधिर,और आदि शब्द सैं मांस , वसा , हड्डी,और खुर,ए काम के हैं।

पार्थिवाः सुवर्णरजतमणिमुक्तामनः शिलामृत्कपालादयः। कालकृतास्तुप्रवातानिवाताऽऽतपच्छायाज्योत्स्नातमः शीतोष्णवर्षाहोरात्रपक्षमासर्त्वऽयनादयः सम्वत्सरविशेषाः। तएतेस्वभावतएवदोषाणांसञ्चयप्रकोपप्रशमप्रतीकारहेतवः प्रयोजनवन्तश्च।

अर्थ– पार्थिव कहिये पृथ्वी के विकारों में,सोना , चाँदी , फटिक आदि मणि , मोती , मनसिल , मट्टी,खपरा , और आदि शब्द सैं लोह, कीटी, धूल , विष, हरिताल , नोन , गेरू , और सुरमा,आदि इन सब को काम में लाने चाहिये। तथा काल(समय)संबंधी वस्तुओं में अत्यंत पवन , पवन का निरोध , धूप , छाया,चांदनी ,अंधकार , सरदी , गरमी,वर्षा, दिन , रात्रि , पक्ष महिना , ऋतु , अयन आदि संवत्सर विशेष और आदि शब्द सैं निमिष , कला , काष्ठा , मुहूर्त्तादिक जानने। अब इन्का प्रयोजन यह है कि ए पूर्वोक्त स्थावर , जंगम , पार्थिव , और कालकृत पदार्थ ये सब स्वभाव ही सैं वात , पित्त , कफ आदि दोषों के संचय , प्रकोप , और प्रशमन (शांति) के हेतु होते हैं। तथा चिकित्सोपकारक होते हैं अर्थात् खील , सुगंधवाला , खस , लालचंदन , जल में डार के पवन में

राति भर धरा रक्खे तथा मैनफलों को पवन रहित धूप में सुखावे इत्यादि प्रयोजन जानना

शरीराणांविकारणामेषवर्गश्चतुर्विध · चयेकोपेशमेचैवहेतु रुक्तश्चिकित्सकै ः आगन्तवश्चयेरोगास्तेद्विधानिपतन्तिहि म नस्यन्येशरीरे ऽन्येतेषान्तुद्विविधाक्रिया शरीरपतितानान्तु शरीरवदुपक्रम ः मानसानान्तुशब्दादिरिष्टोवर्ग ःसुखावह ः

अर्थ–[आहार , आचार , पार्थिव और काल भेद में] शरीर विकारों का यह चार प्रकार का वर्ग , सचय कोप और शाति का कारण वैद्यों ने कहा है , [परतु जैज्जट आहार आचार को छोड स्थावर , जगम , पार्थिव , और काल इस चतुर्वर्ग को देह के रोगों के संचय कोप और शाति का कारण मानता है] परन्तु इस्के मत का पंजिका वाला खंडन करता है। अब जो आगतुक रोग अर्थात् किसी चोट आदि कारणा मे प्रगटे है वह रोग दोप्रकार के है पहले जो मन से संबंध रक्खे दूसरे वो जो शरीर से सम्बन्ध रखते है उन दोनो की दो प्रकार की चिकित्सा है जो शरीर में पड़ते है जैसे तीर तलवार आदि का घाव उन्की शरीर के अनुकूल चिकित्सा करनी चाहिये और मन में होने वाले रोग (चिता , उद्वेग , ईर्षा आदि) मन प्रसन्न करने वाले शब्दादि (शब्द , स्पर्श रूप , रस , गध) आदि वाछित पदार्थ सुख देने वाले होते है

एवमेतत्पुरुषोव्याधिरौषधंक्रियाकालइतिचतुष्टयंसमासेन व्याख्यातं । तत्रपुरुषग्रहणात्तत्सम्भवद्रव्यसमूहोभूता दिरुक्तस्तदङ्गप्रत्यङ्गविल्पाश्चत्वङ्मांसासिरास्नायुप्रभृतय ः

अर्थ– इस प्रकार पुरुष , व्याधि , औषध , क्रिया और काल यह चार वस्तु संक्षेप सैं कही है , यद्यपि पुरुषादिक पाच होते है तथापि चारही समझने अथवा क्रिया काल एकही जानना तहां पुरुष के ग्रहण सें उस पुरुष सें उत्पन्न द्रव्य समूह , (शुक्र , आर्त्तव) और पच महा भूत आदि तथापु

रुष के अंग (मस्तकादि) प्रत्यंग , (चिबुक आदि) त्वचा मांस नस आदि का ग्रहण करा जाय है

व्याधिग्रहणाद्वातपित्तकफशोणितसन्निपातवैषम्यानिमित्ताः सर्वएवव्याधयोव्याख्याताः। औषधिग्रहणाद्द्रव्यगुणरसवीर्यविपाकप्रभावाणामादेशः।

अर्थ– व्याधि के कहने सैं वात , पित्त , कफ , रुधिर और सन्निपात इन्होंकी विषमता(घाट बाढ)सैं उत्पन्न होने वाली सर्व व्याधियों का ग्रहण किया जाय है (सर्वएव) इस्के कहने सैं आगंतुक मानसिक स्वाभाविक सर्व रोगों का ग्रहण है।

क्रियाग्रहणाच्छेद्यादीनिस्नेहादीनिचकर्माणिव्याख्यातानि। कालग्रहणात्सर्वक्रियाकालानामादेशः। वीजंचिकित्सितस्यैतत्समासेनप्रकीर्त्तितम्॥

अर्थ– क्रिया के कहने सैं छेद्यादि (अर्थात् छेद्य , भेद्य , लेख्य , आहार्य , विश्राव्य और सीव्य) तथा स्नेह आदि (स्नेहन , स्वेदन , वमन , विरेचन , स्थापन , अनुवासन , नस्य , कवलग्रहण , गंडूष , पाचन और संशमनादि)कोका ग्रहण है। और काल के कहने सैं संपूर्ण वमन विरेचनादि क्रियाओं का समय जानना चाहिये , अर्थात् अमुक समय में विरेचनादि लेवे और अमुक समय में चीरना फाड़ना आदि कर्म करने चाहिये यह चिकित्सा का वीज संक्षेप सैं कहा है।

स्वयम्भुवाप्रोक्तमिदंसनातनंपठेद्धियःकाशिपतिप्रकाशितं॥ सपुण्यकर्माभुविपूजितोनृपैरसुक्षयेशक्रसलोकतांव्रजेत् १

अर्थ– अब इस शास्त्र का महात्म्य कहते है। जो मनुष्य श्रीब्रह्मदेव प्रणीत तथा काशिपति प्रकाशित इस सनातन शास्त्र को पढ़ेगा वह पुण्य करने वाला पृथ्वी में राजा महाराजाओं सैं पूजित होवे और देह के अंत में इन्द्र के स्वर्ग में जावे।

इति श्रीमाथुरदत्तराम निर्मिते आयुर्वेदोद्धारे वृह
न्निघंटुरत्नाकरस्य पूर्वखंडे आयुर्वेदोत्पत्ति नामाध्या
यकथनं नामप्रथमतरङ्गप्रथमवीचिः

॥ अथ शिष्योपनयनीयाध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अर्थ–आयुर्वेदोत्पत्ति नामाध्याय कहने के अनंतर शिष्योपनयनीय अर्थात् जिसमें शिष्य को दीक्षा देने की विधि उस अध्याय की व्याख्या करेंगे यह प्रकरण चरकमें लिखते हैं। यद्यपि ब्राह्मणादि त्रिवर्ण का उपनयन प्रथमहीं हो जाता है तोभी आयुर्वेद पढ़ने के समय फिर उपनयन होता है।

बुद्धिमानात्मनः कार्ये गुरुलाघवे कर्मफल मनुव
न्धं देशकालौ च विदित्वा युक्ति दर्शनाद्भिषक् बुभू
षुः शास्त्रमेवादितः परीक्षेत

अर्थ– बुद्धिमान मनुष्य अपने छोटे बडे कार्य में कर्म फल अनुबंध (प्रयोजन, अधिकारी आदि) देश काल को जान के युक्ति के देखने में वैद्य होने वाला पुरुष प्रथम शास्त्र की परीक्षा करे।

विविधानिह शास्त्राणि भिषजां प्रचरन्तिलोके तत्र यन्म
न्येत महद्यशस्विवीरपुरुषाऽऽसेवित मर्थ माप्तजनस्यपूजि
तं त्रिविध शिष्य बुद्धिहित मपगत पुनरुक्तदोष मार्षं सु
प्रणीत सूत्रभाष्य संग्रहक्रमं स्वाधार मनवपतितशब्द मक
ष्टशब्दं पुष्कलाभिधानं क्रमगतार्थमर्थतत्वनिश्चयप्रधानं स
ङ्गतार्थ मसङ्कुलप्रकरण माशुप्रबोधकलक्षणवच्चोदाहरण
वच्चतदभिप्रपद्येतशास्त्रम् ॥

अर्थ- अनेक वैद्यक के शास्त्र लोक (संसार) में प्रचलित हैं, तिन्होंमें जिस ग्रंथ पढ़ने की इच्छा होय उसको बड़े बहुत से यशस्वी वीर पुरुषों कर आसेवित (अर्थात् पठित ग्रन्थ) बहुत सैं आप्तजन(शिष्टो) करके पूजित, त्रिविध(उत्तम, मध्यम अधम)शिष्य की बुद्धिको हितकारक , पुनरुक्त दोष रहित आर्ष अच्छे प्रकारसें कहा सूत्रभाष्य संग्रहका क्रम जिसमें सुंदर आधार वाला हो जिसमें शब्द न गए होवें, बड़ा जिस्कानाम होय, क्रम पूर्वक प्राप्त अर्थ जिस्का, और अर्थ तत्व का निश्चय प्रधान जिसमें, संगत अर्थ हो अर्थात् असंगत अर्थ न हो, न्यारे न्यारे प्रकरण, शीघ्रबोध कराने वाला, लक्षणवान्, उदाहरणवान् असे शास्त्र का आश्रय लेवे अर्थात् एसे शास्त्र को पढना चाहिये ।

ह्येवंविधममलइवादित्यस्तमोविधूयप्रकाशयतिसर्वंततोऽनन्तरमाचार्य्यंपरीक्षेत । तद्यथा

अर्थ – असा उज्वल शास्त्र सूर्य के समान हृदय का अंधकार दूर करके ज्ञान को प्रकाश करता है। इस प्रकार प्रथम शास्त्र की परीक्षा कर के पीछे आचार्य्य (गुरु) की शिष्य परीक्षा करे, सो इस प्रकार ।

पर्य्यवदातश्रुतंपरिदृष्टकर्माणंदक्षंदक्षिणंशुचिजितहस्तमुपकरणवन्तं । सर्व्वेन्द्रियोपपन्नंप्रकृतिज्ञंप्रतिपत्तिज्ञमनुपस्कृतविद्यमनसूयकमकोपनंक्लेशक्षमंशिष्यवत्सलमध्यापकंज्ञापनासमर्थं इत्येवंगुणोह्याचार्य्यः स्वक्षेत्रमार्त्तवोमेघइवसस्यगुणैः सुशिष्यमाशुवैद्यगुणैः सम्पादयति ॥

अर्थ –आयुर्वेद पढ़ने वाले मनुष्य को असा आचार्य करना चाहियं कि, जिसका शुद्ध श्रुत अर्थात् यथार्थ शास्त्रों को सुना हो । और गुरु के समीप रह कर संपूर्ण औषधादि, तथा नाड़ी, मूत्र, की परीक्षा आदि कर्म गुरु को करते हुये देखे हो चतुर हो । सरल हो, पवित्रता से रहता हो । जितहस्त अर्थात् चोर न हो तथा जिसके समीप औषधवनाने के और चीरने फाड़

ने आदि की सर्व सामिग्री होवे। सर्व इन्द्री वाला हो(अर्थात् लूला लंगडा टोंटा, काना, नकटा, अपाज, अंसा नहो)इसमें मनुष्य की प्रकृतिका जानने वाला और बुद्धि का जानने वाला हो, जिसने बहुत विद्याओंका संग्रह करा हो चुगल, और क्रोधी, न होवे यादि औषध आदि बना ने में क्लेश (दुःख)हो उसको सहने वाला हो, शिष्य को प्यार करने वाला,पढाने वाला,समझान में समर्थ,इत्यादि गुण वाला आचार्य उत्तम शिष्य को वैद्य गुणो से शीघ्र परिपूर्ण कर देवे। जैसे(खेत)के गरमी आदि दूषणों को मेघदूर कर घास आदि से खेत को परिपूर्ण कर देता है।

तमुपसृत्यारिराधयिषुरुपचरेदग्निवच्चदेववच्चराजवच्चपितृवच्चभर्तृवच्चाऽप्रमत्तस्ततः तत्प्रसादात्कृत्स्नंशास्त्रमधिगम्यशास्त्रस्यदृढतायामभिधानस्यसौष्ठवस्यार्थस्यविज्ञानेवचनेऽस्यशक्तौचभूयः प्रयतेतसम्यँक्। तत्रोपायाव्याख्यास्यन्ते। अध्ययनमध्यापनतद्विद्यासम्भाषेत्युपायाः॥

अर्थ – पूर्वोक्त सर्व गुण संपन्न गुरु के समीप जायकर,प्रसन्न कर ने को गुरु की अग्नि, देवता, राजा, पिता, और भर्त्ता (स्वामी) इनके सदृश सेवा करे।तदनंतर गुरू की प्रसन्नता से संपूर्ण शास्त्रों को प्राप्त हो शास्त्रोंकी दृढता को औरनाम के विख्यात होने के लिये,तथा अर्थ जानने को बोलने की शक्ति बढने के वास्ते,फिर शास्त्र में अच्छी रीति से यत्न करे। तहां शास्त्र में प्रवृत्ति होनेके उपाय कहते है। पढना,पढाना,आर उस शास्त्र का संभाषण,करना ए तीन उपाय हैं।तहा प्रथम पढने की विधि कहते है।

तत्राध्ययनविधिःकल्पः

कृतक्षणःप्रातरुत्थायोपव्युषंवाकृत्वाऽऽवश्यकमुपस्पृश्योदकंदेवगोब्राह्मणगुरुवृद्धसिद्धाऽऽचार्य्येभ्योनमस्कृत्य। समेशुचौदेशे सुखोपविष्टोमनःपुरःसरीभिर्वाग्भिःसूत्रमनुक्रामन्पुनःपुनरावर्त्तयेद्बुध्यासम्यगनुप्रविश्यार्थतत्वंसदोषपरिहारप्रमाणार्थ

मेवाऽपरान्हेरात्रौचशश्वदपरिहापयनभ्यस्येदित्यध्ययनविधिः ॥

अर्थ – निश्चित करा है समय जिसने, ऐसा विद्याभिलाषी प्रातःकाल, अथवा चार पांच घड़ी रात शेष रहने पर उठे, और मल मूत्र परित्याग आदि आवश्यक कर्म सें निवृत्त हो, दांतन कुरला आदि कर स्नानादिक करे, पीछे देवता, गौ, ब्राह्मण, गुरु, वृद्ध, सिद्ध, और आचार्य, इनको प्रणाम करे, पीछे समान और पवित्र स्थान में सुख पूर्वक बैठे, मन को एकाग्र कर वाणी सें सूत्र का उच्चारण वारंवार करे, और शास्त्र में बुद्धि को प्रवेश कर उसके अर्थ और तत्वको जानना चाहिये। तथा जो दोष होवें उसके परिहार और प्रमाण तथा प्रमाण के अर्थ को भी जाने। सायंकाल और रात्रि को छोड़ कर वाकी समयों में पढना चाहिये यह पढने की विधि कही।

अथाध्यापनविधिः

अध्यापनेकृतवुद्धिराचार्यःशिष्यमादितः परीक्षेततद्यथाब्राह्मण क्षत्रियवैश्यानाममन्यतममन्वयवयःशीलशौर्य्यशौचाचारविनयशक्तिवलमेधाधृतिस्मृतिमतिप्रतिपत्तियुक्तं[अक्षुद्रकर्माणंमव्यङ्गमव्यापन्नेन्द्रियंनिभृतमनुवद्धमव्यसनिनमध्ययनाभिकाममत्यर्थविज्ञानकर्मदर्शनेचानन्यकार्य्यमलुब्धमनालसं] तनुजिव्हौष्टदन्ताग्रमृजुवक्त्राऽक्षिनासंप्रसन्नचित्तवाक्चेष्टंक्लेशसहञ्च भिषक्शिष्यमुपनयेत्। विपरीतगुणंनोपनयेत् ॥

अर्थ– पढाने वाला आचार्य प्रथम शिष्य की इस प्रकार परीक्षा करे ब्राह्मण, क्षत्री, और वैश्य, इनमें सै किसी जात का हो उत्तम कुल (इस जगे कुल शब्द सै आयुर्वेदाध्ययन कर्त्ता कुल सै प्रयोजन है) नई अवस्था, अथवा तरुण अवस्था शील स्वभाव, सूरवीर, वाहर भीतर सै शुद्ध, परंपरागत कुल, देश, और लौकिक आचारवाला, नीतवाला, उत्साहवाला, वली, वुद्धिवान्, धृति (जिव्हा और लिंग इन्द्री का जीतने वाला) पढ़ी हुई

अथवा देखी वस्तु को स्मरण रखने वाला,अप्राप्त वस्तु का ज्ञानवान, बडे भारी काम को करने वाला , सर्व अंग और सर्व इन्द्री जिसके होंवे, वशी भूत,किसी कार्य मे वृथा न हो.जुआ,चोरी,वेश्या गमन, आदि व्यसन वाला न होवे। पढने की और ज्ञान कर्म के जानने की इच्छा वाला,पढने के सिवाय जिसको दूसरा कार्य न हो लोभी न हो,आलसी न होय.और जीभ,होठ,दात,ए पतले होवे.मुख , नेत्र , नाक , ए जिसके सुडौल और देखने योग्य हो,जिस्की प्रसन्न चित्त,वाणी,और चेष्टा,होवे।दुःख को सहने वाला,ऐसे शिष्य को वैद्य उपनयन करे। और जो गुण कहे इनसे विपरीत गुण वाले शिष्य को उपनयन (दीक्षा)न देवें।

उपनीयस्तुब्राह्मण. उदगयनेशुक्लपक्षेप्रशस्तेऽहनिपुष्पहस्तश्रवणाऽश्वयुजामन्यतमेनक्षत्रेणयोगमुपगतेभगवतिशशिनिकल्याणेतिथिकरणसुमुहूर्तेस्नात·कृतोपवासोमुण्ड कषायवस्त्रसंवीतःसमिधोऽग्निमाज्यमुपलेपनमुदककुम्भांश्च स्रगन्धहस्तमाल्यदामहिरण्यान्हेमरजतमणिमुक्ताविद्रुमक्षौमपरिधिकुशलाजसर्षपाऽक्षताश्चशुक्लाश्चसुमनसोग्रथिताऽग्रथितामेध्यान्भक्ष्यान्गन्धांश्च पिष्टाऽपिष्टानादायोपतिष्टस्वेति ॥

अर्थ–उपनीय(दीक्षा के योग्य)तो ब्राह्मण है। उत्तरायण, शुक्लपक्ष, उत्तमादिवस , पुष्प , हस्त . श्रवण,और अश्विनी.इनमें से कोई नक्षत्र पर चन्द्र हो वे कल्याण कर्त्ता तिथि,करण,और मुहूर्त्त होवे,तब गुरु शिष्य से कहे कि, अमुक समय पर स्नान कर उपवास करना क्षौर कराकर मुडित हो गेरुए रंग के वस्त्र पहिन कर समिधा , अग्नि , घृत , उपलेपन (लीपना)जल भरे कलश , सुगंधितवस्तु माला , डोरी , सोना , चादी , मणि , मोती मूंगा , रेशमीवस्त्र , यज्ञ के वृक्ष , कुशा , खील , सरसो , अक्षत , सपेद चावल सुदर फूलऔर फूलों की माला, पवित्र और भोजनके पदार्थ , चदन इनमें पिसे हुए तथा विना पिसे (चून , धान , आदि)सर्व सामिग्री लेकर तैयार रहना इस प्रकार सुन शिष्य उसी प्रकार करे।

तमुपस्थितमाज्ञाय शुचौसमेदेशे प्राक्प्रवणे उदक् प्रवणेवा चतुष्किष्कुमात्रं चतुरश्रंस्थण्डिलं गोमयोदकेनोपलिप्तं दर्भैः संस्तीर्य । यथोक्तेचन्दनोदकुम्भक्षौमहेमहिरण्यरजतमणिमुक्ताविद्रुमालङ्कृतम् मेध्यभक्ष्यगन्धशुक्लपुष्पलाजसर्षपाऽक्षतोपशोभितंकृत्वा, पुष्पैर्लाजभक्तैरत्नैश्चदेवताः पूजयित्वाविप्रान्भिषजश्च, तत्रोल्लिख्याऽभ्युक्ष्यच दक्षिणतोब्रह्माणंस्थापयित्वाऽग्निमुपसमाधाय खदिरपलाशदेवदारुविल्वानांसमिद्भिश्चतुर्णांवाक्षीरवृक्षाणांन्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थमधूकानां दधिमधुघृताक्ताभिर्दार्वीहोमिकेनविधिना स्रुवेणा ज्याहुतिर्जुहूयात्

अर्थ–गुरु शिष्य को उपस्थित जान पवित्र और समान देश में तथा जिस स्थान में वेदी बनावे वह पूर्व सैं अथवा उत्तर सैं मिली हुई चौकोन चार विलाएद अथवा चार हाथ की वेदी रचे । उस्कों गोवर सैं लीपे, और उस्पें कुशा विछावे, तथा पूर्वोक्त चन्दन जल के कलश रेशमी कपडे, चांदी, सोना, सोने के पात्र आदि, मणि, मोती, और मूंगा आदि सें यज्ञ स्थान को सुशोभित करै । तथा पवित्र भोजन करने के पदार्थ, सुगंधित पदार्थ (अतर आदि) सफेद फूल, खील सरसों, और चावल आदि सैं शोभित करे। फूल, खील, भात, ओर रत्नों सैं देवता ब्राह्मण तथा वैद्यों का पूजन करके पश्चात् वेदी को कुशाओं सैं झाड के तथा जल छिडक कर वेदी के दक्षिण में ब्रह्मा को स्थापन करै। पीछे वेदी में अग्निको स्थापन कर खैर। ढाक, देवदारु, और वेल इन्की सामिधा अथवा वड, गूलर, पीपर और महुआ इन क्षीर वाले वृक्षों की समिधाओं को दही, सहत, घृत मे डवोय के, तथा और जो हवन करने योग्य लकडी उन्को होम की विधि सैंहोमे तथा श्रुवा सैं घृत की आहुति देवे ॥

सप्रणवाभिर्महाव्याहृतिभिस्ततः प्रतिदैवतमृषींश्चस्वाहा

कारश्चकुर्यात् शिष्यमपिकारयेत्

अर्थ– ओंकार सहित महाव्याहृतिओं से हवन करे (यथा ओंभूःस्वाहा, ओंभुवः स्वाहा, ओंस्वः स्वाहा, ओंभूर्भुवःस्वः स्वाहा) इसी क्रम से देवताओं को भी आहुति देवे। जैसे (ओंब्रह्मणे स्वाहा, ओंप्रजापतये स्वाहा, ओंत्रिपणवे स्वाहा) इसी प्रकार ऋषियों के नाम से हवन करे, चकार से वैद्य विद्या के प्रवर्तक प्राचीन आचार्यों के नाम से हवन करे। इस प्रकार वैद्य आप होम करे और शिष्य से भी करावे।

ब्राह्मणस्त्रयाणांवर्णानामुपनयनंकर्त्तुमर्हति। राजन्योद्वयस्यवैश्योवैश्यस्यैवेति। शूद्रमपिकुलगुणसम्पन्नंमंत्रवर्ज्यमनुपनीतमध्यापयेदित्येके

अर्थ– ब्राह्मण त्रिवर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रि, वैश्य) का उपनयन कर सक्ता है, क्षत्री (क्षत्री, वैश्य) दो वर्ण का, और वैश्य केवल अपनीही जाति को दीक्षा दे सक्ता है, कोई आचार्य कहते हैं कि श्रेष्ठ (कायस्थादि) कुल में प्रगट और श्रेष्ठ गुण युक्त मंत्र रहित तथा उपनयन रहित शूद्र को भी पढाना उचित है।

ततोऽग्निंत्रिः परिणीयाऽग्निसाक्षिकंशिष्यंब्रूयात्। कामक्रोधलोभमोहमानाहङ्कारेर्ष्यापारुष्यपैशुन्याऽनृताऽलस्याऽयशस्यानिहित्वानीचनखरोम्णाशुचिनाकषायवाससासत्यव्रतब्रह्मचर्याऽभिवादनतत्परेणाऽवश्यंभवितव्यं। मदनुमतस्थानगमनशयनाऽऽसनभोजनाऽध्ययनपरेणभूत्वामत्प्रियहितेषुवर्त्तितव्यमतोऽन्यथातेवर्त्तमानस्यऽधर्मोभवत्यफलाचविद्यानचप्राकाश्यंप्राप्नोति

अर्थ– पीछे अग्नि की तीन परिक्रमा कराय अग्नि के साक्षी शिष्य के प्रति गुरु इस प्रकार कहे। कि हे वत्स! काम, क्रोध, लोभ, मोह, मान,

अहङ्कार , ईर्ष्या , कठोरता , चुगली , असत्य , आलस्य, और अपयश क र्त्ता कर्मों को छोड देना, तथा नख, बालों को सदैव दूर कराते रहना (अर्थात् क्षौर सदैव कराते रहना) पवित्रता सैं रहना गेरुआ रंगे वस्त्र धारण करना , सत्य बोलना , वेद के जो व्रत लिखे हैं उन्को करना , ब्रह्मचर्य में तत्पर रहना , और आचार्य सैं आदि ले बडों को प्रणाम करना , इत्यादि बातों में सदैव तुम को तत्पर रहना चाहिये , मेरी आज्ञानुसार जाना , सोना , बैठना , भोजन करना और पढना चाहिये । मेरे प्रिय और हितकारी कर्मों में वर्त्तना चाहिये । यदि तू पूर्वोक्त मेरे कहने के विपरीत वर्त्तेगा तो तुझको अधर्म होगा, और तेरी पढी हुई सब विद्या निष्फल हो वेगी , कदाचित् प्रकाशित न होगी ।

अहंवात्वयिसम्यग्वर्त्तमानेयद्यन्यथादर्शीस्या मेनोभाग्भवेयमफलाविद्यश्च

अर्थ– फिर गुरु अपने नियमों को इस प्रकार कहे कि, यदि तू मेरे साथ निष्कपटता सैं वर्त्तेगा और फिर मैं तेरे साथ (पढाने में) कपट करूंगा तो मैं पाप भागी और मेरी पढी हुई विद्या निष्फल होवेगी ।

द्विजगुरुदरिद्रमित्रप्रव्रजितोपनतसाध्व ऽनाथा ऽभ्युपगतानाञ्चा त्मबान्धवानामिवस्वभेषजैः प्रतिकर्त्तव्यमेवंसाधुभवति

अर्थ– रोगियों के साथ वर्त्ताव करने के नियम गुरू शिष्य सैं कहे , कि ब्राह्मण , गुरु , (माता , पिता , बडा भाई आदि) दरिद्री , मित्र , सन्यस्त , दीनजन , साधु (सत्पुरुष) अनाथ , और प्रदेशी इन्हों की अपने बांधवों के (पिता पुत्रादि के) सदृश चिकित्सा करनी चाहिये इस प्रकार करने सैं तुम को अच्छा है *

व्याधशाकुनिकपतितपापकारिणाञ्चनप्रतिकर्त्तव्य

* इस प्रमाण के मानने वाले वैद्य संसार में विरले हैं श्रेष्ठ वैद्य वोही है जो दुष्टों की चिकित्सा नहीं करते ।

मेवंविद्याप्रकाशते मित्रयशोधर्मार्थकामांश्चप्राप्नोति

अर्थ– व्याध (अहेरिया , कंजर , चाण्डाल आदि हिंसक प्राणी) शाकुनिक (चिरीमार आदि पक्षियों का पकडने वाला) पतित (जाति भृष्ट वर्ण शंकर आदि) और पाप कर्त्ता (वेश्यागामी, लौंडेवाज आदि) इन्हीं की चिकित्सा (इलाज) न करना। इस प्रकार करने से विद्या का प्रकाश होता है और मित्र , यश , धर्म , धन , और कामनाओंकी प्राप्ति होती है।

॥ अनध्यायानाह ॥

कृष्णेऽष्टमीतन्निधनेऽहनीद्वेकृष्णेतरेऽप्येवमहर्द्विसंध्यं । अकालविद्युत्स्तनयित्नुघोषेस्वतन्त्रराष्ट्रक्षितिपव्यथासु ॥ १ ॥
स्मशानयानायतनाहवेषुमहोत्सवोत्पातिकदर्शनेषु । नाध्येयमन्येषुचयेषुविप्रानाधीयतेनाशुचिनाचनित्यम् ॥ २ ॥

अर्थ– कृष्ण पक्ष की अष्टमी , चतुर्दशी , और अमावस को , तथा शुक्ल पक्ष में भी अष्टमी , चौदश , और पूर्णमासी , को तथा सायकाल , और प्रातःकाल की दोनों सन्ध्याओं में , तथा अकाल (कुसमय) में , विजुरी चमकना , और मेघ का गर्जना , अथवा अकाल विद्युत् के कहने से (पौष आदि चार महीने की वर्षा जाननी)जिस्में , तथा देशोपद्रव (भाजड , मरी आदि) में , तथा स्वदेश राजा की पीडा में , स्मशान में, घोडा , हाथी , आदि की सवारी में बैठ कर , वधस्थान (कसाईखाने) में संग्राम में , महोत्सव (विवाह , यज्ञोपवीतादि) त्रिविधि उत्पात (दिव्य भौम , अन्तरिक्ष) इन्हीं में , और जिस्में ब्राह्मण नहीं पढे जैसे प्रतिपदा आदि तिथी इन्में , हे पुत्र ? तुम को न पढना चाहिये । तथा अपवित्रता सें भी कभी न पढना ।

इति श्री आयुर्वेदोद्धारे वृहन्निघण्टरत्नाकरे पूर्व० शिष्योपनयनीयाध्याय कथनं नामप्रथमतरङ्गस्य द्वितीयवीचिः २ ।

शिष्य– हे गुरो ? अब आप इस आयुर्वेद पढने का क्रम कहो ।
गुरु– हे वत्स ? पढने का क्रम सुश्रुत में इस प्रकार लिखा है सो सुनो ।

अथातोऽध्ययनसंप्रदानीयमध्यायंव्याख्यास्यामः

अर्थ– शिष्योपनयनीयाध्याय कहने के पश्चात् अब हम अध्ययन संप्रदानीय अर्थात् जिस्में पढने की परिपाटी है उस अध्याय को कहेंगे ।

अथ वत्स ! तदेतदध्येयं यथातथोपधारयमयाप्रोच्यमानं । अथ शुचयेकृतोत्तरासङ्गायाव्याकुलायोपास्थितायाऽध्ययन काले शिष्याय यथाशक्तिगुरुरुपदिशेत् ; पदंपादं श्लोकम् वा तेच पद पाद श्लोका भूयः क्रमेणाऽनुसन्धेया एवमेकैकशोघटये दात्मनाचानुपठेत् ।

अर्थ– हे वत्स ! यह आयुर्वेद शास्त्र जिस प्रकार पढना चाहिये, वह क्रम में कहताहूं, उस्को सावधान होकर धारण अर्थात कंठाग्र कर । आवश्यक कर्म सें निवृत्ति होचुकाहो, तथा स्नानादि द्वारा पवित्र हो, और उत्तरीय वस्त्र को वामस्कंध पर धारण करने वाला, अव्याकुल, पढने के समय आचार्य को प्रणाम करचुकाहो, ऐसें शिष्य के अर्थ, गुरू यथा शक्ति आयुर्वेद शास्त्र का उपदेश करे । अर्थात् पढावे, एक २ पद, एक एक पाद, एक एक श्लोक, अर्थात् अल्प बुद्धि वाले शिष्य को चौथाई श्लोक, मध्य बुद्धि वाले को आधा २ श्लोक, और तीव्र बुद्धि वाले शिष्य को गुरू एक एक श्लोक पढावे । (जवतक शिष्य के समझ में न वैठे तव तक गुरू को चाहिये कि उस्को अच्छी रीति सैं समझावे, क्योंकि "वक्तुरेवाहितज्जाड्यंश्रोतायत्रनबुध्यते" अर्थात् (वो कहने वालेही की मूर्खता है कि जिस्को सुनने वाला न समझे) पीछे गुरू सैं भले प्रकार पढ के शिष्य को चाहिये कि आप उस गुरू की पढाई हुई संथा को घोख कर कंठाग्र कर लेवे, पश्चात् गुरू आगे पढावे । अर्थात् जिस्को चौथाई श्लोक वताया उस्को चौथाई और भी वतावे, आधे वाले को एक, और एक

श्लोक वाले को दूसरा श्लोक बतावे । पीछे जो थोड़ा पढा है उसको उससे विशेष पढे हुए शिष्य के आधीन कर देवे । और शिष्य के शीघ्र कंठाग्र कराने के अर्थ शिष्य के संग गुरू भी बराबर बोले ।

॥ पठन समय के नियम ॥

अद्रुत मविलम्बित मविशङ्कित मननुनासिकं व्यक्ताक्षर मपीडितवर्ण मक्षिभ्रुवौष्ट हस्तैरनभिनीतं सुसंस्कृतं नात्युच्चैनातिनीचैश्चस्वरैः पठेन्नचान्तरेणकश्चित्व्रजेत्तयोरधीयानयोः ।

अर्थ– बहुत जल्दी जल्दी न पढे, तथा बहुत धीरे धीरे भी न पढे, संदेह को त्याग कर पढे, और अननुनाशिक अर्थात् गिनगिनाय कर न बोले ऐसे बोले कि सब अक्षर स्पष्ट दूसरे को सुनाई देवे । वर्णों को चवाय के न बोले, भौह, होठ, और हाथों को, न चलावे । अर्थात् बहुत से बालकों के नेत्र, भौह, हाथ, और सर्व शरीर पढते समय हिला करतेहैं । इस अपगुण को छोड देना चाहिये । पृथक् २ वर्ण सुनाई देवे, न बहुत जोर सें बोले, न बहुत मंदस्वर से पढे, और पढते समय गुरू शिष्य के बीच में हो कर न निकलना चाहिये ।

शुचिर्गुरुपरोदक्षस्तन्द्रानिद्राविवर्जितः । पठेदेतेनविधिना शिष्य-शास्त्रान्तमाप्नुयात् । वाक्सौष्टवेऽर्थविज्ञानेप्रागल्भ्ये कर्मनैपुणे । तदभ्यासेचासिद्धौचयतेताऽध्ययनान्तगः ॥

अर्थ– पवित्र, गुरू की सेवा में तत्पर, चतुर, तन्द्रा और निद्रा करके रहित, इस प्रकार को शास्त्र पढे तो वोह शिष्य भले प्रकार शास्त्रों के पार को प्राप्त होवे । वाणी की सौष्ठव अर्थात् बोलने की सुन्दर रीति सीखने को, शास्त्र के अर्थ जानने को, और शास्त्र में प्रगल्भ (ढीट) होने को, तथा कर्म (क्रिया) में निपुण होने को, और इन पूर्वोक्तों के अभ्यास की सिद्धी के लिये, पढा हुआ विद्यार्थी यत्न करे । अर्थात् केवल पढने मात्र सेंही वैद्य नहीं होता, शास्त्र को पढके बराबर के स्वाध्याइयोंसें

शास्त्रार्थ करा करे। तो बोलने की शक्ति बढे। और पढे हुए शास्त्र को नित्य विचार करके बिना पढे ग्रंथ को अपनी बुद्धि सैं लगावे। जो स्थल आप सैं न लगे उसका गुरू सैं अर्थ पूछ लीया करे। और अपने पढे में जो भ्रम होवे उसको भी गुरू सैं पूछ लीया करे। इस प्रकार करने सैं शिष्य की अर्थ में प्रवीणता होतीहै। तथा गुरू जहां कहीं सभा में जावे तहां शिष्य को संग लेजावे, उस सभा में जो पण्डित हैं उन्के साथ शिष्य का शास्त्रार्थ करावे, जहां कहीं शिष्य घबरावे उसी जगह सावधान करता रहे, पीछे जब अपने घर में आवे तब शिष्य सैं कहे कि, देख तैनें अमुक स्थान में अशुद्ध बोला, सो असा नहीं असा है। और अमुक कोटीका अच्छा प्रतिपादन करा, परन्तु उसमें यह बात तुम को कहनी और भी चाहिये, और देखो तुम्हारे प्रतिपक्षी ने अमुक बात कैसी उत्तमता के साथ कही, और अमुक स्थान में वो चूकाथा परन्तु तुमने नहीं जाना। इस प्रकार शिष्य को शिक्षा देने सैं शिष्य बोलने चालने में प्रगल्भ (ढीट) होताहै। बोलने का प्रकार चरक ग्रन्थ के विमानस्थान की अष्टम अध्याय में लिखा है सो देख लेना। इसी प्रकार जो रोगी आवे उस्की नाडी प्रथम गुरू आप देखे, पीछे शिष्य को दिखावे, और उस शिष्य सैं पूछे कि इस्की कौन दोष की नाडी है, जब वो कहे अमुक दोष की है, तब उस्से पूछे कि किस प्रकार यदि वो उस्की चाल का वर्णन ठीक ठीक करे तो कहें ठीक है। और यदि वो कुछ का कुछ कहे तो उसको समझाय देवे, इसी प्रकार मूत्र परीक्षा, नेत्र परीक्षा, मल परीक्षा, और निदान आदि को गुरू आप करे। और शिष्य को बताया करे, तथा तैल बनाना, रसों का बनाना, इन्में भी औषध, जल, तेल, आदि का अनुमान गुरू शिष्य को बतावे। तथा भट्टी का बनाना, बक आदि यंत्रों का बनाना, कच्ची पकी धातु की परीक्षा, मणियों की परीक्षा, इत्यादि सर्व वस्तू गुरू शिष्य को बतावे। इस प्रकार सिखाने सैं शिष्य सर्व कर्म में प्रवीण होता है।

एतदवश्यमध्येयमधीत्यचकर्माप्यवश्यमुपास्तिव्य

मुभयज्ञोहिभिषग्राजार्होभवति

अर्थ- यह आयुर्वेद शास्त्र अवश्य पठितव्य है। और पढ कर इस्के कर्मों को अवश्य सीखे क्योंकि शास्त्र और शास्त्र की क्रिया दोनो का जाननेवाला वैद्य राजाओं के योग्य होता है। यथा

यस्तुकेवलशास्त्रज्ञःकर्मस्वपरिनिष्ठितः। समुह्यत्या तुरम्प्राप्यप्राप्यभीरुरिवाऽऽहवं ॥

अर्थ- जो वैद्य केवल शास्त्र का ज्ञाता हो, अर्थात् केवल शास्त्र को पढा हो और कर्म (कर्त्तव्यता) में मूढ हो अर्थात् क्रिया न जानता हो। वह रोगी को देख के घबडाता है, जैसे संग्राम को देख कायर पुरुष डरे हैं।

यस्तुकर्म्मसुनिष्णातोधार्ष्ट्याच्छास्त्रवाहिष्कृतः ससत्सुपूजांनाप्नोतिवधंचार्हतिराजतः ॥

अर्थ- जो वैद्य कर्म में निष्णात अर्थात् क्रिया करने में कुशल हो, परन्तु शास्त्र न पढा हो, और ढीटता पूर्वक वैद्य बने, वह श्रेष्ठ पुरुषों में सत्कार नहीं पाता है। और राजा से वध को प्राप्त होता है। अर्थात् राजा को चाहिये कि ऐसे ढीट वैद्यों को प्राणान्त दण्ड देवें *

उभावेतावनिपुणावसमर्थौस्वकर्मणि। अर्द्धवेदधरावेतावेकपक्षाविवद्विजौ ॥ औषध्योऽमृतकल्पास्तुशस्त्राशनिविषोपमाः। भवन्त्यज्ञैरुपहृतास्तस्मादेतौविवर्जयेत् ॥

अर्थ- इन दोनों अर्थात् न शास्त्र में कुशल, और न क्रिया में कुशल, ऐसा वैद्य वैद्यविद्या के करने में असमर्थ जानना। ए दोनों (शास्त्र पढा, और क्रियाओं का जानने वाला) अर्द्ध आयुर्वेद के धारण करने वाला इन्की गति नहीं, जैसे एक परम वाला पक्षी कुछ काम का नहीं, उसी प्रकार ये दोनों वैद्य जानने, अमृत तुल्य भी औषध मूढ वैद्य की संग्रह क

* न मालूम हमारे इस देश में ऐसे अधर्मी वैद्यों की अपेक्षा अंग्रेज बहादुरों ने क्योंकर रक्खी है।

री हुई, शस्त्र की अनी, और विष के तुल्य होती है, इसी सैं ए दोनों (शास्त्र का ज्ञाता और क्रिया कुशल वैद्य) वर्जित कहे हैं, अर्थात् जो औषधों के गुण को तो शास्त्र द्वारा जानता है, और उन्के रूप को न जाने, तथा औषध के रूप को तो जानता हो। और उन्के संयोग विधि तथा गुण को न जाने वे दोनों औषध के लेने देने में वर्जित हैं।

छेद्यादिष्वनभिज्ञोयः स्नेहादिषुचकर्मसु। सनिहन्तिजनंलोभात्कुवैद्योनृपदोषतः॥ यस्तूभयज्ञोमतिमान्ससमर्थोऽर्थसाधने। आहवेकर्मनिर्वोढुंद्विचक्रः स्यन्दनोयथा॥

अर्थ–जो वैद्य छेद्यादि (छेद्य, भेद्य, विस्राव्य, आदि) और स्नेहादि (स्नेहन, रोपण, वमन, विरेचन, आदि) कर्म में मूर्ख है अर्थात् छेद्य कर्मों में स्नेहादि कर्म करे। और स्नेहादि कर्म में छेद्य आदि कर्म करते हैं। वे खोटे वैद्य राजा के दोष सैं लोभ वश हो मनुष्यों को मारते हैं। और जो शास्त्र और क्रिया दोनों को जानते हैं। वो बुद्धिवान् वैद्य प्रयोजन (आरोग्य) करने में समर्थ हैं। जैसैं संग्राम में दो पहिये का रथ कर्म साधक होता है।

इति श्रीआयुर्वेदोद्धारे वृहन्निघंटुरत्नाकरस्य पूर्वखंडे अध्ययनसम्प्रदानीयाध्याय कथनम् नाम तृतीयतरङ्गः॥ ३॥

अथातः प्रभाषणीयमध्यायं व्याख्यास्यामः

अर्थ– गुरू कहते हैं कि हे वत्स! पढे हुए शास्त्र का फिर कहना उसको प्रभाषण कहते हैं, वह प्रभाषण है जिस अध्याय में उसकी हम व्याख्या करेंगे।

॥ प्रभाषण का प्रयोजन दिखाते हैं॥

अधिगतमप्यध्ययनप्रभाषितमर्थतः स्वरस्यचन्दनभा

वैकृत्ये धातु से सिद्ध होता है। तो इसको व्याकरण में जाने। पदार्थों का वर्णन और तर्क विषय न्याय शास्त्र में जाने। ज्योतिष का प्रकरण ज्योतिष से। इत्यादि जानने चाहिये) क्योंकि सर्व शास्त्रों का विषय एकही शास्त्र में नहीं आ सके हैं, जैसे लिखा है।

एकंशास्त्रमधीयानोनविद्याच्छास्त्रनिश्चयम् ।
तस्माद्बहुश्रुतःशास्त्रंविजानीयाच्चिकित्सकः ॥

अर्थ– एक शास्त्र का पढने वाला वैद्य, उस शास्त्र के यथार्थ सार पदार्थ को नहीं जान सके। इसी कारण बहुश्रुत अर्थात जिसने बहुत शास्त्र सुने हैं वह शास्त्रों का यथार्थ प्रयोजन को जानेगा। परन्तु ग्रन्थ के पढे विना केवल बहुश्रुत वैद्य नहीं हो सक्ता। इस लिये वैद्य को उचित है कि सर्व शास्त्रों के विषयों को सुनता रहे। और पढने भी चाहिये।

विना पढे वैद्य की निंदा ॥

शास्त्रंगुरुमुखोद्गीर्णमादायोपास्यचासकृत् ।
यःकर्मकुरुतेवैद्यःसवैद्योऽन्येतुतस्कराः ॥

अर्थ– जो वैद्य गुरू मुख से शास्त्र को पढ, और पाठ तथा अर्थ को वारम्वार विचार के चिकित्सा करता है, वोही वैद्य है। और तो चोर है। अर्थात् विना गुरू मुख पढे और विचारे कदाचित् वैद्य न वने, क्योंकि वह विद्या फली भूत नहीं होती जैसें लिखा है।

विद्यागृहीतुमिच्छन्तिचौर्य्यच्छद्मवलादिना ।
नतेषांसिध्यतेकिंचिन्माणिमन्त्रौषधादिकम् ॥

अर्थ– जो विद्या चोरी से, कपट से, अथवा जवरदस्ती से, लेना चाहे उन्की मणि परीक्षा, मंत्र विद्या, और औषध, आदि शब्द से ज्योतिष, धर्मशास्त्र, आदि की सिद्धि नहीं होवे, इसी सें गुरू मुख से पढा शास्त्र फली भूत होता है।

इति श्रीआयुर्वेदोद्धारे बृहन्निघंटुरत्नाकरे प्रभाषणीयाध्याय कथनं नामचतुर्थतरङ्गः ॥ ४ ॥

ओ३म् ॥

॥ श्रीशम्वन्दे ॥



श्रीनिकुञ्ज विहारिणे नमः

अथ शारीर स्थानमारभ्यते ॥



तहांप्रथमशारीरज्ञानकाप्रयोजनकहते हैं

दोषधातुमलादीना माधारस्तुवपुर्यतः ।
तत्स्वरूपमतोज्ञातुं शारीरं प्राङ्निरूप्यते ॥

अर्थ— वातादि दोष, रस रक्तादि धातु, तथा धातुओं के मल, और आदि शब्द सें मल, मूत्र, नाडी, हड्डी, आदि जानने । इन सब का आधार शरीर है, उस शरीर के स्वरूप जानने के अर्थ प्रथम शारीर का निरूपण करते हैं ।

शिष्य— शारीर किसको कहते हैं ।

गुरु— शारीर उस विद्या को कहते हैं, जिसमें देह के प्रत्येक अङ्ग और उपांग आदि का वर्णन है ।

जैसें ग्रन्थान्तर में लिखा है ।

अङ्गप्रत्यङ्गजीवा ऽऽशयधमनिशिरास्नायुभिःकण्डराभिः
पेश्यस्थित्वक्कलाभिर्निजमलसहितैर्द्धातुभिः सन्धिभिश्च
वातैःपित्तैर्वलासैःप्रकृतिभिरखिलैर्मर्मरन्ध्रोपधातुः
श्रोतःश्रेणीगुणैरप्यमलतराधियःसाभि शारीरमाहुः

अर्थ— अङ्ग, प्रत्यङ्ग, जीव, आशय, धमनी, नस, नाडी, कंडरा पेसी, हड्डी, त्वचा, कला, और इन्हों के मल, रस, रुधिर, मांस, मेदा, मज्जा, शुक्र, सन्धि, वात, पित्त, कफ, प्रकृति, मर्म, छिद्र, उपधातु, श्रोतों की (इन्द्रियों की) श्रेणी, इन सब के वर्णन को उत्त-म बुद्धि वाले पुरुष शारीर कहते हैं ।

शिष्य— शारीर विद्या के जानने सें और क्या प्रयोजन हैं ।

गुरु–हे पुत्र! निज और आगतुज रोगों का आधार यही देह है। इसी से इस देह के रक्षार्थ अनेक महर्षियों ने हेतु लिङ्ग और औषधवान् त्रिस्कंध वाले इस आयुर्वेद के अनेक ग्रन्थ रचे हैं। उन ग्रन्थों के द्वारा चिकित्सा करके देह की अवश्य रक्षा कर्त्तव्य है। क्योंकि धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष का दाता यही देह है।

परन्तु वैद्य को लिखा है कि प्रथम निदान पूर्व रूपादि द्वारा रोग का निश्चय करके फिर चिकित्सा करनी चाहिये। परन्तु इसमें भी विना शारीरक ज्ञान वैद्य को चिकित्सा करने का अधिकार नहीं है।

अर्थात् जब तक इस बात को वैद्य भले प्रकार न जानलेवे कि, यह शरीर कौन कौन वस्तुओं से बना है, और कैसे बना है, तथा कौन कौनसी हड्डी, नाड़ी, नस, आशय, आदि देह के किस किस विभागों में है। और वो कितने है। तथा वे कौन कारणों से विगड़ते है। और उनके सुधारने की क्या रीति है। तब तक चिकित्सा करने का अधिकारी नहीं है। जैसे बृहद्योग तरंगिणी में लिखा है।

य:शारीरमविज्ञाय शस्त्रक्षाराग्निकर्मसु।
प्रवर्त्ततेसौस्खलत्वर्त्मनीवगतेक्षणः॥

अर्थ – जो वैद्य शारीर विद्या ज्ञान विना शस्त्र कर्म (चीरना फाड़ना) क्षार कर्म और अग्नि कर्म (दाग आदि) करता है उसकी चिकित्सा निष्फल होती है। जैसे अंधे मनुष्य का रास्ता चलना। अर्थात् जैसे विना जानी हुई रास्ते में चलने वाला अंधा ठोकर खाता है और गिरता है उसी प्रकार विना शारीरक के ज्ञान अंधे के समान चिकित्सा रूप मार्ग में ठोकर खाता है और गिरता है ऐसा वैद्य राजा करके दंड्य है जैसे ग्रन्थांतर में लिखा है।

परिचितआयुर्वेदस्त्रिस्कन्धोयेननैवशारीरम्।
हन्यात्तमाशुनृपतिर्वान्निःसारयेत्स्वकीयाद्वा॥

अर्थ – जिस वैद्य ने त्रिस्कन्धात्मक आयुर्वेदतो पढ़ा, परन्तु उपेक्षापूर्वक

उसमें सैं शारिरिक को न पढा अैसे वैद्य को राजा फांसी आदि सैं शीघ्र मार डालेऔर ब्राह्मण आदि को अपने राज्य सैं निकाल देवे।

शिष्य – अब आप शारीरिक का वर्णन करो।

गुरू – अब तुम सैं हम सुश्रुतोक्त दश अध्यायों सैं शारीरक का वर्णन करते हैं और जो वार्त्ता सुश्रुत सैं विशेष हैं वो ग्रन्थान्तर सें कहैंगे तहां प्रथम सर्व भूत चिंता शारीराध्यायको कहते हैं

अथात: सर्वभूतचिन्ताशारीरं व्याख्यास्याम:

अर्थ – ग्रन्थ के प्रारंभ में मंगला चरण होता है, अैसा शिष्टा चार चला आता है इसीसैं अथ शब्द के प्रयोग सैं मंगलाचरण करके स्थावर जंगम आदि भूतों की अथवा पृथ्वी तेजआदि महा भूतों की चिंताका प्रतिपादन इस ग्रन्थ में करते हैं। अर्थात् ए कैंसैं उत्पन्न हुए और इन्हों के कौन से लक्षण हैं तथा इन्हों के कौन से कार्य हैं अैसा विचार इस ग्रन्थ में प्रति पादन करा हैं, इसीसैं इस ग्रन्थ को सर्व भूत चिन्ता कहते हैं। फिर उसको शरीर के अधिकार (प्रधानता) करकें किया इसीसै उसको शारीर कहते हैं उस शारीर का व्याख्यान करते हैं [गयी] आचार्य [अथात:सर्व भूत चिंता नाम शारीरं] अैसा पाठ कहता है।

एतस्यनिवन्धस्यफलंचिकित्सा,चिकित्साचपुरुषस्य,पुरुषस्तु चतुर्विंशतितत्वजीवात्मसमवाय: स्तस्माच्चतुर्विंशतितत्वानां जीवात्मनश्चस्वरूपनिरूपणायसृष्टिक्रममाह ॥

अर्थ – इस निवंध (ग्रन्थ)का फल चिकित्सा है। वह चिकित्सा पुरुष का करा जाता है। सो पुरुष चौवीस तत्व और जीवात्माके एकत्र होने को कहते हैं, इसीसैं चौवीस तत्वों * के और जीवात्मा के स्वरूप निरूपणार्थ सृष्टि

* (पांचज्ञानेन्द्रि)नेत्र नाक कान जीव औरत्वचा(पांच कर्मेन्द्रि) हाथ पैर वाणी लिंग और गुदा (पंचमहाभूत) पृथ्वीतेज वायु जल आकाश(चार अन्त:करण)मन वुद्धि चित्त अहंकार (पांचसूक्ष्म)शब्द स्पर्श रूप रस गंध ए चौवीस तत्व कहाते हैं।

क्रम कहते है ।

परमात्माकारूप

आत्माज्योतिश्चिदानन्दरूपोनित्यश्चनिःस्पृहः ।
निर्गुणःप्रकृतेर्योगात्सगुणःकुरुतेजगत् ॥

अर्थ – आत्मा जो है सो स्वयंज्योति चिदानन्द स्वरूप इच्छा रहित और निर्गुण है । वह अपनी माया के संयोग सें इच्छादि युक्त होकर इस जगत् को उत्पन्न करै है । आत्मा और परमात्मा उसी ईश्वर के नाम भेद है ।

सत्वंरजस्तमश्चेतिगुणास्तेप्रकृतेःसमाः ।
साजडापिजगत्कर्त्रीपरमात्माचिदन्वयात् ॥

अर्थ – सतोगुण , रजोगुण , और तमोगुण , ए तीनगुण माया के है । और सम है । वह माया जड़ भी है परन्तु परमात्मा रूपी चैतन्य के संवन्ध सें जगत् को उत्पन्न करती है । सत् का प्रकाशक सतो गुण कहाता है । और वह सत्व प्रकाशकर्त्ता ज्ञानरूप और सुख का कारण रूप है । रज जो है सो रागात्मक है , और दुख का कारण है । जिससे मनुष्य ग्लानि को प्राप्त हो वह गुण कहाता है । वह तमो गुण बुद्धिका आच्छादन कर्त्ता है , और मोह होने का कारण है । ये गुण सम है , अर्थात् प्रकृति रूप है उसी प्रकार न्यूनाधिक होने से विकृति कहाते है ।

अव सुश्रुत को उपदेश करते हुए धन्वन्तरि प्रकृति के स्वरूप विशेष को कहते हैं ।

सर्वभूतानां कारण मकारणं सत्वरजस्तमो लक्षणं
अष्टरूप मखिलस्य जगतः संभवहेतुरव्यक्तंनाम

अर्थ– अव्यक्त कहिये मूल प्रकृति सर्व भूतों का कारण होकर स्वयम् अकारण है । तथा कार्य कारण नहीं है अर्थात् अविकृत है तथा स्वतंत्र सत्व रज तम रूप होकर अव्यक्त , महान् , अहङ्कार , और पञ्चतन्मात्रा ऐसैं आठ रूप वाली है । तथा सर्व स्थावर जंगमात्मक जगत्के प्रगट होने का कारण है इसके कहने सैं कार्य और कारण की तादात्म्यता दिखाई ।

जैसें गुड़ के गण पती का गुड़ ही नैवेद्य उसीप्रकार अव्यक्त होकर व्यक्त का कारण । कोई आचार्य । अव्यक्त महान् अंहकार , और पंच महा भूत , एमूल प्रकृति के आठ रूप कहते है । कोई धर्म ज्ञान वैराग्य , ऐश्वर्य अधर्म , अज्ञान , अवैराग्य , और अनैश्वर्य , आठ रूप कहते हैं । कोई मन , बुद्धि , अहंकार , और महाभूत , ए प्रकृति के आठ रूप हैं । अैसा कहते है ।

तदेकंवहूनांक्षेत्रज्ञानामधिष्टानसमुद्रइवौदकानांभावानाम्

अर्थ– वह अव्यक्त , अविवेच्यावयवहोकर सर्व कर्म जीवों का आश्रय है । जैसें समुद्र , सर्व (नदी , नद , सरोवर , तलाव , आदि) जलों का आधार है । कोई आचार्य [औदकानांभावानां] इस पद का अर्थ चराचर मत्स्य पद्मादिक अैसा करते हैं ।

शिष्य– एक अव्यक्त अनेक धर्म वाले पुरुषों का कैसें कारण है ?

गुरु– हे प्रियवर ? अव हम सर्व भूतों की उत्पत्ति कहते हैं ।

अव्यक्त सें सर्व भूतों की उत्पत्ति ।

तस्मादव्यक्तान्महानुत्पद्यतेताल्लिङ्गकएव

अर्थ– तस्मात् कहिये , आत्म्य के प्रतिविंवित जो अव्यक्त तिस्से सत्व , रज , तम , स्वभावात्मक , महतत्व उत्पन्न होता है ।

ताल्लिङ्गाच्चमहतस्ताल्लिङ्गकएवाऽहङ्कारउत्पद्यते

अर्थ– शुद्ध सतोगुण रूप महतत्व सें सत्व , रज , तमोगुणात्मक , अहंकार उत्पन्न होता है * यह चरक में लिखा है ।

अहङ्कार को त्रिविधत्व कहतेहैं ।

सचात्रिविधोवैकारिकस्तैजसोभूतादिरिति

अर्थ– [यहां वैकारिकादि] संज्ञा पूर्वाचार्यों ने व्यवहार के अर्थ करी है

* शुद्धसत्वस्ययाशुद्धासत्याबुद्धिप्रवर्त्तते । ययाभिनत्यातिवलंमहामोहमयंतमः ॥ सर्वभावस्वभावज्ञोयथाभवतिनिस्पृहः । ययानोपेत्यहङ्कारंनोपास्तेकर्मयया ॥

अर्थात् वो अहंकार , सात्विक , राजस , और तामस , ऐसें तीन प्रकार का है । तहां वैकारिक (सात्विक) तैजस (राजस) और भूतादि (तामस) जानना ।

अहङ्कार के कार्य्य कहते है ।

तत्रवैकारिकादहंकारात्तल्लक्षणान्येवैकादशेन्द्रियाण्युत्पद्यन्ते

अर्थ– राजस सहाय , तथा तामस गुणांशाभियुक्त , सात्विक , अहंकार से प्रकाश लक्षण वाली एकादश इन्द्री उत्पन्न हुई ।

इन्द्रियों के नाम ।

श्रोत्रत्वक्चक्षुजिव्हाघ्राणवाक्हस्तोपस्थपायुपादम नांसीति । तत्रपूर्वाणिपञ्चबुद्धिन्द्रियाणि ॥ इतरा णिपञ्चकर्मेन्द्रियाणिउभयात्मकंमनः

अर्थ– कान , त्वचा , नेत्र, जीभ , नाक , वाणी , हाथ , लिंग, गुदा पैर , और मन , ये ११ इन्द्री है । तिन्में पहिली पांच ज्ञानेन्द्रिय हैं । तथा पांच कर्मेन्द्रिय है । और उभयात्मक ग्यारवामन है । अर्थात् मन के विना दोनों प्रकार की इन्द्रियों का व्यवहार नहीं होता

पंच भूतों से तन्मात्रोत्पत्ति ।

भूतादेरपितैजससहाय्यात्तल्लक्षणान्येवपञ्च

अर्थ– राजस सहाय , मलांश युक्त तामस अहंकार से मोह लक्षण पंचतन्मात्रा उत्पन्न होती हैं । अर्थात् शब्द , स्पर्श , रूप , रस , ये विषय हैं ।

तद्यथा । शब्दतन्मात्रं स्पर्शतन्मात्रं रूपतन्मात्रं रसतन्मात्रं गन्धतन्मात्र मिति

अर्थ– जैसें शब्द तन्मात्रा , स्पर्श तन्मात्रा , रूप तन्मात्रा , रस मात्रा , और गन्ध तन्मात्रा ।

विषय कहते हैं ।

तेषांविशेषाः शब्द स्पर्श रूपरसगंधाः

अर्थ– तिन तन्मात्राओं के विशेष कहिये अनुभव योग्य जे दुःख सुख मोह तिन सैं युक्त होवे , वे विशेष शब्दादिक ऐसे जानने , तहां अनुद्भूत स्वभाव ऐसी वाह्य इन्द्रियों सैं उन तन्मात्राओं को योगी ग्रहण करते हैं।

तन्मात्राण्य विशेषाणि

अर्थ– वे तन्मात्रा अति सूक्ष्म हैं। अतएव अनुभव योग्य जे सुखादिक धर्म तिन सैं युक्त नहीं हो सकें।

भूतों की उत्पत्ति।

तेभ्येभूतानि व्योमाऽनिलाऽनलजलोर्व्यः

अर्थ– तिन शब्दादि तन्मात्राओं सैं आकाश , वायु , अग्नि , जल , और पृथ्वी , ये पंच महा भूत उत्पन्न हुए। उन्का प्रकार कहते हैं।

उत्पत्ति प्रकार।

एकोत्तरपरिवृद्ध्याशब्दादयउत्पद्यन्ते

अर्थ– तिन शब्द तन्मात्रादि पांचो सैं एकोत्तर वृद्धि के क्रम सैं शब्दादि गुण विशिष्ट आकाश आदि पंच महा भूत उत्पन्न होते हैं। जैसैं शब्द तन्मात्रा सैं शब्द गुण वाला आकाश प्रगट हुआ। और शब्द तन्मात्रा सहित स्पर्श तन्मात्रा सैं शब्द , स्पर्श , गुण वाला वायू (पवन) प्रगट हुआ। तथा शब्द , स्पर्श , तन्मात्रा सहित रूप तन्मात्रा सैं शब्द स्पर्श रूप गुणवान् तेज (अग्नि) प्रगट हुआ। तथा शब्द , स्पर्श , रूप , तन्मात्रा सहित रस तन्मात्रा सैं शब्द , स्पर्श , रूप , रस गुणवान् , जल प्रगट हुआ। शब्द , स्पर्श , रूप , रस , तन्मात्रा सहित गंध तन्मात्रा सैं शब्द , स्पर्श , रूप , रस , गुणवान् पृथ्वी प्रगट हुई। [पतंजलि मुनि के मतानुसार शब्दादिकों सैं ही आकाश आदि की उत्पत्ति है] इस प्रकार शब्दादिकों का आकाशादि महाभूतों सैं अभिन्नत्व सूचना कर उप संहार कहते हैं।

२४ तत्व तथा बुद्धिन्द्रियों के विषय।

एवमेषांतत्वचतुर्विंशतिर्व्याख्याता तत्रवुद्धीन्द्रि

याणांशब्दादयोविषयाः

अर्थ- इस प्रकार इन तत्वों की समग्र चौवीस संख्या कही है । तिन में श्रोत्रादि बुद्धीन्द्रियों के शब्दादिक विषय जानने ।

कर्मेन्द्रियों के विषय ।

कर्मेन्द्रियाणांयथासंख्यंवचनादानानन्दविसर्गविहरणानि

अर्थ- कर्मेन्द्रियों के विषय , यथा संख्य अर्थात् यथा क्रम सैं कहते हैं । वाणी का विषय भाषण , (बोलना) हाथों का लेना देना , लिंगेन्द्री का विषयानंद , गुदा का मलोत्सर्ग , पैरों का गमन (चलना) असे पांच विषय जानने । कहे हुए चौवीस तत्वों के अन्य धर्म दिखाते है ।

८ प्रकृति व १६ विकार

अव्यक्तंमहान्अहङ्कारःपंचतन्मात्राणि

चेत्यष्टौप्रकृतयःशेषाःषोडशविकारः

अर्थ- अव्यक्त , महान् , अहंकार , पंचतन्मात्रा ए प्रकृति है । अर्थात् औरों के कारण भूत हैं । अव्यक्त प्रथम कहआए है तथापि अव्यक्त प्रकृतिही है इस की दृढ सूचनार्थ पुनः कहा है । [तन्मात्राणि चेति] इसमें जो चकार है उस्का [प्रकृतयः] इस पद सैं सबन्ध है । इस से महदादिक सात प्रकृति होकर कार्यवान् विकृत भी होते है । महदादिकों को अव्यक्त निरूपित होने मैं प्रकृतित्व , और श्रोत्रादि षोडश विकारों को विकार निरूपत,, प्रकृतित्व जानना । [शेषाः] कहिये पंचमहाभूत तथा षोड्शइन्द्री होने सैं असैं चौवीस तत्व है । तिन में बुध्यादिकों को प्रकाशत्व करके प्रधानता है । इसीसैं जिन में प्रकाश और जहा स्थित होकर प्रकाश करते हैं तथा जिस्के अनुग्रह सैं प्रकाश करते हैं , तत्प्रकार त्रयो का अधि भूतादि भेदो करकैं कहते है ।

स्वस्वश्चैषांविषयोऽधिभूतं

अर्थ-[एषां] कहिये बुद्धि, अहंकार, मन, तथा श्रोत्रादि बुद्धिन्द्रिय, और वाणी आदि, कर्मेन्द्रिय और मन इन्का स्वस्वविषय कहिये बुद्धि का विषय

निश्चय , अहंकार का विषय अधिमंतव्य, मन का संकल्प विकल्प , और शब्दादिक विषय एसव पंचमहाभूतों में स्वरूपसंबंध करके रहते हैं, अतएव इन्को अधिभूत कहते हैं । कोई आचार्य असा पाठान्तर कहते हैं ।

[स्वस्वएषांविषयोऽधिभूतं]

अर्थ– बुद्ध्यादि त्रयोदशों का जो स्वकीय विषय अर्थात् भोग साधन उस्की अधिभूत संज्ञा जाननी ।

अध्यात्म ।

स्वयमध्यात्मम्

अर्थ– ये बुद्ध्यादिक स्वतः अध्यात्म अर्थात् [आत्मनिअधि इत्यध्यात्मं] आत्म शब्द इस जगे शरीर वाची है अर्थात् बुद्ध्यादिक शरीर का आश्रय करके रहते हैं। इसी सैं अध्यात्म कहाते हैं ।

अधिदैवत ।

अधिदैवतञ्च । अथबुद्धेर्ब्रह्मा , अहङ्कारस्येश्वरः , मनसश्चन्द्रमा , दिशःश्रोत्रस्य , त्वचोवायुः , सूर्य्यश्चक्षुषो, रसनस्यापः , पृथिवीघ्राणस्य , वाचोऽग्निः , हस्तयोरिन्द्रः , पादयोर्विष्णुः , पयोर्मित्रं , प्रजापतिरुपस्थस्येति ।

अर्थ– देवताओं को इन्द्रियों के अधिष्ठाता होने सैं अधिदैवत्व है। उन्को बुद्ध्यादिकों में प्रगट करते हैं। जो जो देवता विश्वरूप विष्णुके जिस जिस अवयव (अंग) सैं प्रगट हुआ, वही २ देवता उसी २ अंग का अधिदैव हुआ। इस कहने का कारण यह है कि देवताओं के विना इन्द्रियों का प्रकाश अर्थात् स्वस्वविषय ग्रहण नहीं होवे। अब उन देवताओं को कहते हैं। बुद्धि का ब्रह्मा , अहंकार का रुद्र , मन का चन्द्रमा , कानो की दिशा , त्वचा का पवन , नेत्रों का सूर्य्य , जिव्हा का जल , नासिकाकी पृथ्वी , वाणी का अग्नि , हाथों का इन्द्र , पैरों का विष्णु , गुदा का मित्र देवता , शिश्न (लिंग) का प्रजापति अधिदैव जानना ।

श्रोत्रादिकों को अध्यात्मादि स्वरूप

यथाश्रोत्रमध्यात्मंश्रोत्रव्यमधिभूतंदिशोऽधिदैवतं

अर्थ– श्रोत्रेन्द्रिय का मांस गोलक जो कर्ण सो अध्यात्म, शब्द अधिभूत, दिशा अधिदैव। त्वचा अध्यात्म, स्पर्श अधिभूत, पवन अधिदैव। जिव्हा अध्यात्म, रस अधिभूत, जल अधिदैव। नेत्र अध्यात्म, रूप अधिभूत सूर्य अधिदैव। नाशिका अध्यात्म, गंध अधिभूत, पृथ्वी अधिदैव, इसीप्रकार वाणी, हाथ, लिंग, गुदा, पैर, बुद्धि, अहंकार और मन एअध्यात्म हैं इन्के भाषण, देना लेना, विषयानंद, मलोत्सर्ग, गमन, निश्चय करना, अभिमान, और मंतव्य, ये अधिभूत हैं। अर्थात् विषय है। और अग्नि, इन्द्र, प्रजापति, मित्र, विष्णु, ब्रह्मा, रुद्र, और चंद्रमा ये क्रम से वाणी आदि के अधि दैवत अर्थात् देवता है।

पुरुष लक्षण।

तत्रसर्वएवाचेतनएपवर्गः पुरुष पञ्चविंशतितमः कार्य्यकारणसंयुक्तश्चेतायितासत्यप्यचैतन्येप्रधानस्य कैवल्यार्थप्रवृत्तिरुपदिशन्त्याचार्य्याः

अर्थ– [सर्वएवैपवर्गः] कहिये अव्यक्तादि चतुर्विंशति-तत्वों, का कारण अव्यक्त अचेतन है। इसी से उन्हीं के कार्य्य जो महदादिक वेभी अचेतन जानने। इसमें दृष्टान्त जैसे, सुवर्ण के कटक कुंडलादिक। [पुरुष पंचविंशतितमः] अर्थात् पुरुष पचविंशति तत्ववान् कार्य्यगण कहिये विकारगण महदादिक, और कारण कहिये मूलप्रकृति उस्के प्रतिबिंबित हो कर इसमें चैतन्यता उत्पन्न करे है। वास्तव में परमात्मा निर्व्यापार, परन्तु लोह चुंबक के सान्निध्य करके जैसें लोह में चैतन्यता होती है। उसी प्रकार प्रकृति और महदादिकों में चेतना प्रगट होती है। [पुरुषस्य] कहिये जीवों के मोक्षार्थ [प्रधान] की अर्थात् मूलप्रकृति की आचार्य प्रवृत्ती मानते हैं। तात्पर्य यह है कि पुरुष प्रकृति संयुक्त होने मे उस्के जो सत्वादि गुण तत्संबन्धी सुख दुःखादि भोग भोगता है। और उ-

स्के ह्रास होने (छूटने) सैं मुक्ति होती है । अचेतन कैसैं प्रवृत होता है इस्में उदाहरण दिखाते हैं ।

क्षीरादिश्चात्रैरुदाहरन्ति

अर्थ— जैसैं दूध अचेतन भी हो कर बछड़ा की वृद्धि के विषय में प्रवृत्ति होता है । [आदि] शब्द करके अन्य दृष्टान्त दिखाते हैं । जैसैं, एकान्त में परम सुंदर कामिनी के सुरत (क्रीड़ा) उत्सव में सुखातिशयोत्पादन के अर्थ असंज्ञक (चेतना रहित) शुक्र प्रवृत्त होता है ।

प्रकृति पुरुष का साधर्म्य कहते है ।

अतऊर्ध्वंप्रकृतिपुरुषयोःसाधर्म्यवैधर्म्यव्याख्यास्यामः

अर्थ— [अतऊर्ध्वं] कहिये तत्व निरूपणानन्तर [प्रकृति] अव्यक्त और [पुरष] आत्मा, इन्के [साधर्म्य] समान धर्म तथा (वैधर्म्य) विपरीत धम, उन्हों को [व्याख्यास्यामः] कहिये कहते हैं ।

उभावप्यनादी उभावप्यनन्तौ उभावप्यलिङ्गौ उभावप्य नित्यौ उभावप्यनपरौ उभौचसर्वगताविति

अर्थ—प्रकृति पुरुष समान धर्मवान् हैं इस प्रमाण सैं दोनों अनादी, व अनन्त, व अलिंग, तथा दोनों लय रहित, किसी काल सैं नाश नहीं होते, तथा दोनों [अनपर] कहिये जिन सैं कोई परे नहीं, तथा दोनों [सर्वगत] कहिये सर्व व्याप्त हो कर स्थित । यह दोनों के साधर्म्य कहिये अनादित्व धर्म, दोनों के वीच समान रहते हैं । असैं जानना ।

वैधर्म्य कहते हैं ।

एकातुप्रकृतिरचेतनात्रिगुणावीजधर्म्मिणी प्रसवधार्म्मिण्यमध्यस्थधार्म्मिणीचेति

अर्थ— प्रकृति एक होकर, अचेतन, तथा त्रिगुणात्मक कहिये सत्वादि गुणत्रय की समान अवस्था में रहे हैं । तथा [वीजधर्मिणी] कहिये सर्व महदादि विकारों की वीज रूप रहे हैं । इसी मैं वीजधर्मिणी कहते हैं ।

" गर्गी आचार्य " इस प्रकार कहता है कि ? प्रलय काल में भूत , इन्द्री, तन्मात्रा , अहंकार , तथा महान् , इत्यादिक प्रकृती में बीज रूप करके रहते हैं। इसी सें उस को बीजधर्मिणी कहते हैं । तथा वही प्रकृति सृष्टि उत्पन्न करने की इच्छा करने वाला परमात्मा प्रभू के साथ क्षोभ को प्राप्त हो , समान अवस्था को परित्याग कर तदनंतर महदहंकारादिक के क्रम करके चराचर जगत् को प्रगट करे, है इसी सें प्रसवधर्मिणी कहते हैं। तथा [अमध्यस्थधर्मिणी] कहिये यह प्रकृति सत्वादिगुणों की राशी है, इसी सें सत्वादि स्वरूप सुख दुःखानुभव मध्यस्थ को नहीं होवे । और इस में सुख दुःखानुभव होते हैं इसी सें अमध्यस्थधर्मिणी कहते हैं ।

जीवा के लक्षण ।

वहवस्तुपुरुषाश्चेतनावन्तोऽगुणाऽवीजधर्माणो ऽप्रसवधर्माणोमध्यस्थधर्माणश्चेति

अर्थ– [वहवः] कहिये , एक काल में सब का मरण होना असंभव है इसी सें पुरुष परमाणुओं के सदृश अनेक है । तथा चेतना युक्त जानने । यदि पुरुष एकही होता तो , एक मनुष्य के मरने में सर्व मनुष्य मर जावे, इस जगे (पुः) शब्द करकें महदादिकों का निर्मित सूक्ष्म शरीर , अर्थात् लिङ्ग शरीर जानना । वह लिंग शरीर योगियों कोंही दीखता है । उस लिंग शरीर में रहे उसको पुरुष कहते है । तथा वह पुरुष सत्वादि गुण रहित तथा वह पुरुष [अवीज धर्माणः] कहिये महा प्रलय में जैसें महदादिक प्रकृति के वीच रहते हैं । उस प्रकार पुरुष में नहीं रहते इसी सै वह पुरुष अबीज धर्मक है । तथा [मध्यस्थधर्माणः] कहिये , प्रीति , अप्रीति , विषाद , इन सें रहित है इसी सें इच्छा , द्वेष शून्य मध्यस्थ के सदृश उदासीन है । अतएव मध्यस्थ धर्मवान् पुरुष है । ऐसे जानना ✻ इस विषय में सांख्य मत दिखाते हैं ।

तदुक्तंसांख्ये ।

तस्माद्विपर्य्ययात्सिद्धंसाक्षित्वमजस्यपुरुषस्य

कैवल्यंमाध्यस्थंद्रष्टृत्वमकर्तृभावश्चेति

अर्थ– (तस्मात) कहिये प्रकृति के वैधर्म्य रूप विपरीतता सैं, परमात्मा को साक्षित्व, मोक्षप्रदत्व, मध्यस्थत्व, द्रष्टृत्व, अकर्तृभाव, इत्यादिक सिद्ध हुए अब कहे हुए को उपसंहार करते हैं।

महतत्व को त्रिगुणात्मकत्व।

तत्रकारणाऽनुरूपंकार्य्यमितिकृत्वासर्व एवैतेविशेषाःसत्वरजस्तमोमयाभवन्ति

अर्थ– कारण के गुण कार्य्य में नियम कर्के होते हैं। इसी सें प्रकृति सैं प्रगट भया जो महतत्व उसमें सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण, ये तीन गुण हैं प्रतिविंब संयुक्त जो पच्चीसवां पुरुष उसमें भी सत्वादिक गुण हैं यह दिखाते हैं

पुरुष को त्रिगुणात्मकत्व कहते हैं।

तदंजनत्वात्तन्मयत्वात्तद्गुणाएवपुरुषाभवन्तीत्येकेभाषन्ते

अर्थ– पुरुष के सत्वादिक गुण प्रकाशकत्व तथा तन्मयत्व हैं, इसी सैं वे सत्वादि गुण पुरुष के हैं। ऐसैं कोई आचार्य कहते हैं। परन्तु सत्वादि रूप कर्के महतत्वादिकों में प्रतिविंवित हुए इसी सें सत्वादिमय पुरुष ऐसे भासते हैं। जैसैं तलाव सरोवर के जल में जल के हिलने सैं सूर्य, चन्द्र, विजली, आदि का प्रतिविंव को हिलना कहते हैं। उसी प्रकार सत्वादिकों में प्रतिविंवित पुरुष सत्वादिमय दीखते हैं। वास्तव सैं सत्वादिमयत्व पुरष को नहीं है।

तादृशाश्चतन्मयत्वात्तल्लक्षणत्वेनतद्गुणाः सुखिनोदुःखिनोमूढाश्चपुरुषाभवन्ति

अर्थ– उसी प्रकार पुरुष सत्वादि गुण होने सै तन्मय है। इसी सैं सत्वादिकों के परिणाम, सुखी, अथवा दुखी मूढ ऐसा भासते हैं। [गर्ग्गीआचार्य] कहता है, कि। सत्वादिकों कर्के अंजन अर्थात् अभिव्यक्ति जिसकी ऐसा पुरष है। सत्वादिकों कर्के महदादिकों की अभिव्यक्ति कै

से होती है ? इस लिये कहते हैं [तन्मयत्वात्] अर्थात् महदादिकों की कारण सत्वादिगुण राशि प्रकृति है। इसी में वे तन्मय जानने। निर्विकार पुरुष को तदंजनत्व करते हैं, इसमें दृष्टान्त देते हैं। जैसे स्फटिकमणि में जपा (गुड़हर) पुष्प के समीप धरने से लाली दीखती है। उसी प्रकार नीले, पीले, रंग वाले काच की फानुस में दीपक धरने से उस फानूस के संबन्ध से दीपक के नीले, पीले, रंग बाह्य दृष्टि करके प्राप्त होते हैं। अथवा संध्या के समय जैसे सूर्य की किरणों से आकाश रंग जाता है, उसी प्रकार पुरुष में सत्वादिगुण जानने। ये पूर्वोक्त सर्व एक मत दिखाते हुए अपने मत को कहते हैं। [वैद्यकेतु]

प्रकृति को षड् विधत्व दिखाते हैं।

स्वभावमीश्वरंकालं यदृच्छांनियतितथा।
परिणामञ्चमन्यन्ते प्रकृतिंप्रथुदर्शिनः॥

अर्थ– स्वभाव, ईश्वर, काल, यदृच्छा, नियति, और परिणाम, ऐसे दीर्घ दर्शी प्रकृति के छः भेद मानते हैं। तिन्में स्वभाववादी सर्व जगत् के उत्पन्न होने का कारण स्वभावही मानते हैं।

स्वाभाविक मत १।

कःकण्टकानांप्रकरोतितैक्ष्ण्यं। विचित्रचित्रंमृगपक्षिणाञ्च॥
माधुर्य्यमिक्षौकटुतामरीचे। स्वभावतःसर्वमिदंप्रवृत्तम्॥

अर्थ– कंट को (कांटेन) में तीक्ष्णता कौन करता है। पशु पक्षीओं को चित्र विचित्र कौन करता है। ईख में मिठास और मिरच में चरपरापना कौन करता है। यह सब धर्म स्वभावही से प्रवृत्त हैं * ईश्वर वादी स्थावर, जंगम प्राणियों को स्वर्ग नर्क का कारण ईश्वर मानता है। यथा

ईश्वर मत २।

अज्ञोजन्तुरनीशोय मात्मनः सुखदुःखयोः।
ईश्वरप्रेरितोगच्छेत् स्वर्गंनरकमेवच॥

अर्थ— अज्ञानी प्राणी अपने आत्मा के सुख दुःख के दूर करने को असमर्थ है । ईश्वर का प्रेरित स्वर्ग अथवा नर्क को जाता है । काल कारण वादी सर्व जगत् का कारण काल है असा मानता है। इस्में प्रमाण दिखाते हैं । जैसैं ज्योतिर्वित् श्रीपति लिखता है ।

काल को ईश्वरत्व ३ ।

प्रभवविरतिमध्य ज्ञानसन्ध्यानितान्तम् ।
विदितपरमतत्वा यत्रेतयोगिनोऽपि ॥
तमहमिहनिमित्तं विश्वजन्माऽत्ययाना ।
मनुमितमभिवन्दे भग्रहैःकालमीशम् ॥

अर्थ— जिस काल रूपी ईश्वर के विषे , परमार्थ वेत्ता असैं योगी भी उत्पत्ति , नाश , और मध्य , इन्का जो ज्ञान उस कर्के रहित होते हैं । तथा विश्व के उत्पत्ति , पालन और नाश का हेतु तथा अश्विन्यादि नक्षत्र और सूर्यादि ग्रहों कर्के जिस्का अनुमान होता है, असैं कालरूपी ईश्वर को हम नमस्कार करते हैं ।

यादृच्छिकमत ४ ।

योयतोभव.तितत्रनिमित्तमितियादृच्छिकाः

अर्थ— जो जिस्सैं होता है , उसी में उस का निमित्त होता है । असैं यादृच्छिक मतावलंबी कहते हैं , इस्में दृष्टांत यथा [तृणारणिनिमित्तोवन्हिरिति] जैसैं तृण रूप अरणि सैं अग्नि उत्पन्न होकर उस अरणी को जलाता है ।

नियतिमत ५ ।

पूर्वजन्मार्जितधर्माधर्मौनियातिः

अर्थ— पूर्वजन्मोपार्जित धर्म अधर्मही सर्व जगत् के कारण हैं । असैं नियति वादी कहते हैं ।

परिणाम वादी मत ६ ।

प्रधानमेवमहदहङ्कारादिरूपतयापरिणतंसर्वस्य

निमित्तमितिपरिणामवादिनः

अर्थ– प्रधानही महदहंकारादि रूप करके परिणाम पाते हैं। इसी में वेही सबके कारण ऐसे परिणामवादी कहते हैं। ये पूर्वोक्त सर्व मतस्वमतानुकूलही हैं। कारण यह है कि आयुर्वेद सर्व पारिषदस्वरूप है। इसी से सुश्रुताचार्य ने भी स्वभावादि भेद से षड्विध प्रकृति के उदाहरण कहे हैं। तिन मे स्वभाव को कारणत्व कहते हैं।

स्वभाव मत।

अङ्गप्रत्यङ्गनिर्वृत्तिःस्वभावादेवजायतेइति

अर्थ– अंग और प्रत्यङ्ग इन्हों की उत्पत्ति स्वभाव सेही होती है।

पुनश्च ।

सन्निवेशःशरीराणां दन्तानांपतनोद्गमौ ।
तलेष्वसम्भवोयश्च रोम्णामेतत्स्वभावतः ॥

अर्थ– सर्व शरीर के अवयवों की रचना, तथा दांतों का गिरना, और ऊगना, तथा हाथ पैरों की हथेली, और तरुआ, इन्मे केशों (बालों) की अनुत्पत्ति (न होना) यह सब स्वभाव सेही होता है।

पुनश्चोक्तम् ।

धातुप्क्षीयमाणेषु वर्द्धेतेद्वाविमौसदा ।
स्वभावंप्रकृतिंकृत्वा नखकेशावितिस्थिति ॥

अर्थ– धातुओं के क्षीण होने परभी दो वस्तु सदैव बढती हैं। एक नख (नाखून) और दूसरे बाल, इसों भी कारण स्वभावही है।

पुनरप्याह ।

निद्राहेतुस्तमःसत्वं बोधनेहेतुरुच्यते ।
स्वभावएववाहेतु र्गरीयान्परिकीर्त्तितः ॥

अर्थ– निद्रा का कारण तमोगुण, और जागृदवस्था का कारण सतोगुण अथवा स्वभावही दोनों अवस्थाओं का कारण कहा है।

अन्यत्राऽप्युक्तम् ।

स्वभावाल्लघवोमुद्गास्तथालावकपिञ्जलाः ।
स्वभावद्गुरवोमाषा वराहमहिषादयः ॥

अर्थ- जैसैं मूंग, लवापक्षी, और तीतरपक्षी, ये स्वभाव सैंही हल के होते हैं। और उरद, सुअर का मांस, तथा भैंसा, आदि ये स्वभावसैं ही भारी हैं। ईश्वर भी अग्नि रूप हो कर जीवतादिकों का कारण कहाहै

अग्नि को ईश्वरत्व तथा जीवत्व कहते हैं ।

जाठरोभगवानग्निरीश्वरोन्नस्यपाचकः । सौक्ष्म्याद्रसानाददा नोविवेक्तुंनैवशक्यते ॥ अग्निर्मूलंवलंपुंसांवलमूलंचजीवितं ।

अर्थ- स्वतंत्र तथा षड् गुणैश्वर्य संपन्न ऐसा ईश्वर जठराग्नि हो कर अन्न का परिपाक करे है। तथा रसों का ग्रहण करे है। परंतु सूक्ष्म है, इसी सैं दीखता नहीं। वल का मूल कारण अग्नि, तथा वल मूलक जीवित है ऐसैं जानना ।

काल भी प्रकृतिही का भेद हैं।

महाभूतविशेषास्तु शीतोष्णद्वयभेदतः । कालइत्य
ध्यवश्यन्ति न्यायमार्गाऽनुसारिणः ॥

अर्थ- शीत, उष्ण, इन भेदों करके, आकाशादि महाभूत विशेषों को नैय्यायिक काल कहते हैं। वोह काल वातादि दोषों के संचय, तथा प्रकोप और उपशम इन्हों के द्वारा हेतु हैं ऐसैं इसी सुश्रुत के सूत्रस्थान की छटवी ऋतुचर्य्याध्याय में कहा है।

यादृच्छिकमत का प्रमाण ।

यदृच्छा पुनरलक्षितआकास्मिकःसर्वपदार्थाऽऽविर्भावः

अर्थ- यदृच्छा कहिये अलक्षित होकर आकस्मिक ऐसा जो पदार्थ का आविर्भाव उसैं यदृच्छा कहते हैं।

उक्तञ्च ।

यदृच्छाचोपगतानिपाकंपाकक्रमेणोपचरेद्विधिज्ञः इत्यादि

अर्थ– सर्व वस्तु मात्र यदृच्छा करके परिणाम पाते हैं । इसी से विचारवान् पुरुष को उसी क्रम करके आचरण करना चाहिये ।

कर्म वादी मत का प्रमाण ।

ब्रह्मस्त्रीसज्जनवतो परस्वहरणादिभिः ।
कर्मभिःपापरोगस्य प्राहुःकुष्टस्यसम्भवम् ॥

अर्थ–ब्राह्मण की स्त्री में गमन करने सें, तथा परद्रव्यहरण इत्यादिक पाप कर्मों के करने से, कुष्टादिक रोग उत्पन्न होते हैं। इसी से कर्मही कारण है।

परिणाम को हेतुत्व कहते हैं।

जाठराग्नेस्तुसंय्योगाद्यदुदेतिरसान्तरम् । रसानांप
रिणामान्ते सविपाकइतिस्मृतः ॥ ताएवौपधयः
कालपरिणामात्परिणतवीर्य्याभवंतिहेमन्तेभवन्त्या
पश्चसम्यक्परिणतस्याहारस्यसारोरसः । एववा
लानामपि । वयःपरिणाच्छुक्रप्रादुर्भावोभवति ॥

अर्थ– जठराग्नि के संयोग करके अन्न से जो रसांतर उत्पन्न होता है। [रस कहिये उत्तम प्रकार जीर्ण हुआ आहार का साराश] रस के परिणाम होने से उसको विपाक कहते हैं। उसी प्रकार औषधि काल परिणाम करके पूर्ण वीर्य होती है । जैसे हेमंत ऋतु में उदक् पूर्ण वीर्य होते है । उसी प्रकार बालकों के अवस्था के परिणाम करके वीर्य प्रादुर्भाव होता है। इस प्रकार स्वभावादिकों को प्रकातित्व वैद्य शास्त्र संमत है। ऐसे दीखाया है इस प्रकार वैद्यकानुमत पूर्वोक्त प्रकृति दिखाई है । स्वभावादिक पट्पदार्थ अष्टरूपा प्रकृति के पर्य्याय है। अथवा अन्य अर्थाभिधायित्व करके भिन्नार्थ है। यदि भिन्नार्थ है ? तो भिन्नार्थ में भी दो भेद हैं। फिर भिन्नार्थ स्वभावादिकों करके क्या है । कुछ स्वभाव करके कुछ ईश्वर ऐसैं मिलने मैं जगत्

का आरंभ होता है । अथवा स्वभावादिक पृथक् २ ही विश्व प्रगट करने में समर्थ है, इस प्रकार अनेक विकल्प उत्पन्न होते हैं [जेज्जटाचार्यने] ईश्वर को त्याग स्वभावादिकों को उस स्वरूप करकें अवभास होने सैं अभिन्न प्रकृतित्व प्रतिपादन करा है ।

प्रकृतिही कारण ऐसैं स्वमत कहते हैं ।

परमार्थतस्तुगुणत्रयात्मिकाप्रकृतिरेवकारणं यतःस्वभावादयःश्चत्वारःप्रकृतिपरिणामस्य धर्मविशेषतयाप्रकृतावेवान्तर्भवन्ति ।

अर्थ– वास्तव अर्थ सैं तो गुणत्रयात्मि का प्रकृतिही सर्व जगत् का कारण है । स्वभावादि चार प्रकृति परिणाम के धर्म विशेष हैं । अर्थात् प्रकृति मेंही इन्हों का अंतर भाव जानना ।

स्वभाव मत खण्डन ।

स्वभावस्तावत्सत्व रजस्तमसांतद्विकारणांपृथिव्यादिमहा भूतानाञ्चयादृशोविशेषइतिप्रकृतिपरिणामादन्योनभवति

अर्थ– स्वभाव तो साकल्य करकें सत्वादिगुण और उन्के विकार पृथिव्यादि पंचमहाभूत इन्का परिणाम विशेष कहाता है । इसी सैं स्वभाव प्रकृति सैं भिन्न नहीं है ।

नियत मत खण्डन ।

नियतेरपिपूर्वकृतसदसत्कर्मरूपाधारजोगुणपरिणामरूपत्वेननप्रकृतेरन्यत्वम् ।

अर्थ– नियति, पूर्व जन्म कृत जो शुभाऽशुभ कर्म के सदृश होता है, इसी सैं रजोगुण के परिणाम रूप होने सैं वह नियति प्रकृति सैं भिन्न नहीं है

काल मत खण्डन ।

कालोपिचन्द्रार्कादिगतिःक्रियालक्षणःतथाचमहाभूतानांपरिणामविशेषाःशीतोष्णाभवन्ति ।

का चिकित्सा में प्रयोजन नहीं है । यह अर्थ अन्यत्र भी दिखाया है ।

यतोभिहितंतत्सम्भवद्रव्यसमूहोभूतादिरुक्तः

अर्थ- इस सूत्र की बीजाध्याय में व्याख्या करी है । परन्तु यहा भी शिष्य वो ार्थ थोडा सा व्याख्यान करते है । जिसकारण पुरुष के शुक्र शोणित संयोग करके पंचमहाभूत प्रधान स्थूलदेह वह भूतादि कहिये चिकित्सा के उपयोगी है । इस मनुष्य देह से व्यतिरिक्त अन्य देह उपयोगी नहीं है ।

वैद्य शास्त्र प्रतिपाद्य कहते है ।

भौतिकानिचेन्द्रियाण्यायुर्वेदेवर्ण्यन्ते । तथेन्द्रियार्थाः ।

अर्थ- भौतिक इन्द्री और इन्द्रियों के अर्थ इस आयुर्वेद में वर्णन करे जाते है । तहा श्रवण, स्पर्श, दर्शन, रसन, घ्राण, ये इन्द्री है । और शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, ये इन्के अर्थ है ।

तथा चोक्तम् ।

पञ्चभूतात्मकत्वेपि । श्रोत्रेखंस्पर्शनेवायुर्दर्शनेतेज
उत्कटं । सलिलंरसनेभूमिघ्राणेतज्ज्ञैर्निरूपिता ॥

अर्थ- सर्व इन्द्रियों को पंचमहाभूतात्मकत्व यद्यपि है, तथापि कर्ण इन्द्री में आकाश मुख्य, तथा त्वचा में पवन, नेत्र में तेज, जीभ में जल, और नाक में पृथ्वी, ये पंचभूत मुख्य है ।

विषयों को पंचभौतिकत्व कहते है ।

शब्दोवैहायसःस्पर्शो वायवीयःप्रकीर्त्तितः ।
रूपमाग्नेयमाप्यस्तु रसोगन्धस्तुपार्थिवः ॥

अर्थ- शब्द आकाश संबधी, स्पर्श पवन संबधी, रूप तेज संबधी, रस जल संबधी, और गध पृथ्वी संबंधी है, एशब्दादिक पचमहाभूतों के विकार हैं । परंतु जिस महाभूत का जिस इन्द्री में आधिक्यता है, वोह शब्दादि गुण उसी इन्द्री करके ग्रहण करेजाय है । ऐसे दिखाते है- ।

स्वविषयग्राहकत्वऔरअन्यविषयनिषेधकहतेहैं ।

इन्द्रियेणेन्द्रियार्थन्तु स्वंस्वंगृह्णातिमानवः ।
नियतंतुल्ययोनित्वा न्नाऽन्येनाऽन्यमितिस्थितिः ॥

अर्थ- मनुष्य इन्द्रियों कर्के तिसी तिसी विषय का ग्रहण करता है । जैसैं, नेत्र नियम कर्के रूप कोही ग्रहण करते हैं । उसी प्रकार शब्द को कान, स्पर्श को त्वचा, रस को जीभ, गंध को नासिका नियम पूर्वक ग्रहण करे है । इस विषय म हेतु कहा है । [तुल्ययोनित्वात्] अर्थात् अपनी अपनी योनि के प्रति जाते है, जैसैं जल जल के प्रति जाता है । [नान्ये नान्यं] अर्थात् अन्य इन्द्री सैं कारण भूत के विना दूसरा विषय का ग्रहण नहीं होवे ।

अन्यसांख्यादिकोंसैंक्षेत्रज्ञकेविषयमेंआयुर्वेदकाभेदकहतेहैं ।

नचायुर्वेदशास्त्रेषूपदिश्यन्तेसर्वगताःक्षेत्रज्ञाःकिंतर्ह्यायुर्वेदे
असर्वगताःपुरुषाउपदिश्यंतेसत्वोपाधित्वात् ॥

अर्थ- आयुर्वेद शास्त्र में सत्वोपाधि होने सैं क्षेत्रज्ञ को सर्व गत नहींमानते किंतु असर्वगत मानतेहैं। सांख्यादि शास्त्रों में क्षेत्रज्ञ को सर्वगत मानते हैं । क्षेत्रज्ञ एक देशीहै इसी सैं अनित्यत्वता आई इस सैं [नित्याश्चोपदिश्यन्तेइति शेषः] अर्थात पुरुष नित्य है ऐसैं मानते हैं ।

नित्यत्व कैसैं सो दिखाते हैं ।

असर्वगतेषुक्षेत्रज्ञेषुनित्येषुनित्यपुरुषव्यापक
त्वाद्धेतूनुदाहरन्ति ।

अर्थ- असर्वगत जो क्षेत्रज्ञ नित्य उस में नित्यत्व प्रतिपादक ऐसैं सत्कारणत्वादिक हेतुओं को दिखाते है ।

तथाहि । सन्नात्मासुखादिलिङ्गोपलम्भात् अविष
योकारणश्चअतोनित्यः ।

अर्थ- आत्मा सत्तावान् कहिये भूत भविष्यत वर्त्तमान काल में हैं इस

का यह कारण है कि उस को सुख दुःखादि लिंगों का अनुभव होता है। इसी से अदृश्य हो कर कारण है, अतएव नित्य है।

इस विषय में भोज का वचन।

शुभाशुभाभ्यांकर्माभ्यां प्रेरणान्मनसोगते.। देहाद्देहांतरंयाति कृमिवच्छाश्वतोऽव्ययः॥ नित्यइत्युच्यतेसद्भिः सन्नकारणवान्यतः। इति

अर्थ- शुभा ऽशुभ कर्म करके तथा मन की गति की प्रेरणा से यह जीव पहली देह से दूसरी देह में जाता है। इसमें दृष्टान्त है। जैसे, तिनकाकी गिजार दूसरे तिनका को पकड पहले तिनका को छोडती है, उसी प्रकार पुरुष देहांतर को प्राप्त होता है। इसी से पुरुष शाश्वत, अव्यय, नित्य, और अकारण है, ऐसे बुद्धिमान कहते है।

सर्व मतों का उपसंहार।

आयुर्वेदशास्त्रसिद्धान्तेषुअसर्वगता क्षेत्रज्ञानित्याश्चेति

अर्थ- आयुर्वेद शास्त्र के सिद्धान्त में पुरुष, असर्वगत, तथा नित्य ऐसा है। * असर्वगत जीवों को सर्व योनि गमन कहते है *-

तिर्य्यग्योनिमानुषदेवेषुसंसरन्तिधर्माऽधर्मनिमित्तम्

अर्थ- तिर्यक् योनि, पशु पक्ष्यादिक तथा मनुष्य, देव, इन्हों में पुरुष जन्म पाते है। इस विषय में धर्म और अधर्म कारण है। परंतु तिर्यक् योनि में बहुत जन्म होते है। इसी सें सूत्र में तिर्यक् पद प्रथम धरा है। तदनतर मनुष्य धरा अर्थात् पाप पुण्य समान होने से मनुष्य देह मिलताहै। और पुण्य प्रधान देव देह कभी किसी को मिलती है, इसी से देव शब्द मूल में सब से पिछाडी धरा है।

इस विषय में अनुमान।

तेएतेऽनुमानग्राह्याःसुखदु खोपलब्धिरूपेणलिङ्गेनाव्यभिचारिणा

अर्थ– वे आत्मा सुख दुःखोपलब्धि रूप लक्षण द्वारा अनुमान करके ग्रहण करे जाते हैं। आत्मा के विना सुख दुःख का अनुभव नहीं होता है। जैसैं, धुँआ सैं अग्नि का अनुमान होता है। उसी प्रकार सुख दुःखोपलब्धि आत्मज्ञान का कारण होता है।

प्रत्यक्षप्रमाणसैंक्षेत्रज्ञकैसैंनहींजानाजायसोकहतेहैं।

परमसूक्ष्माश्चेतनावन्तः। शाश्वतलोहितरेतसः सन्निपातेषुअभिव्यज्यन्ते

अर्थ– क्षेत्रज्ञ परम सूक्ष्म परमाणु के सदृश चेतनावंत नित्य अैसा हैं, इसी सैं दीखता नहीं है * यदि अैसा है तो उत्पन्न कैसैं होता है सो कहते हैं, [लोहित रेतसः] अर्थात् आत्मा परम सूक्ष्म अैसा होनेसैं पंचभूतात्मक जो शुक्र शोणित उन्हों के संयोग सैं प्रगट होता है। जैसैं त्रसरेणु अन्यत्र नहीं दीखे परंतु झरोखा में सूर्य की किरणों सैं स्पष्ट दीखता है।

वैद्यककेअनुमतपुरुषोंकीषड्धातुकसंज्ञाकहतेहैं।

एषएवचसूक्ष्मपुरुषाणांभूतानाञ्चसंयोगोवैद्यके षड्धातुकःपुरुषःपरिभाषितः

अर्थ– वैद्यक शास्त्र में सूक्ष्मपुरुष, तथा पंचमहाभूतो के संयोग को षड्धातुकपुरुष कहते हैं। षड्धातुक यह संज्ञा कैसै करी इस लिये प्रथमाध्याय का प्रमाण देते हैं।

यतोभिहितंपञ्चमहाभूतशरीरिसमवायःपुरुषइति

अर्थ– पंचमहाभूत, और शरीरि कहिये आत्मा, इन्के संयोग को पुरुष कहते हैं।

उसपुरुषकोऔषधोपयोगीत्वकहतेहैं

सएषकर्मपुरुषश्चिकित्साऽधिकृतः

अर्थ– वह पुरुष कर्मफल भोक्ता है इसी सै चिकित्सित कर्मफल को भी प्राप्त होता है।

मनकेसंयोगकर्केजीवकेगुणहोतेहैं।

तस्यसुखदुःखेच्छाद्वेषौप्रयत्नःप्राणापानौ
उन्मेषनिमेषौबुद्धिर्मनःसंकल्पोविचारणा
स्मृतिविज्ञानमध्यवसायोपलब्धिश्चगुणाः

अर्थ– सुख, दुःख, इच्छा, वैर, कार्यारंभकउत्साह, वत्कसंचारीपवन, अधो वायु, नेत्रों का खुलना मूंदना, बुद्धि, (निश्चयात्मक अंतःकरण विशेष) मन (संकल्प विकल्पात्मक) संकल्प (उहा अपोह) स्मृति (अनुभूत पदार्थ स्मरण) विज्ञान (शिल्प शास्त्रादिकों का बोध) अध्यवसाय (बुद्धि का व्यापार) और उपलब्धि (शब्दादि विषयों की प्राप्ति) ए कर्मपुरुष के सोलह गुण हैं और इन्हीं को कला कहते हैं ।[गर्गी] आचार्य कहता है कि, सुख (प्रीति) दुःख (अप्रीत) इच्छा (सुख हेतु की लालसा) द्वेष (दुःख हेतु की मन में अनिच्छा) प्रयत्न (मनप्रवृत्तिक उत्साह) मन (संकल्पात्मक लक्षण) उस मन का संकल्प (विषयों में दोष गुण कल्पना) बाकी सब अर्थ समान हैं ।

प्रकृति के गुण

सत्वंरजस्तमस्त्रीणिविज्ञेया प्रकृतेर्गुणाः
तैश्चयुक्तस्यचित्तस्यकथयाम्यखिलान्गुणान्

अर्थ– सतोगुण, रजोगुण, और तमोगुण, ए तीन प्रकृति के गुण हैं। इन तीनो गुण युक्त असा जो चित्त उस्के संपूर्ण गुण पृथक् पृथक् कहते हैं।

सतोगुणयुक्तमनकेलक्षण।

आस्तिक्यंप्रविभज्यभोजनमनुत्तापश्चतथ्यंवचो
मेधाबुद्धिधृतिक्षमाश्चकरुणाज्ञानञ्चनिर्दम्भता
कर्म्मानिन्दितमस्पृहंचविनयोधर्मःसदैवादरा
देतेसत्वगुणाऽन्वितस्यमनसोगीतागुणाज्ञानभिः

अर्थ– आस्तिक्य (अर्थात् धर्म मोक्ष यह लोक परलोक आदिको मानना) अन्न का विभाग कर भोजन करना, क्रोध रहित, सत्य वचन, मेधा (ग्रंथा-

कर्षण शक्ति) बुद्धि (तत्काल विषया) धृति (मन का नियमन)अथवा धृति (भूत, प्रेत, काम, क्रोध, और लोभादिको के आवेश से राहित्यता) क्षमा करुणा, आत्मज्ञान, निष्कपट, (निन्दित कर्मो में घृणा) विनय, सदैव धर्म का आदर, (अथवा निद्रा रहित, स्पृहारहित, और निष्काम, ऐसी क्रिया को कर्म कहते हैं) उस का करने वाला, एसतोगुण युक्तवाले मन के गुण हैं।

रजोगुणयुक्तमनकेलक्षण ।

क्रोधस्ताडनशीतलताचवहुलंदुःखंसुखेच्छाऽधिका
दम्भःकामुकताप्यलीकवचनंचाधीरताऽहंकृतिः
ऐश्वर्य्यादभिमानिताऽतिशयितानन्दोऽधिकश्चाटनं
प्रख्याताहिरजोगुणेनसहितस्यैतेगुणाश्चेतसः २

अर्थ- क्रोध, किसी को मारना, असंत दुःख, सुख की अधिक इच्छा, दंभ, कामी, अथवा कामना राखनी, मिथ्या बोलना, अधीरता, अहंकारी, ऐश्वर्य्य सें अधिक अभिमान, असंत आनंद, सर्वत्र देश विदेशों में डोलना [अधृति अर्थात् चित्त का डमाडोल होना, अकरुण, अर्थात् निर्दयता, यह सुश्रुत में अधिक पाठ है] ये लक्षण रजोगुण युक्त चित्त के है। दंभ नाम वकवृत्ति अर्थात् वगला भगत को कहते हैं।

तमागुण युक्त मन के लक्षण।

नास्तिक्यंसुविषण्णतातिशायिताऽऽलस्यञ्चदुष्टामतिः
प्रीतिर्निन्दितकर्मशर्मणिसदानिद्रालुताऽहर्निशम् ।
अज्ञानंकिलसर्वतोपिसततंक्रोधान्धतामूढता
प्रख्याताहितमोगुणेनसहितस्यैतेगुणाश्चेतसः ॥

अर्थ- नास्तिक्यता (यह लोक परलोक शास्त्र और ईश्वर नहीं है) असंत खेद, अति आलस्य, दुष्टबुद्धि, निन्दित कामों में तथा निंदित सुख में निरंतर प्रीति, दिन रात निद्रावान, अज्ञान, निरंतर सर्वत्र क्रोध सें अंध हो जाना, मूढता, ये सब तमोगुण सहित चित्त के लक्षण हैं * अब पंचमहा-

भूतों के गुण कहते हैं।

आकाश के गुण।

अन्तारिक्षाःशब्दःशब्देन्द्रियंसर्वछिद्रसमूहोविविक्तताच

अर्थ– आकाश के गुण। शब्द, तथा शब्देन्द्रिय, तथा सर्वछिद्रसमूहों की विविक्तता, अर्थात् सर्व शरीर संबंधी जे पदार्थ–शिरा, स्नायु, हड्डी, पेशी, इत्यादिक उन को जातिव्यक्ति करके पृथक् २ करना, इतने गुण हैं।

वायु के गुण।

वायव्याःस्पर्शःस्पर्शेन्द्रियंसर्वचेष्टासमूहःसर्वशरीर स्पन्दनंलघुताच

अर्थ– वायु के गुण। स्पर्श, स्पर्शेन्द्रिय, तथा सर्व चेष्टासमूह, तथा सर्व देह का स्पंदन होना, तथा लघुता (हलकापना) ये गुण जानने।

तेज (अग्नि) के गुण।

तैजसाःरूपंरूपेन्द्रियंवर्णःसन्तापोभ्राजिष्णुतापक्तिर मर्पःतैक्ष्णंआशुक्रियाशौर्यविक्रान्तता

अर्थ– तेज के गुण कहते हैं। रूप, नेत्रइन्द्री, वर्ण, संताप (गरमी) कांति, पक्ति (उदराग्नि करके अन्न का पाक) अमर्ष (क्रोध) तैक्ष्ण (तीखा पना) तथा सर्व कर्मों में शीघ्रता और शूरवीरता।

जल के गुण।

आप्यारसोरसनेन्द्रियंसर्वद्रवसमूहोगुरुताशैत्यंस्नेहोरेतश्च

अर्थ– जल के गुण कहते हैं। रस, जिव्हा इंद्री, सर्वद्रवसमूह, गुरुता (भारीपना) शीतलता, स्नेह, और रेत।

पृथ्वी के गुण।

पार्थिवास्तुगंधोगन्धेन्द्रियंसर्वमूर्त्तिसमूहोगुरुताचेति

अर्थ– पृथ्वी के गुण कहते हैं। गंध, गंधेंद्रिय; (नासिका) सर्व मूर्तिसमूह; तथा भारीपना [और कठिनता] ये पृथ्वी के गुण कहे। अब आकाशादि पंचमहाभूतों को सत्वादि गुण मयता दिखाते हैं।

आकाश के धर्म ।

तत्रसत्ववहुलमाकाशंप्रकाशकत्वात्

अर्थ— आकाश प्रकाशक है; इसी सैं उसमें सतोगुण वहुत है ।

पवन के धर्म ।

रजोवहुलोवायुःचलत्वात्

अर्थ— वायु चंचल हैं; इसी सैं उसमें रजोगुण अधिक है ।

अग्नि के धर्म ।

सत्वरजोवहुलोग्निःप्रकाशकत्वाच्चलत्वाच्च

अर्थ—तेज प्रकाशक और चंचल है, इसी सैं उसमें सतोगुण रजोगुण वहुतहै ।

जल के धर्म

सत्वतमोवहुलाःआपःस्वच्छत्वात्प्रकाशकत्वाद्गुर्वाचरणत्वात्

अर्थ— जल स्वच्छ, तथा प्रकाशक, तथा भारी हैं । इसी सैं उस में सतोगुण और तमोगुण वहुत है ।

पृथ्वी के धर्म

तमोवहुलापृथ्वीअत्यन्तावरकत्वात्

अर्थ— पृथ्वी अत्यंत भारी है । इसी सैं उस में तमोगुण वहुत है ।

अथ पञ्ची करणम्

अन्योन्यानिप्रविष्टानिसर्वान्येतानिनिर्दिशेत् स्वेस्वे द्रव्येषुसर्वेषांव्यक्तंलक्षणमिष्यते ।

अर्थ— आकाशादि पञ्चमहाभूत अन्योन्य मिले हुए हैं उन्हों के लक्षण अपने अपने द्रव्यों में प्रगट हैं [वेदान्त के मत सैं पंची करण इस प्रकार है जैसै मानो कि, एक पृथ्वी सेर भर की है । उसके आध २ सेर के दो विभाग कीने, उन में सैं आध सेर के १ टुकडे को तो पृथक् धरा, और दूसरे आध सेर के टुकडे के आध आध पाव के ४ टुकडे करके, अग्नि, जल, पवन, और आकाश, इन चारो में मिलाय दिये तो देखो पृथ्वी में

आधा तो अपना ही विभाग है और चार विभाग आध २ पाव के अग्नि जल, पवन और आकाश के हैं । इसी रीत से अग्नि में आधा अपना हिस्सा है बाकी के जल, पवन, आकाश, और पृथ्वी के विभाग है, इसी रीत से और भी जल, पवन, आकाश के विभाग करने से और इसी रीति से आपस में मिलने से पंचीकरण कहाते हैं] ।

कारणगुणकीकार्यमेंव्याप्तिकहतेहैं ।

तत्रशब्दगुणमाकाशंमारुतेप्रविष्टंशब्दस्पर्शगुणत्वमारुतस्य

अर्थ— वैद्यक का मत कहते हैं । तहां शब्द गुण आकाश, पवन में प्रवेश हुआ, इसी से वायु में शब्द गुण आकाश का है । तथा स्वनिष्ठ स्पर्श, ऐसे दो गुण हैं । तथा आकाश पवन ये दोनों अग्नि में प्रवेश हुए, इसी से शब्द, स्पर्श, और तेजका गुण रूप, ये तीन गुण अग्नि में हैं । आकाश, वायु, तेज, ये जल मे प्रवेश हुए, इसी से शब्द, स्पर्श, रूप तथा स्वनिष्ठ रस, ऐसे चार गुण जल में हैं । तथा आकाश, वायु, तेज, जल, ये पृथ्वी में प्रवेश हुए-इससे पृथ्वी में शब्द, स्पर्श, रूप, रस, तथा स्वनिष्ठ गुण गंध ऐसे पांच गुण है ।

एवंव्योमानिलानलजलोर्वीणांपरस्परप्रवेशकत्वानुप्रवेशकत्वेतावस्थितानांअन्योन्यानुप्रवेशकत्वमुक्तम्

अर्थ— इस प्रकार आकाशादि पंचमहाभूत परस्पर आपस में प्रविष्ट अनुप्रविष्ट होकर रहते हैं उनको अन्योन्यानु प्रविष्टत्व कहा है । अन्य आचार्य [अन्योन्यानुप्रविष्टानि] इस पद का औरही प्रकार से व्याख्यान करते हैं ।

तत्राकाशेपिभूरणुरूपेणावस्थितासूक्ष्मरूपेणतोयतेजोनुगतस्यमारुतस्यसंचरणादाकाशेपवनदहनतोयान्यपिबोधव्यानि

अर्थ— तहां आकाश में, पृथ्वी अणु रूप करके रहती है । और पवन सू-

क्ष्म रूप करके रहती है । जल और तेज इन्में संचार करते हैं । इसी सैं आकाश में पवन, तेज, जल, और पृथ्वी भी रहती है। अैसा जानना ।

तथावायावप्याकाशंव्यवस्थितंव्यापकत्वात्

अर्थ— उसी प्रकार व्यापक होने सैं पवन आकाश में स्थिति है।

इस विषय में प्रमाण ।

अनुष्णशीतस्पर्शोऽयंद्रव्यज्ञैर्वायुरिष्यते
दाहकृत्तेजसायुक्तःशीतकृत्सोमसंश्रयात्

अर्थ— न, गरम और न, शीतल अैसा जिस्का स्पर्श, उस्को नव द्रव्य के जानने वाले पवन कहते हैं। परंतु वह पवन, तेज युक्त होने सैं गरमी करती है। अर्थात् गरम मालूम होती है । और सोम (चन्द्र) के संवन्ध सैं शीतलता करती है। अर्थात् सूर्य के संबंध सैं गरमी करे है और चंद्र के संबंध सैं शीतलता करे है। अथवा सोम (जल) संयुक्त होने सैं सरदी करे है। इस सैं यह सिद्ध हुआ कि पवन, जल और तेज मिली हुई है । तथा पवन में पृथ्वी परमाणु रूप सैं रहती है। उसी प्रकार व्यापक होने सैं, अग्नि में आकाश भी रहता है। और प्रेरणात्मक होने सैं उस अग्नि में पवन भी रहता है। तथा अग्नि में जल भी अनुमान होता है। इस्का कारण यह है, कार्य और कारण की एेक्यत्व है । अर्थात् जल कारण और अग्नि कार्य रूप है। जल सैं अग्नि प्रगट होती है, अैसैं अनेक प्रमाण हैं । दूसरे समुद्र में वाड़वाग्नि रहती है अैसैं लोक प्रसिद्ध भी है।

भूमिरपिभौमादिरूपेणतेजसिव्यवस्थिता

अर्थ— पृथ्वी भी भौमादि रूप करके तेज में रहती है।

अथकार्यमेंकारणकीव्याप्ति।

अथतोयद्रव्येप्याकाशंवाव्यवस्थितंव्यापकत्वात्

अर्थ— व्यापक होने सैं जल में, आकाश भी रहता है। तथा पवन तरंग ववूला आदि का कारण है। इसी सें जल में रहती है । अग्नि भी जल सैं उत्पन्न है इसी सैं उस में रहती है।

इसमें प्रमाण।

अद्भ्योग्निर्ब्रह्मनक्षत्रमश्मनोलोहमुत्थितं

एवंसर्वत्रगंतेजःस्वासुयोनिषुशाम्यति

अर्थ– जल सें अग्नि, ब्रह्म सें नक्षत्र, पत्थर सें लोह, उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार सर्वत्र रहने वाले तेज, अपने २ कारण में शांत होते हैं।

पृथ्वीजलमेंकैसेरहतीहै।

भूमिरपितोयद्रव्येअणुरूपेणव्यवस्थिता

अर्थ– पृथ्वी, जल में परमाणु रूप मे रहती है।

तथापृथिव्यामपिआकाशपवनदहनतोयान्येवंभूमेप्र

विभागेयेपञ्चविधायाभूमेप्रोक्तत्वात्

अर्थ– पृथ्वी में भी आकाश, पवन, अग्नि, और जल रहते हैं। इसमें प्रमाण है। कि जिस स्थल में पृथ्वी के विभाग कहे हैं, उस जगे पांच प्रकार की भूमि कही है। इस प्रकार पंचमहाभूतों को अन्योन्यानु प्रविष्ट कहा है। इसी को वेदांत वादी पंचीकरण कहते हैं। [स्वस्वेद्रव्येषु सर्वेषामिति] अर्थात् अपनी २ द्रव्य में आकाशादिकों के प्रगट लक्षण है। जैसें आकाश द्रव्यमें, आकाश लक्षण शब्द प्रगटहै। उसी प्रकार सर्वत्र जानना।

सब का उप संहार।

अष्टौप्रकृतयःप्रोक्ताविकाराःषोडशैवतु

क्षेत्रज्ञश्चसमासेनस्वतन्त्रपरतन्त्रतःइति

अर्थ– अव्यक्त, महान्, अहंकार, पंचतन्मात्रा इस प्रकार आठ प्रकृति कही हैं। तथा कान, त्वचा, नेत्र, जीभ, नाक, वाणी, हाथ, पैर, गुदा, लिंग, और मन, ये ग्यारे इन्द्री। तथा आकाश, पवन, अग्नि, जल, और पृथ्वी, ये पंचमहाभूत, ये सोलह विकार कहे। स्थूल, सूक्ष्म, शरीर को जो जाने उसको क्षेत्रज्ञ और उसी क्षेत्रज्ञ को पुरुष कहते हैं। इस प्रकार पचीस तत्व का निरूपण [स्वतंत्र] कहिये, शल्यतंत्र मैं और [परतंत्र] कहिये शालाक्यतंत्र में अथवा परतंत्र कहिये शांख्यशास्त्र में करा है।

शारीरनिवन्ध संग्रहस्य भाषायां सर्वभूतचिंता

शारीराध्यायः प्रथमः ॥ १ ॥

इति श्रीआयुर्वेदोद्धारे वृहन्निघंटुरत्नाकरे सौश्रुतशारीरे पंचमतरङ्गः ५ ॥



अथ द्वितियोध्यायः २ ॥



चिकित्सा में पुरुष को मुख्यता है, वह पुरुष शुक्रशोणित के संयोग सैं प्रगट होता है, यह प्रथम अध्याय में कहि आये हैं। परंतु इस जगे शुद्ध शुक्रशोणित (रुधिर) सैं गर्भोत्पत्ति होती है इसी सैं शुक्रशोणित की शुद्धी का प्रतिपादन करते हैं ।

अथातःशुक्रशोणितशुद्धिंशारीरंव्याख्यास्यामः ॥

अर्थ- पच्चीस तत्व निरूपण के अनंतर, शुक्रशोणित शुद्धी शारीर को कहते हैं। शुक्रशोणित इन्हों में शोणित शब्द स्त्रियों के आर्त्तव संज्ञक रुधिर का वोधक जानना। शुद्धी कहिये दुष्ट वात पित्त कफादिकों का मिलाप न होना, वह शुद्धि वातादिकों सैं दुष्ट हुआ जो शुक्र उसी की जानना।

दुष्ट शुक्र के लक्षण ।

वातपित्तश्लेष्मशोणितकुणपगंध्यनल्पग्रन्थिपूतिपू
यक्षीणरेतसःप्रजोत्पादनेनसमर्थाः

अर्थ- वात, पित्त, कफ, रुधिर, इन सैं दूषित वीर्य जिसका, तथा कुणप (मुर्दाकीसी) गंधि, वहुत, तथा गांठदार, दुर्गंधवान, राध के सदृश, अर्थात् दुर्गंध युक्त राध के समान, तथा क्षीण वीर्य असैं पुरुष संतान प्रगट नहीं कर सक्ते। तहां कहते हैं कि, यह जो लिखा है कि दुष्टवीर्य वाले, संतान नहीं कर सक्ते सो नहीं है, किंतु शुद्ध संतानोत्पत्ति नहीं कर सक्ते, असा जानना क्योंकि रोगों सैं जो अशुद्ध तथा वातादि सैं दूषित शुक्र वालों के भी जन्मांध, वहर, गूंगे, लगड़े, लूले, आदि पुत्र होते हैं।

शुक्र दोष चिकित्सा ।

तेष्वाद्यान्शुक्रदोषांस्त्रीन्स्नेहस्वेदादिभिर्जयेत् क्रियाविशेषैर्मतिमान्तथाचोत्तरवास्तिभिः

अर्थ– तिन शुक्र दोषों में, पहले कुणप गंधादिक तीन दोष, घृतादि स्नेह पान, पसीने, वमन, विरेचन, निरूहवस्ति, अनुवासनवस्ति, तथा उत्तरवस्ती, करके दूर करे । [निरूहादिवस्ति कहिये मल मूत्रादि द्वारों में हो कर चिकनाई मिली कषायादिकों की पिचकारी छुटाने के प्रयोग] ये सब यथा यथा प्रकर्ण में वर्णन करे जावेंगे । पुनः उत्तरवस्ति कहने सें विशेष करके उत्तरवस्ति को सर्वउपचारो में श्रेष्ठता दिखाई है ।

" कुर्याद्वातादिभिर्दुष्टेस्वौषधम् "

अर्थ– वातादि दूषित शुक्र में वातादि हरण कर्त्ता औषध करनी चाहिये । तहां वात कुपित में वातहरण कर्त्ता चिकनाई (घृतादि) गरम औषध, खट्टे, नोंन के पदार्थ आदि, पित्त कुपित्त में, मींठे, शीतल, कसेले, आदि पदार्थ, कफ कुपित में कडुए, रूखे, कसेले पदार्थ देने चाहियें ।

विशेष करके वातज शुक्र दोष में, यव, थूहर, सेंधानोंन, त्रिफला, और खटाई, डाल के घृत सिद्ध करे । इस्में जवाखार मिला के पीना चाहिये । तथा बेलगिरी, विदारीकंद, करके सिद्ध घृत में दूध मिलाय कें निरूहनवस्ती देवे । तथा दूध, कलींर के रस करके सिद्ध करा हुआ तेल सें अनुवासन और उत्तरवस्ति करनी चाहिये ।

पित्त दूषित शुक्र में, तालमखाने, गोखरू, और गिलोय, इन्के काढे सें सिद्ध और मूर्वा, मुलेटी डाला हुआ घृत को पीवे । तथा निसोत का चूर्ण मिला घृत सें जुलाब देना, छाछ, और श्रीपर्णी के रस सें सिद्ध घृत में दूध मिलाय निरुहवस्ती, मुलेठी, काकमुद्गा, करके सिद्ध तैल करके अनुवासन और उत्तर वस्ति कर्म करने चाहियें ।

कफ दूषित शुक्र में, पखान भेद, दुपतिया, और आमले, इन्के काढे करके सिद्ध, पीपर, और मुलहटी का चूर्ण, मिला हुआ घृत का पान । मैनफलके

क्काथ करके वमन कराना, दंती और वायविडंग के चूर्ण को तैल में मिलाय कर पीने करके जुल्लाव देना। अमलतास और मैनफल के काढे सैं निरूह वस्ती। मुलहटी, पीपल करके सिद्ध करे हुए तैल सैं अनुवासन, और उत्त रवस्ती लेनी चाहिये।

कुणपरेतवालेपुरुषकीचिकित्सा।

पाययेत्तनरंसर्पिभिषक्कुणपरेतसि
धातुकीपुष्पखदिरःदाडिमार्ज्जुनसाधितम्॥
पाययेदथवासर्पिःशालसारादिसाधितम्

अर्थ– जिस पुरुष के वीर्य में मुर्दे कीसी दुर्गंध आवे, उसको वैद्य धाय के फूल, खेरसार, अनार की छाल, और कोह की छाल का काढा अथवा कल्क करके सिद्ध करा गौ का घृत पिवावे। अथवा राल का कल्क काढा आदि करके उसमें घृत को सिद्ध कर पिवाना चाहिये।

ग्रंथिवानरेतकीचिकित्सा।

ग्रन्थिभूतेशठीसिद्धं। पालाशेवापिभस्मनि॥

अर्थ– जिसका वीर्य गांठ सदृश होवे, उसको कचूर के कल्क अथवा काथ करके सिद्ध करा हुआ घृत पिवावे। अथवा ढाक के खार करके सिद्ध घृतको पिवावे। तहां प्रमाण कहते हैं, ढाक की भस्म १ आढक, (२५६ तोले) जल ६ आढक में ओटावे, जब चतुर्थांश रहे, तब उसको उतार के कपडे में छान लेवे, पीछे गौ घृत १ प्रस्थ उसमें मिलाय, चूल्हे पर चढावे जब सब जल जर जाय घृत मात्र शेष रहे तब उतार लेवे, इस प्रकार घृत सिद्ध सर्वत्र करना चाहिये।

पूयरेतकीचिकित्सा।

परूषकवटादिभ्यांपूयप्रख्येचसाधितम्।

अर्थ– परूषकादि "परूषकवराद्राक्षा" तथा न्यग्रोधादिगण "न्यग्रोधपिप्पलेति" ये प्रथम सूत्र स्थान में कहि आए हैं, इन औषधों के कल्क, अथवा काढे में घृत सिद्ध करके राध के समान वीर्य वाले पुरुष को

पीना चाहिये ।

क्षीणरेतका उपचार ।

प्रागुक्तंवक्ष्यतेयच्चतत्कार्यंक्षीणरेतसि ।

अर्थ– जिस्का वीर्य क्षीण हो गया हो, उस पुरुष को पूर्वोक्त स्वयोनिवर्द्धनद्रव्य, तथा आगे वाजीकरणाधिकार में क्षीण वीर्य वालों को जो औषध कहेंगे, वो देनी चाहिये ।

मलगंधिशुक्रका उपाय ।

विटप्रभेतुपिबेत्सिद्धं चित्रकोशीरहिंगुभिः ।

अर्थ– जिस पुरुष का वीर्य मल मूत्र की गंध समान हो गया हो, उस पुरुष को चित्रक, उसीर, और हींग, इन्का कल्क अथवा काढा कर, उस्में गौ का घृत सिद्ध कर पीवे । यद्यपि मल मूत्र गंधवान् शुक्र रोग असाध्य है तथापि विष्ठादि गंध दूर करने को यह उपचार करे । सर्वथा यह रोग नहीं जाता, परंतु किसी आचार्य का यह मत है कि मल गंधवान् शुक्र साध्य है, इस्से इस जगे मल शब्द से विष्टा का ग्रहण है, मूत्र का नहीं है । अर्थात् मल गंधवान् शुक्र अच्छा हो सक्ता है, परंतु मूत्र गंधवान् शुक्र तो सर्वथा असाध्य है । इसी से ग्रंथ कर्त्ता ने इस्का उपाय भी नहीं कहा । मल गंधवान् शुक्र पर वंग्र संग्रह वाला कुछ विशेष लिखे है *।

शुक्रदोषमेंसामान्यउपचार ।

स्निग्धंवान्तंविरक्तश्चनिरूहमनुवासितम् ।
योजयेच्छुक्रदोषार्त्तंसम्यगुत्तरवस्तिना ।

अर्थ– जिस पुरुष का वीर्य कुणप (मुर्दे) कीसी दुर्गंध युक्त हो जावे उस पुरुष को स्नेह, वमन, विरेचन, निरूहवस्ति, अनुवासनवस्ति, और उत्तरवस्ति, इत्यादि उपचार को करना चाहिये ।

* हिंगुशीरचित्रकप्रियंगु समंगामृणालसिद्धं त्वगेलाचोचचूर्णमतिवा पंघृतपाययेदिति ।

शुद्धशुक्रकेलक्षण ।

स्फटिकाभंद्रवंस्निग्धं; मधुरंमधुगंधिचशुक्रमिच्छान्ति

अर्थ– जो शुक्र स्फटिक सदृश निर्दोष हो कर कुछ पतला तथा स्निग्ध, मधुर, तथा जिस्में मद्यकीसी गंध आती होवे, वह शुक्र गर्भ धारण विषय में उत्तम जानना । " केचित्तुतैलक्षौद्रनिभंतथा " कोई आचार्य कहता है कि तेल तथा छोटी मक्खी के सहत सदृश जो शुक्र है वह शुद्ध गर्भ धारण के योग्य है ।

तथाचवाग्भटे ।

शुक्रंशुक्लंगुरुस्निग्धं, मधुरंवहुलंवहुघृतमाक्षिकतैलाभंसद्गर्भायेति

अर्थ– जो शुक्र सपेद, भारी, चिकना, मीठा, वहुत, तथा घृत, सहत और तेल कीसी कांतिवाला उत्तम गर्भ के अर्थ होता है । वह दूध में जैसैं घृत रहता है; ईख में जैसैं रस रहता है, इसी प्रकार शुक्र, देह में शुक्रधरा कला का आश्रय कर्के सर्वांग में व्याप्त हो कर स्थित है । वह मज्जा, मुष्क स्तनों में हर्ष के होने सैं, संघट्टन कर्के हृदय में आवेश होने सैं, पिंडी भूत हो कर अंग सैं अंग में जाता है । तव गर्भ होता है, इस जगे घृत, तैल, सहत के सदृश कहने का और भी प्रयोजन है । अर्थात् जो शुक्र घृत के समान होता है उससैं जो गर्भ रहे वह गौर वर्ण होता है । सहत के वर्ण शुक्र सैं गर्भ का रंग स्याम अर्थात् कुछ ललोंही लिये स्याम होता है । और तेल के समान जो शुक्र होता है उससैं जो गर्भ रहे वह काले रंग का होता है । और मिश्रित वर्ण सैं गर्भ के भी मिश्रित वर्ण होते हैं ।

आर्त्तवदोषकेसामान्यउपचार ।

विधिमुत्तरवस्त्यन्तं, कुर्य्यादार्त्तवसिद्धये
स्त्रीणांस्नेहादियुक्तानां, चतसृष्वार्त्तवार्त्तिषु
कुर्य्यात्कल्कान्पिचूंश्चापिपथ्यान्याचमनानिच

अर्थ– स्त्रियों के वात, पित्त, कफ, और रुधिर, इन चार आर्त्तव पीडाओं के दूर करने को स्नेह, वमन, विरेचनादि, उत्तरवस्ती पर्यंत उपचार

वातादि रोगों के तारतम्य के सदृश करे। तथा वातादि दोष हरण कर्त्ता द्रव्यों के कल्क, काढे से, योनि का प्रक्षालन करना लेप, तथा पिचू कर्म करे (पिचु कहिये तेल, कल्क, काढा आदि कर कपडा भिजो उसका फाया धरने का प्रकार यह प्रकार नेत्र, तलुआ, योनि, मुख इत्यादिक ठिकाने करते है, सो आगे लिखेंगे तथा वातादि हारक, काढा, घृतादि स्नेह, करके निरूहवस्ती, अनुवासनवस्ती, प्रयोग करने चाहिये। तथा इसी प्रकार सर्व प्रकारों में उत्तरवस्ति, प्रयोग करने चाहिये। गयी आचार्य [चतसृषु] इस पद में चतुर्थशोणित प्रकृति भूत जो वस्त गंधी उसको शोणितार्त्तवार्त्ति मानता है। क्योंकि यह वस्त गंधी शोणितार्त्ति मात्र साध्य है, कुणप गंधि आर्त्तव साध्य नहीं है इसी में वातादि दोषहरण कर्त्ता द्रव्य संबंधी कल्कादिक योनिदोष प्रकरणोक्त देने चाहिये।

आर्त्तवदोषमेंसामान्यउपचार।

ग्रन्थिभूतेपिवेत्पाठां, त्र्यूपणंवृक्षकानिच । दुर्गन्धेपूयसंकाशे, मज्जतुल्येतथार्त्तवे ॥ पिवेद्भद्रश्रितंकाथं, चन्दनकाथमेवच ॥ शुक्रदोषहराणाश्च, यथास्वमवचारणं ॥ योगानांशुद्धिकरणं, शेषास्वप्यार्त्तवार्त्तिषु ।

अर्थ- जिस स्त्री का आर्त्तव गाढ दार हो गया हो, वह पाढ, सू. मिरच, पीपल, और कूडा की छाल, इन औषधों का काढा करके पीवे, और मूत्रपरीषगंधि, तथा दुर्गंधि युक्त, राध के समान, कफ पित्त करके तथा मज्जा के सदृश, अर्थात् त्रिदोष से दूषित, ऐसा आर्त्तव होने से द चंदन तथा लाल चंदन, का काढा करके पीवे। [गयी आचार्य] ता है कि, सपेद चंदन, और लालचंदन के कहने से इस जगह गोरोचन लेना चाहिये, क्योंकि लालचंदन में दुर्गंध दूर करने की शक्ति नहीं है। इसी सें गोरोचन लेवे, तथा दुर्गंध कहिये, कुणप गंधि, ऐसा व्याख्यान करता है। यद्यपि कुणप गन्ध्यादि पांच आर्त्तव असाध्य है, तथापि दुर्गंध नाशनार्थ चिकित्सा कही है। और जो वातादि संबंधी आर्त्तव दोष है उ-

न्में पूर्वोक्त शुक्र हरण कर्त्ता उपचार करने चाहिये । जैसें वातज पुष्प दोष में, भारंगी, देवदारु, सिद्ध घृत पान । अथवा कंभारी, और इन्द्रायण सें सिद्ध घृत पीवे, अथवा मुलहटी, पिठवन, का कल्क दूध, घृत, सहत, फूल प्रियंगु और तिल कल्क को योनि में धारण करे, अथवा शरल और मुद्गपर्णी के काढे सें भग का प्रक्षालन करे।

पित्त के आर्त्तव दोष में, कांकोली, क्षीरकांकोली, विदारी की जड का काथ, अथवा उत्पल (नीलाकमल) और पद्माख का काथ अथवा मुलहटी के फूल, कंभारी के फल का काथ में मिश्री डाल के पीवे । अथवा सपेद चन्दन का काथ करके उसमें सहत डाल के पीवे तो पित्त आर्त्तव दूर होवे। इत्यादि आयुर्वेद संग्रह में औषध लिखी हैं।

सर्वआर्त्तवदोषोंकीपथ्यकहतेहैं ।

अन्नंशालियवंमद्यं, हितंमांसंचपिच्छलम् ।

अर्थ– शाली (चामर) और यव ये अन्न, तथा मद्य, मांस, और पिच्छल पदार्थ, ये सब आर्त्तव दोष में पथ्य हैं।

शुद्धआर्त्तवकेलक्षण ।

शशास्त्रप्रतिमंयच्चयद्वालाक्षारसोपमम् ।
तदार्त्तवंप्रशंसंतियद्वासोनविरञ्जयेत् ॥

अर्थ– स्त्रियों के महिने की महिने जो भग द्वारा तीन दिन पर्यंत रुधिर निकले है, उसको आर्त्तव कहते हैं। तहां शुद्ध आर्त्तव के लक्षण कहते है । जो आर्त्तव शशे के रुधिर के समान लाल होवे, अथवा लाख के रंग सदृश लाल होवे, और कपडा पर गिरने सें दाग न पडे, वस्त्र धोने सें स्वच्छ हो जावे, उस आर्त्तव को निर्दोष सद्गर्भ के योग्य जानना।

रक्तप्रदरकेलक्षण ।

तदेवातिप्रसंगेन प्रवृत्तमनृतावपि ।
असृग्दरंविजानीया दतोन्यद्रक्तदर्शनात् ॥

अर्थ– वही आर्त्तव अति प्रसंग करके निकलने सें, अर्थात् विना ऋ-

तुकाल के बहुत निकलने मैं असृग्दर जानना । परन्तु पूर्व कहि आये जो शुद्ध आर्त्तव के लक्षण [शशासृप्रतिमं] इत्यादि उनके विना अन्य लक्षण होवे। जैसैं झागदार, शीघ्रगामी, खुजली, इत्यादि लक्षण होने सें असृग्दर जानना।

असृग्दरकेदोषसंबंधकृततथाव्याधिस्वभावकृतसामान्यलक्षणकहतेहैं।

असृग्दरोभवेत्सर्वः साङ्गमर्दः सवेदनः ।
तस्यातिवृद्धौदौर्बल्यं भ्रमोमूर्छामदस्तृषा ॥
दाहःप्रलापःपाण्डुत्व तन्द्रारोगाश्चवातजाः ।

अर्थ– सर्व प्रकार के असृग्दरों में, अंगों का टूटना, शूल का होना, ये लक्षण होते है। और जब इस रोग की असत वृद्धि होती है, अर्थात् आर्त्तव असन्तस्रवने से दुर्बलता, मूर्च्छा, भ्रम, (मद्यपान अथवा धतूरेके बीजखानेके समान अवस्था) प्यास, तथा देह में दाह, प्रलाप, (बकवाद) देह का पीलापना, तन्द्रा, और वात के रोग आक्षेपक, इत्यादि उपद्रव होते है।

रक्तप्रदरमेंअवस्थापरत्वउपचार।

तरुण्याहितसेविन्या स्तदाल्पोपद्रवंभिषक् ।
रक्तपित्तविधानेन यथावत्समुपाचरेत् ॥

अर्थ– जो स्त्री तरुण (सोलह वर्ष की) हो तथा हितपदार्थ का सेवन करे, उस्के असृग्दर अल्प उपद्रव युक्त होने सें रक्त पित्त संबंधी उपचार करके वैद्य जीते।

आर्त्तवकीअप्रवृत्तिलक्षणविकृति ।

दोषैरावृत्तमार्गत्वा दार्त्तवंनश्यतिस्त्रियः ।

अर्थ– मूल में [दोषैः] के लिखने सें दोष शब्द करके इस जगे कफ और वादी, अथवा वादी कफ मिले हुएन् का ग्रहण है । पित्त का ग्रहण नहीं है, कारण यह है कि, पित्त सें तो आर्त्तव की असन्त प्रवृत्ति होतीहै, इसी सें इन वात कफ दोषों सें आर्त्तव का मार्ग रुकने सें स्त्रियां का आर्त्तव नष्ट होता है । अर्थात् सर्वथा क्षय नहीं होता है किंतु निकलता हुआ

नहीं दीखे।

चिकित्सा।

तत्रमत्स्यकुलत्थाम्ल तिलमाषासुराहिता।
पानेमूत्रमुदश्विच्च दधिसूक्तञ्चभोजनम्॥

अर्थ– जिस स्त्री का आर्त्तव अर्थात् जो स्त्री रजो धर्म होने सैं वंद हो जावे, उसको मछली, कुल्थी, अम्ल (कांजी) तिल, उडद, और मद्यपीना हितकारी होता है। तथा गोमूत्र का पीना, [उदश्वित्] कहिये आधापानी और आधादही को मथ कर करा हुआ मठे का पीना, तथा दही, और सूक्त कहिये चूका का साग (जो पालक के समान होता है) ये सवपदार्थ भोजन करने चाहिये।

क्षीणंप्रागीरितंरक्तं सलक्षणचिकित्सितम्।
तथाप्यत्रविधातव्यं विधानंनष्टरक्तवत्॥

अर्थ– यद्यपि क्षीण रक्त के लक्षण, और चिकित्सा, प्रथम दोष धातु मल क्षय वृद्धि विज्ञानीयाध्याय में कहि आये हैं। तथापि इस जगे उसका ग्रहण करा है, इसी सैं नष्टरक्त में जो उपचार (मत्स्यकुलित्थादिक) कहे हैं, सो इस जगे करने चाहिये। अव प्रकरण प्रयोजन का उपसंहार कहते हैं। " एवमदुष्टशुक्रःशुद्धार्त्तवाच " इस प्रकार अदुष्टवीर्य पुरुष, और शुद्ध आर्त्तव वाली स्त्री होती है।

ऋतुकालमेंसुपुत्रोत्पादकास्त्रियोंकेआचार।

ऋतौप्रथमदिवसप्रभृतिब्रह्मचारिणी दिवास्वप्नाञ्ज नाऽश्रुपातस्नानानुलेपनाभ्यङ्गनखच्छेदन प्रधावनह सनकथनातिलायासान्परिहरेत्।

अर्थ– स्त्री को रजोदर्श होने सैं प्रथम दिन सैं लेकर तीन रात्रि पर्यंत ब्रह्मचर्य में रहना, तथा तीन दिन तक निद्रा, कज्जल लगाना, रुदन, स्नान, चंदन आदि अनुलेपन, उवटना, नखों का काटना, अथवा कुतरना, वहुत डोलना फिरना, वहुत हँसना, वहुतसा वोलना, तथा अति शब्द का

सुनना, लेखन, पंखे आदि से अयत हवा करना, इत्यादिक कर्म वर्जित है इन्हों का कारण भाव प्रकाश से कहते हैं।

नियमनपालनेकेदोष।

अज्ञानाद्वाप्रमादाद्वा लोभाद्वादैवतश्चवा । साचेत्कुर्यान्निपिद्धानि गर्भोदोपस्तदाप्नुयात् ॥ एतस्यारोदनाद्गर्भो भवेद्विकृतलोचनः । नखच्छेदनेकुनखी कुष्ठीत्वभ्यङ्गतोभवेत् ॥ अनुलेपात्तथास्नाना दुःखशीलोऽञ्जनादहक् । स्वापशीलोदिवास्वापा चञ्चल स्यात्प्रधावनात् । अत्युच्चशब्दश्रवणा द्वधिरःखलुजायते ॥ तालुदन्तोष्ठजिव्हासु श्यावोहसनतोभवेत् । प्रलापीभूरिकथना दुन्मत्तस्तुपरिश्रमात् ॥ स्खलतेभूमिखनना दुन्मत्तोवातसेवनात् ।

अर्थ– अज्ञान सें, अथवा प्रमाद सें, अथवा लोभ से अथवा दैववस सें, जो रजस्वला स्त्री निषिद्ध कर्म करे, तो उस से गर्भ (वालक) को दोष प्राप्त होते है। इस रजस्वला स्त्री के रुदन करने से, खोटे नेत्र वाला वालक होता है। नखों के कतरने सें, वालक खोटे नख वाला होता है। तेल फुलल आदि के लगाने सें, वालक कुष्ट रोगी होवे। चंदन आदि के लगाने सें, तथा स्नान करने से, दुःख युक्त आचरण वाला होवे। काजरआदि के लगाने से, अंधा वालक होवे। दिन में सोने सें, अत्यंत निद्रालू होवे। बहुत डोलने सें, चंचल होवे। बहुत ऊंचे स्वर के सुनने से, वालक बेहरा होवे। अत्यत हसने सें, वालक के तालू, दांत, होंठ, और जीभ, काली हो बहुत बोलने सें, वालक बकवादी होवे। अत्यत परिश्रम के करने से वालक उनमत्त (बावला) होवे। पृथ्वी खोदने से, जहा तहा गिरपडे ऐसा होय, और रजस्वला स्त्री के अत्यत पवन खाने सें वालक उनमत्त होताहै।

प्रथमरजोदर्शमेंशुभमासादि।

आद्यंरजःशुभंमाघ मार्गराधेषफाल्गुने ।

ज्येष्ठश्रावणयोःशुक्के सद्वारेसत्तनौदिवा ॥

अर्थ– माघ, मार्गशिर, वैशाख आश्विन, फागुन, जेठ, और सावन इन महिनों में तथा शुक्लपक्ष, श्रेष्ठवार, उत्तम लग्न, और दिन में स्त्री का प्रथम रजोदर्शवती होना शुभ कहा है * विशेष फल ज्योतिष के ग्रन्थों से लिखते हैं ।

* रजोदर्शमेंमासफल ।

चैत्रेस्यात्प्रथमर्त्तौतुनारीवैधव्यभागिनी । वैशाखेधनपुत्राढ्या ज्येष्ठेरोगान्विततथा ॥ १ ॥ शुचौमृतप्रजाप्रोक्ता श्रावणेधनधान्यदा । नभस्येदुर्भगाक्लिष्टा आश्विनेचतपस्विनी ॥ २ ॥ ऊर्जेप्यायुष्मतीनारी मार्गशीर्षेवहुप्रजा । पौषेतुपुंश्चलीनारी माघेपुत्रसुखान्विता । फाल्गुणेश्रीमतीसाध्वी क्रमान्मासफलंस्मृतम् ॥ ३ ॥

कृष्णपक्षशुक्लपक्षमेंरजोदर्शहोनेकाफल ॥

शुक्लपक्षेसुशीलास्या त्कृष्णेसाकुलटाभवेत् । कृष्णस्यदशमी याव न्मध्यमंफलमादिशेत् ॥ ४ ॥

वारपरत्वफलम् ॥

आदित्येविधवानारी सोमेचैवमृतप्रजा । भौमेचमृयतेनारी कन्याप्रसवनीवुधे ॥ ५ ॥ गुरौपुत्रप्रसवनी शुक्रेकन्यातनुप्रसू । शनौच पुंश्चलीवंशे प्रथमंपुष्पदर्शनात् ॥ ६ ॥

लग्नफलम् ॥

मेषेसव्यभिचारास्याद् वृषभेपरभोगिनी । मिथुनेधनभोगाढ्या कर्कटेव्यभिचारिणी ॥ ७ ॥ पुत्राढ्यासिंहराशौतु कन्यायांश्रीमतीभवेत् । विचक्षणातुलायाञ्च वृश्चिकेतुपतिव्रता ॥ ८ ॥ दुश्चारिणीधनुःपूर्वे अपरेचपतिव्रता । मकरेमानहीनाच कुंभेनिर्धनवंधुता ॥ ९ ॥ मीनेविलक्षणालग्ने ग्रहसंस्थाविवाहवत् ॥

कालपरत्वफलम् ॥

प्रातःकालेतुसधना सायान्हेसर्वभोगिनी । मध्यान्हेचभवेद्वेश्या

श्रुतित्रयमृदुक्षिप्र ध्रुवस्वातौसिताम्बरे ।
मध्यंचमूलादितिभे पितृमिश्रेपरेष्वसत् ॥

अर्थ- श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, मृगशिर, रेवती, चित्रा, अनुराधा उत्तराफाल्गुणी, उत्तराषाढ, उत्तराभाद्रपद, रोहिणी, और स्वातिनक्षत्र, इ-

---

निशीथेविधवाभवेत् ॥ १० ॥

नक्षत्रफलम् ॥

सुभगाचैवदुःशीला वंध्यापुत्रसमन्विता । धर्मयुक्काव्रतघ्नीच परसंतानमोदिनी ॥ ११ ॥ सुपुत्राचवदुःपुत्रा पितृकर्मरतामदा । दीनामज्ञावतीचैव पुत्राढ्याचित्रकारिणी ॥ १२ ॥ माध्वीपतिव्रतानित्यं सुपुत्रीकष्टकारिणी । स्वकर्मनिरताहिंस्रा पुत्रपौत्रादिसंयुता ॥ १३ ॥ निरंधनकथासक्ता पुत्रधान्यसमान्विता । मूर्खार्थाढ्यागुणवती दस्रर्क्षादिक्रमात्फलम् १४ ॥

वस्त्रपरत्वफलम् ॥

सुभगाश्वेतवस्त्रास्याद् दृढवस्त्रापतिव्रता । क्षौमवस्त्राक्षितीशास्या नववस्त्रा सुखान्विता ॥ दुर्भगाजीर्णवस्त्रास्या द्रोगिणीरक्तवाससा । नीलांवरधरानारी विधवाप्यपितायदि । मलिनांवरतोनारी दरिद्रासाद्रजस्वला ॥

विन्दुफलम् ॥

वस्त्रेस्युर्विषमारक्त विन्दवःपुत्रमाप्नुयात् । समाश्चेत्कन्यका चेति फलस्यात्प्रथमार्त्तवे ॥

अन्यच्च ॥

संमार्जनंकाष्ठतृणाग्निशूर्पान् हस्तेदधानाकुलटातदास्यात् । तल्पोपभोगेरहसिस्थिताचेत् दृष्टरजोभाग्यवतीतदास्यात् ॥

स्थलभेदनफलम् ॥

ग्रामाद्वहिःपरग्रामे वाचेत्स्याद्व्यभिचारिणी । पतिव्रतापतिस्थाने सुशीलाग्रहमध्यमे ॥ ग्राममध्येचदृष्टिश्च विधवाचदिगम्वरा । उपरागेचदुःशीला आयुष्यंजलसंनिधौ ॥ धनमध्येतुकन्याया धनधान्यसमृद्धिदा ॥ प्रथमा

न नक्षत्रों में तथा सपेद वस्त्र पहने हुए, जो स्त्री प्रथम रजोदर्शवती होवे, तो शुभ है। और मूल, पुनर्वसु, मघा विशाखा, तथा कृतिका, इन नक्षत्रों में आद्यरजोदर्श मध्यम है। और भरणी, ज्येष्ठा, आर्द्रा, श्लेषा, तीन्यो पूर्वा, इन्में आद्यरजोदर्श होना, अशुभ जानना।

निन्द्यरजोदर्शकहतेहैं।

भद्रानिद्रासंक्रमेदर्शरिक्ता संध्याषष्ठीद्वादशीवैधृतेषु।
रोगेष्टम्यांचन्द्रसूर्य्योपरागे पातेचाद्यंनोरजोदर्शनंसत्॥

अर्थ– भद्रा में, निद्रा में, संक्रांति में, अमावस में, ४-९-१४-६-१२-८ इन तिथों में, संध्या में, वैधृति योग में, रोग की अवस्था में, चंद्र सूर्य के ग्रहण में, और व्यतीपात में, प्रथम रजोदर्श अशुभहै। अशुभ रजोदर्श की शांति धर्मशास्त्रोक्त कर्त्तव्यहै।

रजस्वलाकेनियम।

आर्त्तवस्नानदिवसा दहिंसाब्रह्मचारिणी।
शयीतदर्भशय्यायां पश्येदपिपतिंनच॥
करेशरावेपर्णेवा हविष्यंत्र्यहमाचरेत्।

अर्थ– रजोदर्श स्नान के दिन सें लेकर तीनदिन पर्यंत, स्त्री को इस प्रकार वर्त्तना चाहिये। हिंसा न करे, ब्रह्मचर्य में रहे, कुशा की शय्या पर सोवे, और तीन दिन पर्यंत पति को भी न देखना चाहिये, हाथों में, पात्र में, अथवा पत्तल में, हविष्य आहार, अर्थात् घृत, शाल्योदनादि, अथवा क्षीर संस्कृतयवान्नादिक का भोजन करना चाहिये।

र्त्तवेस्यादितिशेषः

अत्राशुभफलापवादमाह॥

अशुभमपिसमस्तंचार्त्तवंसंप्रभूतम् सुरगुरासितयुक्तेवीक्षतेवाथलग्ने।
तिमिरमिवकठोरज्योतिरुत्पत्तिकाले क्षयमथसमुपैतिप्राप्नुयादीप्सि
तानि-कठोर-ज्योति-सूर्यः

ताद्दशंजनयेत्पुत्रं भर्त्तारंदर्शयेत्ततः ॥

अर्थ– ऋतु स्नान करके स्त्री प्रथम जैसे पुरुष को देखे वैसेही पुत्र को प्रगट कर्ती है । इसी में प्रथम भर्त्ता कोही देखे, इस जगे भावमिश्र इस श्लोक के अंत का चरण (ततःपश्येत्प्रियंपति) ऐसा लिख कर अर्थ करते है कि, प्रथम भर्त्ता को देखे यदि भर्त्ता समीप न होय तो प्रिय कहिये पुत्रादिक उनको भी प्रथम देखे, इस जगे स्नान के कहने से चरकोक्त पुष्प स्नान भी कराना चाहिये।

यथा।

एताभिश्चैवौषधीभिःपुष्येपुष्येस्नानंसदाचसमालभेतः

अर्थ– इन पूर्वोक्त औषधियों से, पुष्य नक्षत्र में रजोदर्शवती को सदैव स्नान करना चाहिये।

तथोक्तवाराहमिहिरेण।

नद्दिनत्रयंनिषेवेत्स्नानंमाल्यानुलेपनंचस्त्री स्नायाच्चतुर्थदिवसेशास्त्रोक्तेनोपदेशेन ॥ १ ॥ पुष्पस्नानौषधयोयाःकथितास्ताभिरम्बुमिश्राभि स्नायात्तथात्रमन्त्र सएवयःस्तत्रनिर्दिष्टः २

अर्थ– रजस्वला स्त्री ३ दिन पर्यंत स्नान न करे। फूलमाला पहनना और चंदन आदि का लगाना त्याग देवे । चौथे दिन शास्त्रोक्त विधि से स्नान करे। पुष्प स्नान के प्रकरण में जो औषधी कही हैं। उन को जल में मिलाय के स्नान करे। और पुष्प स्नान में जो मंत्र कहा है, वही मंत्र यहां भी पढना चाहिये।

उक्तऔषधियोंकोकहतेहैं।

ज्योतिष्मतींत्रायमाणा मभयामपराजिताम्। जीवांविश्वेश्वरींपाठां समङ्गाविजयांतथा ॥ १ ॥ सहांचसहदेवींच पूर्णकोशांशतावरीं। अरिष्टकांशिवांभद्रां तेषुकुम्भेषुविन्यसेत् ॥ २ ॥ ब्राह्मींक्षेमामजांचैव सर्वबीजानिकाञ्चनीं

मङ्गलानियथालाभं सर्वौषधिरसांस्तथा ॥ ३ ॥ रत्नानि सर्वगन्धांश्च विल्वंचसविकंकतम् । प्रशस्तनाम्न्यश्चौषध्यो हिरण्यंमङ्गलानिच ॥ ४ ॥

अर्थ– मालकांगनी, त्रायमाण, हरड, अपराजिता, (शमी) जीवंती विश्वेश्वरी, पाढ, मजीठ, विजया, मुद्गपर्णी, सहदेई, पूर्णकोशा, शतावर, नीम, आमरे, और श्वेतदूर्वा, इन्को स्थापित कुंभों में (घडों) में डाले, त्रा, ह्मी, क्षेमा, अजा, सर्वौषधि, हलदी, और मंगलकर्त्ता जो जो औषधि मिले वो डाले । रत्न (हीरा, पन्ना, आदि) डाले, (चंदन, केशर, कपूर, खस, आदि) सर्व सुगंधित वस्तु डाले । वेल, विकंकत वृक्ष के फल, तथा जिन्के सुन्दर नाम (जैसें जया, पुत्रजीवा, अमृतवल्ली, पुनर्नवा आदि) औषधि और सुवर्ण, (गोरोचन, सरसों, दूर्वा, आदि) मंगल वस्तु ये सब उन कलसों में डाले । जिन को पुष्प स्नान की विशेष विधि देखनी हो वो, वृहत्संहिता की ४८ वीं अध्याय में देख लेवे । चरक मुनि ने जो औषध कही है वो यह है, ऐन्द्री, ब्राह्मी, सतावर, सपेददूव हरी दूव, पाढल, आमरे, नागवला, वाघ्रपुष्पी, (केशर, २ भाग, उशीर १ भाग, चंदन १ भाग,) और विश्वक्सेनकांता इत्यादि ।

साचेदेवमाशासीत । वृहन्तमवदात हर्य्यक्षमोजास्विनंशुचिसत्वसंपन्नंपुत्रमिच्छेयमिति । शुद्धस्नानात्प्रभृत्यस्यैमन्थमवदातयवानांमधुसर्पिर्भ्यांसंसृज्य श्वेतायागोःसवत्सायाःपयसालोड्यराजतेकांश्येवापात्रेकालेकालेसप्ताहंसततंप्रयच्छेत् । पानायप्रातश्चशालियवान्नविकारान् दधिमधुसर्पिर्भिःपयोभिर्वासंसृज्यभुंजीत ।

अर्थ– यदि स्त्री असी इच्छा करे कि, मेरे श्रेष्ठ और उज्ज्वल सिंह के समान तेजस्वी, पवित्र और सत्वसंपन्न, असा पुत्र होवे । तो शुद्ध स्नान सें लेकर नित्य इस्को शुद्ध जवों को सहत घृत मे मिलाय वछडावाली श्वेत गौ

के दूध में भिजोय, चांदी अथवा कांसे के पात्र में समय समय में सात दिन प्रातः काल पीने को देवे । तथा चावल, जो, के पदार्थों को दही, महत और घृत के साथ अथवा दूध के साथ भोजन करे ।

तथासायमवदातशरणशयनासनयानवसनभूषणाचस्यात् । शश्वत्श्वेतंमहान्तमृषभंआजानेयंहरिचन्दनाङ्कितंपश्येत् । सौम्याभिर्मनोऽनुकूलाभिरुपासीतसौम्याकृतिवचनोपचारचेष्टाश्चस्त्रीपुरुषानितरानपिचेन्द्रियार्थानवदातान्पश्येत्सहचर्यश्चैनांप्रियहिताभ्यांसततमुपचरेयुः । तथाभर्त्तानिचमिश्रीभावमापद्येयातामित्यनेनविधिनासप्तरात्रंस्थित्वाष्टमेऽहन्याप्लुत्यसशिरस्काभर्त्रासहाहतानिवस्त्राण्याच्छादयेत्अवदातानिअवदातश्चस्रजोभूषणानिविभृयात्

अर्थ– इसी प्रकार सायंकाल में स्वच्छ शय्या पर सोना, शुभ आसन पर बैठना, तथा सुंदर सवारी, वस्त्र, भूषण, आदि का आश्रय लेना चाहिये । और सायंकाल तथा प्रातः काल निरंतर श्वेतवर्ण और महान् बैल का तथा कुंकुमागर चंदन से पूजित उत्तम घोडे का दर्शन करे । सौम्य और मनके अनुकूल ऐसी स्त्री इसके समीप रहा करे । तथा सुंदर है स्वरूप, वचन, उपचार, और चेष्टा, जिनकी ऐसे स्त्री पुरुष तथा अन्य (पशु पक्षी आदि) इन्द्रियों के अर्थ (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध,) आदि उज्ज्वल पदार्थों को देखे । तथा इस की सहेली प्यार और हित से निरंतर इसका उपचार करें । तथा इसके पति को इससे मिलाप न होने देवे, इस प्रकार सात रात्रि पर्यंत रह कर आठवें दिन सशिरस्क स्नान करके पति के साथ उज्ज्वल वस्त्र, भूषण, फूलों के हार आदि को धारण करे ।

ऋग्कोशांशतां विधानंपुत्रीयं उपाध्यायःसमाचरेत् सेत् ॥ २ ॥ के अनन्तर, मङ्गलपूर्वक आगे जो विधि कहते हैं उ... (गर्भाधान ?) वेद का जानने वाला उपाध्याय (पुरोहित)

पुत्र के निमित्त विधिपूर्वक इष्टी करे. विधिपूर्वक कहने का यह प्रयोजन है कि, जिस प्रकार वेद में लिखा है उसी प्रकार करे न्यूनाधिक न करे । सो आगे लिखते हैं । यह प्रकरण चरक की ८ वीं अध्याय में लिखा है

अथपुत्रेष्टीविधिः ॥

तत्राचार्योब्राह्मणप्रयुक्तोऽनुपहतवस्त्रसंवीतश्चार्षभेचर्मण्युपविष्टोराजन्यप्रयुक्तोवैयाघ्रेआनडुहेवावैश्यप्रयुक्तोरारवेवास्तिवाचतुरस्रंस्थंडिलंगोमयोदकाभ्यांमुपलिप्योल्लिख्यदर्भैरास्तीर्य्यः । वेणुयूपंदक्षिणेनब्रह्माणंव्यस्थाप्यशुक्लकुसुमगन्धवलिभिरभ्यर्च्याग्निंप्रणीय सस्कृत्य पालाशीभिःसमिद्भिरग्निमुपसमाधाय मंत्रोदकपूर्णपात्रमग्नेरग्रेस्थापयित्वा पुत्रजन्माशंस्याज्यं जुहुयान्महाव्याहृतिभि र्योषिच्चपुत्रार्थिनीसहभर्त्रापश्चिमतोग्ने ऋत्विजोदक्षिणतः समुपविशेत् । ततोस्याब्राह्मणःप्रजापतिमुदिश्य यथाभिलषितसम्पादनाय मनसायोनोकाम्यायामिष्टिंनिर्वपेत् " अनयोर्विष्णुर्योनिंकल्पयतु त्वष्टारूपाणिनिर्विंशत्विति " ततश्चाज्येनस्थालीपाकमनिर्वायनिर्जुहुयात् । यथाम्नायंचोपमन्त्रिमुदकपात्रमस्मैदद्यात् । सर्वानुदकार्थानकुरुष्वेति । ततःसमाप्तेकर्मणिपूर्वंदक्षिणंपादमभिहितंतीव्रदक्षिणमग्निमुपक्रमेत् । ततः परिक्रम्यब्राह्मणान्स्वस्तिवाचयित्वासहभर्त्राआज्यशेषंप्राश्नीयात् । पूर्वं पुमान्जघन्यंस्त्रीनचोच्छिष्टमवशेषयेत्-इतिपुत्रीयविधानं ।

अर्थ- तहां आचार्य रजोदर्शन सैं १६ दिन रात्रि ऋतु संबंधी होते हैं इन्में चार रात्रि को त्याग कर शुभ दिन, घडी, मुहूर्त्त, नक्षत्र, और शुभ वार में पुत्रेष्टी करावे । पुत्रेष्टी कर्त्ता, प्रातः काल स्नानादि कर्म करके तथा पत्नी भी नवीन उदक सैं स्नान कर मंगलीक वस्त्र भूषणों को धारण कर स्वस्तिवाचन अभ्युदयिक कर्म करके, फिर संकल्प करावे " श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं पुत्रेष्टिंचकरिष्ये " तहां ब्राह्मण के योग्य नवीन वस्त्र सैं आच्छादित वैल के चर्म का आसन, राजा के योग्य व्याघ्र अथवा वैल के चर्म का आसन, वैश्य को रूरू अथवा वकराके चर्म का आसन है, उस्पै स्थिति हो चौकोन वेदी को लीप कुशा सैं रेखा कर उस्पै कुशा विछावे । पीछे पोले वांस का स्तंभ को खडा करे, और वेदी के दक्षिण में ब्रह्मा को स्था-

पित करे । सपेद फूल, चंदन, बलिदान आदि से पूजन करे । पीछे वेदी के पचभू संस्कार करके, अग्नि स्थापन करे । ढाक की समिधा से अग्नि को प्रज्वलित करे, मंत्रित जल के पर्णपात्र को अग्नि के आगे स्थापन करे, तदनंतर पुत्र जन्म के लिये प्रसमनीय आज्य (घृत) को (ओंभूर्भुवःस्वः) इत्यादि महा व्याहृतियों से हवन करे, उसी प्रकार स्त्री भी पुत्र की इच्छा से पति के साथ अग्नि के पश्चिम में बैठे, और ऋत्विज अग्नि के दक्षिण में बैठे, पीछे उस स्त्री को ब्राह्मण प्रजापति के उद्देश से वाञ्छित कामना के अर्थ मन करके कुंड में काम्येष्टी को इन मंत्रों से हवन करावे " अनयोर्विष्णुर्योनिंकल्पयतु त्वष्टारूपाणिपिंशतु, आसिंचतुप्रजापतिर्धातागर्भंदधातुतेस्वाहा ॥ आगर्भंधेहिसिनीवालिगर्भंधेहिसरस्वति गर्भंतेअश्विनौदेवावाधत्तांपुष्करस्रजास्वाहा " तदनंतर चरु और घृत मिलाय के ब्रह्मा, विष्णु, के नाम से प्रधानाज्य होम करे । इस प्रकार सात सात आहूती देवे । पीछे सब ब्राह्मण पूर्वोक्त पर्णपात्र का जल लेके दोनों स्त्री पुरुषों का " अपनःशोशुचेति " इन मंत्रों से मूर्धाभिषेक करे । पीछे अग्नि का और सूर्य का उपस्थान करना चाहिये, तदनंतर अपने अपने कुल रीत्यानुसार उदक पात्र इस पुरुष को देवे । " सर्वानुदकार्थानकुर्य्योति " इस प्रकार कर्म की समाप्ती में प्रथम दक्षिण पैर को धरती हुई तीव्रज्वाला वाली अग्नि की परिक्रमा करे, पीछे ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन पढाय ब्राह्मणों को भोजन दक्षिणा से प्रसन्न कर, आशीर्वाद लेवे । तदनंतर आज्य और चरु शेष को पति के साथ प्रथम पुरुष और पीछे स्त्री भोजन करे । उच्छिष्ट बाकी न छोडनी चाहिये । इस प्रकार पुत्रेष्टी त्रिवर्ण को करनी चाहिये ।

नमस्कारपरायास्तु शूद्रायामंत्रवर्जितम् ।
अवंध्यएवसंयोग. स्यादपत्यंचकामतः ॥

अर्थ- शूद्र की स्त्री को नमस्कार है प्रधान जिसमें ऐसी पूर्वोक्त पुत्रेष्टी मंत्र रहित करानी चाहिये । अर्थात् शूद्रा स्त्री को पुराण आदि के मंत्रों से अथवा " ब्रह्मणेनमः, विष्णवेनमः " इत्यादि नाम मंत्रों से इष्टी

करानी चाहिये, इस प्रकार इष्टी करके संयोग करे तो संयोग सफल हो और जैसैं पुत्र कन्या की इच्छा करे उसी प्रकार की संतान होवे।

यातुस्त्रीश्यामंलोहिताक्षंव्यूढोरस्कंमहाबाहुंपुत्रमाशासीत। यावाकृष्णंकृष्णमृदुकेशंशुक्लाक्षंशुक्लदन्तंतेजस्विनमात्मवन्तं मेषएवानयोरपिहोमविधिः। किंतुपरिवर्हवर्णवर्ज्यस्यात्

अर्थ– जो स्त्री श्याम वर्ण लाल नेत्र, विस्तीर्ण छाती, और लंबी भुजा वाले पुत्र की इच्छा करे, तथा जो स्त्री कृष्ण वर्ण रूप में काले और नम्र केश, स्वेत नेत्र, स्वेत दांत, तेजस्वी, और आत्मवेत्ता, ऐसैं पुत्र की कामना करे इन दोनों को पूर्वोक्त होम कराना चाहिये, किंतु परिवर्हवर्ण (ग्रह सामिग्री) वर्जित कर्त्तव्य है और पुत्र वर्णानुरूप आशीर्वाद लेने चाहिये।

कर्मान्तेचक्रमंह्येत मारभेच्चविचक्षणः।

अर्थ– इस प्रकार पुत्रेष्टी कर्म के अनंतर, आगे जो विधि कहते हैं उसको बुद्धिवान् पुरुष करे।

गर्भाधानमेंनियम।

ततोपराण्हेपुमान्मासंब्रह्मचारीसर्पिः स्निग्धःसर्पिःक्षीराभ्यांशाल्योदनंभुक्त्वा

अर्थ– तदनंतर १ महिने पर्यंत ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने वाला पुरुष, सायंकाल को शरीर में घृत मर्दन करके सुगंधित जल सैं स्नान कर घृत और दूध सैं स्निग्ध साठी चावलों का भात भोजन कर के स्त्री के समीप जावे।

गर्भाधानमेंस्त्रीकेनियम।

मासंब्रह्मचारिणीतैलस्निग्धांतैलमाषोत्तराहारांनारीमुपेयादात्रौसामभिर्निश्वास्य

अर्थ– एक महिने पर्यंत ब्रह्मचर्य व्रत करने वाली स्त्री, सुगंधित तैल

का मालिस कर स्नान करे पीछे तिल के पदार्थ और उरद के पदार्थ प्रधान ऐसा भोजन करा जिसने ऐसी स्त्री के समीप रात्रि मे पुरुष प्राप्त हो कर, प्रिय वचनों से उसको प्रसन्न कर गमन करे । [मासब्रह्मचारिणी] इस्के कहने स यह प्रयोजन है कि १ महिने तक मन करके भी पुरुष की इच्छा न करे ।

तथाचवाग्भटे ।

शुद्धशुक्रार्त्तवंस्वस्थं संरक्तंमिथुनंमिथः ।
स्नेहैःपुंसवनैःस्निग्धं शुद्धंशीलितवस्तिकं ॥

अर्थ– शुद्ध शुक्रार्त्तव के लक्षण कह कर अब गर्भ सभव के पूर्व कर्त्तव्य कर्म को कहते ह । शुद्ध ह शुक्र और आर्त्तव जिन्हों के, और किंचिन्मात्र भी रोग जिन्क देह मे होवे नहीं, तथा परस्पर अनुराग युक्त अर्थात् अन्योन्य दर्शनमात्र सहीं काम बाणों करकें विद्ध हृदय जिन्हों का असे स्त्री पुरुष पुसवन कर्त्ता (फल घृत, कल्याण घृत, और प्रमारणी घृत आदि) स्नेहो से देह को स्निग्ध करे, तथा वमन विरेचन द्वारा देह शुद्ध करे, और अभ्यास करके वस्ती का अनुष्ठान करना चाहिये । इस जगे [संरक्त] कहने का यह प्रयोजन है कि, प्रीत वाली स्त्रीका सेवन करे प्रीत रहित स्त्री के सेवन से, अनेक दुःख और मरण आदि का भय होता ह । जैसे लिखा है ।

शस्त्रेणवेणीविनिगूहितेन विदूरथंस्वामहिषीजघान । विषप्रदिग्धेनचनूपुरेण देवीविरक्ताकिलकाशिराजं ॥ एवंविरक्ताजनयंतिदोषा न्प्राणाच्छिदोऽन्यैरनुकीर्त्तितै किम् । रक्ताविरक्ता पुरुषैरतोऽर्था त्परीक्षितव्या प्रमदाप्रयत्नात् ॥

अर्थ– विदूरथ महाराज की राणी, विदूरथ महाराज को वालों में छिपे हुए शस्त्र (छुरी) स मारती हुई । उसी प्रकार काशी नरेश को उन्की राणी विषलिप्त नूपुर (पायजेम) से वध करती हुई । इस प्रकार वि

रक्त स्त्री प्राण नाशक दोषों को प्रगट करती है । और वहुत कहना क्या है ? पुरुष को चाहिये कि अनुरक्त और विरक्त स्त्री की परीक्षा करके पश्चात् संभोग करना उचित है ।

पृथक्पृथक्उपचारकहतेहैं ।

नरंविशेषात्क्षीराज्यैर्मधुरौषधसंस्कृतैः

अर्थ– इस प्रकार दोनों स्त्री पुरुषो की तुल्य कर्त्तव्यता कह कर, अव इन दोनों का पृथक्पृथक् उपचार कहते हैं । जैसें कि पुरुष को विशेष करके मधुर प्राय मधुर प्रभाव वाली जीवनीयादि औषधों स संस्कार करे हुए दूध घृतों का सेवन करना चाहिये [विशेषेण] इस पद के कहने सें यह प्रयोजन है कि संस्कृत दूध घृत का पुरुष कोही सेवन करना चाहिये स्त्री को इन्का सेवन नहीं करना चाहिये ।

नारींतैलेनमाषैश्च पित्तलैःसमुपाचरेत् ।

अर्थ– स्त्री तैल और माष (उरद) के पदार्थों का तथा पित्तल पदार्थों का सेवन करे । पित्तल पदार्थ रुधिर की वृद्धि के हेतु सेवन कर्त्तव्यहै, अव इस जगे यह भी जानना उचित है कि स्त्री पुरुष का संयोग कितनी अवस्था में होना उचित है यह सुश्रुत की दशवीं अध्याय में लिखा है परंतु हमारी समझ में इसी जगे लिखना अच्छा है सो लिखते हैं ।

अथास्मैपञ्चविंशतिवर्षायद्वादशवर्षांपत्नीमावहेत्

अर्थ– विद्या संपन्न पच्चीस वर्ष की अवस्था होने पर पुरुष को वारह वर्ष की अवस्था वाली पत्नी होनी उचित है । परंतु वाग्भट इस सें विपरीत कहते हैं ।

पूर्णषोडशवर्षास्त्री पूर्णविंशेनसंगता । शुद्धेगर्भाशयेमार्गे रक्तेशुक्रेऽनिलेहृदि ॥ वीर्यवंतंसुतंसूते ततोन्यूनाब्दयोपुनः रोग्यल्पायुरधन्योवा गर्भोभवतिनैववा ॥

अर्थ– पूर्ण १६ वर्ष की स्त्री, २० वर्ष की अवस्था वाले पुरुष के साथ संग करने सें, शुद्ध गर्भाशय और गर्भाशय का मार्ग तथा रुधिर वीर्य

पवन और हृदय के शुद्ध होने से स्त्री सामर्थ्यवान् पुत्र को प्रगट करे, [परंतु वाग्भटकृत संग्रह में वाग्भटही लिखते हैं कि, १६ वर्ष की स्त्री २५ वर्ष वाले पुरुष के साथ पुत्र होने के निमित्त संग करे] इससे न्यून अवस्था वाले अर्थात् १५ वर्ष और १८ वर्ष के स्त्री पुरुष के संयोग होने से रोगी, अल्पायु, और दुष्ट बालक होता है । अथवा ऐसी अवस्था वाले पुरुषों के संग से गर्भ नहीं भी होता है ।

अल्पावस्थामेंसंगकरनेकेअवगुणसुश्रुतमेंभीलिखेहैं, जैसे ।

ऊनशोडषवर्षाया मप्राप्त पञ्चविंशतिः । यद्याधत्तेपुमान्गर्भं कुक्षिस्थःसविपद्यते ॥ जातोवानचिरंजीवे ज्जीवेद्वादुर्बलेन्द्रियः । तस्मादत्यन्तबालायां गर्भाधानंनकारयेत् ॥

अर्थ– जिस स्त्री की १६ वर्ष की अवस्था न हुई हो, उसमें २५ वर्ष की अवस्था से न्यून अवस्था वाला पुरुष गर्भ स्थापन करे तो, वो गर्भ कूख में ही नष्ट हो जावे । यदि गर्भ में जी के उत्पन्न भी होवे तो बहुत जीवे नहीं, और जीवे तो दुर्बलइन्द्री वाला होवे । इसी कारण असत बाल्य अवस्था वाली स्त्री में पुरुष को गर्भाधान करना न चाहिये । सुश्रुत में जो किसी ने बारह वर्ष की अवस्था वाली स्त्री में गर्भाधान करना लिखा है सो सर्वथा असत्य है क्योंकि वाग्भट और मनु महाराज से विरुद्ध है-हम को ऐसा निश्चय होता है कि यह पाठ किसी आधुनिक पोप महात्मा का कल्पित है ।

तथाप्रमाणान्तर ।

चतस्रोवस्थाशरीरस्यवृद्धिर्यौवनंसंपूर्णताकिञ्चित्परिहाणिश्चेति । आशोडषाद्वृद्धिः । आपञ्चविंशतेर्यौवनं । आचत्वारिंशत सम्पूर्णता । तत किञ्चित्परिहारिणिश्चेति ।

अर्थ– इस शरीर की चार अवस्था हैं, १ वृद्धि, २ यौवन, ३ संपूर्णता, और, ४ किंचित्परिहाणि । जन्म से ले १६ वर्ष तक वृद्धि अवस्था कहाती है । अर्थात सोलह वर्ष तक अवस्था बढ़ती है, और २५ से ले

४० वर्ष पर्यंत संपूर्णता अवस्था कहाती है । तिस्के उपरांत अर्थात् ४० वर्ष सैं उपरांत परिहाणि अर्थात् कुछ कुछ अवस्था घटने लगती है, इसी सैं लिखा है ।

पञ्चविंशेततोवर्षे पुमान्नारीतुशोडषे ।
समत्वागतवीर्यौतौ जानीयात्कुशलोभिषक् ॥

अर्थ– पुरुष २५ वर्ष का हो, और स्त्री १६ वर्ष की हो, इस प्रकार समान अवस्था वाले स्त्री पुरुषों के (प्राप्त हुआ) वीर्य कुशल वैद्य जाने ।

तथाचमनुः ।

त्रीणिवर्षाण्युदीक्षेत कुमार्य्यर्तुमतीसती ।
ऊर्द्धन्तुकालादेतस्मा द्विन्देतसदृशंपतिम् ॥

अर्थ– रजोदर्शवती कुमारी जिस दिन सैं रजोदर्श होवे, उस्से तीन वर्ष पर्य्यंत नियम सैं स्थित रहे, इस काल के उपरांत अर्थात् ३ वर्ष के उपरांत सदृश पति को प्राप्त होवे यह मनु का वाक्य है ।

गमनयोग्यपुरुष ।

स्नातश्चन्दनलिप्ताङ्गः सुगन्धसुमनोर्चितः । भुक्तपुष्पःसुवसनः सुवेषसमलंकृतः ॥ ताम्बूलवदनस्तस्या मनुरक्तोऽधिकस्मरः । पुत्रार्थीपुरुषोनारी मुपेयाच्छयनेशुभे ॥

अर्थ– स्नान करके, चन्दन लगाय, अतर आदि सुगंधित पदार्थों सैं देह को सुगंधित कर, भोजन करके, पुष्पो की माला आदि धारण करे हुए, उज्ज्वल वस्त्रों को धारण करने वाला, तथा दिव्य भूषण धारण कर, ताम्बूल, (वीडा) मुख में जिस्के, और अपनी प्रिया स्त्री में चित्त जिस्का और असंत कामोद्दीपित पुरुष पुत्र की इच्छा करके दिव्य सेज पर स्त्री के पास जावे । इस जगे [भोजन शब्द करके वीर्य पुष्ट कर्त्ता जो वाजी करणाधिकार में रस, पाक, चूर्ण, और गोली, आदि लिखी हैं सो जानना । क्योंकि पेट भरे पुरुष को मैथुन करना वर्जित है और [अनुरक्ताधिकस्म

रः। [पुत्रार्थीपुरुषः] ये तीन पदों के धरने का यह प्रयोजन है कि, जिस स्त्री में चित न हो, तथा कामोद्दीपन जब तक स्वतः न होवे, तावत् काल पर्यंत स्त्री गमन न करे। इस प्रकार गमन करने से आनन्द की प्राप्ति नहीं होती, और इसमें भी पुत्र की इच्छा करके गमन करना चाहिये व्यर्थ वीर्य को न खर्च करे।

मैथुनकरनेमेंवर्ज्यपुरुष।

अत्याशितोऽधृतिःक्षुद्वान् सव्यथ ङ्गः पिपासितः। बालो वृद्धोऽन्यवेगार्त्त स्त्यजेद्रोगीचमैथुनम् ॥

अर्थ– असत भोजन करा हुआ, धैर्य रहित, बुभुक्षित (भूखा) पीडा वाला, प्यासा, बालक, वृद्ध, अन्य वेग (मल मूत्रादि) से पीडित, और रोगी ऐसे मनुष्य को मैथुन करना वर्जित है। १६ वर्ष के भीतर अवस्था वाला बालक और ५० वर्ष के उपरांत वृद्ध कहाता है।

योग्यस्त्री कहतेहै।

पुरुषस्यगुणैर्युक्ता विहितान्यूनभोजना।
नारीऋतुमतीपुंसा सङ्गच्छेन्तुसुतार्थिनी॥

अर्थ– पुरुष के गुणों करके युक्त, (अर्थात् स्नान कर, चंदन, सुगंध, पुष्प, सुंदर वस्त्र, आभूषण आदि को धारण करने वाली, बीडी को चावती हुई, थोडा भोजन करने वाली) ऋतुवंती पुरुष को चाहने वाली, काम पीडित स्त्री पुत्र की इच्छा करके पुरुष के पास जावे।

अयोग्यस्त्री।

रजस्वलाव्याधिमती विशेषाद्योनिरोगिणी। वयोधिकाच निष्कामा मलिनागर्भिणीतथा ॥ एतासांसङ्गमात्पुंसां वैगुण्यानिभवन्तिहि ।

अर्थ– रजस्वला, रोग वाली, और विशेष करके योनि रोग वाली, पुरुष की अवस्था से अधिक उमर वाली, काम रहित, मलीन, और गर्भ

वती, ऐसी स्त्रियों सैं संग करने सैं पुरुषों को अवश्य दोष प्राप्त होते है। रोग वाली के कहने सैं स्त्रियों के प्रदरादि रोग जानने, और योनि रोग के कहने सैं गरमी आदि रोग जानने। इस कहने का यह प्रयोजन है कि, प्रदरादि रोग वाली के संग करने से जैसा विगार नहीं है, जैसा गरमी वाली स्त्री के संग करने सैं तत्काल दुःख होता है इसी सैं [विशेष] शब्द कहा है।

द्वादशाद्वत्सरादूर्द्ध मापञ्चाशत्समाःस्त्रियः।
मासिमासिभगद्वारा प्रकृत्यैवार्त्तवंस्त्रवेत्॥

अर्थ– बारह वर्ष सैं लेकर पंचास वर्ष की अवस्था पर्यंत, महिने की महिने योनि द्वारा स्वत स्वभाव सैं स्त्रियों के रुधिर निकला करे, उसी को आर्त्तव और रजोदर्श कहते हैं।

आर्त्तवस्रावदिवसा द्रतुःषोडशरात्रयः।
गर्भग्रहणयोग्यस्तु सएवसमयःस्मृतः॥

अर्थ– रुधिर स्राव वाले दिन सैं लेकर सोलह रात्रि पर्यंत ऋतु रहे है। यही समय गर्भ ग्रहण के योग्य कहा है। यह समय चतुर्वर्णवाली सर्व स्त्रियो के संमत है। परंतु ग्रंथांतर में विशेष लिखा है।

तद्यथा।

स्नानदिवसादूर्द्धद्वादशरात्रावधिब्राह्मण्याः। दशरात्रावधिक्षत्रियायाः। अष्टरात्रावधिवैश्यायाः। षड्रात्रावधिशूद्रायाः। गर्भधारणेशक्तिः।

अर्थ– जैसैं कि, स्नान के दिन सैं लेकर १२ रात्रि पर्यंत ब्राह्मण की स्त्री को और १० रात्रि पर्यंत क्षत्री की स्त्री को, और ८ रात्रि पर्यंत वैश्य की स्त्री को, तथा ६ रात्रि पर्यंत शूद्र की स्त्री को गर्भ धारण की शक्ति रहती है, परंतु यह वाक्य किसी पोप का कल्पना करा हुआ है इसी सैं मंतव्य नहीं है।

गर्भाधानमानापेिद्वआरविहितकाल।

आयुःक्षयभयाद्भर्त्ता प्रथमेदिवसेस्त्रियं । द्वितीयेपिदिनेर त्यै स्त्यजेदृतुमतीतथा ॥ तत्रयश्चाहितोगर्भो जायमानो नजीवति । आहितोयस्तृतीयेऽन्हि स्वल्पायुर्विकलाङ्गकः अतश्चतुर्थीषष्ठीस्या दष्टमीदशमीतथा । द्वादशीवापि यारात्रि स्तस्यांताविधिनाभजेत् ॥

अर्थ– आयुक्षय के भय से पुरुष प्रथम दिवस रजस्वला स्त्री का संग न करे । इसी प्रकार दूसरे दिन भी ऋतु मती स्त्री से संभोग न करे । इन दोनों दिनों में स्थापन करा हुआ गर्भ प्रथम ठहरेही नहीं और यदि उत्पन्नबी होवे तो जीवे नहीं और तीसरे दिन स्थापित करा हुआ गर्भ थो ड़ी आयुष्य और विकल अंग वाला होय है, अतएव ४-६-८-१०-१२, इ- न रात्रियों में रजोदर्शवती स्त्री को गर्भाधान की विधि से सेवन करे । तीन दिन रजस्वला स्त्री की चांडाली ब्रह्मघातिनी और रजकी संज्ञा लि- खी है सो केवल शास्त्र ने भय दिखाया है परंतु असल प्रयोजन यह है कि इन तीन दिनों में स्त्री संग करने से उसके रुधिर की गरमी लिंग द्वा- रा प्रवेश हो कर पुरुष के रुधिर के परमाणुओं को दूषित करती है और इसी कारण से गरमी मस्तक में प्रवेश हो कर मनुष्य को उन्मत्त कर देती है तथा अत्यंत सेवन से सूजाक, गरमी आदि के अनेक असाध्य रोग प्र- गट होते हैं जिनसे प्राणी किसी प्रकार नहीं बच सके ।

चतुर्थादिदिवसेऽपिरजोनिवृत्तौस्त्रीपत्यासङ्गच्छे- न्नतुरजोनिवृत्तौ । यतआह ।

अर्थ– रजोदर्श निवृत्ति होने में पुरुष स्त्री गमन करे, किंतु रजोदर्श होते में स्त्री गमन न करे जैसे लिखा है ।

त्रिरात्रिस्त्रीव्रजनेयुक्ति ।

नचप्रवर्त्तमानेरक्तेबीजंप्रविष्टगुणकरंभवति । यथानद्यांप्रतिस्रो-

तः स्रावेद्रव्यंप्रक्षिप्तंप्रतिनिवर्त्तते नोर्ध्वंगच्छति । तद्वदेव द्रष्टव्यं तस्मान्नियमवतींत्रिरात्रंपरिहरेत् ।

अर्थ– जब तक योनि सैं रुधिर स्रवे तावत् काल पर्यंत स्त्री संग न करे, क्योंकि उसैं समय में जो वीर्य योनि में गिरे वह गुण कर्त्ता नहीं होय, अर्थात् गर्भधारण कर्त्ता नहीं होवे । जैसैं नदी के प्रवाह में वहने वाला काष्ठ आदि पदार्थ वहि जाता है । ऊपर को नहीं प्राप्त हो उसी प्रकार वहते हुए रुधिर में वीर्य सिंचन करने सैं वीर्य वह कर बाहर गिर जाता है । भीतर गर्भाशय में नहीं रहे । अतएव नियम पूर्वक स्त्री गमन में तीन रात्रि वर्जित है गयी आचार्य लिखे है कि, (तत्रप्रथमदिवस इत्यादि) यावत् आगे की तीसरी अध्याय है उसमें यह सिद्धांत करा है कि दृष्टार्त्तव ऋतु काल स्त्रियों के वारह दिन पर्यंत रहता है ।

उत्तरोत्तरादिवसोंमेंगमनकाफल ।

एषूत्तरोत्तरंविद्या दायुरारोग्यमेवच । प्रजासौ भाग्यमैश्वर्यं वलंचाभिगमात्फलं ॥

अर्थ– पूर्वोक्त चतुर्थ आदि रात्रियों में गमन करने सैं उत्तरोत्तर आयु आरोग्य, संतान, सुभगता, ऐश्वर्य और वल, इन्की प्राप्ति होती है । अर्थात् चतुर्थ रात्रि में गमन करने सैं, आयुष्य और आरोग्य की प्राप्ति होवे । छठवीं रात्रि में पुत्र की प्राप्ति, आठवीं में सुभगता, दशवीं में ऐश्वर्य की प्राप्ति, और वारवीं रात्रि में गमन करे तो वल की प्राप्ति होवे, और कन्या की इच्छा करके विषम रात्रि, अर्थात् ५-७-९-११ इन रात्रियों में गमन करना चाहिये [त्रयोदशप्रभृतयोनिंद्या] तेरवीं रात्रि सैं आदि ले १४-१५-१६ इत्यादि रात्रि स्त्री गमन में वर्जित हैं ।

तथाचवाग्भटे ।

ऋतुस्तुद्वादशनिशाः पूर्वास्तिस्त्रश्चनिन्दिताः । एकादशीचयुग्मासु स्यात्पुत्रोऽन्यासुकन्यका ॥

अर्थ– रजोदर्श होने सैं लेकर, १२ रात्रि पर्यन्त ऋतुवती स्त्री रहती

है। अर्थात् तीन दिनही ऋतुवनी होती है, ऐसा नहीं किंतु, बारह रात्रि पर्यन्त रजोदर्श होता है। इन गारह रात्रियों में पहली तीन रात्रियों में गमन करना निषेध कहा है । इन्में उत्तम बुद्धि वाला पुरुष गमन न करे । इसी से पुरुष को ब्रह्मचर्य करना लिखा है । और उसी प्रकार ग्यारवीं रात्रि भी निषेध है । और इस श्लोक में जो [च-] है उससें तेरवीं रात्रि भी निषेध है । अर्थात् तेरवीं रात्रि में गमन करने में नपुंसक संतान होती है असे कोई आचार्य कहते हैं । समरात्रि ४ ६ ८.१०.१२ में गमन करने से पुत्र होता है, अर्थात् इन रात्रियों में स्त्री के आर्त्तव थोडा होता है और विषम ५.७ ९ रात्रियों में गमन करने से कन्या प्रगट होती है, इन रात्रियों में पुरुष के वीर्य थोडा होता है, सम रात्रियों में रज (रुधिर) का थोडा होना और विषम रात्रियों मे वीर्य का थोडा होना इन दोना का कारण अचिंत्य है, अर्थात् यह नहीं कह सक्ते कि सम रात्रियों में रज थोडा कौन कारण में होता है । और विषम रात्रियों में वीर्य थोडा होने का कौन कारण है। यदि आहार विहारादि द्वारा विषम रात्रि में शुक्र अधिक हो जावे और सम रात्रि में शुक्र थोडा होने में जो पुत्र होगा वह पुरुष, स्त्री के सदृश आकार वाला दुर्बल अथवा हीन अंग वाला होवे, सो लिखा भी है, " स्त्रियाःशुक्रेऽधिकेस्त्रीस्यात्पुमान्पुंसोऽधिकेभवेत् तस्माच्छुक्राभिवृद्ध्यर्थंद्रव्याण्यंचसेवयेत् ॥ एकादशीत्रयोदश्योस्तुनपुंसकमिति " और पुत्र की इच्छा करके सम रात्रि में पुंसवानादिक कर्म करे । और कन्या की इच्छा करके स्त्री पुरुष दोनों विषम रात्रि में पुंसवनादि संस्कार करें।

ततःसायंकालीननित्यकर्मकृत्वोभौशुक्लाम्बरानुलेपनं माल्याभरणादिभिरलङ्कृतौस्वलङ्कृतंधूपितंगंधमाल्यामलदीपयुक्तंगृहंप्रविशेताम् ।

अर्थ- तदनंतर सायकाल को नित्य कर्म करके दोनों स्त्री पुरुष, सपेद वस्त्र. चंदन, माला, भूषण, आदि सें शृंगार कर, झाड फनूस खिलो-

ना चित्राम पड़दे आदि से सजे हुए, और अगर केशर आदि अष्टांग षोडशांग धूप (धूनी) सैं धूपित, तथा दीपावलि युक्त ऐसैं परम सुंदर अटा अटारी चित्रसारी सुखकारी गृह में प्रवेश करे।

ततोभर्त्ताअभग्नंजंतुवर्जितंसुखस्पर्शवितानोपरिमंडितमश्व कंशोभनेमुहूर्त्तेसप्रियामारुह्यवक्ष्यमाणविधिमाश्रयेतः

अर्थ- तदनंतर भर्त्ता अभग्न (टूटी न हो) और खटमल आदि जीवों सैं रहित, जिसके स्पर्श मात्र में सुख होवे, तथा चँदोवा आदि जिसपे तन रहा हो, ऐसी परम सुंदर सेज पर उत्तम मुहूर्त्त में अपनी स्त्री सहित प्राप्त हो आगे जो विधि कहेंगे उसको करे शय्या के लक्षण बृहत्संहिता में लिखे हैं सो देख लेना * वाग्भट कुछ विशेष कहताहै।

वाग्भटेतु।

कर्मान्तेचपुमान्सर्पिः क्षीरशाल्योदनाशितः। प्राग्दक्षिणेनपादेन शय्यांमौहूर्त्तकाज्ञयाः॥ आरोहेत्स्त्रीतुवामेन तस्यदक्षिणपार्श्वतः। तैलमाषोत्तराहारां तत्रमंत्रंप्रयोजयेत्॥

अर्थ- पूर्वोक्त पुत्रेष्टी कर्म करके पुरुष दूध भात का भोजन कर, ज्योतिषी की आज्ञा सैं शय्या पर प्रथम दहना पैर धर के स्थित होय, और तल, उड़द, आदि के पदार्थों का भोजन कर स्त्री वायां पैर प्रथम रख कर पति के दहनी तरफ वैठे, फिर पति ये मंत्र पढे। * प्रसंग वस सैं स्त्री गमन का मुहूर्त्त भी लिखते हैं।

ईयाद्रजोदर्शनकालतोनरो वशामहःपञ्चकमर्कसावनं। विहाययुग्मासुविभावरीष्वतो षूर्ध्वंसुदायादफलाभिकामः॥

अर्थ- रजोदर्श के प्रथम ५ दिन त्याग कर, उपरांत सम रात्रियों में

---

* असनस्यंदनचंदन हारिद्रसुरदारुतिन्दुकीशालाः। काश्मर्यंजनपद्मक शाकावाशिंशिपाचशुभाः प्रतिषिद्धवृक्षनिर्मित शयनासनसेवनात्कुलविनाशः। व्याधिभयव्ययकलहा भवन्त्यनर्थाश्चनैकविधाः। इत्यादिचिंतनीयम्

सुंदर संतान रूप फल की इच्छा करने वाला पुरुष स्त्री गमन करे ॥

भद्रा षष्ठीपर्वरिक्ताश्च सन्ध्या भौमार्कार्कीनाद्यरात्रिश्चतस्रः ।
गर्भाधानं त्र्युत्तरेन्द्वर्कमैत्र ब्राह्मवस्वातीविष्णुवस्वम्बुपे सत् २
केन्द्रत्रिकोणेषु शुभैश्च पापैस्त्र्यायारिगैः पुंग्रहदृष्टलग्ने । ओ
जांशकेऽब्जेपिचयुग्मरात्रौ चित्रादितीज्याश्विषु मध्यमं स्यात् ३

अर्थ– भद्रा, छट, पर्व (१४ ८ ३० १५ ये तिथी और संक्रांत) ४ ९ १४. ये तिथी, प्रातः काल और सायं काल दोनों संध्या, तथा मंगल, सूर्य, शनि, ये वार [कोई आचार्य बुध वार नपुंसक होने से उसको भी वर्जित करते हैं] तथा रजोदर्शन होने की प्रथम चार रात्रि ये स्त्री गमन में निषेध है * तथा उत्तराफाल्गुणी, उत्तराषाढ, उत्तराभाद्रपद, मृगशिर, हस्त, अनुराधा, रोहिणि, स्वाति, श्रवण, धनिष्ठा, और शतभिषा इन नक्षत्रों में गर्भाधान करना उत्तम है ॥ २ ॥ अब लग्न बल कहते हैं, केन्द्र (१ ४ ७ १०) त्रिकोण (५,९) स्थानों में शुभ ग्रह बैठे होवें, और ३, ११, ६. इन स्थानों में पाप ग्रह पडे हों, तथा पुरुष ग्रहों करके वीक्षित लग्न हो, और विषम राशि के नवांशक में चंद्रमा पडा हो, तथा सम रात्रियों (६ ८ १० १२) में पुत्र की इच्छा वाला, और विषम रात्रियों में कन्या की इच्छा वाला पुरुष स्त्री गमन करे । अर्थात् गर्भाधान करे । और चित्रा, पुनर्वसु, तथा अश्विनी इन नक्षत्रों में गर्भाधान करना मध्यम फल देता है । अब गर्भाधान में वर्जित स्त्री पुरुष कहते हैं ।

यथाचरके।

तत्रान्याचिताक्षुधितापिपाशिताभीताविमनाशोकार्त्ताक्रुद्धा

* गंडांतत्रिविधं सजेन्निधनजन्मर्क्षं च मूलान्तकं दास्रं पौष्णमथोपरागदिवसं पातस्तथा वैधृतिः ॥ पित्रोः श्राद्धदिनं दिवा च परिघाद्यर्धं स्वपत्नीगमे भान्युत्पातहतानि मृत्युभवनं जन्मर्क्षतः पापभम् ॥ मुहूर्त्तमार्त्तण्डे तु श्राद्धदिवसस्यार्वाग्दिनमपि गर्भाधाने परिहृतम् ।

न्यश्चपुमांसमिच्छन्तीमैथुनेचाभिकामानगर्भंधत्तेविगुणांवा प्रजांजनयतिअतिबालामतिवृद्धांदीर्घरोगिणींमन्येनाविकारेणोपसृष्टांवर्जयेत् पुरुषस्येऽप्येतएवदोषाः

अर्थ– अन्य पुरुष सैं रक्षित, क्षुधा वाली, प्यासी, भयभीत, संभोग की इच्छा रहित, सोच मैं व्याकुल, क्रोध युक्त, अन्य पुरुष की इच्छा करने वाली. और जो केवल मैथुन सुख के निमित्त संग करा चाहे, ऐसी स्त्री गर्भ नहीं धारण करे । यदि गर्भ रहवी जाय तो दुष्ट संतान को प्रगट करती है । अति बाल्य अवस्था वाली, अति वृद्ध, बहुत दिनों की रोगिणी, और अन्य विकारों में दूषित, ऐसी स्त्रियों का संग करना वर्जित है। और जो दूषण स्त्रियों के कहे हैं वोही दूषणवान् पुरुष भी स्त्रियों के लिये वर्जित है ।

अतःसर्वदोषवर्जितौस्त्रीपुरुषौसंसृज्येयातां । संजातहर्षौमैथुनेचानुकूलाविष्टगंधंस्वास्तीर्णं सुखशयनमुपकल्प्य मनोज्ञंहितमशनमशित्वानात्याशितौदक्षिणपादेन पुमान्स्त्रीवामेनारोहेत् तत्रमंत्रंप्रयुंजीत

अर्थ– अतएव इष्ट सुगंधित, पदार्थौं सैं व्याप्त, ऐसी सुख शय्या को बिछाय, तथा चित्त को प्रिय ऐसे पदार्थौं को भोजन करके और अत्यंत भोजन न करा होय तथा प्राप्त हुआ है हर्ष जिन्को मैथुन में अनुकूल ऐसैं सर्व दोष वर्जित दोनों स्त्री पुरुष मिल कर शय्या के ऊपर चढें, तहां पुरुष प्रथम दहना पैर रक्खे और स्त्री वाम पैर धर के चढे, तदनंतर आगे जो मंत्र कहे हैं उन्को पढे ।

दक्षिणकरेणपतिर्बध्वाउपस्थमभिस्पृस्यजपति ।

ॐपूषाभगंसवितामेददातु रुद्रःकल्पयतुललामगुंविष्णुर्योनिंकल्पयतु त्वष्टारूपाणिपिंशतुआसिंचतु प्रजापतिधाता गर्भंदधातुमे ।

गौरीतिनाडीयदुपस्थगर्भे प्रधानभूताभवतिस्वभावात् । पुत्रंप्रसूतेबहुधाङ्गनानां कष्टोपभोग्यासुरतोपविष्टा ॥ ४ ॥

अर्थ- स्त्री की भग में स्वभाव से प्रधानभूत ऐसी गौरी नामक नीड़ा है । [उसमें वीर्य पडने में] यह स्त्री वहुधा करके पुत्र प्रगट करती है, और संभोग के समय पुरुष से बडे कष्ट से प्रसन्न होती है ।

गर्भाशयकास्वरूप ।

शङ्खनाभ्याकृतिर्योनिस्त्र्यावर्त्तासाप्रकीर्त्तिता । तस्यास्तृतीयेत्वावर्त्ते गर्भशय्याप्रतिष्ठिता ॥ १ ॥ यथारोहितमत्स्यस्य मुखंभवतिरूपतः । तत्संस्थानांतथारूपां गर्भशय्यांविदुर्बुधाः ॥ २ ॥

अर्थ- स्त्री की भग शंख के समान तीन त्रिवली दार होती है, उस के तीसरे आवर्त्त (आंटे) में गर्भ शय्या प्रतिष्ठित है । जैसे रोहित मछली के मुख की छवि होती है, उसी के प्रमाण और उसी के सदृश रूप गर्भाशय का पण्डित कहते हैं । तात्पर्य यह है कि, जैसे रोहित मछली जल में रहती है उसी प्रकार गर्भाशय की स्थिति भी पित्ताशय और पक्काशय के बीच में है । और जैसा रोहित मछली का मुख छोटा और आशय बडा होता है, उसी प्रकार गर्भाशय का मुख छोटा, और आशय बडा होता है । गर्भाशय का १ नम्बर का चित्र देखो ।

एवंतामभिसङ्गम्य पुनर्मासाद्व्रजेदसौ मासादूर्ध्वमितिशेषः। अर्व्वाक्गमनेनगर्भद्वारविघट्टनात् गर्भच्युतिप्रसङ्गःस्यात् । केचित्तुपुनःपुष्पदर्शनेनगर्भालाभनिश्चयेमासादूर्ध्वंगच्छेत् लब्धगर्भांनगच्छेदिति ।

अर्थ- इस प्रकार एकवार स्त्री गमन करके, फिर एक महिना होने से उपरांत गमन करना चाहिये, कारण यह है कि महिने के भीतर गमन

करने सैं गर्भद्वार खुल कर गर्भ गिर जाता है। कोई आचार्य कहते हैं कि महिना होने सैं यदि स्त्री रजोदर्शवती होय तो जाने कि गर्भ नहीं रहा इसी कारण पूर्वोक्त विधि सें फिर स्त्री गमन करे और यदि स्त्री कपडों सैं न होय तो फिर गमन नहीं करना चाहिये।

गर्भ रहने सैं स्त्री संग त्याज्य है और गर्भ न रहने सें स्त्री गमन करने योग्य है, इसी सैं मद्योग्रहीत गर्भास्त्री के लक्षण कहते हैं।

शुक्रशोणितयोर्योने रस्त्रवोऽथश्रमोद्भवः।
सक्थिसादःपिपासाच ग्लानिःस्फुर्तिभगैर्भवेत्॥

अर्थ– शुक्र औ रुधिर का योनि सैं स्राव न होय, श्रम होय (जैसा मेहनत करने सैं परिश्रम होता है) जंघाओं का जिकडना, प्यास का लगना, ग्लानि होय, और योनि में स्फुर्त्ति (फडकना) होय, इन लक्षणों मैं गर्भ रहा जानना। विशेष लक्षण तृतीयाध्याय में कहेंगे।

गर्भवतीकेआचारकहतेहैं।

लब्धगर्भायाश्चैतेष्वहःसुलक्ष्मणावटशुङ्गासहदेवाविश्वेदेवामन्यतमाक्षीरेणाभिप्लुत्यत्रींश्चतुरोवापिविन्दून्दद्यात् दक्षिणेनाशापुटेपुत्रकामानतान्निष्ठीवेत्

अर्थ– स्त्री गर्भवती होने के उपरांत उसी दिन लक्ष्मणा वनस्पति, तथा वड की कोपल, तथा पीले पुष्प की कगही, और गुडशकरी, (अथवा सपेद फूल की त्रला) इन में किसी एक को दूध सैं पीस तीन, वा चार बूंद पुत्र की इच्छा करने वाली स्त्री की नाशिका के दहने नथने में सिंचन करे। उस स्त्री को थूकना न चाहिये।

लक्ष्मणाकास्वरूप।

तत्रकाकाररक्ताल्प विन्दुभिर्लक्षितच्छदा।
लक्ष्मणापुत्रजननी वस्तगंधाकृतिर्भवेत्॥

अर्थ– लक्ष्मणा वनस्पति के पत्ते पर घूघू के रुधिर समान लाल २

वृद थोर्डा २ सर्वत्र होती है। और आकृति में वन तुलसी के सदृश होती है। उस को पुत्र कर्त्ता जानना।

उखारनेओरलानकीविधिः।

तांशरत्कालेपुष्पफलोपेतांदृष्ट्वाशनिदिनेसंध्यायां तस्या श्चतुर्भागेषुखदिरकीलकान्निखाद्यापरेद्युर्हस्तमूलपुष्यैर्योगं गतेसवितरिमंत्रवद्गृहीत्वासमानवर्णवत्सगोक्षीरेणयथाविधिनस्यंदद्यात्।

अर्थ– लक्ष्मणा को शरद ऋतु में पुष्प फल संयुक्त देख कर, शनिवार के सायकाल को उसके चारों कोनों में खैर की लकडी की चार कील गाड देवे, और धूप दीप रोरी अक्षत और नैवेद्य से पूजन कर निमंत्रण कर आवे, फिर जब हस्त, मूल अथवा पुष्य नक्षत्र पर सूर्य आवे उस दिन जाय कर औषध उखाडने के जो मंत्र है उन्हों से उसको जड सुद्धां उखाड कर घर ले आवे। पिछाडी फिर कर न देखे पीछे बछडा वाली लाल गौ के दूध में पीस पुत्र की इच्छा वाली स्त्री को दहने नथने में, और कन्या वाली को बायें नथने में विधिपूर्वक नस्य देवे।

वाग्भटविशेषमाह।

अव्यक्तःप्रथमेमासि सप्ताहात्कललीभवेत्।
गर्भेपुंसवनान्यत्र पूर्वंव्यक्तेप्रयोजयेत्॥

अर्थ– सात दिन के प्रथम गर्भ गोलक, कफ में पिंडी भूत होता है। और सात दिन के उपरांत एक महिने पर्यंत गर्भ कलल अर्थात् कीच के समान अव्यक्त रूप होता है। इसी कलल स्वरूप गर्भ में जब तक स्त्री पुरुषादि चिन्ह की उत्पत्ति न होय तिसके पूर्व प्रथम महिने में पुंसवनादि (स्त्री पुरुष प्रगट कर्त्ता औषधों के प्रयोग) करने चाहिये।

शिष्य– (शुद्धशुक्रार्त्तवसत्वः स्वकर्मक्लेशचोदितः गर्भःसंपद्यतइत्युक्तं) अर्थात् आप पहले यह बात कह आए हो कि शुद्ध वीर्य और आर्त्तव में

परंतु आज कल यथार्थ निदान के जानने वाले क्या इस भारतवर्ष में, और क्या दूसरी वलायतों में थोडेही जहां तहां निकले और नहीं भी निकले, इस निदान की विशेष व्याख्या निदान प्रकरण म करी जावेगी।

कदाचित तुम कहो कि, ऐसाही तुम मानते हो तो फिर मनुष्य औषधों से अपने मरण रूप रोग का उपाय क्यों नहीं कर लेवे, इसमें हम इतना कहते हैं कि "अतोमृत्युरवार्यस्यात्किंतुरोगान्निवारयेत्" अर्थात् रोग दूर हो सक्ते हैं परंतु मृत्यु दूर नहीं हो सके, यह शार्ङ्गधर कहते हैं।

अथपुंसवनप्रयोग।

पुष्येपुरुषकंहैमं राजतंवाथवायसं। कृत्वाऽग्निवर्णं निर्वाप्य क्षीरेतस्यांजलिंपिबेत्॥

अर्थ- पुष्यनक्षत्र में सोने वा चांदी का अथवा लोह का पुतला बनावे, उस पुतले को अग्नि में डाल कर खूब तपावे जब अग्नि के समान लाल वर्ण हो जावे, तब निकाल कर दूध में बुझावे, उस दूध को ४ पल स्त्री को पिलाना चाहिये तो उत्तम पुत्र की प्राप्ति होय।

गौरदण्डमपामार्गं जीवकर्षभशैर्यकान्। पिबेत्पुष्येजलेपिष्ट्वा नैकद्वित्रिसमस्तशः॥

अर्थ- सपेद डंड का औंगा, तथा जीवक, ऋषभ, और कटसरया, इनको पृथक् २ अथवा दो दो, अथवा सब को एकत्र कर जल में पीस पुष्य नक्षत्र में पीवे तो सुन्दर संतान की प्राप्ति होय।

पयसालक्ष्मणामूलं पुत्रोत्पादस्थितिप्रदं। नासयास्ये नवापीतं वटशुङ्गाष्टकंतथा॥ औषधीजीवनीयाश्च बाह्यान्तरुपयोजयेत्।

अर्थ- दूध में लक्ष्मणा औषध की जड का कल्क करके पीने से, अथवा नास लेने से जिस स्त्री के पुत्र न होता हो उसके पुत्र होवे। और जिसके होता हो परंतु मर जाता हो उसके चिरजीव पुत्र हो। इसी प्रका

र आठ वड के नवीन अंकुर, दूध में पीने से दीर्घायु वाला पुत्र होय । (प्रभाव को अचिंत्य होने सैं यहां वड के आठ अंकुरों का ग्रहण है) उसी प्रकार जीवनीय (काकोली क्षीरकाकोली आदि) औषधों को बाह्य और अभ्यंतर योजना करे । तहां वाहर स्नान, उवटन आदि द्वारा कायों में लेवे, और खाने, पीने आदि भीतर के प्रयोग में लेनी चाहिये ।

यच्चान्यदपिब्राह्मणाआप्तयुरादावापुंसवनमिष्टंतच्चानुष्ठेयम् ।

अर्थ– और जो अन्य औषध ब्राह्मण, अथवा सत्पुरुष, इष्ट पुंसवन वतावे जैसें (शिव लिंगी का वीज, मोर शिखा आदि हैं) उसको भी करना उचित है, विशेष पुंसवन की औषध वंध्या की चिकित्सा में लिखेंगे ।

केवल शुक्र शोणित सेंही गर्भ धारण होता है ऐसा नहीं है, किंतु अन्य सामग्री भी गर्भ धारण में अपेक्षित है उन्को कहते है ।

ध्रुवंचतुर्णांसान्निध्या द्गर्भःस्याद्विधिपूर्वकः ।
ऋतुक्षेत्राम्बुवीजानां सामग्र्यादङ्कुरोयथा ॥

अर्थ– ऋतु (वर्षा काल आदि) पृथ्वी, जल, और वीज, (चावल गैंहू आदि) इन चारों के संयोग सैं अंकुर (कुरा) उत्पन्न होता है । उसी प्रकार ऋतु कहिये (पुष्प) क्षेत्र कहिये (गर्भाशय) जल कहिये (जठराग्नि सैं अन्न का पाक हो कर शरीर पालनीय रस उत्पन्न होता है सो) और वीज कहिये (आर्त्तव, शुक्र) इन चारो के विधि पूर्वक संयोग होने सैं गर्भ उत्पन्न होता है ।

शुद्धेशुक्रार्त्तवेसत्वः स्वकर्मक्लेशचोदितः ।
गर्भःसंपद्यतेयुक्ति वशादग्निरिवारणौ ॥

अर्थ– शुद्ध शुक्र आर्त्तव में अपने कर्म और क्लेशों का प्रेरितजीव युक्ति वश सैं गर्भ को प्राप्त होता है । जैसें अरणी सैं अग्नि । अर्थात् जैसें मथ्य, मंथन और मंथान सामग्री के विना अग्नि नहीं होती उसी प्रकार गर्भ भी यथोक्त सामग्री के विना नहीं होता । इस जगे स्त्री मथ्य स्थानीय है, पुरुष मंथन स्थानीय है, और गर्भाशय मंथान स्थानीय जानना

चाहिये । अरनी भी युक्ति पूर्वक मथने में अग्नि प्रगट करे हैं । विना युक्ति के नहीं करे, इसी प्रकार स्त्री पुरुष भी विधि पूर्वक संग करने से संतान प्रगट करसक्ते हैं । इस श्लोक में [स्वकर्मक्लेशचोदितः] इस कहने में यह प्रयोजन है कि जिन्हों का चित्त राग द्वेष अविद्या में बंधा हुआ है, उन्हीं को गर्भ वास है । वीत राग वाले महात्माओं का तो जन्म होना असंभव है । क्योंकि वे कर्म क्लेशों से रहित हैं जैसे लिखा है, " चित्तमेवहिसंसारि रागक्लेशादिदूषितम् । तदेवतैर्विनिर्मुक्त भवान्तइतिकथ्यते " ।

विधिपूर्वकहोनेवालेगर्भकाफल ।

एवंजातारूपवन्तः सत्ववन्तश्चिरायुषः ।
भवन्त्यृणस्याभोक्तारः सत्पुत्राःपुत्रिणोहिताः ॥

अर्थ– पूर्वोक्त विधिपूर्वक जे पुरुष उत्पन्न होते हैं वे रूपवान्, सत्वगुण सम्पन्न, चिरायुषी, ऋण लेकर न खाने वाले, अर्थात् संपत्तिवान्, माता पिता को सुख देने वाले ऐसे सत्पुत्र होते हैं ।

शरीरकेकालेगोरेहोनेकाकारण ।

तत्रतेजोधातुवर्णानांप्रभवःसयदागर्भोत्पत्तौअब्धातुप्रायोभवति तदागर्भंगौरंकरोति । पृथ्वीधातुप्रायःकृष्णश्यामः । तोयाकाशधातुप्रायःगौरश्यामः । (समसर्वधातुप्रायःश्यामवर्णकरः)

अर्थ– सर्व देह के वर्ण होने का कारण तेज धातु है । यदि गर्भाधान के समय जल धातु अधिक होय तो उस गर्भ से गौर वर्ण बालक प्रगट होय । पृथ्वी धातु अधिक होने से कृष्ण और श्याम वर्ण का बालक होय । जल आकाश धातु के अधिक होने से बालक का वर्ण गौरश्याम होता है और गर्भाधान के समय सर्व धातु समान होय तो बालक का श्याम वर्ण होता है । किसी चरक की पुस्तकमें ऐसा भी लिखा है कि पृथ्वी धातु केवल कृष्ण वर्ण करती है । कृष्ण वर्ण कौआ के सदृश, और श्याम वर्ण दूब के समान जानना ।

इसविषयमेंमतमतांतर ।

याद्दक्वर्णमाहारमुपसेवेतगर्भिणीताद्दक्वर्णप्रसवा भवतीत्येकेभाषन्ते

अर्थ– कोई आचार्य कहता है कि, गर्भवती जसे स्वेत, पीत, कृष्णादि वर्ण के पदार्थों का सेवन करती हैं, उसके उसी वर्ण का वालक होता है

विवृत्तशायनीनक्तंचारिणीचोन्मत्तंजनयत्यपस्मारिणम्पुनः कलिकलहशीलाव्यवायशीलादुर्वपुषमह्रीकंस्त्रैगंवा शोकनित्याभीतमपचितमल्पायुषंवा अभिध्यात्रीपरोपतापिनमीर्ष्युंस्त्रैगंवा स्तनान्वायासवहुलमतिद्रोहिणमकर्म्मशीलंवा अमर्षणाचण्डमौपधिकमसूयकंवा स्वप्ननित्यातन्द्रालुमबुधमल्पाग्निंवा

अर्थ– गर्भवती के उलटे सोने मैं तथा रात्रि में डोलने सैं उन्मत्त, और मृगी रोग वाला वालक प्रगट करती है । कठिन कलह करने सैं तथा मैथुन करने सैं दुष्ट देह और निर्लज्ज तथा स्त्रैण वालक होता है, शोक करने सैं, डरपने वाला, कृश, तथा अल्पायु संतान होती हैं । और वुरा ध्यान करने वाली के औरों को दुःख देने वाला, ईर्ष्यी, तथा स्त्रैण संतान हो । चोरी की इच्छा करने वाली, स्त्री अति परिश्रमी, अति द्रोही, और खोटे कर्म का करने वाला पुत्र प्रगट करती है । क्रोध करने सैं चंड, उपाधि कर्त्ता, और निंदक संतान हो । निद्रा सैं तन्द्रालू, मूर्ख, और मंदाग्नि वान् संतति होती है ।

मद्यनित्यापिपासालुमनवस्थितंवा गोधामांसप्रायाशार्करिणमश्मरिणंशनैर्मेहिनंवा वाराहमांसप्रायारक्ताक्षङ्क्रथनमनातिपरुषरोमाणंवा मत्स्यमांसनित्याचिरनिमिषंस्तब्धाक्षंवा मधुरनित्याप्रमेहिनंमूकमतिस्थूलंवा अम्लनित्यार

क्षपित्तिनंत्वगक्षिरोगिणंवा लवणनित्याशीघ्रवलीपालितं खालित्यरोगिणंवा कटुकनित्यादुर्वलमल्पशुक्रमनपत्यंवा तिक्तनित्याशोपिणमवलमपचितंवा कषायनित्याश्याव मानाहितमुदावर्त्तिनंवा यद्यच्चयस्ययस्यव्याधेनिदानमुक्तं तत्तदासेवमानान्तर्वत्नीतद्विकारवहुलमपत्यंजनयति ।

अर्थ– गर्भवती के मद्य सेवन करने मैं तृषा वान्, तथा व्यग्र चित्त वाला वालक हो । गोधा मास के खाने से शर्करा, और पथरी तथा शनैं प्रमेह रोग वाला होवे । सूकर के मांस खाने सें वालक लाल नेत्र, कसाई और अखत कठोर रोमाच वाला होवे । मछली के मांस खाने सैं चिर निमिष (देर में प्लक लगे) तथा विकट नेत्र वाला हो, गर्भवती के नित्य मिष्ट रस खाने मैं वालक प्रमेही, गूगा, और अति स्थूल होता है, खट्टे रस खाने सैं रक्त पित्ती कुष्ट रोगी, नेत्र रोगवान् हो, अत्यंत नोन के पदार्थ खाने सैं थोडी अवस्था में वली (गुजलट) और पलित (सपेद वाल) तथा खालित्य (शिर रोग विशेष) वाला होवे । चरपरे पदार्थ सेवन से दुर्वल, अल्प वीर्य वान्, और जिसके संतान न होय ऐसा वालक होवे । कडुए पदार्थ सेवन सैं अतिशुष्क, निर्वल पुष्टता रहित वालक हो । और गर्भवती स्त्री के अत्यंत कसेले पदार्थों के सेवन करने सै काला, और उदावर्त्त रोगी वालक को प्रगट करती है । जिस जिस रोग के निदान में जो जो वस्तु सेवन से जैसा जैसा रोग होना लिखा है, उसी उसी पदार्थ के सेवन से गर्भवती स्त्री के तद्विकार वहुल संतान प्रगट होती है ।

यदास्त्रियादोषप्रकोपेनोक्तान्यासेवमानायादोषाःप्रकुपिताः शरीरमुपसर्पन्त. शोणितगर्भाशयोपघातायोपपद्यन्ते नच कार्त्स्न्येनशोणितगर्भाशयोदूषयति तदायंगर्भंलभतेस्त्रीतदा तस्यगर्भस्यमातृजादीनामवयवानामन्यतमोवयवोविकृतिमा

पद्यते ।

अर्थ- दोष प्रकोपोक्त पदार्थों के सेवन करने सें, दोष कुपित हो कर जब स्त्री के शरीर में विचरते हुए रुधिर गर्भाशय में प्राप्त होते हैं तब स्त्री के रज और गर्भाशय को नष्ट करते हैं । यदि रज और गर्भाशय संपूर्ण को दूषित न करे उस समय यदि गर्भ को धारण करे, तो उस गर्भ के मातृज अवयवों में सें कोई सा अवयव विकृति को प्राप्त हो । अर्थात् जो माता के अंग हैं उसी अंग का विकृतिवान् बालक होता है ।

एकोऽथवानेकोह्यस्ययस्यह्यवयवस्यवीजेवीजभागेवा
दोषाःप्रकोपमापद्यन्ते तंतमयवंविकृतिराविशति ।

अर्थ- एक अथवा अनेक दोष इस पुरुष के जिस जिस अवयव (अंग) के वीज में अथवा वीज के किसी भाग में कोप को प्राप्त होते हैं, तो गर्भ के उसी उसी अंग की विकृति होती है ।

यदाह्यस्याःशोणितगर्भाशयवीजभागःप्रदोषमापद्यते तदा वंध्यांजनयति । यदापुनरस्याःशोणितेगर्भाशयवीजभागावयवःस्त्रीकराणाञ्चशरीरवीजभागानामेकदेशःप्रदोषमापद्यते । तदास्त्र्याकृतिभूयिष्ठामस्त्रियांवार्त्तानाम्नींजनयति तांस्त्रीव्यापदमाचक्षते ।

अर्थ- जिस समय स्त्री के रज, गर्भाशय, और वीज भाग दोषो सें दूषित होय, तब स्त्री वंध्या कन्या प्रगट करे । अर्थात् उस स्त्री के जो पुत्री होय सो वंध्या होवे । और यदि स्त्री के रज गर्भाशय और वीज भाग का कोई सा अवयव अथवा स्त्री के करने वाले शरीर वीज भागों का कोईसा एक देश दूषित होय तो उसके स्त्री की आकृति जिसमें आधिक ऐसी (अस्त्री वार्त्ता नामक) प्रगट करे उसको स्त्री व्यापद अर्थात् स्त्री व्याधि कहते हैं ।

के प्रति जाता है उसमें वीर्य के सदृश आने वाले रुधिर से मिल जाताहै।

कामान्मिथुनसंयोगे शुद्धशोणितशुक्रजः।
गर्भःसंपद्यतेनार्यां सजातोबालउच्यते ॥

अर्थ– काम से स्त्री पुरुषों का संयोग होने के अनंतर शुद्ध शोणित और वीर्य से स्त्री को जो गर्भ होता है, वो जन्म लेने से बालक कहाता है। पुरुष का वीर्य और स्त्री का रुधिर यदि शुद्ध होय तो गर्भ शुद्ध होता है। और अशुद्ध होने से गर्भ भी अशुद्ध होता है। इसमें प्रमाण लिखते हैं।

दम्पत्योकुष्टबाहुल्याद् दुष्टशोणितशुक्रयोः।
यदपत्यंतयोर्जातं ज्ञेयंतदपिकुष्ठितमिति ॥

अर्थ– जिन स्त्री पुरुषों के कुष्ट नामक भारी रोग होने से, रुधिर तथा वीर्य बिगड गए हों, उन कुष्ट वाले स्त्री पुरुषों से जो संतान होय वह भी कुष्ट रोगी होय है।

शिष्य– हे गुरो ? यमल (जोडा) होने का क्या कारण है ?

गुरू– यमल होने का कारण पवन है। यथा

बीजेन्तर्वायुनाभिन्ने द्वेबीजे * कुक्षिमाश्रिते।
यमावित्यभिधीयेते धर्मेतरपुरःसरौ ॥

अर्थ– बीज कहिये मिश्रित शुक्र शोणित, वे दोनों भीतर की पवन से दो भाग हो कर गर्भाशय में गर्भ रूप हो कर रहते हैं, उनको यमल (जोडले) कहते हैं। वे दोनो धर्म के पुरो गामी हैं। परन्तु [गयी आचार्य] ऐसा अर्थ करे है कि, धर्म से इतर अधर्म के पुरोगामी हैं। क्योंकि श्रुतिस्मृतियों में सर्वत्र यमल की उत्पत्ति अधर्म सेंही कही है। इसी से यमल (जोडा) होने में प्रायश्चित्त कहा है। किसी किसी के तीन चार आदि भी बालक होते हैं। २ नम्बर का चित्र देखो।

शुक्राधिकंद्वैधमुपैतिबीजं यस्याःसुतौसासहितौप्रसूते।

रक्ताधिकंवायदिभेदमेति द्विधासुतेसासहितप्रसूते ॥ भिनत्तियावद्बहुधाप्रपन्न शुक्रार्त्तवंवायुरतिप्रवृद्धः । तावन्त्यपत्यानियथाविभागं कर्मात्मकान्यस्ववशात्प्रसूते ॥

अर्थ- शुक्र की आधिक्यता सें जिस स्त्री की कूख में वीज के दो विभाग हो जावे वह एक साथ दो पुत्र प्रगट करे । उसी प्रकार रुधिर के दो विभाग होने सें एक साथ दो कन्या उत्पन्न करती है । अतिवली दुष्ट पवन शुक्र और आर्त्तव के जितने विशेष विभाग करे, उतनीही संतान यथा विभाग पूर्वक स्त्री प्रगट करती है । यदि शुक्र अधिक के पवन अनेक विभाग करे तो अनेक पुत्र होवें, और स्त्री का रुधिर अधिक होय उसके जितने विभाग करे उतनीही कन्या प्रगट होती है । यदि शुक्र और रुधिर के न्यूनाधिक मिल कर दो टुकडे होय तो एक कन्या एक पुत्र होवे शूकर, और कुत्तों की जाति में सदैव विशेष संतान होने का यही कारण है, ३ नम्बर का चित्र देखो ।

कर्मांशकत्वाद्विषमांशभेदा च्छुक्रासृजौवृद्धिमुपैतिरूक्षौ । एकोऽधिकान्यूनतरोद्वितीया एवंयमेप्यभ्यधिकोविशेषः ॥

अर्थ- पूर्व जन्मो पार्जित कर्मांश की विषमता सें, शुक्र और रुधिर रूक्ष वृद्धि को प्राप्त होते हैं, तव एक की अधिक वृद्धि होती है दूसरे की न्यून होती है, इसी सें एक वालक मोटा होता है और एक पतला होताहै।

शिष्य- कभी कभी संतान वाली स्त्री भी देरीमें संतती क्यों प्रगट करती है तथा किसी किसी स्त्री के गर्भ हो कर नष्ट हो जाता है, परंतु नष्ट होता हुआ नहीं मालूम हो इसका क्या कारण है सो कहो ?

गुरू- इसका यह कारण है सो सुनों ।

योनिप्रदोषान्मनसोऽभितापा च्छुक्रासृगाहारविहारदोषात् अकालयोगाद्बलसंक्षयाद्वा गर्भंचिराद्विन्दतिसप्रजाऽपि ॥ असृङ्निरुद्धंपवनेननार्या गर्भंव्यवस्यन्त्यवुधाःकदाचित् ।

गर्भस्यरूपंहिकरोतितस्या स्तदस्त्रमस्त्राविविवर्द्धमानम् ॥

अर्थ- योनि के दोष से, मन के ताप से, वीर्य रुधिर और आहार विहार के दोष सें, दुष्ट समय के योग से, बल क्षीण होने सें, इन कारणों से संतान वाली भी स्त्री देरी में गर्भ धारण करती है। किसी किसी स्त्री के पवन करके रुधिर रुक जाने सें पेट में गोलासा हो जाता है। उस्को मूर्ख मनुष्य गर्भ बताते है। वह रुधिर के एकत्र होने से गर्भ केसे लक्षण वाला दिन २ प्रति बढता है।

तदग्निसूर्यश्रमशोकरोगै रुष्णान्नपानैरथवाप्रवृत्तम् ।
दृष्ट्वासृगेकेनचगर्भसंज्ञा· केचिन्नराभूतहृतंवदन्ति ॥

अर्थ- पूर्वोक्त रुधिर, अग्नि, सूर्य, परिश्रम, शोक, और रोगों सें तथा गरम अन्न पान करके तपायमान हो निकलने लगे उस्को देख कर कोई मनुष्य कहते है कि इस्को गर्भ नहीं है, और उसी को कोई मूर्ख मनुष्य भूत हृत् अर्थात् भूतबाधा मैं गर्भ नष्ट होगया ऐसा कहते है।

पचपंडोंकीउत्पत्तिकाकारणकहतेतिनमेंआसेक्यपंड(नपुंसक)केलक्षण

पित्रोरत्यल्पवीर्यत्वा दासेक्य पुरुषोभवेत् ।
सशुक्रंप्राश्यलभते ध्वजोच्छ्रायमसंशयम् ॥

अर्थ- गर्भाधान के समय माता पिता के असत अल्प वीर्य होने सें जो गर्भ रहता है, उससें आसेक्य नामा पंड उत्पन्न होता है। वह अपने मुख में दूसरे के मैथुन करने सें जो प्रगट वीर्य, उस्को भक्षण करे तब उस्की लिंगेन्द्री उठे। उस्का दूसरा नाम मुख होनी है।

सौगंधिकपंड ।

य पूतियोनौजायेत ससौगन्धिकसंज्ञितः ।
सयोनिशेफसोर्गन्ध माघ्रायलभतेबलम् ॥

अर्थ- दुर्गंध योनि वाली स्त्री सें जो पुरुष उत्पन्न होता है, वह सौगंधिक महा पंड कहाता है वह लिंग और योनि को सूंघे तब लिंग चैतन्य

होय, उसका दूसरा नाम नासा योनि जानना ।

कुम्भिकपंडकेलक्षण ।

स्वगुदेऽब्रह्मचर्य्याद्यः स्त्रीषुपुम्वत्प्रवर्त्तते । कुंभिकः सतुविज्ञेयः ॥

अर्थ– जो पुरष प्रथम अपनी गुदा भंजन करावे, तव उसके लिंगमें चैतन्यता प्राप्त होने में स्त्रियों में पुरष के समान प्रवृत्त हो । उसको कुंभिक नपुंसक कहते हैं । [कोई आचार्य] ऐसा अर्थ करते हैं कि, प्रथम स्त्रियों की गुदा में पशु के समान पिछाडी वैठ कर शिथिल लिंग सें उन्हों की गुदा भंजन करे, किस निमित्त कि [व्रह्मचर्यात्] व्रह्मचर्य करने सें जो नपुंसकता प्राप्त हुई उसके दूर करने को यह कर्म करता है, अतएव इस विकृति के करने सें जव लिंग चैतन्य हो तव स्त्रियों में पुरष के सदृश प्रवृत्त हो, उसको कुंभिक नपुंसक कहते है । इसी का दूसरा नाम गुदयोनि है । इस की उत्पत्ति का कारण ग्रन्थान्तरों में इस प्रकार लिखा है ।

मातुर्व्यवायप्रतिमेनवक्रीस्याद्वीजदौर्वल्यतयापितुश्च ।

अर्थ– गर्भाधान के समय माता के विपरीत मैथुन करने सें, और पिता के वीर्य निर्वल होने सें कुंभिक संतान होती है । [गर्गी आचार्य] कुंभिक की उत्पत्ति के हेतु में काश्यपोक्त श्लोक कहता है । यथा.

अरजस्कांयदानारीं श्लेष्मरेतावृजेद्यतौ ।
अन्यसक्ताभवेत्प्रिति जायतेकुम्भिलस्तदा ॥

अर्थ– गर्भाधान के समय अल्प रज वाली स्त्री में, कफ रेता अर्थात् शिथिल रेत वाला पुरष गमन करे, उस पुरष सें उस स्त्री की कामशांति न होने सें अन्य पुरष के साथ मैथुन करने की इच्छा रहे, उस काल में जो गर्भ रहे उससें कुंभिल षंड उत्पन्न होता है ।

ईर्ष्यककेलक्षण ।

ईर्ष्यकंशृणुचापरं ॥ दृष्ट्वाव्यवायमन्येषांव्यवाये

यःप्रवर्त्तते ईर्ष्यक सतुविज्ञेयोदृग्योनिरयमीर्ष्यकः

अर्थ– अब ईर्ष्यक के लक्षण सुनो । जो पुरुष औरों को मैथुन करता देख कर आप मैथुन करने को प्रवृत्त हो, (अर्थात् जब तक दूसरे को मैथुन करता हुआ न देखे तब तक लिंग खड़ा न हो) उस को ईर्ष्यक पंड कहते है तथा दृक्योनि यह इस का दूसरा नाम है।

अत्रापितंत्रांतरपठितादेतुर्यथा ।

ईर्ष्याभितावपिमन्दहर्षा द्वीर्ष्यात्वहयस्यापिवदन्तिहेतुम् ।

अर्थ– गर्भाधान के समय दोनों स्त्री पुरुष, परोत्कर्ष के असहन कर के पराभव को प्राप्त हो चिंतातुर हो कर मैथुन करने को प्रवृत्त होवे, उस समय जो गर्भ रहे उस से ईर्ष्यक पंडक होता है।

स्त्र्याकृतिखंडकेकारणऔरलक्षण ।

खंडकंशृणुपञ्चमं योभार्यायामृतौमोहा दङ्गनेवप्रवर्त्तते ।
तत्रस्त्रीचेष्टिताकारो जायतेपंडसंज्ञित· ॥

अर्थ– पंचम पंड (नपुंसक) के लक्षण सुन ! जो पुरुष मूर्खता से ऋतु काल में भार्या के विषे आप नीचे स्त्री के सदृश चित्त लेट कर मैथुन करावे, उस काल में पुरुष के वीर्य से स्त्री कीसी चेष्टा वाला पंड उत्पन्न होता है । यह स्त्री के सदृश आप नीचे साय कर अपने शिश्न (लिंग) पर अन्य पुरुष से वीर्य गिराता है तब इस की शांति होती है। इस प्रकार नर पंड कह कर अब नारी पंड कहते है।

स्त्रीपंडकेलक्षण ।

ऋतौपुरुषवद्वापि प्रवर्त्तेताङ्गनायदि ।
तत्रकन्यायदिभवे त्साभवेन्नरचेष्टिता ॥

अर्थ– जो स्त्री, पुरुष को नीचे सुलाय आप पुरुष के सदृश ऊपर चढ के मैथुन करे, उस समय जो गर्भ रहे उस गर्भ से जो कन्या होय वो पुरुष कीसी चेष्टा वाली होवे । अर्थात् वह स्वयं स्त्री रूप भी हैं, परन्तु पुरुष के सदृश दूसरी स्त्री के ऊपर चढ उस की योनि सें अपनी

योनि को घर्षण करे।

शिष्य– स्त्री पंड और पुरष पंड में अंतर कुछ भी नहीं मालूम हो, अर्थात् दोनों में स्त्री ऊपर चढ कर मैथुन करती है। फिर दो प्रकार के षंड कमें होते हैं। और मेरी समझ में तो दो पाठ भी न लिखने चाहिये।

गुरू– तुमने कहा सो ठीक है, परंतु इन दोनों खंडों में स्त्री पुरषों का मन कारण है। अर्थात् पुरष षंड में पुरष अपनी इच्छा सें स्त्री को ऊपर चढा कर मैथुन करता है, और स्त्री पंड में स्वयं स्त्री पुरष के ऊपर चढ कर मैथुन करती है। अतएव दो भेद होने हैं और इसी सें ग्रन्थ कर्त्ता ने पाठ भी पृथक् पृथक् लिखे हैं। अब कहे हुए षंडों के स्मरण रहने के लिये संग्रह एक श्लोक सें कहते हैं।

षण्डसंग्रहश्लोक।

आसेक्यश्चसुगंधीच कुम्भीकश्चेर्ष्यकस्तथा।
सरेतसस्त्वमीज्ञेया अशुक्रःषंडसंज्ञितः॥

अर्थ– आसेक्य, सुगंधी, कुंभिक, और ईर्ष्यक, इन चार षंडों में तो वीर्य है। और स्त्री कीसी चेष्टा वाला जो पांचवा षंड है, उस में सर्वथा वीर्य नहीं होता।

शिष्य– यदि आप इन्हों में शुक्र कहते हो तो फिर षंड कहना नहीं हो सके क्यों कि जो शुक्र वान् है वह षंड कदाचित् नहीं होता।

गुरू– इस का कारण यह है।

अनयाविप्रकृत्यातु तेषांशुक्रवहाःशिराः।
हर्षात्स्फुटत्वमायान्ति ध्वजोच्छ्रायस्ततोभवेत्॥

अर्थ– पूर्वोक्त चार पंडों कै भी शुक्र नहीं है, परंतु इन की विरूद्ध चेष्टा (वीर्य भक्षण, योनि लिंग का सूंघना, गुदा भंजन, और पर मैथुन देखना) इन कर्मों के करने सें उन पुरषों की शुक्र वहने वाली शिरा हर्ष युक्त हो कर फूलती है, इसी सें लिंग चैतन्न होता है। किंतु वीर्य के वल सें लिंग नहीं उठे अतएव इन को भी षंड कहते हैं। यह नपुंसक

दोष स्त्रियों में भी होते है । इस विषय में चरक का प्रमाण है [नरनारी पण्डाइत्युक्तः] ।

अनुक्तदहवाणीऔरमनइनकेभेदकाहेतुकहतेहै ।

आहारचारचेष्टाभि र्यादृशीभि समन्वितौ ।
स्त्रिपुंसौसमुपेयातां तयोःपुत्रोपितादृश· ॥

अर्थ– माता पिता जैसे आहार, आचार और चेष्टा इन से युक्त हो मैथुन में प्रवृत्त होते हैं, उसी उसी प्रकार के गुण उन की संतान में होते है (निर्लज्ज, लज्जा वान, हास्यप्रिय, और आलस्य युक्त इत्यादिकों का यही पूर्वोक्त कारण है) ।

अति पाप करके पंड से भी निकृष्ट गर्भ उत्पन्न होते हैं
उन के कारण कहते है ।

यदानार्याविपेयातां वृषस्यन्त्यौकथञ्चनः ।
मुञ्चन्तःशुक्रमन्योऽन्य मनास्थिस्तत्रजायते ॥

अर्थ– जिस काल में दो स्त्री अति दुर्जय काम से पीडित हो, मैथुन करने की इच्छा करती हुई आपस में मिल कर योनि से योनि को मिलाय, परस्पर अपने अपने वीर्य को किसी प्रकार से त्याग करे । उस काल में उन से अनस्थि (हड्डी रहित) गर्भ उत्पन्न होता है । अनस्थि के कहने से थोडी और कोमल हड्डी होती है ऐसा जानना क्यों कि इस जगे ईषदर्थ में नञ् प्रत्यय है ।

स्वप्नमैथुनसेगर्भसंभवकहतेहैं ।

ऋतुस्नातांतुयानारी स्वप्नेमैथुनमावहेत् । आर्त्तवंवायुरादाय स्वप्नेगर्भंकरोतिच ॥ मासिमासिविवर्द्धेत गर्भिण्या गर्भलक्षणम् । कललंजायतेतस्या वर्जितंपितृकैर्गुणैः ॥

अर्थ– ऋतु स्नाता स्त्री, चतुर्थ दिवस से लेकर बारह रात्रि पर्यंत कदाचित् स्वप्न में मैथुन करे, उस समय उस स्त्री के शुद्ध आर्त्तव कोही पवन लेकर गर्भाशय मे गर्भ स्थापन करे हैं । उस गर्भ करके गर्भणी के

लक्षण प्रति महिने के महिने बढते हैं । और उस गर्भ सैं कलल उत्पन्न होता है । तथा पिता के लक्षण (केश, श्मश्रु, लोम, नख, दन्त, शिरा स्नायु और धमनी) इन लक्षण करके रहित मनुष्याकृति (मांस का लोथडा सा होय है उस को कलल कहते हैं) ये दोनों श्लोक जेज्जट सुश्रुत की टीका कार ने नहीं लिखे ।

सर्पवृश्चिककूष्माण्ड विकृताकृतयस्तुये ।
गर्भस्त्वेवंविधास्त्वेते ज्ञेयापापकृतोभृशम् ॥

अर्थ— सर्प, बिच्छू, कूष्मांड (गोलामा) इन के सदृश तथा विकृत स्वरूप वाले (जैसैं विकराल अति लम्बे, अत्यंत छोटे, अधिक अंग वाले, लंगडा आदि न्यून अंग वाले चार चार तीन तीन उंगली आदि के, तथा बंदर बिलाव, आदि कीसी सूरत वाले, इत्यादि) ये सब गर्भ प्रसूता के पाप करने सैं होते हैं, २ नम्बर का चित्र देखो ।

कुब्जादिगर्भोंकेकारणकहतेहैं ।

गर्भोवातप्रकोपेन दोहदेवाविमानिते ।
भवेत्कुब्जःकुणिःपङ्गु मूकोमिम्मिणएवच ॥

अर्थ— वात के कोप सैं, तथा माता के दोहद के अपचार करके गर्भ कुबडा, टोटा, पांगुरा, गूंगा, और गिन गिना बोलने वाला, अथवा तोतला होता है ।

शिष्य— आपने जो कुबडे, गूंगे आदि होने कहे सो माता पिता के अपराध सैं होते हैं कि स्वकृत दुष्कर्म सैं अथवा वातादि दोषों सैं होतेहैं ।

गुरू— इस का कारण इस प्रकार है ।

मातापित्रोस्तुनास्तिक्या दशुभैश्चपुराकृतैः ।
वातादीनांचकोपेन गर्भोवैकृतिमाप्नुयात् ॥

अर्थ— माता पिता के नास्तिक पने सैं (अर्थात् पाप पुण्य वेद ईश्वर को न मानना) तथा पूर्व जन्म के दुष्कृत करके वात दुष्ट होती हैं

उस बात की दुष्टता से गर्भ विकृत होता है, विकृत शब्द करके आडे तिरछे शल रूप मूढ गर्भ भी जानने चाहिये, अर्थात् मूढ गर्भ भी माता पिता और स्वकृत अपराध से होता है।

शिष्य– गर्भाशय में बालक मल मूत्रादि क्यों नहीं करे।

गुरु— मलाल्पत्वादयोगाच्च वायोःपक्वाशयस्यच ।
वातमूत्रपुरीषाणि नगर्भस्थःकरोतिच ॥

अर्थ– गर्भ के शरीर में मल अल्प है, तथा पक्वाशय संबंधी पवन न होने से (अर्थात् थोडे होने से) गर्भाशयस्थ प्राणी वात, मूत्र, मल इन का परित्याग नहीं करे।

शिष्य– गर्भ में बालक क्यों नहीं रोता है।

गुरु— जरायुणामुखेछन्ने कण्ठेचकफवेष्टिते ।
वायोर्मार्गनिरोधाच्च नगर्भस्थ प्ररोदिति ॥

अर्थ– जरायु करके मुख आच्छादित होने से, और कंठ कफ करके वेष्टित होने से, तथा वायु के मार्ग रुक ने से, गर्भ स्थित बालक नहीं रोता है। इस जगे वायु का मार्ग रुक जाना इस कहने से शब्द जनक पवन का ग्रहण है। निश्वासादि रूप वायु का निकलना तो आगे कहेंगे, क्योंकि विना श्वास के तो गर्भ का जीवनही दुर्लभ है।

शिष्य– यदि आप गर्भ को श्वास लेना मानोगे तो प्रमाण दीजिये कि वह कैसे श्वास लेता है, क्योंकि गर्भाशय में श्वास लेने को इतनी पवन नहीं है।

गुरु— निश्वासोच्छ्वाससंक्षोभा स्वप्नान्गर्भोधिगच्छति ।
मातुर्निश्वाससंश्वास संक्षोभात्स्वप्नसंभवात् ॥

अर्थ– गर्भ के श्वास, उच्छ्वास, तथा चलन, वलन, निद्रा इत्यादि क्रिया माता के श्वासादिक करके होती है, अर्थात् माता जो जो श्वासादिक चेष्टा करती है वही गर्भ भी करे है।

शरीरजन्यअवयवोंकेसन्निवेशकाहेतुकहतेहैं ।

सन्निवेशःशरीराणां दन्तानांपतनोद्गमौ ।
तलेष्वसम्भवोयश्च रोम्णामेतत्स्वभावतः ॥

अर्थ– गर्भ के अवयवों की रचना विशेष, तथा दांतों का उत्पन्न होना और गिरना, तथा हथेली में रोम का न होना ये सर्व स्वभाव करके होते हैं ।

पूर्वजन्माभ्यासकेसदृशबुद्ध्यादिकहोतीहै ।

भावितापूर्वदेहेषु सततंशास्त्रबुद्धयः । भवन्तिसत्वभूयिष्ठाः पूर्वजातिस्मरानराः ॥

अर्थ– पूर्व देह में जिस गुण का अत्यंत अभ्यास था, वेही गुण वर्त्तमान देह में होते हैं, तथा जिस पुरुष का अंतः करण पहली देह में जिस शास्त्र में संस्कार विशेष करके तन्मय हुआ होगा, वो पुरुष वर्त्तमान देह में उसी शास्त्र का ज्ञाता होगा तथा जे पूर्व देह में सतोगुण प्रधान थे वो इस वर्त्तमान देह में सतोगुण बहुल होते हैं । तथा व्यतीत जन्म की जाति के स्मरण रखने वाले होते हैं । शरीर, वाणी, और मन इन के पूर्वोक्त जाति स्मरणादिक गुण वे स्वभावादि करके सिद्ध होते हैं ।

यद्यपिसर्वस्वभावादिसिद्धभीहैतथापिकर्महीमुख्यहै ।

कर्मणानोदितोयेन तदाप्नोतिपुनर्भवे । अभ्यस्ताः पूर्वदेहेये तानेवभजतेगुणान् ॥

इति सौश्रुत शारीरे द्वितीयो ध्यायः ॥

अर्थ– पूर्व जन्मोपार्जित कर्म का प्रेरा हुआ, जैसा पूर्व देह में जिस गुण में अभ्यास पडा होगा उन्ही गुणों को इस वर्त्तमान देह में पाताहै । (तथापि असत्कर्मों से बचना चाहिये ।

इति श्रीआयुर्वेदोद्धारे वृहन्निघण्टुरत्नाकरे षष्ठतरङ्गः ६ ॥

॥ तृतीयोध्यायः ॥

शुद्ध शुक्रार्त्तव से गर्भ का होना सभव है, इसी से शुक्रार्त्तव की शुद्धी कहने के अनंतर गर्भ की अवतरण क्रिया कहना उचित है, अतएव उसी अवतरण क्रिया को कहते है।

॥ अथातोगर्भावक्रान्तिशारीरं व्याख्यास्यामः ॥

अर्थ- अथ कहिये शुद्ध शुक्रार्त्तव की शुद्धि कहन के अनंतर गर्भ की, अर्थात् गर्भाशय में रहने वाला हो कर आत्मा और प्रकृति इन करके संमूर्छित हुआ ऐसा जो शुक्रार्त्तवों का संयोग उस को गर्भ एसा कहते है। उस की अव क्राति कहिये अवतरण अर्थात् गर्भाशय में प्राप्त हो। उस में अवयव वान् होना यह अव क्राति जिस में है, ऐसी शारीराध्याय की व्याख्या करते है।

गर्भकेमूलकारणशुक्रआर्त्तवहै,इसीसेशुक्रार्त्तवकास्वरूपकहतेहै।

सौम्यंशुक्रमार्त्तवमाग्नेयम्

अर्थ- वीर्य सौम्य (उदक) गुण विशेष है, और स्त्रियों का पुष्प तेज गुण विशेष है।

शिष्य- शुक्रार्त्तव तो आप पञ्चभूतात्मक कह आए है फिर इस जगे जल और तेज रूपही कैसे कहते हो।

गुरु— इतरेषामपिभूतानांसान्निध्यमस्त्यणुना विशेषेण

अर्थ- दोनों शुक्र आर्त्तव में [इतर कहिये] पृथ्वी, पवन, और आकाश, आदि तत्वों का भी सूक्ष्म रूप करके आश्रयत्व है।

इसकाकारणकहतेहैं।

परस्परोपकरणात्परस्परानुग्रहात्परस्परानुप्रवेशाच्च

अर्थ- पृथिव्यादिक पंचमहाभूत अपने अपने गुण, परस्पर एक दूसरे को दे कर आपस में उपकार करते है। [स्पष्टार्थ यह है कि पृथ्वी का गुण धारण उस करके इतर आकाशादिकों पर उपकार करे है।

जल का गुण संहरण उस करके वो औरों पर उपकार करे है । तेज का गुण परिपाक करना, पवन का गुण अभ्यूह आकाश का गुण अवकाश देना, ऐसें उपकार करते हैं, तात्पर्यार्थ यह है कि घटादि पार्थिव द्रव्य में पृथिव्याख्य भूत एक वली है, और जल पवन आदि चार भूत दुर्बल है, तथापि वे अपना आश्रय दे कर उस पर अनुग्रह करते हैं उसी प्रकार जल आकाशादि अन्य द्रव्य में उदकादिक इतर चार द्रव्य अपने अपने में वलिष्ठ हो कर वाकी जो पृथिव्याख्य भूत हैं उन पर अनुग्रह करते हैं] तथा परस्पर अन्योन्य प्रविष्ट हैं [अन्योऽन्याऽनुप्रविष्टानि सर्वाण्येतानिनिर्दिशेत्] इस वाक्य करके प्रथम कह आए हैं, इसी सैं गर्भ जनन विषय में अन्य भूतों का सान्निध्य है ऐसैं जानना चाहिये ।

गर्भकीअवतरणक्रियाकहतेहैं ।

तत्रस्त्रीपुंसयोःसंयोगेतेजःशरीराद्वायुरुदीरयति ।
ततस्तेजोनिलसन्निपाताच्छुक्रंच्युतंयोनिमभिप्रतिपद्यतेसंसृज्यतेचार्त्तवेन

अर्थ– तहां [स्त्री पुरुष संयोग] कहिये, स्त्री पुरुषों की स्पर्श विशेष की इच्छा करके आरंभ करा प्रयोग अर्थात् मैथुन उस में [तेज] कहिये स्त्री पुरुष दोनों की इन्द्री के संघर्षण करके उत्पन्न हुआ जो उष्मा उस सैं वायु शरीर सैं उठता है, तदनंतर उस तेज करके पुरुष का रेत पतला हो कर वायु के योग करके स्वस्थान सैं छूट योनि में गिर फिर सर्वयोनि में व्याप्त हो आर्त्तव सैं मिलता है ।

ततोग्नीशोमसंयोगात्संसृज्यमानोगर्भाशयमनुप्रतिपद्यते ।
क्षेत्रज्ञोवेदयितास्प्रष्टाघ्रातादृष्टाश्रोतारसयितापुरुषःस्त्रष्टागन्तासाक्षीधातावक्तायःकोसावित्येवमादिभिःपर्यायवाचकैरभिधीयते दैवसंयोगात् । अक्षयोव्ययोचिन्त्योभूतात्मना

सहाचक्षसत्वरजस्तमोभिर्दैवासुरैश्चभावैर्वायुनाचप्रेर्यमाणो गर्भाशयमनुप्रविश्यावतिष्ठते ।

अर्थ– शुक्रार्त्तव करके योनि के तीसरे आवर्त्त में पंचभूतात्मक और छटवां चेतना धातु के संयोग करके इस की गर्भतरु संज्ञा है । इस संयोग को दिखाते हैं ततइत्यादि तत्र [अग्निशोम] कहिये शुक्र आर्त्तवों का संयोग होने के अनतर उसी क्षण में [क्षेत्रज्ञ] कहिये पंचम हाभूतों का रचित शरीर रूप क्षेत्र का जानने वाला कर्म पुरुष, वह शुक्रार्त्तव संयोग के विषे प्रतिबिम्बित हो कर गर्भाशय के प्रति जाता है । वह कौन के साथ जाता है । सो कहते हैं, सूक्ष्म लिंग शरीर के सह वर्त्तमान जाता है । और सत्व, रज, तम, स्वरूप प्राकृत गुणों करके युक्त तथा ब्रह्मा, महेन्द्र, वरुण कुबेर, गंधर्व, यम, और ऋषि इन सात देवों के सात्विक भाव तिन करके तिवा असुर, सर्प, शकुनी, राक्षस पिशाच, और प्रेत ये छः असुरादिक राजसी भाव करके अथवा पशु मत्स्य, और वनस्पती ये तीन तामस भाव करके युक्त मन हुआ गर्भाशय के प्रति जाय कर रहता है ।

कौनरहताहै, यहकहतेहैं ।

य कोसावित्यादि

अर्थ– मुनीश्वर जिस को यः, कः, असौ, इत्यादिक पर्याय वाचक करके बोलते हैं । इस जगे आचार्यने [यःकः] ये सर्व नाम बोधक दो पद कहे हैं, इन से ऐसी सूचना करी है कि, क्षेत्रज्ञ परम दुर्बोध है, और सर्वगामी है, इस क्षेत्रज्ञ का ज्ञान सद्गुरू के उपदेश विना नहीं होता है । ऐसा दिखाया है अब इस के नामों को कहते हैं । [वेदयिता] कहिये मन का प्रवर्त्तक, [स्पष्टा] कहिये त्वगिन्द्रिय को स्पर्श ज्ञान देने वाला [घ्राता] घ्राण (सूघने) वाला [द्रष्टा] रूपेन्द्रियद्वारा रूप का ग्राहक [श्रोता] कर्णेन्द्रिय द्वारा शब्द जानने का कारण, वह क्षेत्रज्ञ ऐसा है तथा क्षेत्रज्ञ पुरुष [पुरुभौतिकेशरीरेवसर्तातिपुरुषः] अ-

र्थात् पुर कहिये देह उस में जो वास करे उस को पुरुष कहते हैं इसी सें क्षेत्रज्ञ कहाता हैं, तथा चेतना योग करके उसी को कर्तृत्व है ।

तदुक्तंचरके ।

चेतनावान्यतश्चात्मा ततःकर्त्तानिरुच्यते ।

अर्थ— आत्मा कहिये क्षेत्रज्ञ, वह चेतना युक्त है । इसी सें उस को कर्त्ता कहते हैं । तथा [गंता] गमन करने वाला [साक्षी] जानने वाला, [धाता] शरीरादि संयोग के धारण का हेतु [वक्ता] कहिये बोलता है क्षेत्रज्ञ इस कहने सें यह सूचना करी कि कर्मेन्द्रियों का भी वचन, आदान, विहरण, उत्सर्ग, और आनंद का प्रवर्त्तक यही हेतु है ।

शिष्य— यदि वह क्षेत्रज्ञ वेदयिता ज्ञाता इत्यादि स्वरूपोपेत परमर्षियों करके कहा जाता है तो फिर क्लेश कारी गर्भाशय में क्यों वास करता है ।

गुरु— दैवसंयोगादिति

अर्थ— [दैवसंयोगात्] कहिये प्राकृत कर्मों के संबंध करके आत्मा [अक्षय] कहिये क्षीण नहीं होवे तथा नष्ट नहीं होवे, जो चिंतवन करने में भी नहीं आवे, यद्यपि अैसा है, तथापि गर्भाशय में प्राप्त हो गर्भ रूप करके रहता है अैसें जानना ।

शिष्य— सत्व कूख में प्रवेश होने सें गर्भ को प्राप्त होता है, अैसा आपने कहा है परंतु इस का प्रवेश होना प्रगट नहीं दीखे ।

गुरु— इस का समाधान वाग्भट ने इस प्रकार लिखा है ।

तेजोयथार्करश्मीनां स्फटिकेनतिरस्कृतम् ।
नेन्धनंदृश्यतेगच्छ त्सत्वोगर्भाशयंतथा ॥

अर्थ— जैसें स्फटिक मणि करके व्यवहित सूर्य की किरणों का तेज, उस मणी के नीचे स्थित ईंधन में जाता हुआ नहीं दीखे जब ईंधन में अग्नि प्रगट हो जाती है तब प्रतीत होती है उसी प्रकार सत्व (जीव) गर्भाशय में जाता हुआ नहीं दीखे । इस जगे सत्व का तो उपलक्षण मात्र

है किंतु गर्भ में प्रवेश करते पंचमहाभूत भी नहीं दीखे । परंतु कार्य क रके जाने जाते है । उसी प्रकार सत्त्व के अनुयायी पंचमहाभूतों करके गर्भ कुक्ष में बढता है, केवल पचमहाभूतों करकेही नहीं बढ सके इस में दृष्टांत जैसें मरा देह ।

जीवप्रमाणमाहवैष्णवागमे ।

वालाग्रशतभागस्य शतधाकल्पितस्यच ।
भागोजीवःसाविज्ञेयः सचानन्त्यायकल्पते ॥

अर्थ— जीव का प्रमाण वैष्णवागम ग्रंथ में इस प्रकार लिखा है कि एक वाल के अग्र भाग के सौ टूक कर, उस में से एक टुकडे के फिर सौ टूक करने से जैसा एक टूक होता है, उतनाही जीव का प्रमाण है, वही जीव अनंत कल्पना करा जाता है । भावप्रकाश में भी लिखा है यथा ।

शुक्रार्त्तवसमाश्लेषो यदैवखलुजायते । जीवस्तदैवविशति युक्तःशुक्रार्त्तवांतरः ॥ सूर्यांशो सूर्यमणितो ऽनुभयस्माद् तांद्यथा । वन्हिसंजायतेजीव स्तथाशुक्रार्त्तवाद्युतात् ॥

अर्थ— जब शुक्र और आर्त्तव का संयोग होता है, तभी वीर्य और आर्त्तव में युक्त रहने वाला जीव भी प्रवेश करे है । इस में दृष्टान्त है कि, जैसे सूर्य की किरण में रहने वाला अग्नि है, तथा सूर्य कांत (स्फटिक मणि आदि) में रहने वाला अग्नि है परंतु पृथक् पृथक् रहने से अग्नि प्रगट नहीं हो सके, किंतु सूर्य की किरण और सूर्य कांत मणि के एकत्र होने से उसी समय जैसें अग्नि प्रगट होती है । उसी प्रकार वीर्य और रज पृथक् पृथक् रहने सें जीव नहीं प्रगट हो सके किंतु दोनों के संयोग से जीव प्रगट है । इस में सूर्य किरण तीखी हों, और स्फटिक मणि स्वच्छ हो, तो अग्नि होना संभव है । अन्यथा नहीं, उसी प्रकार शुक्र आर्त्तव में भी बुद्धिमानों को विचार करना चाहिये

शिष्य— जीव पचभूतात्मक एक रूप है, फिर मनुष्य, घोडा, सर्प,

हाथी, वानर आदि, अनेक जातियों की आकृति कैसैं धारण करे हैं।

गुरू– इस का भी समाधान वाग्भट ने लिखा है। यथा.

कारणानुविधायित्वा त्कार्याणांतत्स्वभावता।
नानायोन्याकृतीःसत्वो धत्तेऽतोद्रुतलोहवत् ॥

अर्थ– कारण के तुल्य स्वभाव वाले सर्व कार्य होते हैं। इसी हेतु सैं कार्यों को तत्सादृश्यता है। अतएव कार्य कारण के सादृश्य हेतु सैं जीव पंचमहाभूतानुग एक रूप भी अनेक रूप नाना योनि की आकृति (प्रतिबिंब विशेषों को) धारण करे है, कैसैं धारण करता है, इस में दृष्टांत है जैसैं, तया हुआ लोहा अर्थात् जैसैं सोना गलने पर एक रूप हो जाता है फिर उसी सोने को मृत्तिका आदि के वने हुए संचे में पहुंचने सैं, जैसा हाथी, घोडा, मनुष्य, का संचा होता है उसी के सदृश सोने का रूप हो जाता है। इसी प्रकार जीव एक रूप है परंतु जैसी जैसी देहों की भावना करता है वैसैं वैसैं रूपों को धारण करता हैं। वास्तव सैं विचारो तो जैसे, सोने का मनुष्यादि रूप नहीं है उसी प्रकार इस जीव का भी कोई रूप नहीं है केवल अविद्या कल्पित भानमात्र है।

स्त्रीपुरुषनपुंसकहोनेकाकारण।

अतएवचशुक्रस्य वाहुल्याज्जायतेपुमान्।
रक्तस्यस्त्रीतयोःसाम्ये क्लीवःस्यात्

अर्थ– [अतएव] कहिये पूर्वोक्त कार्य कारण के सदृश हेतु सैं पुरुष के वीर्य वाहुल्यता सैं पुरुष होता है। और स्त्री के रज (रुधिर) की अधिकता मैं स्त्री होती है। और स्त्री पुरुष दोनों के शुक्र आर्त्तव समान होने मैं नपुंसक संतान होती है। इस प्रकार पिता का शुक्र स्त्री के रुधिर सैं मिल कर गर्भ का कारण होता है, केवल पिता का वीर्य अथवा माता का रज मात्रही गर्भ का कारण नहीं होवे इस पर दारुवाही आचार्य का प्रमाण है।

स्त्रीपुंसयोसुसंयोगेयद्यादौविसृजेत्पुमान् शुक्रंततःपुमान्वी

रोजायतेवलवान्दृढः अथचेद्वनितापूर्वंविसृजेद्रक्तसंयुतं त
तोरूपान्विताकन्याजायतेदृढसंहता

अर्थ- स्त्री पुरुष के संयोग में यदि प्रथम पुरुष शुक्र का परित्याग करे तो वलिष्ट और दृढ पुरुष उत्पन्न होवे, और यदि स्त्री रक्त मिश्रित शुक्र का पहले परित्याग करे तो परम सुंदर रूपवती दृढ कन्या होवे।

स्त्रीपुरुषयोरेकदैवयदाविसृष्टिर्भवेम् तदापंढोजायते

उक्तंचरशिष्टेन।

स्त्रीपुंसयोर्विसृष्टिश्चे देकदैवभवेद्यदा।
पंडस्तदाप्रजायेत इतिमेनिश्चितामति॥

अर्थ- यदि स्त्री पुरुष दोनों एकही समय स्खलित होवें तो पंढ (नपुंसक) होवे यह मेरी निश्चित मति है।

अतएव पुत्र गर्भ किंचित् माता के अनुसार होते हैं और कन्या के गर्भ किंचित् पिता के अनुसार होते हैं।

अत्रयुग्मायुग्मतिथिषुशुक्ररजोवृद्धौदैवंहेतुतत्रवैपानसमतम्।

यथाबहुलपक्षेषुमस्तुलुङ्गोऽधिकायते नतथाजायतेशुक्ले
स्वभावश्चात्रकारणम्

अर्थ- इस जगे समविषम तिथियों में शुक्र रज की वृद्धि होने में दैव कारण है तहां वैखानस ऋषि का मत कहते हैं कि जैसे कृष्ण पक्ष में मस्तुलुंग (भिजारे) की अधिक वृद्धि होती है परंतु कृष्ण पक्ष में उस प्रकार की नहीं होती (इसी प्रकार वीर्य रज की वृद्धि में समविषम दिन जानने) इन दोनों में स्वभावही कारण है।

शिष्य- आप शुक्र बाहुल्य में पुत्रोत्पत्ति कहते हो यह बात मेरी समझ में नहीं आती क्यों कि मद्दैव आर्त्तव को आधिक्यता है यथा,

मज्जामेदोवसामूत्र पित्तश्लेष्मशकृन्त्यसृक् रसोजलश्चदे-
हेऽस्मिन्त्वेकैकाञ्जलिवर्द्धितम्। पृथक्स्वप्रसृतंप्रोक्तं मो

जोमस्तिष्करेतसाम् द्वावञ्जलीतुस्तन्यस्य चत्वारोरजसःस्त्रियाः। समधातोरिदंमानं विद्याद्वृद्धिक्षयावतः

अर्थ– इस मनुष्य की देह में मज्जा सैं आदि लें जल पर्यंत द्रव्य एक एक अंजली की अधिकता सें हैं (जैसैं मज्जा १ अंजली मेदा २ वसा ३ मूत्र ४ पित्त ५ कफ ६ विष्टा ७ रुधिर ८ रस ९ और जल १० अंजली हैं) तथा ओज, मस्तिष्क (घृत के तुल्य पदार्थ जो मस्तक में होता है) और रेत (वीर्य) ये तीनों इस देह में प्रत्येक अपने अपने पसै भर हैं (दोनों हाथों के मिलाने सैं जो होता है उस को पसा कहते हैं) स्त्री का दूध २ अंजली है, रज संबंधी स्त्री का रुधिर ४ अंजली है सम धातु वाले देह में यह प्रमाण जानना, विषम प्रकृति में यह मान नहीं है। यह मज्जादिकों के क्षय वृद्धि का प्रमाण समान प्रकृति में जानना चाहिये, विषम प्रकृति अर्थात् (विषम धातु में) यह प्रमाण यथार्थ नहीं रहता है। इस प्रमाण द्वारा शुक्र सैं आर्त्तव सदैव अधिक रहता है। फिर आप शुक्राधिक्य सैं पुत्रोत्पत्ति कैसैं कहते हो।

गुरू– इस का कारण यह है कि जितना आर्त्तव मल रहित गर्भाशय में गर्भ जनन के लिये चाहिये उस सैं शुक्र की अधिक और न्यूनता लेनी चाहिये। अथवा अपने अपने प्रमाण की अपेक्षा शुक्र आर्त्तवों की आधिक्यता और न्यूनता इस जगे विवक्षित हैं। इस का यह कारण है कि चित्त में अत्यंत हर्ष होने सैं, तथा दूध घृत आदि शुक्र कर्त्ता पदार्थों के सेवन करने सैं, शुक्र (वीर्य) की आधिक्यता के कारण कभी गर्भाशय में अधिक गिरता हैं। और कभी शोकाक्रांत वैमनस्य (दुःख) आदि संयुक्त चित्त होने सैं शुक्र थोडा गिरता है, इसी प्रकार आर्त्तव को भी जानना चाहिये ऐसैं सब में प्रसिद्ध है। अन्य आचार्य कहते हैं कि शुक्रार्त्तवों का न्यूनाधिक्यपना तथा समानता पराक्रम करके होता है। तात्पर्य यह है कि स्त्री पुरुषों की शरीर शक्ति न्यून अधिक जैसी होय तैसेही शुक्र आर्त्तव होते है।

शिष्य– हे गुरो ? "रसाद्रक्तंततोमांसंमांसान्मेदस्ततोऽस्थिच अस्थ्नो

मज्जाततःशुक्रशुक्राद्गर्भःप्रजायते ”, अर्थात् रस से रुधिर, रुधिर से मांस, मांस से मेदा, मेदा से अस्थि, अस्थि से मज्जा, मज्जा से शुक्र, और शुक्र से गर्भ की उत्पत्ति होती है । ऐसा लिखा है कदाचित् आप यह कहो कि स्त्री के शुक्र नहीं होता है, पुरुष कहीं शुक्र होता है । तो यह कहना भी असत्य है । क्योंकि इस श्लोक में तथा अन्यत्र यह कहीं नहीं लिखा कि पुरुष के शुक्र होता है स्त्री के नहीं हो, कदाचित् आप ऐसा नहीं मानें तो स्त्री के सातवीं धातु कौन सी है यदि आप रज (रजोधर्म के रुधिर) को शुक्र स्थानीय मानोंगे तो रुधिर तो प्रथमहीं लिख आए हैं (रसाद्रक्तं) फिर दूसरे कहने से पुनरुक्ति दूषण आता है । अतएव मेरी समझ में तो शास्त्र द्वारा यह निश्चय होता है कि दोनों स्त्री पुरुष सप्त धातु वाले हैं जब सप्त धातु वाले स्त्री पुरुष दोनों हैं तो, फिर गर्भाधान में स्त्री को पुरुष की कुछ आवश्यकता नहीं है । स्वयं स्त्रीही कामदेव से पीडित हो केवल पुरुष के स्मरण, स्पर्श, और दर्शन मात्र सेहीं चलायमान वीर्य जिस का उस वीर्य को गर्भाशयमें प्राप्त होने में, और रज संबंधी रुधिर के मिलने से गर्भवती क्यों नहीं होती । क्योंकि गर्भ होने में शुक्र और आर्त्तव ही कारण है । वो दोनों स्त्री के समीप ही है, अतएव गर्भ होना संभव है फिर क्यों नहीं होवे ।

गुरू— तुम्हारा कहना बहुत ठीक है परंतु सुनो भाई इसमें पुरुष वीर्यही मुख्य है । जब पुरुष का वीर्य स्त्री के रुधिर से मिलता है उसी समय गर्भ होता है, विना पुरुष वीर्य के स्त्री का वीर्य गर्भ नहीं कर सक्ता । सो रजो दर्शवती स्त्री के समीप न होने से वे स्वय अपने वीर्य से गर्भ धारण नहीं कर सक्ती इस का प्रमाण संग्रह में इस प्रकार लिखा है ।

योषितोऽपिस्रवन्त्येवशुक्रंपुंसासमागमे । गर्भस्यतुनतत्किंचित्करोतीतिनचिंत्यते ॥

अर्थ— स्त्री भी पुरुष के संयोग में शुक्र को स्रवती है, अर्थात् परित्याग करती है । परतु उन्हों का वीर्य गर्भाधान के कुछ प्रयोजन का नहीं है । अतएव उस का वर्णन भी नहीं करते ।

शिष्य– यदि आप शुक्र की आधिक्यता सैं पुत्र होता है ऐसा कहोगे तो, फिर पुत्रेष्टी आदि पुत्री करण जो कहा है उस को व्यर्थता आवेगी ।

गुरू– पुत्रेष्टी कर्म के कहने सैं हमने यह नहीं कहा कि इस कर्म मैं पुत्र होवे, किंतु पुत्रेष्टी आदि पुण्य कर्मों के करने सैं बालक रूपवंत चिरायु और सत्वादि गुण संपन्न होता है । इस में प्रमाण पूर्वोक्त कहतेहैं ।

एवंजातारूपवंतः सत्ववन्तश्चिरायुषः ।
भवन्त्यऋणभोक्तारः सत्पुत्राःपुत्रिणोहिताः ॥

अर्थ– इस वचन सैं पुत्रीकरण संस्कारादिकों सैं संस्कृत गर्भ रूपवान्, बलवान्, चिरायु, स्वभुजोपार्जित का खाने वाला, सत्पुत्र माता पिता को आनन्द दायक होता है ।

हे वत्स पूर्वोक्त शुक्रार्त्तव का जो प्रमाण कहा है (४ अंजली आर्त्तव और १ पसमे भर शुक्र) ये ठीक नहीं है । क्योंकि इसी सुश्रुत ग्रंथ में लिखा है यथा ।

वैलक्षण्याच्छरीराणा मस्थायित्वात्तथैवच ।
दोषधातुमलादीनां परिमाणंनविद्यते ॥

अर्थ– देह धारियों की विलक्षणता (लंबे, ठिगने, कृश, स्थूल, आदि भेदों) सैं, तथा देह के अस्थयित्व (अर्थात् अवस्था दिन रात्रि और ऋतु के भोग होने सैं समान नहीं रहती) इन कारणों सैं, दोष (वातादि) धातु (रस रुधिर वीर्यादि) और मल इत्यादिकों का परिमाण नहीं है ।

अपत्यजनककालकहतेहैं ।

ऋतुस्तुद्वादशरात्रंभवतिदृष्टार्त्तवः

अर्थ– जिस काल में स्त्री रजोदर्शवती हो, उस काल को ऋतु कहते हैं । यह ऋतु काल बारह दिवस रहता है । इस का तात्पर्य यह है कि यद्यपि ऋतु के १६ दिन हैं परंतु उन में तीन दिन प्रथम के औं

संतान की इच्छा होवे और जिस का काम शुद्ध हो उस पुरुष को उस की इच्छानुसार उसी उसी दिवस में स्त्री संयोग करना उचित है। अर्थात् पुत्रेच्छु सम दिनों में, और कन्या की इच्छा वाला विषम दिनों में गमन करे। किसी आचार्य का यह मत है कि, पाचवें दिन गमन से भी पुत्र होता है।

शिष्य– शुक्र की आधिक्यता से पुत्र और रज की आधिक्यता से कन्या होती है। ऐसा आप पूर्व कह आए हो फिर, सम विषम दिनों मे पुत्र कन्या होना असंभव है क्यों कि पुत्र कन्या होने में रज और शुक्र की आधिक्यताही कारण है। यदि विषम दिनों में शुक्र आधिक्य होवे तो पुत्र होवेगा कि कन्या।

गुरु– इस का यह कारण है कि सम दिवसों मेंही पुरुष के शुक्र अधिक होता है और स्त्रियों के रज अल्प रहता है, इसी से पुत्र होता है और विषम दिवसों में स्त्री के रज अधिक होता है और पुरुषों के वीर्य अल्प रहता है, इसी से विषम दिनों स्त्री संग करने से कन्या होती है, इस पे विदेह का वचन है। यथा

युग्मेषुदिवसेष्वासां भवत्यल्पतरंरज. । संयोगंतत्रयाग च्छेत्तापुमांसंप्रसूयते ॥ अयुग्मेषुदिनेष्वासां भवेद्बहु तरंरज । संयोगंतत्रयागच्छेत्तातुकन्यांप्रसूयते ॥

अर्थ– पूर्वोक्त सम दिवसों में स्त्री के आर्त्तव असंत अल्प होता है, इसी से इन दिनों में जो स्त्री पुरुष संग करे तो पुत्र प्रगट करे, और विषम दिनों में आर्त्तव अधिक होता है, इसी से जो स्त्री पुरुष संग करे तो कन्या उत्पन्न होवे।

शिष्य– सम दिनों में पुत्र और विषम दिवसों म कन्या होती है, परंतु नपुंसक कौन से दिवसों में होता है। नपुंसक होने का तो कोई दिन नहीं कहा।

गुरु– नपुंसक होने का प्रमाण भोज आचार्य ने इस प्रकार लिखाहै।

अयुग्मेस्त्रीपुमान्युग्मे संध्ययोस्तुनपुंसकं । शुक्राधिक्या त्तुपुरुषः प्रमदारजसोधिकात् ॥ शुक्रशोणितयोःसाम्या त्तृतीयाप्रकृतिर्भवेत् ।

अर्थ– पूर्वोक्त विषम दिनों में कन्या, और सम दिवसों में पुत्र, तथा सम विषम दिवसों की संध्या में स्त्री गमन करने सैं नपुंसक संतान होती है । इसी प्रकार शुक्राधिक्य में पुत्र, और रज की अधिकता सैं कन्या, तथा शुक्र रज दोनों के समान होने में [तृतीयाप्रकृति] कहिये नपुंसक होवे (आगे ईश्वर की इच्छा है)।

सद्योग्रहीतगर्भाकेलक्षण ।

श्रमोग्लानिःपिपासा सक्थिसदनंशुक्रशोणितयोरनुबंधः स्फुरणञ्चयोनेः

अर्थ– तत्क्षण गर्भधारण करने वाली स्त्री के ये लक्षण हैं । विना कारण श्रम, ग्लानी, प्यास का लगना, जांघों का जिकडना, तथा शुक्र शोणित का रुकना, अर्थात् विषय करके जब स्त्री उठे उस समय वीर्य और रज बाहर न निकले, तथा योनि का स्फुरण (फडकना)।

तथाचवाग्भटेपि ।

लिंगन्तुसद्योगर्भायायोन्यांबीजस्यसंग्रहः तृप्तिर्गुरुत्वंस्फुरणंशुक्रास्रानुबन्धनमूहृदयस्पन्दनंतन्द्रातृड्ग्लानिर्लोमहर्षणम्

अर्थ– तत्क्षण गर्भधारण करा हो उस स्त्री के ये लक्षण हैं । योनि में वीज (शुक्रार्त्तव) का संग्रह, तृप्त के सदृश तृप्ति होना, कूख का भारीपना, और स्फुरण होना । शुक्र और आर्त्तव का योनि सें बाहर न निकलना, हृदय कंप, तन्द्रा, प्यास, ग्लानि, और हर्ष के होने सैं रोमांचों का खडा होना ।

गर्भरहनेकेपश्चात्लक्षण ।

स्तनयोःकृष्णमुखता रोमराज्युद्गमस्तथा । अक्षिपक्ष्माणि

चाप्यस्याः संमील्यन्तेविशेषतः ॥ अकामतश्छर्दयतिगं धादुद्विजतेशुभात् । प्रसेकसदनंचापि गर्भिण्यालिङ्गमुच्यते ॥

अर्थ– स्त्री गर्भवती होने के पश्चात् उस के ये लक्षण होते हैं । स्तन के अग्रभाग काले होते जावें, अंग में रोमांच खडे हों, नेत्रों के पलक वारंवार खुलें मिचें, विना कारण वमन होना, उत्तम सुगन्ध से डरपना मुख से पानी छूटे शरीर शिकडासा हो, अथवा कृश हो, ये गर्भवती के लक्षण हैं (स्तनों में दूध का होना, अरुचि हो, खटाई खाने की इच्छा, विशेष करके अनेक प्रकार के भावों में श्रद्धा का होना, होठों पर कालोंच का आना, पैरों पर किंचित् सजन का होना, योनि में जाल से प्रतीत हों, इतने लक्षण चरक में अधिक हैं) ।

गर्भवतीकेउपचार ।

उपचारःप्रियहितै र्भर्त्राभृत्यैश्चगर्भधृक् ।
नवनीतघृतक्षीरैः सदाचैनामुपाचरेत् ॥

अर्थ– पति और नोकरों करके, प्रिय तथा हित (पथ्य) ऐसे आहार विहार करके गर्भवती का उपचार करने से, स्त्री गर्भ को सुख पूर्वक धारण करती है । तथा मक्खन, घृत, और दूध इन करके इस स्त्री के आत्मा के अनुकूल सदा उपचार करने चाहिये ।

गर्भवतीकेवर्जितआचार ।

अतिव्यवायमायासं भारंप्रावरणंगुरुं । अकालजागरस्वप्नं कठिनोत्कटकासनम् ॥ शोकक्रोधभयोद्वेग वेगश्रद्धाविधारणं । उपवासाध्वतीक्ष्णोष्ण गुरुविष्टंभिभोजनम् रक्तंनिवसनंश्वभ्र कूपेक्षामद्यमामिषं । उत्तानशयनंयच्च स्त्रियोनेच्छन्तितत्यजेत् ॥ तथारक्तस्रुतिंशुद्धिं वस्तिमामासतोऽष्टमात् । एभिर्गर्भःस्रवेदामः कुक्षौशुष्येन्म्रियेतवा ॥

अर्थ– अत्यन्त मैथुन करना, परिश्रम, भारी बोझ का उठाना, कुसमय

सोना, और जागना, कठिन विछैया पर वैठना । घोटुओं के वल वैठना, शोक, क्रोध, भय, उद्वेग, इन का धारण करना । तथा मल, मूत्र, अधोवायु आदि वेगों का रोकना । व्रतों का करना, मार्ग चलना, तथा तीक्ष्ण, भारी और विष्टंभी पदार्थों का भोजन, लाल वस्त्रों का धारण करना, खाई वावडी और कूए का देखना, मद्य पीना, मांस खाना, और उत्तान शयन (सीधा सोना) इन सब का अत्यन्त सेवन गर्भवती स्त्री त्याग देवे । केवल इन हीं आहार विहार आदि को न त्यागे किंतु जो अनेक वार वालक जन चुकी हो, और संपूर्ण गर्भवतियों के व्यवहार में कुशल हो, वे स्त्री जिस कर्म को वर्जित करें वो भी गर्भवतीस्त्री को त्याज्य हैं । तथा फस्त खोलना, और रुधिर की वमन विरेचन द्वारा शुद्धी करना, तथा अष्टम महिने के पूर्व अनुवासन वस्ति कर्म करना वर्जित है अष्टम महिने के पूर्व वस्ति कर्म न करे किंतु अष्टम महिने में तो करनाही चाहिये ये पूर्वोक्त वर्जित वस्तुओं के सेवन करने में कच्चा गर्भ गिर पडे । अथवा कूख में हीं सूख जावे, अथवा गर्भ में वालक मर जावे । (देवता राक्षस और इन के अनुचरों से रक्षा के अर्थ लाल वस्त्र को न धारण करे यह चरक मुनि लिखते हैं । तथा सर्व इन्द्रियों के विरुद्ध भावों को त्याग देवे । और जिस कर्म को वृद्ध वर्जित करे उस को भी न करे ।

गर्भवतीकेदुःखसेंगर्भकोदुःखहोताहै ।

दोषाभिघातैर्गर्भिण्या योयोभागःप्रपीड्यते ।
सतभागःशिशोस्तस्या गर्भस्थस्यप्रपीड्यते ॥

अर्थ– वातादि दोष तथा लकडी आदि के प्रहार इन करके गर्भिणी का जो जो देह का अवयव पीडित होता है, वही वही अवयव गर्भ में रहने वाले वालक का दूखता है ।

गर्भवतीकीसामान्यचिकित्सा ।

व्याधींश्चास्यामृदुसुखै रतीक्ष्णैरौषधैर्जयेत् ।

च पिंड एकही समय में उत्पन्न होते हैं । और अंग तथा प्रत्यंग विभाग भी अत्यंत सूक्ष्म उत्पन्न होते हैं । तहां हाथ, पैर, मस्तक, छाती पीठ, और पेट ये अंग कहाते हैं । और ठोडी, नाक, होठ, कान, उंगली, टकना इत्यादि प्रत्यंग कहाते हैं । इन अंगों में कोई माता के अंग में और कोई पिता के अंगों में प्रगट होते हैं सो आगे कहेंगे । और महाभूतों के विकारों में जो शब्दादिक प्रगट होते हैं वो शारीरक के प्रथमाध्याय में कह आए हैं । इस तीसरे महिने में जो दोष धातु मलादिक देह में प्रगट होते हैं वो प्रकृति कहाते हैं । और पश्चात् दोष धातु आदि का न्यूनाधिक होना वह विकृति कहलाती है ।

और भी स्त्री पुरुष नपुंसक होने की परीक्षा कहते हैं ।

क्लैव्यम्भीरुत्वमवैशारद्यंमोहोवस्थानं अधोगुरुत्वमसहनंशैथिल्यंमार्दवङ्गर्भाशयबीजभागस्तथायुक्तानिचापराणि स्त्रीकराणि । अतोविपरीतानिपुरुषकराण्युभयभागभावान्निनपुंसककराणि

अर्थ— कायरता, भययुक्त, मूर्खता, मोह-वश होना, नीचे का भाग भारी होना, गरमी सरदी आदि का सह न सकना शिथिलता, और जिस स्त्री का गर्भाशय बीज भाग नम्र होवे, इत्यादि और भी चिन्ह स्त्री प्रगट कर्त्ता जानने । इन चिन्हों से विपरीत अर्थात् पुरुषार्थीपना, निर्भयता, चतुरता इत्यादि लक्षण पुरुष कर्त्ता जानने और कुछ पुरुष के और कुछ स्त्री के चिन्ह मिले होने से नपुंसक बालक होता है ।

चतुर्थमासः ।

चतुर्थेसर्वाङ्गप्रत्यङ्गविभागःप्रव्यक्तोभवति

अर्थ— चौथे महिने में पूर्वोक्त सूक्ष्म अंग और प्रत्यंग स्पष्ट होते हैं । और इस महिने में गर्भ के हृदय प्रगट होने के पश्चात् उन में प्रतिबिंबित आत्मा के योग करके हृदय फरकने लगते हैं । इस का कारण यह है कि हृदय आत्मा का स्थान है ।

प्रसंगवशभावप्रकाशसैंअंगऔरउपांगोंकोकहते हैं ।

आद्यमङ्गःशिरःप्रोक्तं तदुपाङ्गानिकुन्तलाः । तस्यान्तर्म स्तुलुङ्गश्च ललाटंभ्रूयुगंतथा ॥ नेत्रद्वयंतयोरन्त र्वर्त्तते द्वेकनीनिके । दृष्टिद्वयंकृष्णगोलौ श्वेतभागौचवर्त्मनी । पक्ष्माण्यपाङ्गौशंखौच कर्णौतच्छष्कुलीद्वयं ॥ पालिद्वयं कपोलौच नासिकाचप्रकीर्त्तिता । ओष्ठाधरौचसृक्किण्यौ मुखंतालुहनुद्वयं ॥ दन्ताश्चदन्तवेष्टश्च रसनाचिबुकङ्गलः

अर्थ– प्रथम अंग मस्तक हैं । उस के उपांग केश (बाल) हैं, उस माथे के भीतर मस्तुलुंग है (अर्थात् जो मस्तक में घृत के सदृश चिकनाई होती है) ललाट, दोनों भौंह, दो नेत्र, उन के भीतर दो तारे हैं दो दृष्टि, दो कृष्ण गोलकों के आरपास दो सफेद भाग हैं, दो नेत्रों के पलक, दो वन्नी दो नेत्रों के प्रांत, दो कनपटी, दो कानों के बाहर पोल के आरपास के भाग, दो पाली, दो कपोल (गाल) एक नासिका, दो ओष्ठ, दो अधर, दो होठों के दक्षिण बाम प्रांत, मुख, तालुआ, दो जावडा, दांत, दांतों के वेष्टक, अर्थात् जिस मांस सैं दांत आरपास सैं ढक रहे हैं (मसूढे) जीभ, ठोडी और गला, इतने उपांग मस्तक में संबंध रखते हैं अर्थात्ये मस्तक संबंधी है ।

द्वितीयअङ्गकावर्णन ।

द्वितीयमङ्गंग्रीवातुयया मूर्द्धाभिधार्यते

अर्थ– दूसरा अंगग्रीवा, अर्थात् नाड है । जिस करके मस्तक धारण कर सक्ता है ।

तीसरेअंगकावर्णन ।

तृतीयंवाहुयुगलं तदुपाङ्गान्यथब्रुवे । तत्रोपरिमतौस्कंधौ प्रगण्डौभवतस्त्वधः ॥ कफोणियुग्मंतदधः प्रकोष्ठयुगलंतथा । मणिवंधौतलेहस्तौ तयोश्चाङ्गुल्योदश ॥

नखाश्चदशतेख्याता दशछेद्याप्रकीर्त्तिता ।

अर्थ– तीसरा अंग दोनों भुजा है । इन के उपांगों को अब कह ते है,. उन दोनों भुजाओं के ऊपर दो स्कंध (कंधा) है, तिस के नी- चे दो प्रगंड (कंधे का नीचे का भाग और कोहनी के ऊपर का भाग) हैं, उस के नीचे दो कफोणि (कोहनी) हैं, उस के नीचे प्रकोष्ठ (पहु- चे से ऊपर और कोहनी से नीचे का भाग) है, उस के नीचे मणिबंध अर्थात् दो पहुंचे है. उस के नीचे दो हथेली और उन का पिछला भा- ग, उन हाथों में पांच पांच उंगली मिल के दश उंगली है, उन उंगलि- यों में दश लाल नख है. और उन में दश छेद्य अर्थात् कटने वाले नख (नाखून) है. इतने उपांग भुजा में सब र रखने है ।

चतुर्थअंगकावर्णन ।

चतुर्थमङ्गंवक्षस्तु तदुपाङ्गान्यथब्रुवे । स्तनौपुंसस्तथानार्या विशेषउभयोरयं ॥ यौवनागमनेनार्या पीवरौभवत स्त नौ । गर्भवत्या प्रसूताया स्तावेवक्षीरपूरितौ ॥ हृदयं पुण्डरीकेण सदृशस्यादधोमुख । जाग्रतस्तद्विकसति स्व पतस्तुनिमीलति ॥ आशयस्तत्तुजीवस्य चेतनास्थान मुत्तमं । अतस्तस्मिंस्तमोव्याप्ते प्राणिनःप्रस्वपन्तिहि ॥ कक्षयोर्वक्षस सन्धी जत्रुगोसमुदाहृते । कक्षेउभेसमाख्या ते तयोस्याताचवंक्षणौ ॥

अर्थ– चतुर्थ अंग वक्षस्थल (छाती) है, उस के उपांगों को कहते हैं । पुरुष के तथा स्त्री के दो दो स्तन हैं, इन दोनों में विशेषता यह है कि, स्त्री की यौवन अवस्था आने पर वेही स्तन पुष्ट हो जाते है, और जब स्त्री गर्भवती तथा प्रसूता (बालक होने से) दोनों स्तन दूध से परिपू- र्ण हो जाते है, छाती के समीप भीतर हृदय है, वह कमल के सदृश त- था नीचे को मुख वाला है. जब मनुष्य जागता है तब वो खिल जाता है

हैं, और जब प्राणी सोते हैं तब वह कमल मुद जाता है, यह जीव के रहने का स्थान है । और चेतना शक्ति का उत्तम स्थान है । जिस समय इस हृदय में तम (अन्धकार अज्ञान) व्याप्त होता है तब प्राणी सोते हैं दोनों कांख, और छाती की सन्धियों को जत्रु (हसली) कहते हैं । वह जत्रु, आर दोनों कंधे, उन दोनों कंधेन के वंक्षण अर्थात् जोड, ये सब वक्षस्थल के उपांग हैं । इस अङ्ग के वर्णन में जो कहा है कि [चेतनास्थानमुत्तमम्] इस कहने का यह प्रयोजन है कि, शकल * शरीर चेतना का स्थान है परंतु सर्व देह के अपेक्षा हृदय विशेष चेतना का स्थान है ।

पंचमषष्ठऔरसप्तमअङ्गकावर्णन ।

उदरम्पञ्चमञ्चाङ्गम् षष्ठंपार्श्वद्वयंमतं । सपृष्ठवंशंपृष्ठन्तु समस्तंसप्तमंस्मृतं ॥ उपङ्गानिकथ्यन्ते तानिजानीहि यत्नतः । शोणिताज्जायतेप्लीहा वामतोहृदयादधः ॥ रक्तवाहिशिराणांस मूलंख्यातोमहर्षिभिः । हृदया द्वामतोऽधश्च फुस्फुसोरक्तफेनजः ॥ अधोदक्षिणत श्चापि हृदयाद्यकृतःस्थितिः । तन्तुरञ्जकपितस्य स्था नंशोणितजंमतं ॥ अधस्तुदक्षिणेभागे हृदयात्क्लोम तिष्ठति । जलवाहिशिरामूलं तृष्णाच्छादनकृन्मतं ॥

अर्थ– पांचवां अङ्ग उदर (पेट) है । छटा अङ्ग दोनों पसवाडे हैं । सातवां अङ्ग पीठ का वांस और समस्त पीठ है । अब इन पंचम, षष्ठ और सप्तम अङ्गों के उपांग कहता हूं उन को तू यत्न पूर्वक जान, हृदय के नीचे वाम भाग में रुधिर सें प्लीहा (फिहा) उत्पन्न होती है । वह रुधिर के वहने वाली नाडियों का मूल है । ऐसें महर्षियों ने कहा

* चेतनानामाधिष्ठानं मनोदेहश्चसेन्द्रियः । केशलोमनखाग्रंच मलं द्रव्यगुणैर्विना ॥

अष्टमअङ्गकावर्णन ।

सक्थिनीत्वङ्गमष्टम् तदुपाङ्गानिचब्रूमो जानुनीपिण्डका द्वयम् । जंघेद्वेघुटकेपार्ष्णी तलेचप्रपदेतथा ॥ पादावंगुल्यस्तत्र दशतासांनखादश ।

अर्थ– दोनों सक्थि (निरोह वाऊरू) ये आठवां अङ्ग है । उस के उपांग हम तुम से कहते है । दो घोटू, दो पिंडिका, (पिडरी) दो जंघा (पिंडरी से नीचे का भाग) दो टकना, दो एडी, दो (तल) तरवा, और दो पैर, दोनों पैरो की दश उंगली, उन दशो उंगलियों के दश नख, ये सब सक्थि के उपांग हैं । अर्थात् सक्थि से संबंध रखते हैं । इस प्रकार आठ अङ्ग कहे है इन का विस्तार आगे कहेंगे । आठ अङ्गों और उन के उपाङ्गों को कह कर फिर गर्भवती की मास परत्व दशा वर्णन करते है।

तस्माद्गर्भश्चतुर्थेमासिअभिप्रायमिन्द्रियेषुकरोति

अर्थ– इस प्रकार चतुर्थ महिने में जीव प्रगट होता है, इसी से शब्द स्पर्श, रूप, रस, गंध, इन विषयों में मन चलाता है ।

गर्भवतीकानामान्तर ।

द्विहृदयांनारींदौहृदिनीमित्याचक्षते ।

अर्थ– चतुर्थ महिने में स्त्री के दूसरा हृदय प्राप्त होता है । इसी से उस को द्विहृदया अथवा दौहृदिनी कहते है ।

मातृजंह्यस्यहृदयं मातुश्चहृदयेनतत् । सम्बद्धंतेन गर्भिण्या नेष्टंश्रद्धाविधारणम् ॥ देयमप्यहितंतस्यै हितोपहितमल्पकम् । श्रद्धाविघाताद्गर्भस्य विकृतिश्च्युतिरेववा ॥

अर्थ– गर्भ के बालक का जो हृदय है वह मातृज है, इसी से गर्भ का हृदय माता के हृदय करके संयुक्त होता है । अतएव गर्भिणी को

हृदय संतप्त होने से गर्भ में जो वालक होता है उस का भी हृदय संतप्त होता है । इसी कारण गर्भणी द्विहृदया होने सें दौहृदनी कहाती है । इसी सें गर्भवती का हृदय पराधीन होने सें उस काल में अपनी स्वभावोचित इच्छा को साग अनेक प्रकार की अभिलाष करे है । इसी सें गर्भवती की अभिलाषा परिपूर्ण न करना बुरा है । अतएव उस द्विहृदया गर्भवती को पथ्य के साथ मिलाय कर अपथ्य (दाह कर्त्ता विष्टंभी आदि) पदार्थ भी देने चाहिये (अपि शब्द) सें पथ्य पदार्थ यथेच्छ देवे, और अपथ्य पदार्थ वहुत थोडे देने चाहिये । यदि आप अपथ्य कहते हो तो फिर कैसें देना कहते हो इस लिये कहते हैं कि, द्विहृदा स्त्री की श्रद्धा भङ्ग करने सें गर्भ विकृत हो, अथवा वह गर्भ नष्ट हो जावे । तात्पर्य यह है कि, गर्भणी की इच्छा पूर्ण न करने सें यदि गर्भ वहुत दिन का होवे तो वालक वैरूप्य होवे, और थोडे दिन का होवे तो वह गर्भ गिर जावे । इसी प्रमाण को पुष्ट करते हैं ।

विकृतगर्भहोनेकेऊपरभीप्रमाण ।

दौहृदविमानात्कुब्जम्कुणिंषण्ढंवामनंविकृताक्षंवानारीसुतं जनयति । तस्मात्सायदिच्छेत्तत्तस्मैदेयम्लब्धदौहृदावीर्यवन्तंचिरायुषम्पुत्रंजनयति

अर्थ— स्त्री की दौहृदेच्छा परिपूर्ण न होने सें, वह स्त्री कुवडा, टोंटा, षंढ, वांना, और विकृत नेत्र वाला, (तथा खंजा, खल्वाट, तिरछी भुजा वाला) ऐसा पुत्र प्रगट करती है । इसी सें गर्भवती स्त्री जिस जिस पदार्थ की इच्छा करे वह उस को देना चाहिये । क्यों कि लब्ध दौहृदा स्त्री वीर्यवान्, वडी उमर वाला पुत्र को प्रगट करती है । अव गद्योक्त अर्थ को पद्य सें कहते हैं ।

स्त्रीकादौहृदकैसेंपरिपूर्णकरनाचाहिये, इसमेंप्रमाण ।

इन्द्रियार्थान्प्रियान्यांस्तु भोक्तुमिच्छतिगार्भिणी । गर्भवाधाभयात्तान्वै भिषगाहृत्यदापयेत् ॥ साप्राप्तदौहृदा

पुत्रं जनयेतगुणान्वितम् । अलब्धदौहृदागर्भे लभेदा त्मनिवाभयम् ॥

अर्थ– गर्भवती स्त्री, गान आदि का सुनना, और अलङ्कार (भूषणों) का उपभोग, देवतादिकों का दर्शन, पद्म भोजनादिक, भक्षणीय पदार्थ का सेवन, अतर आदि सुगंध वस्तुओं का सूंघना, इन में से जिस वस्तु की इच्छा करे, वह वस्तु वैद्य लाय कर दौहृद न मिलने से कदाचित् गर्भ की विकृति न हो जावे इस भय से उस स्त्री को देवे । गर्भवती की इच्छा परिपूर्ण करने से उत्तम प्रकार के पुत्र को प्रसव करती है। और जिस को दौहृद न मिले उस के गर्भ को अथवा उस के शरीर को भय होता है ऐसे जानना चाहिये।

इन्द्रियोंकेअपमानसेगर्भकीविकृति।

येषुयेष्विन्द्रियार्थेषु दौहृदेयाविमानता ।
प्रजायतेसुतस्यार्त्ति स्तस्मिंस्तस्मिंस्तदिन्द्रिये ॥

अर्थ– कान, नाक, जीभ, नेत्र, और त्वचा, इन पांच इन्द्रियों के शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, ये पांच विषय हैं। जिन में जिस विषय से जो इन्द्री तृप्त न हुई हो उसी इन्द्री में गर्भ-वाले बालक के पीडा होती है। उस का उदाहरण दिखाते हैं। जैसे गर्भवती की इच्छा गान सुनने की हो और कदाचित् वो गान न सुने तो उस की श्रोत्र इन्द्री (कान) तृप्त नहीं हुआ अतएव गर्भगत बालक की कर्ण इन्द्री पीडित होती है। इसी प्रकार इच्छित वस्तु को न देखने में बालक की नेत्र इन्द्री पीडित होती है। इसी प्रकार और इन्द्रियों के विषय में जानना।

दौहृदद्वारागर्भकेलक्षण।

राजसंदर्शनेयस्या दौहृदंजायतेस्त्रिया । अर्थवन्तंमहा भागं कुमारंसाप्रसूयते ॥ दूकूलपट्टकौशेय भूषणादिषुदौहृदात् । अलङ्कारैषिणंपुत्रं ललितंसाप्रसूयते ॥

अर्थ— जिस स्त्री को राजा के दर्शन करने का दौहृद (इच्छा) होवे वह स्त्री द्रव्यवान् महाभाग (पुण्यवान्) ऐसे कुमार को प्रगट करे । तथा महीन, उत्तम, वस्त्र अथवा पट्ट वस्त्र, तथा पीतांबर इत्यादिकों के धारण करने की इच्छा जिस स्त्री की हो, वह अलङ्कारों का भोगने वाला और रूपवान् पुत्र को प्रगट करे ।

आश्रमेसंयतात्मानं धर्मशीलंप्रजायते ।
देवताप्रतिमायान्तु प्रसूतेपार्षदोपमम् ॥

अर्थ— जिस स्त्री को मुनी ऋषियों के आश्रम देखने की तथा उस जगह रहने की अभिलाषा होवे, वह स्त्री धर्म, शील, जितेन्द्री पुत्र को प्रगट करे । और जिस स्त्री की इच्छा देव मूर्त्ति के पूजने की अथवा दर्शन करने की हो, वह [पार्षद] अर्थात सभा के अधिकारी के समान पुत्र को उत्पन्न करे ।

दर्शनेध्यालजातीनां हिंस्त्रालुंसाप्रसूयते । गोधामांसाशनेपुत्रं सुषुप्तम्धारणात्मकम् ॥ गवांमांसेतुमलिनं सर्वक्लेशसहंतथा । माहिषेदौहृदातूशूरं रक्ताक्षंलोमसंयुतं । वाराहमांसात्स्वप्नालुं शूरंसंजनयेत्सुतं । मार्गाद्विक्रान्तजंघालं सदावनचरम्सुतम् ॥

अर्थ— जिस स्त्री को सर्प, सिंह, व्याघ्रादि हिंसक पशुओं के देखने की सर्वदा इच्छा रहे, वह स्त्री दुष्ट घातक ऐसे पुत्र को उत्पन्न करे । जिस को गोह के मांस खाने की इच्छा होवे, वह स्त्री निद्रा का दुराग्रही अथवा बहुत सोने वाला और जिद्दी ऐसे पुत्र को प्रगट करे । जिस स्त्री को गो मांस खाने की इच्छा होय, वह मलिन और सर्व क्लेशों का सहने वाला हो और जिस को भैसे के मांस खाने की इच्छा होय, वह स्त्री शूर वीर, लाल नेत्र, और जिस के अङ्ग में बहुत रोम (बाल) हो, ऐसे पुत्र को प्रगट करे । जो शूअर के मास खाने की इच्छा करे, वह निद्रावान्, शूर वीर पुत्र

को प्रगट करती है । और जिस स्त्री की इच्छा मार्ग चलने की हो, वह ज-ल्दी चलने वाला और सदैव वन में विचरने वाले पुत्र को प्रगट करे।

सृमरोद्विग्नमनसं नित्यंभीतंचतैत्तिरात् ।

अर्थ- जिस स्त्री को [सृमर] कहिये महा सूकर (जङ्गली वा वरेली सूकर) खाने की इच्छा हो, अथवा इस जगे [सावरोद्विग्नमनस] ऐसा भी पाठ मानते हैं, अर्थात् जो बारह सींगा के मास खाने की इच्छा करे, वह उद्विग्न मन (चंचल चित्त) वाले बालक को प्रगट करे । जो स्त्री तीतर के मास खाने की इच्छा करे, वह डरपोका बालक प्रगट करती है । कोई [निसशीलचतैतिरात्] ऐसा पाठ मानते हैं इस का यह अर्थ है जि-स स्त्री के तित्तर पक्षी के मास खाने का दौहृद होवे वह शीलवान् बालक को प्रगट करे । शूद्रादि नीच वर्ण पूर्व काल में भी मांस खातेथे ।

अनुक्तगर्भदौहृदसंग्रहश्लोक ।

अतोनुक्तेषुयानारी समभिध्यातिदौहृदम् ।
शरीराचारशीलैः सासमानंजनयिष्यति ॥

अर्थ- जो पदार्थ नहीं कहे उन की इच्छा करे, वह स्त्री उसी पदार्थ के शरीर, आचार, और स्वभाव करके तत्समान पुत्र को प्रगट करे । जैसे बहुधा से गर्भवती स्त्रियों का मन राख, मिट्टी, खिपडे, आदि खाने को च-लता है। तो उन के पुत्र भी निर्धन, रोगी, और कुरूप होता है। इसी प्रका-र जो दिव्य पदार्थ भोजन करने की तथा दिव्य फूल माला, चंदन, वस्त्रादि के धारण करने की इच्छा करने से, दिव्य भोगों का भोगने वाला स-त्पात्र बालक प्रगट करती है ।

दौहृदोंमेंप्रारब्धकारणकहते है ।

कर्मणानोदितंजन्तो र्भवितव्यंपुनर्भवेत् ।
यथातथादैवयोगा दौहृदंजनयेद्धृदि ॥

अर्थ- प्राणियों के प्रारब्ध कर्म करके प्रेरित भवितव्य, जैसे आगे हो-नी होती है उसी प्रकार के दौहृद दैव वश करके होते है । अर्थात् दुष्ट

वालक के दौहृद भी दुष्ट होते हैं, और उत्तम के दौहृद भी उत्तम होते हैं ।
* चरक मुनि ने तीसरे महिने में हीं स्त्री को द्विहृदा कही है। परंतु सुश्रुत के मत सैं चतुर्थ महिने में दौहृदवती स्त्री होती है। अव चरक मतानुसार चतुर्थ मास का वर्णन करते हैं।

चतुर्थमासेस्थिरत्वमापद्यतेगर्भस्तस्मात्तदागर्भिणी गुरुगात्रत्वमापद्यते ।

अर्थ– चतुर्थ महिने में गर्भ स्थिर होता है, इसी कारण गर्भिणी का देह इस महिने में भारी हो जाता है ।

पंचममास ।

पञ्चमेमनःप्रतिबुद्धतरंभवति [विशेषेणपञ्चमेमासिगर्भस्यमांसशोणितोपचयोभवत्यधिकमन्येभ्योमासेभ्यस्तदागर्भिणीकार्श्यमापद्यते]

अर्थ– पांचवे महिने गर्भ कैं मन, अर्थात् चेतना प्रगट होती है । और चरक मुनि कहते हैं कि विशेष करके पंचम महिने में गर्भ के मांस, रुधिर का संग्रह और महिनों सैं इस महिने में अधिक होता है। इसी सैं गर्भिणी इस महिने में कृश हो जाती है।

षष्ठमास ।

षष्ठेबुद्धिः [विशेषेणषष्ठेमासिगर्भस्यवलवर्णोपचयोभवत्यधिकमन्येभ्योमासेभ्यस्तस्मात्तदागर्भिणीवलवर्णहानिमापद्यते]

अर्थ– छटवें महिने गर्भ के वालक के वुद्धि उत्पन्न होती है । चरक मुनि कहते हैं कि, विशेष करके छटे महिने में गर्भ के वल और वर्ण का संग्रह अन्य महिनों की अपेक्षा अधिक होता है । इसी सें गर्भिणी के वल वर्ण की हानि होती है, परंतु वाग्भट इन दोनों सैं विपरीत कहता है ।

यथा ।

पष्ठेस्नायुशिरारोमवलवर्णनखत्वचाम्

अर्थ– छटवें महिने गर्भ के वालक के अव्यक्त रूप जो स्नायु, नाडी, रोम, वल, वर्ण, नख, और त्वचा, ये प्रगट होते हैं । अर्थात् छटवें महिने सूक्ष्म रूप से स्थूल रूप होते हैं ।

सप्तममास ।

सप्तमेसर्वाङ्गप्रत्यङ्गविभागःप्रव्यक्ततरोभवति

अर्थ– सातवें महिने गर्भ के सर्व अङ्ग (हाथ, पैर, मस्तक, आदि) और प्रत्यंग (नाक, कान, नेत्रादि) विभाग अच्छी रीति से प्रगट होते हैं [इसी से गर्भवती प्रसन्न खेदित होती हैं] वाग्भट ने छटवें महिने जो स्नायु शिर आदि का प्रगट होना लिखा है सो सुश्रुत, चरक से विरुद्ध है तथापि सर्वाङ्ग सपूर्णता गर्भ की सातवें महिने में हीं होती है । क्यों कि, वाग्भट ही लिखते है कि, सर्वाङ्ग सपूर्ण भाव सप्तम महिने में हीं होते हैं ।

अष्टममास ।

अष्टमेस्थिरीभवत्योजःतत्रजातश्चेन्नजीवेतनिरोजस्त्वान्नैर्ऋतभागधेयत्वाच्चततोवलिंमांसौदनमस्मैदापयेत् ।

अर्थ– आठवें महिने हृदय में रहने वाला सर्व धातु संवधी तेज स्थिर होता है । अतएव इस आठवें महिने में उत्पन्न हुआ वालक नहीं वचे, उस का यह कारण है कि वह तेज पूर्ण नहीं जमता, और वह राक्षसों का भाग है । (राक्षसों के लिये श्रीशिवजी ने वालकों में भाग दिया है यह कुमार तंत्र में लिखा है) इसी से इस महिने में राक्षसों को उडद, तथा भात इन का वलिदान देवे यह श्रीशिवजी की आज्ञा है ।

ओजेष्टमेसंचरति मातापुत्रौमुहुःक्रमात् ।
तेनतौम्लानमुदितौ तत्रजातोनजीवति ॥
शिशुरोजोऽनवस्थाना न्नारीसंशयिताभवेत् ।

अर्थ— सर्व धातुओं का तेज, माता और पुत्र में संचार (गमन) करता है । क्रम सैं कभी गर्भिणी का तेज संचार करे, कभी गर्भ गत बालक का तेज संचार करे, इसी सैं दोनों म्लान (कुमलाए हुए से) और मुदित (प्रसन्न) होते हैं । अर्थात् गर्भ और गर्भिणी के रस वहने वाली नाडियों में पूर्वोक्त ओज संचार करता है, यदि गर्भ और गर्भिणी दोनों का तेज गर्भगत बालक में संचार करे उस समय गर्भ प्रसन्न होता है, और गर्भिणी मुरझाई सी होती है । और यदि पूर्वोक्त दोनों का तेज गर्भिणी में संचार करे तो उस ओज संपत्ती सैं गर्भिणी प्रसन्न रहती ह, और बालक म्लान (मुरझाया सा) होता है । अतएव ओज के एकत्र स्थित न होने सैं इस महिने में जन्मा हुआ बालक नहीं जीवे, इसी सैं स्त्री संशय वाली होती है अर्थात् यह बालक जीवगा या न जीवेगा यह संदेह युक्त रहती है ।

तास्मिस्त्वेकाहयातेपि कालःसूतेरतःपरम् ।

अर्थ— अष्टम महिने के एक दिन भी व्यतीत होने हीं सैं उपरांत प्रसूत होने का काल है, अैसा जानना अपि शब्द सैं अष्टम महिने के व्यतीत होने सैं उपरांत प्रसूत का ही काल जानना चाहिये । एक वर्ष के उपरांत गर्भ में बालक पवन के विकार सैं रहता है ।

नवमैकादशद्वादशानामन्यतमास्मिन्जायते ।
अतोन्यथाविकारीभवति

अर्थ— नवम, एकादश, और द्वादश कहिये वारवां महिना, इन में सैं किसी एक महिने में बालक उत्पन्न होता है । इन महिनों में बालक न प्रगट होने सैं विकृत हुआ अैसा जानना । चरक मुनि दश महिने पर्यंत प्रसूत का समय कहते हैं उपरांत बालक को गर्भ में रहना विकार सैं लिखा है

गर्भकासन्निवेशभीसंग्रहमेंलिखाहै ।

गर्भस्तुमातृपृष्ठाभिमुखोललाटे कृतांजलिःसंकुचिताङ्गो
गर्भकोष्ठेदक्षिणंपार्श्वमाश्रित्यावतिष्ठतेपुमान् वामंस्त्री

मध्यंनपुंसकम्।

अर्थ– गर्भ माता के पीठ की तरफ मुख करके जुडे हुए हाथों की अंजली मस्तक पर धर सब शरीर को समेट, गर्भ कोष्ठ में दहनी बगल आश्रय करके पुरुष रहता है। और कन्या बाई बगल का आश्रय कर रहती है। और नपुंसक बीच में रहता है।

शिष्य– भोजन के विना गर्भ कैसे गर्भ में जीता रहे है, अर्थात् मुख तो जरायु और कफ से बन्द रहता है, फिर यह कैसे आहार को भोजन करता है, और आहार के विना जीवन नहीं हो सके।

गुरू– इस का यह कारण है यथा।

मातुस्तुरसवहायानाड्यांगर्भनाडीप्रतिवद्धा। सास्यमातुराहारंसवीर्यमभिवहति। तेनोपस्नेहेनास्याभिवृद्धिर्भवति

अर्थ– माता के रस वहने वाली नाडी, उस में गर्भ की नाभि नाडी बधी हुई है, वह नाडी माता के आहार वीर्य मे कुछ स्नेह का अंश लेकर गर्भ को बढाती है।

पूर्वोक्त अङ्ग प्रसंग विभाग प्रगट होने के अनतर गर्भ का उक्त प्रकार पोषण होता है, परन्तु अङ्ग प्रसङ्ग विभाग होने के पूर्व गर्भ का कैसे पोषण होता है। इस शङ्का को दूर करते हैं।

अङ्गविभागपूर्वपोषणकाज्ञान।

असंजाताङ्गप्रत्यङ्गविभागमानिमेपात्प्रभृतिसर्वशरीरावयवानुसारिणीनांरसवहानांतिर्यग्धमनीनामुपस्नेहोजीवाति

अर्थ– जिस गर्भ के अङ्ग प्रसङ्ग विभाग न प्रगट हुये हों उस गर्भ के सर्व शरीर में आपाद मस्तक पर्यंत जाने वाली, तथा उसी उसी अवयवों में जाने वाली वारीक, मोटी, बांकी, तिरछी, धमनियों का उपस्नेह पोषण करे है। जैसे नदी तट के वृक्षों को नदी का पानी सींच कर पोषण कर्त्ता है।

पूर्वोक्तविषयमेंभोजकावाक्य ।

गर्भोरुणद्धिस्त्रोतांसि रसरक्तवहानिवै । रक्ताज्जरायुर्भवति नाडीचैवरसात्मिका ॥ सानाडीगर्भमाप्नोति तथा गर्भस्यवर्त्तनं । यद्यदश्नातिमातास्य भोजनंहिचतुर्विधं ॥ तस्मादन्नाद्रसीभूतं वीर्यंत्रेधाप्रवर्त्तते । भागःशरीरंपुष्णाति स्तन्यंभागेनवर्द्धते ॥ गर्भःपुष्यतिभागेन वर्द्धतेचयथाक्रमम् । गर्भंकुल्येवकेदारं नाडीप्रीणातितर्पितेति ॥

अर्थ– गर्भ माता के उदर में रहता हुआ, उस के रस रक्त वहने वाली नाडियों को निरोध करता है । उस रक्त सैं गर्भ वेष्टित होता है । और उस रस सैं नाभि नाल उत्पन्न होती है । वह नाडी गर्भ के वालक के नाभि नाल हो कर रहती है । उस सैं गर्भ का इधर उधर को हलना, चलना नहीं होता, तथा माता जो जो भक्ष, भोज्य, लेह्य, चोष्य आदि चतुर्विध पदार्थों को भोजन करती है । उस भोजन करे हुए अन्न सैं रस उत्पन्न होता है । उस रस के तीन विभाग होते हैं, तिन में सैं एक विभाग सैं तो माता का शरीर पोषण होता है, दूसरे विभाग सैं उस स्त्री के स्तनों में दूध वढता है, और तीसरे रस के भाग सैं गर्भ के वालक का पोषण हो कर क्रम करके धीरे धीरे गर्भ वढता है । जैसैं पानी वरहा के मार्ग हो कर खेत में जाय उस खेत को तृप्त करता है । और धीरे धीरे वृद्धि करता है उसी प्रकार यह नाडी (नाल) माता के शरीर रस को लेकर आप तृप्त हो गर्भ को तृप्त करे है ।

गर्भवृद्धेरुपायमाह ।

गर्भस्यनाभिमध्येतु ज्योतिःस्थानंध्रुवंस्मृतं । तदाधमति वातश्च देहस्तेनास्यवर्द्धते ॥ उष्मणासहितश्चापि दारयत्यस्यमारुतः । ऊर्ध्वंतिर्यगधःस्ताच्च श्रोतांसितुयथातथा

अर्थ– गर्भगत वालक की नाभि में ज्योति स्थान है । उस में पवन

जब चलती है, उस से इस वालक का देह वढता है । जैसें जैसें उष्मा करके सहित पवन ऊपर नीचे तिरछे इस वालक के छिद्रों को विस्तारित करता है, उसी उसी रीति सें इस वालक का देह वढता है ।

गर्भकेजोप्रथमअङ्गहोताहै उसकोकहते हैं ।

शिरोभवतिचाङ्गस्य पूर्वमित्याहशौनकः । शिरस्यैवोपजायन्ते प्रधानानिन्द्रियानियत् ॥ हृदयंजायतेपूर्वं कृतवीर्योवदन्मुनिः । बुद्धेश्चमनसश्चापियतस्तत्स्थानमीरितं ॥ पाराशर्यइतिप्राह पूर्वनाभिसमुद्भवः । प्राणोयत्रस्थितो देहं वर्द्धयत्यूष्मसंयुतः ॥ पाणिपादंभवेत्पूर्वं मार्कण्डेय मुनेर्म्मते । देहिन सकलाश्चेष्टाः पाणिपादाश्रयायतः ॥ प्रथमंजायतेकोष्टं तत सर्वाङ्गसंभवः । एतन्तुकथयामास गौत्तमोमुनिपुङ्गवः ॥ सर्वाण्यङ्गान्युपाङ्गानि युगपत्संभवन्तिहि । सूक्ष्मत्वान्नोपलभ्यन्ते मतंधन्वन्तरेरिदं ॥

आम्रस्यानुफलेभवान्तियुगप न्मांसास्थिमज्जादयो ।
लक्ष्यन्तेनपृथक्पृथक्त्वणुतया पुष्टास्तएवस्फुटाः ॥
एवंगर्भसमुद्भवेत्त्ववयवाः सर्वेभवन्त्येकदा ।
लक्ष्या सूक्ष्मतयानतेप्रकटता मायान्तिवृद्धिंगताः ॥

अर्थ– अन्य अवयवों के प्रथम, गर्भ के मस्तक उत्पन्न होता है । ऐसें शौनक ऋषि कहता है । कारण यह है कि, सर्वेन्द्री मस्तक सें ही होती है (अर्थात् सर्व ज्ञानेन्द्रियों का मूल मस्तक है ।) कार्त्तवीर्यार्ज्जुन कहता है कि, प्रथम गर्भ के हृदय उत्पन्न होता है, क्योंकि मन और बुद्धि इन दोनों का स्थान हृदय ही है । पाराशर ऋषि कहते हैं कि, प्रथम वालक के नाभि उत्पन्न होती है, क्यों कि नाभि में ही प्राण पवन रहती है । वह उष्मा संयुक्त देह को वढाती है । मार्कंडेय ऋषि कहता है कि, प्रथम

हाथ पैर उत्पन्न होते हैं, क्यों कि सकल देह धारी पुरुष की चेष्टा हाथ पैरों के ही आश्रित हैं । प्रथम कोष्ठ (पेट) उत्पन्न होता है तदनंतर सर्व अङ्ग प्रगट होते हैं, अैसैं गौतम मुनि पुंगव कहते हैं । परंतु वृद्ध सुश्रुत में लिखा है कि, प्रथम शरीर उत्पन्न होता है अैसैं सुभूति और गौत्तम ऋषि कहते हैं । क्यों कि सर्व अवयव देह में वँधे हुये वढते हैं । सर्व अङ्ग और उपाङ्ग एकही काल में उत्पन्न होते हैं । परंतु असंत सूक्ष्म होने सैं दृष्टि गोचर नहीं होते यह धन्वन्तरि का मत है ।

जैसैं आम्र फल की उत्पत्ती में एक काल में हीं मांस मज्जा और अस्थि आदि होते है । परंतु परमाणु रूप होने सैं पृथक्पृथक् नहीं दीखने में आते, जव आम्र पुष्ट हो जाता है तव वे ही पूर्वोक्त मांस, मज्जा और अस्थि पृथक्पृथक् स्पष्ट दीखने लगती हैं । इसी प्रकार गर्भ की उत्पत्ति में सर्व अवयव एकही काल में होते हैं । परंतु असंत सूक्ष्म होने के कारण नहीं दीखते । जव वढ कर वडे हो जाते हैं तव अलग अलग प्रतीत होने लगते हैं । इस आम्र में मांस स्थानी गूदा, मेदा स्थानी रस, और अस्थि स्थानी गुठली जाननी चाहिये । [मज्जादयः] इस पद में आदि शब्द के कहने सैं त्वचा केशर, मज्जा, छाल, अंकुर, और वृंत (जिस में कली वँधी हुई होती है) इन सव का ग्रहण है । अर्थात् ये सव भी उत्पत्ति के समय नहीं माळूम होते हैं ।

शरीरकेपितृजभाग ।

गर्भस्यकेशमश्रुलोमनखदन्तशिरास्नायुधमनिरेतः प्रभृतीनिस्थिराणिपितृजानि

अर्थ– गर्भ के केश, डाढी, मूछ, लोम, नख, दांत, नस, नाडी, धमनीनाडी, और शुक्र इत्यादिक कठोर पदार्थ पिता सैं उत्पन्न होते हैं ।

मातृजन्य ।

मांसशोणितमेदोमज्जाहृन्नाभियकृत्प्लीहान्त्रमुदर प्रभृतीनिमृदूनिमातृजानि

अर्थ– जिस गर्भवती के प्रथम दहने स्तन में दूध प्रगट हो, तथा दहनी तरफ करके सर्व चेष्टा करे (अर्थात् चले तो प्रथम दहने पैर को उठावे, सोवे तो दहनी करवट सोवे) तथा दौहृद (गर्भवती की इच्छा) भी पुरुष संज्ञक वस्तुओं में चले (जैसे लड्डू, पेडा, आम, अमरूद, केला, आदि) तथा प्रश्न करे तो भी पुरुष संज्ञक प्रश्नों को करे (अर्थात् वारम्वार पुरुष संज्ञा वाले नामों को लेवे) और स्वप्न में भी पुरुष संज्ञक (घोडा, हाथी, शूकर, आम, अनार, अशोक, आदि वृक्ष, फूल, फल, देवता, पक्षी, मनुष्य आदि) देखे, तथा जिस की दहनी कूख ऊँची होवे, तथा गर्भस्थान गोल होवे, इन लक्षणों से गर्भवती पुत्र प्रगट करता है।

और पुत्र उत्पन्न करने वाले लक्षणों से विपरीत लक्षण होवें, (जैसे वाम स्तन में प्रथम दूध हो, सर्व चेष्टा वाम अङ्ग से करे, स्त्री नाम वाले पदार्थों की इच्छा करे, स्वप्न में भी स्त्री वाचक पदार्थों को देखे, और बांई कूख जिस की ऊँची होवे, तथा जो स्त्री पुरुष सग करने की इच्छा करे, और जिस के चित्त को नाचना, गाना, बाजे बजाना, और चन्दन लगाना, फूल माला का धारण करना, आदि प्रिय लगे सो कन्या प्रगट करती है।

नपुंसकगर्भ के लक्षण।

यस्या पार्श्वद्वयमुन्नतंपुरस्तान्निर्गतंमुदरंप्रागभिहितम्
लक्षणंचतस्यान्नपुंसकंविद्यात्

अर्थ– जिस की दोनों कूख ऊँची सी प्रतीत हों, और आगे की तरफ पेट बराबर सपाट होवे, और पूर्वोक्त दोनों पुत्र तथा पुत्री होने के जो लक्षण कहे सो मिलते हों, सो स्त्री नपुंसक बालक को प्रगट करे है। (भाव मिश्र कहते हैं कि नपुंसक बालक पेट में होने से पेट अर्बुद के सदृश होता है और आगे को भारी प्रतीत होता है)।

जोडाहोनेवालेगर्भकेलक्षण।

यस्यामध्येनिम्नंद्रोणीभूतमुदरंसायुग्मंप्रसूयते

अर्थ– जिस का पेट बीच में नीचा हो कर द्रोणी (जल के पात्र) म-

मान दीखे वो स्त्री जोडा अर्थात् दो बालक प्रगट करे ।

ग्रन्थान्तरेच ।

रोमराजिर्भवेन्निम्ना यस्याःसासूयतेयमौ ।

अर्थ- जिस की रोम पंक्ती गर्भ के कारण नीची हो, अर्थात् जिस गर्भवती के रोमांच नीचे को झुके हों वो दो बालक प्रगट करती है ।

गर्भवती के कायिक, वाचिक, मानसिक, लक्षणों सें

पुत्र के गुण कहते हैं ।

देवताब्राह्मणपरा शौचाचारविवर्जिता ।

महागुणंप्रसूयेत विपरीतांस्तुनिर्गुणान् ॥

अर्थ- जो स्त्री देवता, ब्राह्मण पूजनादि सदाचार, तथा दंत धावन, (दांतान) और स्नानादि शौचाचार युक्त होय, वह महागुणवान् पुत्र को प्रसव करती है । और पूर्वोक्त सें विपरीत आचरण करे तो निर्गुण पुत्रों को प्रगट करे है ।

विकृतअवयवहोनेकाकारण ।

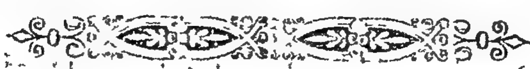
अङ्गप्रत्यङ्गनिवृत्तौ येभवन्तिगुणाऽगुणाः ।

तेवैगर्भस्यविज्ञेया धर्माधर्मनिमित्तजा ॥

इति श्रीसौश्रुत शारीरे तृतीयोध्यायः ॥ ३ ॥

अर्थ- पूर्व कहे जो हस्त पादादि अङ्ग और अंगुल्यादि प्रत्यङ्ग इन के उत्पत्ति के समय जो उत्तम और दुष्टता का होना वह शुभाशुभ कर्म करके होता है ।

इति श्रीआयुर्वेदोद्धारे वृहन्निघण्टुरत्नाकरे सप्तमतरङ्गः ७ ॥



॥ चतुर्थोध्यायः ॥

गर्भ की अवतरण क्रिया कहने के अनंतर उत्पन्न हुए

गर्भ का वर्णन करते हैं ।

॥ अथातोगर्भव्याकरणंशारीरंव्याख्यास्यामः ॥

अर्थ- गर्भ की अवतरण क्रिया कहने के अनंतर, गर्भ का वर्णन जिस में है ऐसी शारीराध्याय की व्याख्या करते है ।

गर्भ के वर्णन में प्राण और सत्ता आदि करके वर्णनीय पदार्थों में प्राण सब शरीर का उत्तम रीत से पोषण करते है, अतएव प्रथम प्राणों का वर्णन करते है ।

प्राणवर्णन ।

आग्निःसोमोवायुःसत्वंरजस्तमःपञ्चेन्द्रियाणिभूतात्मेतिप्राणाः

अर्थ- अग्नि सोम, पवन, सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण, पचेन्द्री और भूतात्मा ये प्राण है । प्राण शब्द करके इस जगे शरीर के पोषण करने वाले तथा कासादिक देने वाले जानने, अग्नि शब्द करके पाचक, भ्राजक, आलोचक, रंजक, साधक, ऐसे भौतिक पाच ऊष्मा और सर्व धातु गत ऊष्माओं को शक्ति देने वाला हो कर वाणी का अधिदैवत जानना तथा सोम पद करके श्लेष्मा (कफ) रस, शुक्र, आदि शब्द करके रसात्मक पदार्थ । रसेन्द्रियों को शक्ति देने वाला मन का अधिदैवत जानना । वायु शब्द करके प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, ऐसे पाच प्रकार के पवन जानना । सत्व, रज, और तम ये पूर्वोक्त अष्टविध प्रकृति के गुण है । पचन्द्री करके श्रवण, स्पर्शन, दर्शन, रसन, घ्राण आदि पचभूतात्मा शुभाशुभ कर्म करके परिगृहीत कर्म पुरुष जानना चाहिये । ये अग्न्यादिक प्राणों को प्रीणन अर्थात् जियाते है इसी से इन को प्राण कहते है ।

अग्न्यादिक प्राण कौन से कर्म से शरीर का प्रीणन

अर्थात् पालन करते है सो कहते है ।

तत्राग्निस्तावदाहारपाकादिकर्मणाप्रीणयति

अर्थ- तिन में अग्नि आहार पाकादिकों से शरीर का प्रीणन करे है,

सोमश्चसौम्यधातोरोजःप्रभृतेःपोषणेन

अर्थ- चद्र सौम्य धातु का प्रीणन सारभूत तेजादिकों का पोषण क-

रके शरीर पालन करे है।

वायुश्चदोषधातुमलादीनांसंचारणेनोच्छ्वासनिश्वासाभ्यांच

अर्थ– वायु, वात, पित्त, कफ, तथा सप्तधातु और मल, मूत्र इन के संचार करके और ऊर्द्धस्वास निश्वास करके शरीर का पोषण करे है।

सत्वंरजस्तमश्चमनोरूपतयापरिणतम्

अर्थ– सत्व, रज, तम गुण ये मनोरूप करके परिणाम को प्राप्त हो कर कर्म पुरुष के शरीरांतरग्रहण के हेतु हो कर पोषण करते हैं।

अत्रयहशरीरअन्यजिनजिनसमवायि*कारणकरकेउत्पन्न
होताहैउनसबकोभावप्रकाशसैंकहते हैं।

अथदोषाःप्रवक्ष्यन्ते धातवस्तदनंतरं । आहारादेर्गतिस्त स्य परिणामश्चवक्ष्यते ॥ आर्त्तवंचाथधातूनां मलास्त दुपधातवः । आशयाश्चकलाश्चापि मर्माण्यथचसन्ध यः ॥ शिराश्चस्नायवश्चापि धमन्यःकण्डरास्तथा । रन्ध्राणिभूरिस्त्रोतांसि जालैःकूर्चाश्चरज्जवः ॥ सेविन्य श्चाथसंघाता सीमन्ताश्चतथात्वचः । लोमानिलोमकूपा श्च देहएतन्मयोमतः ॥

अर्थ– अब दोषों को कहेंगे पश्चात् धातु, तत्पश्चात् आहार की गति और आहार का परिणाम कहेंगे। पीछे आर्त्तव, धातुओं के मल, उपधातु, आशय, कला, मर्मसंधि, शिरा, स्नायु, धमनी, कंडरा, जिस में असंत छिद्र हैं असैं रंध्र, कूर्चा (डाढी मूछ) रज्जू, चार मोटी शिरा जिन को सेव-

---

* जो कारण कार्य में मिला हुआ होय उस को समवायि कारण जानना, जैसैं वस्त्र के कारण तंतु हैं वे वस्त्र में मिले हुए हैं इसी सैं वे तंतु वस्त्र के समवायि कारण हैं। इसी प्रकार दोष धातु मलादिक मिल कर देह उत्पन्न हुआ है। अतएव दोष धातु आदि देह के समवायि कारण हैं।

नी कहते हैं । हड्डी केश, त्वचा, रोम, रोमकूप, इन सब का वर्णन यथा क्रम करा जायगा, क्यों कि यह देह एतन्मय है । अर्थात् यह देह इन्हीं पूर्वोक्त पदार्थों से बना है । बहुत से पदार्थ तो इसी चतुर्थ अध्याय में कहेंगे, और बाकी अन्य अन्य अध्यायों में वर्णन करे जावेंगे ।

शार्ङ्गधरेतु ।

कलाःसप्ताशयाःसप्त धातवःसप्ततन्मला । सप्तोपधातवः सप्त त्वचःसप्तप्रकीर्तिताः ॥ त्रयोदोषाःनवशतं स्नायूनां संधयस्तथा । दशाधिकंचद्विशत मस्थ्नाञ्चत्रिशतंमतं ॥ शतोत्तरंमर्मशतं शिरासप्तशतंतथा । चतुर्विंशतिराख्याता धमन्योरसवाहिकाः ॥ मांसपेश्यःसमाख्याता नृणां पञ्चशतंबुधैः । स्त्रीणांचविंशत्याधिकाः कण्डराश्चैवषोडश ॥ नृदेहेदशरन्ध्राणि नारीदेहेत्रयोदश । एतत्समासतःप्रोक्तं विस्तरेणाऽधुनोच्यते ॥

अर्थ— सात कला, सात आशय, सात धातु, सात धातुओं के मल, सात उपधातु सात त्वचा, तीन दोष, नौसै नाडी, तथा दोसै दश सन्धि, तीन सौ हड्डी, एक सौ सात मर्म, सात सौ छोटी शिरा अर्थात् नस, चोवीस रस के बहने वाली धमनी नाडी, मांसपेशी ५०० स्त्रियों के मांसपेशी पुरुष से बीस अधिक हैं, सोलह कण्डरा, पुरुष के देह में बडे छिद्र दश हैं, और स्त्रियों के १३ हैं । यह संक्षेप से शारीरक कहा है । अब इसी को विस्तार पूर्वक कहते हैं सर्व देह त्वचा से आच्छादित है इसी से सुश्रुत में प्रथम त्वचा का वर्णन है इसी में त्वचा का वर्णन करते है ।

सप्तत्वचा ।

तस्यखल्वेवंप्रवृत्तस्यशुक्रशोणितस्याभिपच्यमानस्य क्षीरस्येवसान्तानिकाःसप्तत्वचोभवन्ति ॥

अर्थ– इस प्रकार भूतात्मा के योग करके पचन होने वाला शुक्र शोणितों के विकार सैं सात त्वचा उत्पन्न होती है । जैसैं दूध के औटाने सैं मलाई उत्पन्न होती हैं ऐसैं देह में त्वचा प्रगट होती हैं।

ग्रन्थांतरेच।

त्वचायमखिलःकायः संवृतोविश्वकर्मणा । वाह्योपद्रव संघात द्रक्षितःसाधुतिष्ठतिः ॥ स्तरद्वयवतीयंत्वक् तद्वाह्यश्चर्मकथ्यते । स्तरोनाप्रोच्यतेन्तस्त्वक् भुमिःस्पर्शेन्द्रियस्यसा ॥ उपर्य्युपरिविस्तीर्ण स्तरसप्तकसंहतेः । एषा त्वगखिलाजाता कैश्चिदितिचमन्यते ॥ तोयानिलादिसंकर्षः स्वेदस्यचाविनिर्गमः । दैहिकस्योष्मणोरक्षा त्वचा संपाद्यतेध्रुवम् ॥

अर्थ– विश्वकर्मा (परमात्मा) करके इस त्वचा के द्वारा यह संपूर्ण देह ढकी हुई है । और देह के वाहर होने वाले उपद्रव समूहों में रक्षा करती है । इस त्वचा के दो पुरत है । वाहर के पुरत को चर्म (चाम) कहते हैं । और भीतर की त्वचा के पुरत को अन्तस्त्वक् अर्थात् भीतर की त्वचा कहते हैं । ये त्वचा स्पर्शेन्द्रिय का आधार है । कोई कोई आचार्य ऐसा कहते हैं कि, एक के ऊपर दूसरी इस प्रकार सातपुर्त मिल कर यह त्वचा वनी हुई है । इस त्वचा सैं यह प्रयोजन है कि, त्वचा द्वारा जल पवन आदि का शोषण (सूखना) पसीनों का निकलना, तथा दैहिक उष्मा की रक्षा संपादन होती है ।

त्वचाकेभेदकहते हैं।

तासांप्रथमावभासिनीनामयासर्ववर्णानवभासयति पंचविधांछायांप्रकाशयति

अर्थ– सात त्वचाओं में पहली त्वचा का नाम अवभासिनी कहते हैं । यह भ्राजक अग्नि के योग करके गौर कृष्ण आदि सर्व वर्ण प्रतीत करे है

और पंचमहाभूतों की करी हुई जो पांच प्रकार की छाया और प्रभा इन दोनों को प्रकाशित करे है।

शिष्य– छाया और प्रभा में क्या भेद है।

गुरु—— आसन्नालक्ष्यतेछाया प्रभादूरात्प्रकाशते।

अर्थ– छाया पास से मालूम होती है, और प्रभा दूर से ही प्रकाशित होती है यह दोनों में भेद हैं।

अवभासिनीत्वचाकाप्रमाणआदि।

साव्रीहेरष्टादशभागप्रमाणासिध्मकण्टकाधिष्ठाना

अर्थ– सर्व त्वचाओं के प्रमाण विषय में यव (जौं) के विस्तार के वीस भाग कल्पना करे इन में अव भासिनी त्वचा का प्रमाण अठारे भाग है। और यह अवभासिनी त्वचा सिध्म (विभूति) तथा कंटक आदि चर्म रोगों के उत्पन्न होने की जगह है।

द्वितीयत्वचा।

द्वितीयालोहितानामषोडशभागप्रमाणातिलकालक न्यच्छव्यङ्गाधिष्ठाना

अर्थ– दूसरी त्वचा लोहिता नामक है। इस त्वचा का प्रमाण जव (जौं) का सोलह भाग है। यह तिल, न्यच्छ, और व्यङ्गरोग (ये क्षुद्र रोगों में लिखे हैं) इन के उत्पत्ति होने की जगह है।

तृतीयत्वचा।

तृतीयाश्वेताद्वादशभागप्रमाणचर्मदलाजगल्लिका मशकाधिष्ठाना

अर्थ– तीसरी त्वचा का नाम श्वेता है। इस का प्रमाण जव के वारह भाग है। यह चर्मदलकुष्ट, तथा अजगल्लिका, और मस्सा, इन के होने की जगह है।

चतुर्थत्वचा।

चतुर्थीताम्रा अष्टभागप्रमाणाकिलासकुष्टाधिष्ठाना

अर्थ- चौथी त्वचा का नाम ताम्रा है । उस का प्रमाण जव का आठ भाग है, यह किलास कुष्ट होने का स्थान है ।

पंचमत्वचा ।

पञ्चमीवेदनीनामपञ्चभागप्रमाणकुष्ठविसर्पाधिष्ठाना

अर्थ- पांचवीं त्वचा का नाम वेदनी है । उस का प्रमाण पांच भाग, तथा कुष्ट, विसर्प, आदि चर्म रोगों की जन्म भूमि है ।

षष्ठत्वचा ।

षष्ठीलोहिताव्रीहिप्रमाणाग्रन्थ्यापच्यर्बुदश्लीपदगल गंडाधिष्ठाना

अर्थ- छटवीं त्वचा लोहिता नामक है । उस का प्रमाण एक जव है, यह गांठ, अपची, अर्बुद रोग, श्लीपद, गल, गंड, और गंडमाला इन रोगों की उत्पत्ति का स्थान है ।

सप्तमत्वचा ।

सप्तमीमांसधराव्रीहिद्वयप्रमाणाभगन्दरविद्रध्यर्शोधिष्ठाना

अर्थ- सातवीं त्वचा मांस धरा है । उस का प्रमाण दो जव है, यह भगंदर, विद्राधि, और बवासीर, आदि रोगों के उत्पन्न होने की जगह है । इस प्रकार सात त्वचाओं के नाम और प्रमाणादिक कहे हैं । परंतु यह प्रमाण मांसल देश अर्थात् जिस जगे अधिक मांस हो उस जगे जानना (जैसें उदर, ऊरू, जंघा, आदि की त्वचा हैं) किंतु ललाट उँगली इत्यादि सूक्ष्म देशों में यह त्वचा का प्रमाण न जानना क्यों कि आगे लिखते हैं । यथा ।

स्थूलअवयवोंकीत्वचाकाप्रमाण ।

उदरेव्रीहिमुखेनांगुष्ठोदरप्रमाणमवगाढंविध्येदिति

अर्थ- उदर में अंगुष्टोदर प्रमाण एक सें एक त्वचा लिपट रही है, इसी सें पेट में एक अंगुष्टोदर प्रमाण छेदे ऐसें कहा है तात्पर्य यह है कि,

सात त्वचा मिल कर अंगुष्ठोदर प्रमाण हैं । (अंगुष्ठोदर कहिये छः यव और एक का वीसवां भाग ६$\frac{1}{२०}$ को कहते हैं) इस प्रकार सात त्वचाओं का वर्णन कर, अब सात कलाओं का वर्णन करते हैं क्यों कि त्वचा के भीतर कलाओं का स्थान है ।

कलाकास्थान ।

कला.खल्वपिसप्तधात्वाशयांतरमर्यादाः

अर्थ- कला भी सात हैं (कला को भाषा में झिल्ली कहते हैं) वे धातु और आशयों की मर्यादा अर्थात् सीमा है । इस जगे धातु शब्द कर के रक्त मांसादि और कफ, पित्त, मल इत्यादि धातुओं के अवस्थान प्रदेश के मध्य में सीमा के समान है ।

कलाकाज्ञानप्रत्यक्षनहींहोताइसमेंदृष्टांतकरकेकहते हैं ।

यथाहिसार काष्ठेषु च्छिद्यमानेपुदृश्यते ।
तथाहिधातुर्मांसेषु च्छिद्यमानेपुदृश्यते ॥

अर्थ- जैसैं वृक्षों की लकडी का सार छाल में आच्छादित होने के कारण नहीं दीखे, परन्तु उस लकडी के छेदन करने में प्रत्यक्षही दीखता है इसी प्रकार धातु मांसादिकों के छेदन करने में दीखे है ।

कलाअदृश्यहैइसविषयमेंप्रमाण ।

स्नायुभिश्चपरिच्छन्ना न्सततांश्चजरायुणा ।
श्लेष्मणावेष्टिताश्चापि कलाभागांस्तुतान्विदुः ॥

अर्थ- कला भाग विशेष स्नायुओं से आच्छादित, और जरायु कहिये गर्भवेष्टन सदृश पदार्थ है उस को कलावेष्टक कहते हैं । उस में उत्तम प्रकार करके व्याप्त तथा कफ में वेष्टित है । इसी से दीखती नहीं हैं, कला का स्वरूपविशेष वृद्धवाग्भट में * लिखा है ।

---

* यस्तुधात्वाशयान्तरेपुक्लेदोऽवतिष्ठते सयथास्वमूष्मभिःविपक्वःस्नायुश्लेष्मजरायुच्छन्नःकाष्ठइवसारोधातुरसशेषोऽल्पत्वात्कलासंज्ञ इति ।

प्रथम कला ।

तासांप्रथमामांसधरायस्यांमांसेशिरास्नायु धमनीस्त्रोतसांप्रतानानिभवन्ति

अर्थ– सात कलाओं में प्रथम मांसधरा नाम कला है । जिस कला के आधार करके रहने वाले मांस में शिरा, स्नायु, धमनी, स्रोतस (छिद्र) इत्यादि फैले हुए हैं ।

मांसमेंशिरारहनेकादृष्टान्त ।

यथाविसमृणालानि विवर्द्धन्तेसमंततः ।
भूमौपङ्कोदकस्थानि तथामांसेशिरादयः ॥

अर्थ– जैसें पृथ्वी की कीच तथा जल इन में होने वाले कमल की जड, तंतु, और पत्ते इत्यादि चारो तरफ फैले हुए होते हैं उसी प्रकार कलाश्रित मांस में शिरा आदि फैली हुई हैं ।

शिष्य– रस सें रुधिर, रुधिर सें मांस होना हैं, ऐसा आप कह चुके हो फिर प्रथम रक्त धरा कला कहनी उचित थी फिर आपने मांस धरा कला क्यों कही ।

गुरु– रस सें रुधिर, और रुधिर सें मांस यह क्रम पोषण का है धारण का नहीं है । इसी सें लिखा कि जिस कला के आधार करके रहने वाले मांस में शिरा आदि फैली हुई है ।

द्वितीयकला ।

द्वितीयारक्तधरामांसस्याभ्यन्तरतस्तस्यांशोणितंविशेषतश्चशिरायकृत्प्लीहाश्चभवन्ति

अर्थ– दूसरी कला रक्त धरा है । यह मांस के भीतर है उस में रुधिर और विशेष करके शिरा, यकृत, और प्लीह ये होते हैं ।

रक्तादिरहनेकेविषयमेंदृष्टांत ।

वृक्षाद्यथाभिप्रहिता त्क्षीरिणःक्षीरमास्त्रवेत् ।

मांसादेवंक्षतात्क्षिप्रं शोणितंसंप्रसिच्यते ॥

अर्थ– जैसे दूध वाले वृक्षों की डाली पत्ता आदि टूटने से दूध बहने लगे है, उसी प्रकार मांस में घाव होने सें शीघ्र रुधिर निकलने लगता है ।

तृतीयकला ।

तृतीयामेदोधरा मेदोहिसर्वभूतानामुदरस्थोण्वस्थिपुच

अर्थ– तीसरी कला का नाम मेदोधरा है । मेद (चरवी) सर्व प्राणियों के उदर में और वारीक हड्डीओं में रहे है, और वडी हड्डीओं में मज्जा रहती है।

इसविषयमेंप्रमाण ।

स्थूलास्थिषुविशेषेण मज्जात्वभ्यन्तरेस्थिता ।
अस्थ्यन्तरेषुसर्वेषु सरक्तोमेदउच्यते ॥

अर्थ– वडी हड्डियों के भीतर बहुधा करके मज्जा रहे है, और इतर सर्व हड्डियों में रक्त सहवर्त्तमान मेदा रहता है, उसी प्रकार वसा है मेदोमज्जानुकारी-उपधातुवसा कौन सी है इस लिये कहते है ।

वसाकास्वरूपकहतेहैं ।

शुद्धमांसस्ययःस्नेहः सावसापरिकीर्त्तिता ।
तप्यमानस्यवास्नेहो मेदसःसावसामता ॥

अर्थ– शुद्ध मांस का अथवा तपायमान हो कर मेदा सें निकला घृत तेल इन के समान पदार्थ उस को वसा कहते हैं ।

चतुर्थ कला ।

चतुर्थीश्लेष्मधरासर्वसन्धिषुप्राणभृतांभवति

अर्थ– चोथी कला का नाम श्लेष्मधरा है । यह सर्व प्राणियों की सन्धी में रह कर-कफ को धारण करती है, इस कफ करके सन्धियों का चलना हलना निर्विघ्नता सें होता है ।

सन्धिचलनविषयमें दृष्टांत ।

स्नेहाभ्यक्तेयथैवाक्षे चक्रंसाधुप्रवर्त्तते ।

सन्धयःसाधुवर्त्तन्ते संश्लिष्टाःश्लेष्मणातथा ॥

अर्थ– रथ के धुरा और छिद्र में तथा चाक की भोंगली में, घृत तेल आदि चिकनाई लगाने सैं जैसा पैया और चाक का फिरना निर्विघ्नता सैं होता है । उसी प्रकार संधी कफ लिप्त होने सैं निर्विघ्नता सैं फिरती है । अैसा जानना ।

पांचवीं कला ।

पञ्चमीपुरीषधरानामयान्तःकोष्ठमलमभिविभजति । पक्वाशयस्था

अर्थ– पांचवीं कला का नाम पुरीषधरा है । यह पक्वाशय में स्थित हो कोष्ठ में रहने वाले मल का तथा मूत्र का विभाग करे है ।

कोष्ठोंकोकहते हैं ।

स्थानान्यामाग्निपक्वानां मूत्रस्यरुधिरस्यच ।
हृदुन्दुकःफुप्फुसश्च कोष्ठइत्यभिधीयते ॥

अर्थ– आमाशय, तथा अग्न्याशय, तथा पक्वाशय, तथा मूत्रस्थान, तथा यकृत और प्लीहा तथा हृदय और गुदा तथा गुदा में मल के लाने वाले मोटे आंतडे तथा फेफडा इन को कोष्ठ अैसा कहते हैं ।

पांचवींकलाकोकोष्ठाश्रितत्वसपष्टकरते हैं ।

यकृत्समंतात्कोष्ठंच तथान्त्राणिसमाश्रिता ।
उंदुकस्थंविभजते मलंमलधराकला ॥

अर्थ– मलधरा पांचवीं कला यह यकृत, प्लीह, हृदय, फुप्फुस, तथा आंतडे, इन सब के अवयवों में व्यापक हो रह कर उंदुकस्थ मल का विभाग करे है । कोष्ठ की मर्यादा ऊर्द्धप्रदेश में हृदय पर्यंत तथा अधो भाग में गुदा पर्यंत इन का आश्रय करके रहती है । उंदुक को लोक में पोदलक कहते हैं । परंतु चरक में पुरीपात्र करके उंदुक कहा है ।

छटवीं कला ।

पष्ठीपित्तधरानाम चतुर्विधमन्नपानमुपयुक्त
मामाशयात्प्रच्युतंपक्वाशयोपस्थितंधारयाति

अर्थ– छटवीं कला का नाम पित्तधरा है । यह भोजन करे हुए चतुर्विध अन्न पानी इन को आमाशय द्वारा पक्वाशय में पित्तस्थान के प्रति प्राप्त हुए उन को पक होने के उपरांत धारण करे है ।

उक्तश्लोककोस्पष्टकहते हैं ।

असितंखादितंपीतं लीढंकोष्ठगतंनृणां ।
तज्जीर्यतियथाकालं शोषितंपित्ततेजसा ॥

अर्थ–[असित] कहिये विशेष दंत व्यापार के बिना भक्षण करा हुआ तथा [खादित] कहिये दांतों से तोड कर खाया जाय जैसे चना आदि, तथा [पीत] जो पिया जाय जैसे दुग्धादि, और [लीढ] कहिये जो चाटा जावे जैसें मोंठ अवलेह, आदि ये चारों प्रकार के अन्न मनुष्य के कोष्ठ में पहुंचने के उपरांत पित्त के तेज करके शोषित हो मंद, मध्य, तेज, ऐसी त्रिविध अग्नि के लिये उचित काल तथा मात्रा लघु गुरू, इन के विषय में उचित काल के व्यतीत न होने सें पचता है । अर्थात् आमाशय और कफाशय में भ्रष्ट हो पक्वाशय में उपस्थित अर्थात पित्तस्थान में प्राप्त हुए अन्न को पाक करने के अर्थ धारण करती है इसी सें इस को पित्तधरा कला कहते हैं ।

इसविषयमेंसग्रहकाप्रमाणहै ।

~~पित्तधरानाम याकलापरिकीर्त्तिता ।
सन्धी में रह कर
चलना हलना नि[illegible]शयमध्यस्था ग्रहणीपरिकीर्त्तिता ॥

[illegible]त्तधरा कला पक्वाशय तथा आमाशय के मध्य में अ-
स्नेहाभ्यङ्ग[illegible]के रहती हुई, पूर्वोक्त चतुर्विध अन्न को पित्त के तेज
[illegible]इसी से इस छटवीं कला को ग्रहणी कहते है ।

सातवीं कला ।

सप्तमीशुक्रधरानामसर्वप्राणिनांसर्वशरीरव्यापिनी

अर्थ— सातवीं कला का नाम शुक्रधरा है । यह कला सर्व प्राणियों के सर्व देह में रहने वाले शुक्र को धारण करे है ।

शुक्रसर्वाङ्गव्यापकहोनेमेंदृष्टान्त ।

यथापयसिसर्पिस्तु गूढश्चेक्षौरसोयथा ।
शरीरेषुतथाशुक्रं नृणांविंद्याद्भिषग्वरः ॥

अर्थ— जैसे दूध के सर्व परमाणुओं में घृत, तथा ईख के सब अवयवों में रस, गुप्त रूप हो कर रहता है । उसी प्रकार शरीर में शुक्र धातु रहती है ।

शुक्रकागमनमार्गकहते हैं ।

द्व्यंगुलेदक्षिणेपार्श्वे वस्तिद्वारस्यचाप्यधः ।
मूत्रस्रोतःपथाच्छुक्रं पुरुषस्यप्रवर्त्तते ॥

अर्थ— मूत्राशय द्वार के अधोभाग में दहनी तरफ दो अंगुल पर जो मूत्र वाहिनी नाडी है, उस मार्ग के समीप से पुरुष का वीर्य प्रवृत्त होता है । इस विषय में प्रमाण कहते हैं ।

तदुक्तंवृद्धवाग्भटे ।

सप्तमीशुक्रधराद्व्यंगुलेदक्षिणपार्श्वेवस्तिद्वारस्यचाधो
मूत्रमार्गमाश्रितासकलशरीरव्यापिनीशुक्रंप्रवर्त्तयाति

अर्थ— सातवीं शुक्रधरा कला वस्ति द्वार के अधोभाग में दो अंगुल पर दक्षिण बाजू में, मूत्र मार्ग का आश्रय करके सर्व शरीर में व्याप्त हो शुक्र को प्रवृत्त करती है । यह वृद्धवाग्भट में लिखा है ।

वीर्यक्षरणकहते हैं ।

कृत्स्नदेहाश्रितंशुक्रं प्रसन्नमनसस्तथा ।
स्त्रीषुव्यायच्छतश्चापि हर्षात्तत्संप्रवर्त्तते ॥

अर्थ– जिस पुरुष का चित्त क्रोधादिक करके रहित, तथा स्त्री के साथ मैथुनादि शरीरायास (परिश्रम) करे उस पुरुष के सर्व देह में व्याप्त हो कर रहने वाला शुक्र सुख सें प्रवृत्त होता है।

गर्भवतीकेंआर्त्तवकानिषेधकहते हैं।

ग्रहीतगर्भाणांआर्त्तववहानांस्त्रोतसांवर्त्मान्यवरुध्यन्तेगर्भेणतस्माद्गृहीतगर्भाणामार्त्तवंनदृश्यते

अर्थ– जब स्त्री-गर्भवती होती है तदनंतर आर्त्तव वहनें वाली नाडियों के मुख गर्भ सें रुक जाते हैं, इसी सें उन गर्भवती स्त्रियों के आर्त्तव नहीं दीखे हैं।

स्तनदुग्धोत्पत्ति।

ततस्तदधःप्रतिहतमूर्ध्वमागतमपराचापचीयमानमपरेत्यभिधीयते शेषंचोर्ध्वान्तरमागतंपयोधरावभिप्रतिपद्यते तस्माद्गर्भिण्याःपीनोन्नतपयोधराभवन्ति

अर्थ– गर्भ-धारण के पश्चात्, वह आर्त्तव अधोभाग में जाने सें रुक कर ऊपर के भाग में जाय संचित हो कर आवर रूप होता है, और शेष भाग ऊपर स्तनों में प्राप्त होता है इसी सें गर्भवती के स्तन पुष्ट और उन्नत (ऊंचे) होते हैं।

अथगुहः।

शरीरंत्रिगुहंप्रोक्तं करोटिहृदयोदरैः। करोटौमस्तकस्नेहो वक्षस्युण्डुकफुप्फुसौ॥ हृत्कोष्ठश्चोदरेसान्ति यकृत्पित्ता मधामनी। क्लोमस्कन्धोधामनीकः क्षुद्रांत्रंस्थूलमंत्रकम्॥ प्लीहावृक्कद्वयंमूत्र नाडीवस्तिर्गुदंतथा। मत्तःशृणुतसर्वेषां मुक्तानागुणकर्माणि॥

अर्थ– इस मनुष्य देह में करोटि, वक्षस्थल, और उदर ये तीन गव्हर

(गुफा) के सदृश स्थान है । इसी कारण इस देह को त्रिगुह कहते हैं । इन में ऊर्द्ध गुहा अर्थात् करोटी (मस्तक की हड्डी) में मस्तिष्क, अर्थात् घृत के सदृश पदार्थ है । इसी के घटने सैं मस्तक पीडा आदि अनेक रोग होते हैं । और मध्य गुहा अर्थात् वक्षस्थल में उंडुक, फुप्फुस, और हृत्कोष्ठ है । उसी प्रकार नीचे की गुहा अर्थात् उदर में यकृत्, पित्ताशय, आमाशय, क्लोम, धमनी, स्कंध, छोटी आतडी, वडे आंतडे, प्लीहा, वृक्कद्वय, मूत्र नाडी, वस्ति, और गुदा (वडे आंतडों के नीचे का भाग) है । इन में प्रत्येक के गुण और कर्म क्रम सैं वर्णन करते हैं उन को सुनों ।

मध्यगुहा ।

व्रवीम्यूर्द्धगुहांपश्चा दिदानींमध्यमामया । सकोष्ठावर्ण्यतेव त्सा निशामयततत्वतः ॥ उरोऽस्थिपर्शुकोपास्थि पर्शुका आभितःस्थिताः । पार्श्वयोपर्शुकाःसन्ति पश्चात्पृष्ठकशेरुकाः पर्शुकाद्योर्द्धपट्टुश्च शिरस्यस्याभिवर्त्तते । आस्तेऽधस्तात्त थावक्ष स्थलपेशीचवक्षसः ॥

अर्थ— ऊर्द्ध गुहा का वर्णन स्नायु के वर्णन में करेंगे । अव मध्य गुहा का अर्थात् कोष्ठ सहित बक्षस्थल का वर्णन करा जायगा उस को श्रवण करो । इस गुहा के सन्मुख भाग में उरोस्थि (छाती की हड्डी) है, पर्शुकोपास्थि (पांशुओं के समीप रहने वाली छोटी हड्डी) है, पर्शु का गण (पांशुओं का समूह) दोनों पसवाडे, पीछे के अर्थात् पीठ की तरफ पृष्ठकसेरुका संपूर्ण है । ऊपर के भाग में प्रथम पर्शुका, तथा ऊर्द्ध पट्टु (वक्षस्थल के ऊपर ढका हुआ वस्त्रवत् पदार्थ विशेष) उसी प्रकार नीचे के भाग में वक्षस्थल पेशी जाननी ।

गर्भगुहायाएतस्या हृत्कोष्ठोण्डुकफुप्फुसाः ।
सन्त्यमीषांत्रयाणाञ्च व्रवीमिगुणकर्मणी ॥

अर्थ— इसी मध्य गुहा में हृत्कोष्ठ, उंडुक, और फुप्फुस है, इन तीनों

के गुण तथा कर्म क्रम में हम कहते हैं।

हृत्कोष्ठः (हृदय)।

उरोमध्यगतकोष्ठो लवनीफलवर्तुलः। रक्ताधारश्चतुर्गर्भ आवरण्यासमावृतः॥ तिर्य्यक्स्थोधमनीभूमिः फुप्फुसद्वयशीर्षकः। स्फीत्याकुञ्चनशीलोऽसौ हृत्कोष्ठइतिकीर्त्तितः॥ ऊर्द्धंगर्भद्वयंतस्य निम्नतश्चापितद्वयम्। ऊर्द्धस्थेदक्षिणेगर्भे शिरासङ्गमजेशिरे॥ अर्पयतोमहत्यौद्वे रक्तंगुणविवर्जितं। अधःस्याद्वामगर्भाच्च धमनीमूलमुत्थितं॥ सर्वेष्वपिचगर्भेषु रक्तंक्रमसमागतम्। दोषहीनंगुणैर्युक्तं जन्तुंजीवयतेगुणैः॥ अनिशंस्थायतेकोष्ठ प्रकृत्यासंकुचत्यपि। आभूमिस्पर्शनाद्याव न्मृत्युसर्वस्यदेहिनः॥ तदाकुञ्चनतोरक्तं महताखलुरंहसा। प्रविशेद्धमनीमूलं ततोभ्रमतिविग्रहम्॥ स्फायनाकुञ्चनेतस्य विरमेताक्षणंयदि। सहसैवभवेन्मृत्यु र्नास्ति कोऽप्यत्रसंशयः॥

अर्थ— हृत्कोष्ठ अर्थात् हृदय वक्षस्थल के मध्य स्थान में तिरछा हो कर रहता है। इस हृत्कोष्ठ की आकृति हरफारेवडी फल के सदृश है तथा एक प्रकार की आवरणी (ढकने के पदार्थ) से आच्छादित है। इस के ऊपर दो शिर वाली फुप्फुस है (अर्थात् एक फुप्फुस वामांस और एक दक्षिणांश के भेद में दो भेद हैं) यह हृत्कोष्ठ शुद्ध रुधिर का आगार है। इसी जगे में धमनी नाडी उत्थित है अर्थात् इसी से धमनी नाडी लगी हुई है, इस जगे चार प्रकार के गर्भ प्रकोष्ठ हैं दो ऊपर की तरफ, और दोनी चे की तरफ, प्रथम लिख आए है। ये जितनी शिरा है सब मिल कर दो बडी शिरा रूप परिणाम को प्राप्त हुई है। ये दोनों शिरा ऊपर स्थित

दक्षिण हृद्गर्भ सैं मिली हुई हैं, ये दोनों शिरा शरीर के दुष्ट रुधिर को शुद्धि करती है, अधःस्थ वाम गर्भ सैं मूल धमनी उत्पन्न हुई है, दूषित रुधिर इन गर्भ चतुष्टयों में प्राप्त होने सैं शुद्ध हो कर देह को आत्मगुण दे कर जीव को जिवाता है । यह हृत्कोष्ठ अर्थात् हृदय स्वभाव सैंही एक वार खिलता है, और एक वार संकुचित अर्थात् मुँदता है । जीव के गर्भ सैं निकल पृथ्वी के स्पर्श करते ही जब तक मृत्यु होती है तब तक बराबर हृदय के खुलने मुँदने की क्रिया निरंतर होती रहती है । हृत्पिंड के खुलते ही उस जगे रहने वाला रुधिर अति वेग सैं उस हृत्पिंड में प्रवेश कर तदनंतर धमनी समूह के मार्ग में प्रवेश हो सर्व देह में विचरे है । यदि एक क्षण मात्र भी हृदय का खुलना मुँदना बंद हो जावे तो उसी समय यह मनुष्य मर जावे इस में कुछ सन्देह नहीं है ।

फुप्फुस (फैंफडा) ।

फुप्फुसस्तुद्विधाभिन्नो वामदक्षिणभेदतः । पेश्यांवक्षस्थलस्थायां समासन्नोऽनुशीर्षकः ॥ अधोविशालोवहुभिः कोषैरिवमधुक्रमः । दुष्टशोणितसंशुद्धि कोषोऽयंपरिकीर्तितः ॥ तरुणास्थिमयीनाडी जिव्हामूलात्प्रधाविता । अधःशाखाद्वयवती फुप्फुसद्वयमागताः ॥ ततःशाखाद्वयात्तस्मा द्वह्व्यःशाखाविनिःसृता । कोषेषुफुप्फुसस्थेषु सुसूक्ष्माःसमुपस्थिताः ॥ नासामुखसमाकृष्टः पवनःश्वासकर्मणा । श्वासनाड्यातयासर्वा स्तान्कोषान्प्रविशत्यसौ ॥ महाशिराभ्यांहृत्कोष्ठं संप्राप्तंदुष्टशोणितम् । नाडीविशेषोनियतं तदानयतिफुप्फुसं ॥ श्वासाकृष्टोऽनिलस्तत्र समर्प्यात्मगुणंततः । निर्दोषंशोणितंकुर्यात्सुखोष्णंचसुलोहितम् ॥ तद्रक्तंहृदयंभूयः प्रविष्टंधम

नीगणैः । निरन्तरंमहारंहो देहान्तर्देहिनांभ्रमेत् ॥

अर्थ– फुप्फुस अर्थात् फेफडा दो विभागों में विभक्त है, एक वाम फुप्फुस और दूसरी दक्षिण फुप्फुस, यह वक्षस्थलस्थ पेशी के ऊपर स्थित है, इस के ऊपर का भाग छोटा है । और नीचे का भाग विशाल है, अर्थात् बडा है । जैसा मधुक्रम अर्थात् मोहार की मक्खी का कोष होता है, उसी प्रकार इस का असख्य कोष है । यह फुप्फुस दुष्ट रुधिर के शोधन करने का कोष्ठ है । जिव्हा मूल के नीचे से उपास्थिमयी एक प्रकार की नाडी नीचे को मुख जिस का ऐसी क्रम में गमन करती हुई अधोभाग में दो शाखा के बीच विभक्त हो कर दोनों फुप्फुस पर्यंत चली गई है । और इन दोनों शाखाओं में से बहुत सी छोटी छोटी शाखा प्रशाखा निकल कर फुप्फुस के प्रत्येक कोष में विद्यमान है । नासिका और मुख द्वारा भीतर को खींची हुई बाहर की पवन श्वास नाडियों में प्रवेश करके प्रत्येक कोष में प्राप्त होती है । पूर्व लिख आए हैं कि, ये जितनी शिरा है, सो मिल कर दो शिराओं में परिणाम को प्राप्त हो दक्षिण हृद्गर्भ में मिली हुई है। इन दोनों शिराओं के द्वारा प्राप्त हुआ दुष्ट रुधिर हृत्कोष्ठ में प्राप्त हो कर पश्चात् अन्य नाडियों के द्वारा फुप्फुस में प्राप्त होता है । तहां यह रुधिर श्वास करके भीतर लीनी हुई पवन द्वारा विशुद्ध और सुखोष्ण तथा लोहित वर्ण हो कर हृत्कोष्ठ अर्थात् हृदय में फिर प्राप्त होता है । फिर इस हृत्कोष्ठ में से धमनी नाडियों के मार्ग हो कर अति प्रबल वेग से सर्व देह में विचरे है । पांचवें नम्बर का चित्र देखो ।

श्वासाकृष्टोऽनिलोऽस्त्राय समर्प्यात्मगुणान्शुभान् । अशुभांश्चसमादाय फुप्फुसादथनिःसरेत् ॥ असौश्वासक्रियासाच कालेनयावतायदि । वारान्प्रवर्त्ततेनाड्याः स्पंदसंख्याचयाभवेत् ॥ इत्याद्यानिखिलाभावा नाडीज्ञानेपुरामया । वर्ण्यंतेश्रृणुतेदानीं हेतुंवाचांप्रवर्त्तने ॥

अर्थ– श्वास द्वारा लीनी हुई पवन फुप्फुस में जाय कर इस जगे उस

रुधिर को अपने उत्तमगुण दे कर और उस रुधिर के दुष्ट गुण लेकर फुप्फुस में सें निकलती है । इसी पवन के भीतर बाहर जाने आने को श्वास क्रिया कहते हैं । यह श्वास क्रिया जितने काल में जितनी बार होवे उतने काल में उतनी बार नाडी का फडकना होता है। (जितनी देर में मनुष्य एक श्वास लेता है उतने समय में नाडी ४ बार फडकती है ऐसा जानना) इत्यादि संपूर्ण नाडी की स्पंदन (फडकने की) संख्या आदि भावों को आगे नाडी ज्ञान में हम वर्णन करेंगे । अब बोलने की प्रवृत्ति के हेतु को वर्णन करते हैं उस को सुनों।

वाणीकेप्रवर्त्तनकाहेतु।

उर्ध्वांशःश्वासनाड्याहि वाक्यंत्रमितिकीर्त्तितः । तरुणास्थिधरारज्जू पेशीस्नायुकलागणैः ॥ निर्मितंकण्ठदेशेतत्पुरस्तादभिवर्त्तते । तस्योपास्थिविशेषस्य ह्युपक्षेपक्षिपक्षवत् ॥ कण्ठोत्सेधंजनयतो मिलित्वाचपरस्परम् । लक्ष्यतेचक्षुर्वैवैष क्षीणानांचविशेषतः ॥ तस्मादुपरिवाग्यंत्रा दुपजिव्हाभिवर्त्तते । अन्नग्रहणकालेया श्वासरन्ध्रंप्रगोपयेत् ॥ जनयन्वाक्ययंत्रस्य हेतूनांसमवायिनां । जन्तुर्भेदानवस्थायाः स्वरान्जनयतेवहून् ॥ सिंहशार्दूलखड्गानां रवैर्मूर्च्छंतिजन्तवः । विहङ्गगीतध्वनिभिः कोनमुह्यतिजन्तुषु ॥ द्रवीकरोतिहृदयं वालानांसुखदःस्वरः । क्रंदनध्वनिभिःकस्य नगलत्यश्रुनेत्रतः ॥ सुखैरमृतनिःस्यन्दैः कोमलैःकामिनीश्वरैः । सुरासुरनरेष्वेषु कोनमुह्यतिसर्वथा ॥ जिव्होष्टतालुदन्ताद्यै रन्योन्याऽभिहतैःश्वरः । कण्ठोद्भिन्नःकादिवर्ण भेदेनाथप्रकाशते ॥ ननरादितरेषांतद् यंत्राङ्गानांसुसंस्थितिः । निर्मितिश्चेदृ

शीतेऽतो नवदेरन्यथानरः ॥

अर्थ- पूर्वोक्त श्वास नाडी के ऊर्द्ध भाग को वाग् यंत्र ऐसे कहते हैं । वह वाग्यंत्र तरुणास्थि, धमनी, रज्जू , पेशी, स्नायु और कला आदि समूह से बना हुआ है । यह कंठ देश के अग्र भाग में विद्यमान है । उस एक प्रकार के उपास्थि विशेष वाग्यंत्र के पखेरू के तुल्य दो पख (पर) है । वे दोनों पाख परस्पर मिल कर कंठोत्सेध (अर्थात् कंठ से उत्तम स्वर को) प्रगट करें है ये दोनों पख नेत्र द्वारा विशेष करके क्षीण देह वाले मनुष्यों के प्रत्यक्ष दीखते है । इस वाग्यत्र के ऊपर उपजिव्हा (छोटी जीभ) है, यह उपजिव्हा जिस समय मनुष्य भोजन करता है उस समय श्वास आने जाने के छिद्र को आच्छादन (ढक) लेती है। कि जिस में भोजन करा हुआ अन्न जल आदि श्वास के छिद्र में जाने न पावे (दैव वश कदाचित् भोजन करते समय अन्न का ग्रास अथवा पानी आदि वस्तु इस श्वास छिद्र में गिर जावे तो असत खासी प्रगट हो कर उस को उस श्वास छिद्र में से निकाल कर वाहर पटक देती है । इसी को धांस गई कहते है) यह वाग्यत्र के समवायी कारण अर्थात् उपादान करण समस्त जीवों के अवस्था विशेष करके अनेक प्रकार के स्वरों को प्रगट करे है । जैसे सिंह, शार्दूल, गैंडे, आदि के घोर शब्द से सब प्राणी मूर्छित होते हैं । विहग (कोयल, तोता, मेना, कबूतर, आदि) के बोलने को सुनके कोन मोहित नहीं होवे ? छोटे छोटे बालकों का सुख-दायक मिष्ट स्वर हृदय को द्रवीभूत करता हैं । दुखिया जीवों का क्रन्दन अर्थात् रुदन सुन कर किस मनुष्य के नेत्रों से आंसू नहीं गिरते ? कामिनी (नवयौवना स्त्रियों) के सुख दायक अमृत तुल्य कोमल स्वर को सुन कर ब्रह्मांड के देवता, दैत्य, मनुष्यों में कौन मोहित न होगा ? कठ नाडी के सदृश जीभ, होंठ, तालू, और दात आदि वाग्यत्र के अङ्ग कहाते है । कठ से निकला हुआ स्वर इन पूर्वोक्त जीभ होंठ और वाग्यंत्रादि द्वारा परस्पर ताडित हो कर क च ट त प इत्यादि वर्ण स्वरूप करके प्रकाशित होते हैं । मनुष्यों के वाग्यंत्र की जैसी स्थिति और जैसी बनावट है ऐसी इतर प्राणी (सिंह,

व्याघ्र, कुत्ता, विल्ली, वानर आदि) के नहीं हैं, इसी सैं जैसा मनुष्य वोलता है अैसैं कुत्ता विल्ली आदि जीव नहीं वोल सक्ते।

उण्डुकः।

शोणितकिट्टप्रभवउंडुकः

अर्थ– रुधिर के मैल सैं उंडुक प्रगट होता है।

फुप्फुसस्यावरण्यौद्वे उर्णुतस्तद्वयंनयोः
उण्डुकःशैशवेसध्ये मध्यास्तेमहतांनहि

अर्थ– दो आवरनी द्वारा फुप्फुसद्वय ढकी हुई है। इन के मध्य भाग में वालक अवस्था में उण्डुक होता है। अवस्था के वढने सैं वाल्य अवस्था के साथ ही यह उण्डुक नष्ट हो जाता है। गांठ के सदृश एक प्रकार का पदार्थ होता है उस को उण्डुक वोलते हैं।

अधोगुहा।

गुहानांतिसृणांज्ञेया गुहाधःस्थामहत्तमा। वहुयंत्राण्ड वद्वृत्ता स्थानंपाकादिकर्मणा॥ उर्द्ध्ववक्षस्थलस्यास्याः पेशीवस्तिरधःस्थिता। पार्श्वयोश्चाभितःपेश्यः पश्चात्पेश्यःकशेरुकाः॥

अर्थ– तीनों गुहान में नीचे की गुहा अर्थात् उदर गव्हर वहुत वडा है। इस में अनेक शारीर यंत्र हैं, यह अंडा के सदृश गोलाकार है, इस में अन्न परिपाकादि क्रियाओं का स्थान है, इस गुहा के ऊपर वक्षस्थलस्थ पेशी है। और अधोभाग में वस्ति देश है, पार्श्व (पसली) दोनों तथा सन्मुख उदर की पेशी है, इसी प्रकार पीछे की तरफ औदरीय पेशी और कशेरुका गण है।

आंतडेआदिकीउत्पत्ति।

असृजःश्लेष्मणश्चापि यःप्रसादपरोमतः। तंपच्यमानं पित्तेन वातश्चाप्यनुधावति॥ ततोंत्राणिप्रजायन्ते गुदं

वस्तिश्चदेहिनः । उदरेपच्यमानानां माध्मातादुक्मसार वत् ॥ कफशोणितमांसानां सारान्मज्जाप्रजायते ।

अर्थ– रुधिर, तथा कफ, इन का उत्कृष्ट पदार्थ पित्त की उष्मा कर्के पचन होने से इन में वायु आन कर मिलता है, तिन सबों के मिलने से आतडी, वस्ति, और गुदा ये होते हैं । तथा उदर में देह की अग्नि के योग से पच्यमान कफ, रुधिर, मांस के सार में मज्जा होती है । जैसे सुवर्ण को तपाते तपाते उस से सार पदार्थ अर्थात् शुद्ध सुवर्ण प्रगट होता है, [गर्गी आचार्य उदर के स्थान में हृदय ऐसा पाठ कहता है अर्थात् हृदय में देह की अग्नि से पच्यमान कफ रुधिर ।

उष्मोत्पत्ति ।

यथार्थमूष्मणायुक्तो वायुःस्रोतांसिदारयेत् ।

अर्थ– पित्त से मिली हुई वायु, जैसा जिस का कार्य है तैसा रस, रुधिर, वीर्य, शब्द इत्यादिकों को वहने वाली नाडियों को करे हैं ।

पेश्युत्पत्ती ।

अनुप्रविश्यपिशितं पेशीर्विभजतेतथा ॥

अर्थ– वायु मांस में प्रवेश हो कर पेशियों का विभाग करे है । मांस के चौकोन तथा कोई लंबे ऐसी मांस की बोटियों को पेशी कहते हैं । इन की संख्या आगे पंचम अध्याय में कहेंगे ।

पेशियोंकास्वरूप ।

पेश्यःस्तुलोहिताःसौत्राः सर्वकायसमाश्रिताः । ताःसङ्कोचनशीलाश्च समन्तात्कलयावृताः ॥ स्यन्दनादिप्रवर्त्तिन्यो द्विधाताःपरिकीर्त्तिताः । स्वेच्छाधीनश्चकाश्चित्स्युः स्वाधिनाःकाश्चिदेवाहि ॥ सक्थिबाह्वादिषुज्ञेया इच्छाधीनास्तथापरा । अंत्रोपस्थादिषुप्रोक्तामुनिभिर्देहवेत्तृभिः ॥

धमन्यस्थिशिरास्नायु सन्धयश्चशरीरिणाम् । पेशीभिः संवृताःसर्वे भवन्तिवलिनोह्यतः ॥

अर्थ– सब पेशी लाल रंग की बहुत वारीक वारीक सूत सदृश पदार्थ सैं वनी हुई सर्व देह में व्याप्त है । और सर्वत्र झिल्ली में आच्छादित है, ये पेशी संकोचनशील अर्थात् इन्हों का सिमटने का स्वभाव है, और स्पंदन (फडकना आदि) क्रियाओं की प्रवर्त्तक हैं । पेशी दो प्रकार की हैं, एक स्वाधीन, दूसरी इच्छाधीन, तिन में सक्थि, भुजा, आदि में इच्छाधीन पेशी हैं । और आंतडी तथा उपस्थ (भग, लिंग,) प्रभृति आदि में स्वाधीन पेशी हैं । मनुष्यों के हड्डी, धमनी, शिरा, स्नायु, (पट्ठे) और सन्धि ये सब पेशियों के द्वारा वँधी हुई होने सैं सुरक्षित और वलवान् रहती हैं । पेशी का दूसरा नाम मांस है, वकरी आदि के मांस में प्रत्यक्ष दीखती हैं नेत्रों में जो लाल लाल डोरे हैं वे भी पेशी जाननी ।

स्नायुकीउत्पत्ति ।

मेदसःस्नेहमादाय शिरास्नायुत्वमाप्नुयात् ।
शिराणांतुमृदुःपाकः स्नायूनांतुततःखरः ॥

अर्थ– वायु, मेदा के स्नेह को ले कर पूर्वोक्त उष्मा सैं पक्क करके शिरा (रग) और स्नायु (पट्ठे) इन को उत्पन्न करे है ।

शिष्य– आपने कहा कि मेदा के स्नेह सैं शिरा और स्नायु प्रगट होती है सो मुझ को सन्देह है कि एक प्रकार के पदार्थ सैं दो प्रकार के पदार्थ कैसैं वनते हैं ।

गुरु– इस का यह कारण है कि शिराओं के स्नेह का थोडा नम्र पाक होता है और स्नायुओं के स्नेह का अधिक पाक होता है । इसी सैं दो प्रकार के पदार्थ वनते हैं जैसैं ईख के रस सैं राव और कंद होता है ।

आशयोत्पत्ति ।

आशयाभ्यासयोगेन करोत्याशयसम्भवम् ।

अर्थ– वायु अपनी स्थिती करके अपने सहवास करके आशओं को

करे है।

सप्ताशयान्याह।

उरोरक्ताशयस्तस्मा दधःश्लेष्माशयःस्मृतः । आमा शयस्तुतदधः स्तल्लिंगंचरकोवदन् ॥

अर्थ- उरः स्थल रक्ताशय कहाता है, उस उर (छाती) के नीचे कफाशय है, उस के नीचे आमाशय है, उस क लक्षण चरक में इस प्रकार लिखे है।

नाभिस्तनान्तरंजंतो राहुरामाशयंबुधा इति।

अर्थ- मनुष्य के नाभि और स्तनों के बीच में, पंडित जन आमाशय कहते हैं।

आमाशयादधःपक्वा शयादूर्ध्वंतुयाकला । ग्रहणीनाम्नि कासैव कथितःपावकाशयः ॥ उर्द्धमग्न्याशयोर्नाभे र्मध्य भागेव्यवस्थितः। तस्योपरितिलंज्ञेयं तदधःपवनाशयः ॥ पक्वाशयस्तुतदधः सएवतुमलाशयः । तदधःकथितोवस्ति सहिमूत्राशयोमतः ॥

अर्थ- आमाशय के नीचे और पक्वाशय के ऊपर जो कला (झिल्ली) है, उस को ग्रहणी कहते है, उसी को पावकाशय भी कहते है । नाभि के ऊपर मध्यभाग में अग्न्याशय है, उस के ऊपर तिल है, उस के नीचे पवनाशय है, उस के नीचे पक्वाशय है, उसी का मलाशय कहते है उस के नीचे बस्ति है, उसी को मूत्राशय कहते है ।

आशयोंकाअनुक्रमवाग्भटमेंइसप्रकारलिखाहै।

रक्तस्याधःक्रमात्परे । कफाऽऽमपित्तवाताना माशयाम लमूत्रयोः। पुरुषेभ्योऽधिकाश्चान्ये नारीणामाशयास्त्रयः ॥ धरागर्भाशयःप्रोक्तः पित्तपक्वाशयांतरे । स्तनौप्रवृद्धौतावे

व वुधैःस्तन्याशयोमतः ॥

अर्थ– रक्ताशय के नीचे क्रम सें, कफाशय. आमाशय, पित्ताशय, पवनाशय, मलाशय, और मूत्राशय ये आशय हैं । पुरुष की अपेक्षा स्त्री के तीन आशय अधिक हैं । पित्ताशय और पक्वाशय के वीच के स्थान को गर्भाशय कहते हैं । तथा दोनों स्तन जव वढते हैं तव उन्हीं दोनों स्तनों को पंडित स्तन्याशय मानते हैं ।

रक्तमेदप्रसादात्वृक्कौ

अर्थ– रुधिर और मेदा इन के सार सें वृक्क (कुक्षिगोलक) होते हैं। कूख में दो मांस के पिंड होते हैं उन को वृक्क कहते हैं ।

वृषणोत्पत्ति ।

मांसासृक्कफमेदःप्रसादाद्वृषणौ

अर्थ– मांस, रुधिर, कफ, और मेद इन के सार सें वायु के योग कर के पूर्व वत् वृषण (अण्डकोश) उत्पन्न होते हैं ।

अथाण्डद्वयम् ।

रेतःसूत्रसमावद्धं कोषगर्भेऽवतिष्ठति । रेतःस्राव्यण्डयुगलं ग्रन्थ्याभंचाण्डवर्त्तुलं ॥ भ्रूणस्योदरवेष्टिन्याः पश्चादुदरगव्हरे । तिष्ठेत्प्राक्स्पर्शो दूमेः कोपमायातितद्वयं ॥ दक्षिणस्मात्स्थूलतरं वामाण्डंनिम्नलाम्वि च । वामंरैतसिकंसूत्रं यतोदीर्घतरंपरात् ॥ उपर्य्युपरिसंस्थान स्तरद्वंद्वेननिर्मितः । कोषोरैतसिकेसूत्रे धत्तेऽण्डयुगलंतथा ॥ तयोराभ्यन्तरोरक्तः संकोचनगुणान्वितः । स्तरोवाह्यश्च र्ममयो लोमभिःकृतभिश्चनः ॥ स्तरास्तिरष्करण्यान्त रेकयाभिद्यतेद्विधा । तद्गर्भद्वयमध्यास्ते पुंसोऽण्डलयुगलंन नु ॥ उदराद्रेतसःसूत्रे पश्चाद्भागमथाण्डयोः । नियतं

समनुप्राप्ते धरास्नाय्वादिनिर्मिते ॥

अर्थ– दोनों अण्ड रेत सूत्र से बंधे हुए कोष के भीतर रहते हैं, इन दोनों का स्वरूप अंडे के सदृश गोलाकार है । इन्हीं दोनों अण्डकोषों में से वीर्य गिरता है, गर्भावस्था के समय अर्थात् जिस समय बालक गर्भ में होता है उस समय इस बालक के उदर गव्हर में उदरवेष्टनी के पिछाडी रहते हैं । बालक के पृथ्वी स्पर्श करने के पूर्व दोनों अण्ड दोनों कोषों में उतर आते हैं । बायां अण्ड दहने अण्ड की अपेक्षा कुछ बडा और उसी प्रकार वाम रेत सूत्र के अधिक लम्बे होने से कुछ अधिक नीचे को लटकता है । इन का आवरण कर्त्ता कोष एक के ऊपर दूसरा इस प्रकार के दो परतों से बना हुआ है । इन कोषों में दो रेत सूत्रों के नीचे ये दोनों अण्ड लटके हुए हैं । इन दोनों परतों में भीतर का परत सङ्कोचन गुण वाला है, अर्थात् (अंडों को खींचने से अथवा सरदी पाने से तथा स्वतः स्वभाव सुकड जाता है, कभी कभी बारम्बार सुकडते हैं और फिर लटक कर लम्बे हो जाते हैं) तथा भीतर के परत का लाल रङ्ग है । बाहर का परत चर्म मय है । यह परत बहुत से रोमाचों से व्याप्त है, भीतर का परत एक तिरष्करनी (अर्थात् पर्दा के सदृश एक प्रकार के पदार्थ से) दो विभागों में विभक्त हो कर (दो) गर्भों में परिणत है । इन्हीं दोनों गर्भों में दो अण्ड रहते हैं । रेतसूत्र दोनों उदर से ले कर दोनों अंडों के पिछाडी के भाग पर्यंत विस्तारित है । ये रेतसूत्र धमनी और स्नायु प्रभृति द्वारा निर्मित हैं * प्रसङ्ग वस मूत्र यंत्र और प्रजननेन्द्रियों को कहते हैं ।

अथमूत्रयन्त्राणि ।

वृक्कौद्वौमूत्रनाड्यौद्वे तथावस्तिश्चमूत्रणे । ज्ञेयानिमानियंत्राणि रंध्रमौपस्थिकंतथा ॥ शिम्बीवीजनिभौवृक्कौ यकृत्प्लीन्होरधःस्थितौ । पश्चादुदरवेष्टिन्याः कटिदेशगतौमतौ ॥ अत्रस्रोतांसिभूयांसि धमन्यस्त्रादयःसदा । गृन्ह

न्तिदोषसहिता स्तेनासृंशुद्धतांव्रजेत् ॥ वृक्कफुप्फुसचर्माणि धमनीशोणितादयः। सदोषांसम्यगादाय शोधयन्त्यनिशंहितत् ॥ वृक्काङ्गनिःसृतेनाड्यौ वस्तिपृष्ठमधोगते। वृक्कसंचितमूत्राणि वस्तिमानयतःशनैः ॥

अर्थ– दो वृक्कक, दो मूत्र नाडी, बस्ति तथा उपस्थ (लिंग तथा योनि) रन्ध्र ये सव मूत्र यंत्र के नाम हैं। दोनों वृक्कों का आकार सैंम के वीज का सा है। ये दोनों कटि देश (कमर) में यकृत् तथा प्लीहा के नीचे उदर वेष्टनी के पिछाडी रहते हैं। वृक्कस्थ स्रोतो नाडी समूह जो है सो धमनी नाडियों में रहने वाले रुधिर में जो दूषित जल का भाग है उस को खींच कर रुधिर को निर्दोष करती है। वही रुधिर का दूषित जल भाग जो है सो मूत्र नाम से विख्यात होता है।

वृक, फुप्फुस तथा चर्म ये रुधिर का दूषित भाग गृहण करके सदैव उस रुधिर को विशुद्ध करते रहते हैं। दोनों वृक्क के अङ्ग सें दो नाडी निकल कर वस्ती के पृष्ट भाग के नीचे जाय कर मिल गई है। ये दोनों नाडी वृक्कस्थ मूत्र कोष में संचित हुए मूत्र को धीरे धीरे उस मूत्र को वस्ती में मिलाती है।

अथवास्तिः।

कलापेइयात्मिकावस्ति गुदस्यपुरतःस्थिता। पश्चादौपस्थिकास्न्थोश्च मूत्राशयइतिस्मृता ॥ वस्तेरूर्ध्वमुखंरज्वा नाभौसंवद्धमेकया। अपराभिर्निवद्धाच वस्तिःस्थानेऽवतिष्ठते ॥ स्त्रीषुयोनिर्धराचापि गुदस्यपुरतःस्थिता। तयोस्तुपुरतोवस्ति र्विशेषोऽयमुदीरितः ॥ वस्तेःसंकुचितंनिम्नं मुखंरन्ध्रेणसंयुतं। औपास्थिकेनमूत्रस्य वाहिर्निःसरणाय हि ॥ आशयेसंचितंमूत्र मतिमात्रंयदाभवेत्। तदौप

स्थिकरन्ध्रेण रंहसानिःसरेद्बहिः ॥

अर्थ– वस्ति (अर्थात् मूत्राशय) पेशी और कला इन दोनों से बनी है। यह गुदा के सन्मुख तथा उपस्थिका की हड्डी के पिछाडी स्थित है। यह मांसमयी एक छिद्र द्वारा नाभी में बंधी हुई है। उसी प्रकार और भी कितने छिद्रों से सम्बद्ध हो अपने ठिकाने पर स्थित है। स्त्रियों की देह में गुदा के सन्मुख योनि तथा जरायु विद्यमान है। इन दोनों के सन्मुख वस्ति विद्यमान है। वस्ती का नीचे को मुखे मुकडा हुआ और उस जगे उपस्थिक (लिंग योनि के) छिद्र करके संयुक्त है। जब मूत्राशय में प्रमाण से अधिक मूत्र इकट्ठा संचय हो जाता है, तब उपस्थ के छिद्र करके अति वेग से बाहर निकलता है।

अथजननेन्द्रियम् ।

जीवस्रोतासिहेतुर्यद् यद्रतेतस्यसंहतिः । इन्द्रियंजननाख्यंत दुपस्थश्चेतिकथ्यते ॥ उत्पत्तौजीवसंघस्य द्वारंनान्यद्विद्यते । बलाद्विहीनेतत्सङ्गे जीवोत्पत्ति खिलीभवेत् ॥ यंत्रंविचित्रनिर्माण महोधात्राऽवितर्किणा । ध्यात्वाध्यात्वे वरहसि विहितंनिपुणेनतत् ॥ अहोयंत्रस्यशक्तिता कोवदेत्शक्तिमान्भुवि । सम्यग्जानातिविश्वात्मातत्स्रष्टैवहि तद्गुणं ॥ यस्यशक्त्याजगत्यस्मिन् पाशैरिववलीमुखाः । नृत्यन्तिजन्तवोनित्य मवशामुग्धमानसाः ॥ नित्यमानंदसंतान उत्साह करुणाक्षमा । शांतिर्दाक्षिण्यमास्तिक्यं मैत्रीचेहविराजते ॥ तदिन्द्रियभवंजीवा नित्यंभुंजंतियद्सुखं । विचेतनाइवस्वर्ग्यं तस्यनास्त्युपमाभुविः ॥ वनालयाश्चमुनयो भूपाःप्रासादवासिनः । कुटीरस्थादरिद्राश्च सर्वेतेनजिताध्रुवं ॥ पुमांसोनिखिलाल्लोके यौवनस्थाः

स्त्रियस्तथा । जन्तूष्वश्रान्तमवशाः कामयन्तेसुखंनुतत् ॥ शान्तौतदिन्द्रियंहेतु र्विद्रोहेचमहत्यपि । महिमानमतस्त स्य कःस्याद्वदितुमीश्वरः ॥ जीवप्रवाहरक्षार्थं शांतिसंस्था पनायच । इदमेवंगुणंधात्रा विहितंविश्वकर्मणा ॥ शक्ति महीयसीयंचे न्नस्यादस्यबलीयसी । इयमानन्दनिलयो धन्वेवधरणीभवेत् ॥ आलोच्यभावंनिखिलंतदीयं उन्मी लिताक्षाननुमूढजीवाः । अपास्यसंदेहमहोहिसत्तां शक्तिं तथेक्षध्वमचिंत्यशक्तेः ॥

अर्थ– ये इन्द्री जीव स्रोतो विषय अर्थात् जीवों के आनेका कारण है, उसी प्रकार इस जननेन्द्री के व्यतिरिक्त जीव का संहार जानना, अर्थात् विना जननेन्द्री के जीव किसी रीति सैं नहीं प्रगट हो सक्ता, इसी कारण इस को जननेन्द्री कहते हैं । जननेन्द्री का दूसरा नाम उपस्थ है, इस के विना जीव के उत्पन्न होने का दूसरा रास्ता नहीं है, यदि दोनों स्त्री पुरुष प्रतिज्ञा पूर्वक संग करना छोड देवें तो जीवोत्पत्ति का होना बन्द हो जावे इस जननेन्द्रीरूप यंत्र का निर्माण अति विचित्रहै यह विधाता ने अपूर्व कौशलता पूर्वक निर्माण करा है। इस के अङ्ग प्रत्यङ्ग समुदाय का परस्पर संबंध तथा विशेषकारित्व शक्ति अनिर्वचनीय है । इस यंत्र की इस शक्ति सैं ब्रह्मांडस्थ जीव गण अवश तथा मुग्ध मानस हो डोरी सैं बँधे हुए (वंदर) की तरह निरंतर नाचते हैं । पृथ्वी में ऐसा कौन सामर्थ्य वाला है जो इस यंत्र शक्ति का वर्णन करे, इस के गुण तो वोही विश्वप्रकाशक सृष्टी का रचने वाला जानता है । इसी के प्रभाव सैं, आनन्दप्रवाह, कर्मोत्साह, दया, क्षमा, शान्ति, चातुर्य, आस्तिक्य, और मैत्री, पृथ्वी मंडल में नित्य विराजमान रहती है, जीवगण नित्य विचेतन से हो कर इस इन्द्री सैं उत्पन्न हुए स्वर्ग के सुख सदृश इस अपूर्व सुख को संभोग करते हैं । इस सुख की पृथ्वी में कोई उपमा नहीं है । वनवासी ऋषीश्वर, महलों में रहने

वाले राजा महाराजा, और कुटी (झोंपडी) में रहने वाले दरिद्री मनुष्य ए सब इस विषय सुख सैं जीते गए है । यावन्मात्र मनुष्यों में यौवन अवस्था वाले पुरुष, और यावन्मात्र नवयौवना स्त्री है, सब इस सुख की निरंतर आकांक्षा करे है । येही इन्द्री असत शान्ति, और असत द्रोह का कारण है । जीव प्रवाह की रक्षार्थ और शान्ति संस्थापनार्थ विश्व कर्त्ता ने इस इन्द्री का अैसी अद्भुत शक्ति दीनी है, यदि इस इन्द्री में अैसी प्रबल तथा अलंघ्य शक्ती न होय तो यह आनंद धाम धरणी, थोडे ही काल में मरुभूमि (जङ्गल) के सदृश हो जावं ।

हे मूढ जीवगण ! जननेन्द्रिय संवधी सर्व भाव को विचार कर चिर संचित सन्देह को दूर कर, और बोध रूप नेत्रों को खोल कर, अचिंत्य शक्ति संपन्न जगदीश्वर का सख और शक्ति को देखो ।

आधारकारभेदेन पौंस्न स्त्रैणइतिद्विधा । विशिष्यतउपस्थःस चेतनावानिवास्थित· ॥ शिष्णोमेढ्रोव्यङ्गलिङ्गे मेहनंशेफशेफसी । पुरुषेन्द्रियनामानि ध्वजोपस्थौचसाधनम् ॥ स्त्रीन्द्रियस्यतुनामानि योन्युपस्थौभगोधरे ।तत्वं वच्म्यनयो·स्म्य गुभयोरप्युपस्थयोः ॥

अर्थ— आधार और आकार भेद करके उपस्थ दो प्रकार की है, पुरुषाधार पौंस्न और स्त्री आधार स्त्रैण उपस्थ कहाती है । दोनों उपस्थ चेतना संयुक्त के सदृश प्रतीत होती है । शिष्ण, मेढ्र, व्यग, लिंग, मेहन, शेफ, शेफः, (स्) ध्वज, उपस्थ, और साधन ए पुजननेन्द्रिय अर्थात् पुरुष की उपस्थ इन्द्री के नाम है । और योनि, उपस्थ भग, और अधर, इतने स्त्री जननेन्द्री के नाम है । दोनों उपस्थों के कार्य साधन मुष्कादि (पुरुषों के) और डिंवकोष आदि (स्त्री जाति के) जननेन्द्रिय पद वच्य इन दोनों प्रकार की जननेन्द्रियों का स्वरूप क्रम सैं वर्णन करत हैं ।

अथपुंजननेन्द्रियाणि

मेढ्रभूमि ।

यत्रोपस्थिसमायोगा दस्थिनीमिलितेउभे । उपास्थिके अधस्तस्मा त्पश्चाद्यास्तिगुदाशना ॥ दृढाग्रन्थिनि भापांडुः संवेष्ट्यवस्तिकंधराम् । मूत्रस्त्रोतोऽन्तरस्थश्च सामेढ्रीभूमिरुच्यते ॥

अर्थ– जिस स्थान में औपस्थिक दोनों हड्डियों का उपस्थि संयोग परस्पर मिला हुआ है, उसी के नीचे और पश्चात् भाग में गुदा के ऊपर स्थित दृढ, तथा पीले रङ्ग का ग्रन्थि (गांठ) सदृश पदार्थ को मेढ्रभूमि कहते हैं । यह वस्ती की ग्रीवा को तथा भीतर के मूत्र छिद्रों को वेष्टन कर रही है ।

कलायिकाद्वयम् ।

मेढ्रभूमिमनीडेद्वे कलायपरिमण्डले ।
आयुषाह्रासशीलिस्तौ गुटिकेतेकलायिके ॥

अर्थ– मेढ्रभूमि के निकट मटर के समान गोल दो गुटका (गोली) के सदृश पदार्थ हैं, इन दोनों का जैसें आयुष्य का घटना होता है उसी के साथ क्रम सें इन का भी ह्रास होता है, इन को कलायिका कहते हैं ।

मेढ्रः ।

मेढ्रभूमिसमारभ्य दीर्घःश्रृंगाररसाधनः । उपस्थास्थ्योःस काशाच्च मेढ्रसमाभिवर्त्तते ॥ मूलादयमुपस्थास्थ्योः कौषि केणचचर्मणा । संसक्तोवेष्टितश्चापि परंमूर्द्धनिकेवलम् ॥ आवृतोनचसंसक्त स्तस्मिन्नग्रीयचर्मणि । पश्चादाकृष्ट लिंगस्य मुंडंव्यक्तंप्रकाशते ॥ कदलीकुसुमाकारं लिङ्गमु ण्डंसचेतनम् । ततःपश्चाल्लिंगसरि ल्लिंगग्रीवाचसोच्यते ॥

तत्रश्चान्तरंरसःपूति निं स्रवेत्क्षारधर्मवान् । ततःश्चर्मस मासक्तं गात्रंलिङ्गस्यवर्त्तते ॥ ततोगुदसमीपेच लिङ्गमूल मवस्थितम् । वस्तितोमौत्रिकंस्रोतो लिङ्गमुण्डाद्बहिर्गतं ॥ मेढ्रोऽहृष्टस्यपुंसःस्या च्छिथिलंस्तंभवर्त्तुलम् । जातेहर्षे सएवस्याद् दृढस्त्रिभुजसन्निभः ॥

अर्थ– उपस्थ की दोनों हड्डियों के समीप मेढ्रभूमि में मेढ्र (लिंग) की उत्पत्ति है, अर्थात् इतनी लम्बाई को लिंग कहते हैं । यही संगम साधन इन्द्री है, यह लिंग, उपस्थ की दोनों हड्डियों के मूल भाग से ले कर ऊपर पर्यंत अण्डकोष के ढकने वाले चर्म से मिला और लिपटा हुआ है । परंतु मुंडांशभाग जिस को कि, सुपारी कहते हैं, वह चर्म से ढका हुआ है । किंतु उस चर्म में मिला हुआ नहीं है । इस लिंग के ढकने वाले चर्म को पिछाडी खीचने से लिंग का मुख उघड कर दीखने लगे है । लिंग के मुख का अर्थात् सुपारी का आकार केला के फूल के सदृश और चेतन्य के समान है । लिंग की सुपारी के पिछाडी में लिंग सरित् अ थवा लिंग की ग्रीवा (नाड) है । इसी जगे से बराबर एक प्रकार का दुर्गंध वाला खारी रस निकसता है । वोही लिंगग्रीवा में चिपट जाता है तब इस को मनुष्य लिंग में अंडे पड गए, ऐसा कहते हैं । और लिंग की ग्रीवा के पिछाडी के चिपटे हुए चर्म को लिंग गात्र ऐसा कहते हैं । तदनन्तर गुदा के समीप भागको लिंग-मूल कहते हैं । मूत्रस्रोत्र अर्थात् जिस में होकर मूत्र आता है वह छिद्र वस्ती की ग्रीवा से लेकर लिंग के भीतर हो कर लिंग के मस्तक के बाहर तक चला आया है, इसी छिद्र द्वारा संचित मूत्र बाहर को गिरता है । जब तक हर्ष नहीं होता तब तक लिंग सिथिल और स्तंभ के सदृश वर्त्तुलाकार पडा रहता है । और जहां हर्ष हुआ उसी समय लिंग खडा हो कर दृढ और त्रिभुजाकार हो जाता है । यद्यपि इस लिंग में कोई हड्डी नहीं है परंतु हर्ष के होने से लिंग की सर्व नाडी फूल जाती है, इसी से यह कठोर हो जाता है । इस को काम

शास्त्र में मदनांकुश करके लिखा है । जैसैं अंकुश के लगने सें हाथी चैतन्य होता है, उसी प्रकार इस के लगने सैं कामदेव चैतन्य होता है । लिंग का प्रमाण तथा सामुद्रिक द्वारा शुभा शुभ फल आदि विशेष वार्त्ता निघंट में (लिंग) शब्द की व्याख्या में लिखेंगे सो देखलेना ।

वीजकोषद्वय ।

वस्तिमूलगुदान्तःस्थौ वीजकोषौनृणांस्मृतौ । वीजंधारय तोगर्भ जननेमुख्यकारणं ॥ तद्वीजंतरलंस्त्यानं शुभ्रंगंध विशेषवत् । चेतनाण्डपरिव्याप्तं रेतःशुक्रंतदुच्यते ॥ नाड्याशुक्रप्रवाहिन्या फलमागत्यवैततः । उपस्थिकेनरं ध्रेन वहिर्निधुवनात्सरेत् ॥ आहारजःपरःसारः शुक्रंप्राण करंपरम् । कारणंजीवनेचोक्तं तत्क्षयान्मरणंध्रुवम् ॥ अतोरक्ष्यंप्रयत्नेन शुक्रंजीवनकांक्षिणा । नित्यंतत्संचये चापि यतितव्यंचसर्वथा ॥ रेतस्युपचितेऽत्यर्थं जायते रमणीस्पृहा । तदानिधुवनंकुर्य्या त्प्रियया नाविचारयन् ॥ अव्यवायान्मेहमेदो वृद्धिःशिथिलतातनोः । यतःस्यान्न हितंतस्मा त्कामस्यातिविनिग्रहः ॥

अर्थ– वस्ति के मूल में और गुदा के मध्य में दो वीज कोष रहते हैं । येदोनों गर्भोत्पत्ति के हेतु भूत वीज को धारण करते हैं, यह वीज घन, स्वच्छ, और विशेष गन्ध युक्त, एक प्रकार का तरल पदार्थ है । यह बहु चेतना वाले परमाणुओं सें व्याप्त है । वीज, रेत, और शुक्र आदि इस के नाम विख्यात हैं । ये वीर्य, विषय के समय वीर्य वाहिनी नाडियों के द्वारा अण्डकोषों में आकर पीछे उस जगे सें चल कर उपस्थिक छिद्र (लिंग के छिद्र) द्वारा निकलता है । यह शुक्र आहारजन्य प्रधान सार पदार्थ है, यही बल रक्षा तथा जीवन धारण का कारण भूत है, इस के अति क्षीण होने सें निश्चय मृत्यु होवे, इसी सें जीवन की इच्छा वाले मनु-

ष्य को नित्य सर्व यत्नों सें इस वीर्य के संचय और रक्षा में तत्पर होना चाहिये । जब वीर्य का अधिक संचय होता है तब इस पुरुष को अत्यंत स्त्री के सग की इच्छा होती है, जब अत्यंत स्त्री संग की इच्छा होय उस समय यथा शास्त्र के विचार पूर्वक परमसुंदर प्रियतमा स्त्री के साथ रति कर्म में प्रवृत्त होना उचित है, यदि वीर्य वृद्धि में भी स्त्री संग न करे तो प्रमेह, मेदवृद्धि, और देह में शिथिलता आदि अनेक रोग होते है । इसी-में काम प्रवृत्ती का अत्यंत रोकना हितकारक नहीं है । ६ छटे नम्बर का चित्र देखो ।

अथस्त्रीजननेन्द्रियाणि ।

भगमणिर्भगोष्ठौच भगपक्षद्वयंतथा । भगलिंगंचयोनिश्च तथाद्वेचकलायिके ॥ जरायुडिम्ववाहिन्यौ डिम्वकोषौसडिम्वकौ । स्तनौचेतीन्द्रियगणो नारीणां कथितोवुधैः ॥

अर्थ- स्त्रियों की जननेन्द्रिय कहते है । भगमणि, भगोष्ठद्वय, भगपक्षद्वय, भगलिंग, योनि, कलायिकाद्वय, जरायु, दोनोंडिंववाहिनी, दोनों-डिंवकोष, सर्वांडिव, और दोनों स्तन, इतनी-स्त्रियों के जननेन्द्री होती हैं ।

भगमणिः ।

औपास्थिकास्थ्योःपुरत स्त्वग्वसापरिनिर्मितः ।
उच्चैःसुकोमलोवृत्तः स्त्रीणांभगमणिःस्मृतः ॥
यदावाल्यमतिक्रम्य तारुण्यंयान्तियोषितः ।
तदुद्भवन्तिलोमानि समंतादस्यगात्रतः ॥

अर्थ- दोनों उपस्थि की हड्डियों के सन्मुख त्वचा और वसा द्वारा बने हुए ऊंचे और गोलाकार कोमल स्थान को भगमणि कहते हैं, स्त्री की वाल्य अवस्था व्यतीत होने पर और यौवन अवस्था के प्राप्त होते ही इस भगमणि के ऊपर चारों तरफ रोमांच उत्पन्न होते हैं ।

भगोष्ठद्वयम्।

भगविवरसंवेष्टौ भगोष्ठौपीवरौमणेः । मूलाधाराग्रसीमानं स्थितायावन्तुतद्द्वयम् ॥ पुंसांकोषद्वयमिव स्मृतंप्रकृतितोवुधैः । वाहिचर्ममयंचान्तः कलावद्यौवनेपुनः ॥ लोमभिर्व्रियतेस्नायु धराग्रन्थ्यादिसंयुतम् ।

अर्थ– भगरूप विवर (गड्ढे) के संवेष्टन करने वाले स्थूल अङ्गद्वय को भगोष्ठ कहते हैं, ये भगमणि सें लेकर मूलाधार की (गुदा और उपस्थ के मध्य वर्त्ती स्थान को मूलाधार कहते हैं) आगे की सीमापर्यंत विस्तारित है। दोनों भगोष्ठ पुरुषों के अण्डकोष के सदृश रूप वाले है। इन के वाहर का देश चर्म द्वारा तथा भीतर का भाग कला द्वारा वना हुआ है, ये दोनों यौवन अवस्था में वालों के समूह सें आच्छादित होते हैं, इन के भीतर फैली हुई स्नायु धमनी और गांठ है।

भगपक्षौ।

पश्चाद्भगोष्ठयोरूर्ध्वं कलावन्तौसुकोमलौ।
लिङ्गमुभयत्तःपक्षौ किंचिंनिम्नंसमागतौ ॥

अर्थ– दोनों भगोष्ठों के भीतर ऊपरले भाग में कला सें वना, असंत कोमल अंगद्वय को भगपक्ष कहते हैं । ए भगलिंग सें लेकर दोनों तरफ के पार्श्वों में कुछ दूर नीचे तक विस्तृत है।

भगलिङ्गम्।

भगोष्ठयोरूर्द्धसन्धेः प्रायेणाद्व्यङ्गुलादधः । चेतनंदीर्घदेहंच भगलिङ्गमितिस्मृतम् ॥ भगलिङ्गंयथापुंसां मेढ्रःप्रकीर्तितोमतम् ।

अर्थ– दोनों भगोष्ठों के ऊपर की संधी के प्राय करके दो अंगुल नीचे, लंवी आकृति वाले चेतना विशिष्ट अङ्ग विशेष को भगलिंग ऐसें कहते हैं। इस भगलिंग का आकार पुरुष के लिंग सदृश होता है।

हर्षोऽस्यापिरिरंसूना मन्याङ्गानांयथाभवेत् ॥

अर्थ– गुह्यद्वार और उपस्थ अर्थात् गुदा और भगलिंग के बीच वाले अंग को मूलाधार कहते हैं । रमण कर्त्ता मनुष्यों को जैसें और इन्द्री सुखदायक है उसी प्रकार यह हर्ष कर्त्ता है । सातवें नम्बर का चित्र देखो ।

हृदयोत्पत्ती ।

शोणितकफप्रसादजंहृदयंयदाश्रिताधमन्यःप्राणवहाः तस्याधोवामतःप्लीहाफुप्फुसश्चदक्षिणतोयकृत्क्लोमच तद्धृदयंविशेषेणचेतनास्थानमतस्तस्मिन्तमसावृतेप्राणिनःस्वपंति

अर्थ– रुधिर और कफ इन के सार सें हृदय बना है । जिस के आश्रय करके रहने वाली धमनी नाडी प्राणों को वहती है । तथा हृदय के अधोभाग में बाईं तरफ प्लीहा है । और दहनी तरफ फुप्फुस है, तथा हृदय के दहनी तरफ कुछ नीचे को यकृत् और क्लोम ये है । यकृत् कलेजे को कहते है । और क्लोम तिलकालक को कहते है । ये प्यास लगके स्थान है । और यह हृदय विशेष करके चेतना का स्थान है, जब यह तमोगुण से व्याप्त होता है तब प्राणी सोते हैं । इस जगे हृदय के कहने सें सर्व देह चेतना स्थान है ऐसा जानना जैसै चरक में लिखा है ।

शरीरकोचेतनास्थानकहते है ।

चेतनानामधिष्ठानं मनोदेहश्चसेन्द्रियम् ।
केशलोमनखाग्रान्त मलद्रव्यगुणैर्विना ॥

अर्थ– इन्द्री सह मन और सर्व देह चेतना का स्थान है । परंतु केश लोम, और नखों के अग्रभाग अर्थात् छेदनख, इत्यादि मलद्रव्यों के गुण विना सर्व देह चेतना का स्थान है ।

हृदयकास्वरूप ।

पुण्डरीकेणसदृशं हृदयंस्यादधोमुखं ।
जाग्रतस्तद्विकसति स्वपतश्चनिमीलति ॥

अर्थ- हृदय कमल के समान अधोमुख है वह जागृत अवस्था में खुल जाता है और जब प्राणी सोते हैं तब मुद जाताहै।

प्रसंगवसानिद्राकावर्णनकरते हैं

निद्रातुवैष्णवीमाया पाप्मानमुपदिश्यति
सास्वभावतएवसर्वं प्राणिनोभिस्पृशति

अर्थ–निद्रा विष्णु की माया है। उसका स्वभाव ऐसा है कि यह सर्व प्राणी मात्रों को स्पर्श करके शुभा शुभ कर्म का निरोध करती है। इसीसें पापों का ही उपदेश करें हैं। यद्यपि अन्य ग्रंथों में सात प्रकार की निद्रा कही है। तथापि तामसी, स्वाभाविकी, और वैकारकी, ऐसे तीन प्रकार की मुख्य निद्रा हैं उनको कहते हैं।

तामसीनिद्रा।

यदासंज्ञावहानिस्त्रोतांसितमोभूयिष्ठंश्लेष्माणंप्रतिप
द्यन्तेतदातामसीनिद्राभवतिअनववोधनीसाप्रलये

अर्थ–जिसकाल में शरीर के चैतन्य वहने वाली नाडियों में तमोगुण प्रधान कफ जायकर उन नाडियों के मार्ग को रोकलेता है। उसकाल में घोर निद्रा आतीहै। उसमें ज्ञान नहीं रहता तथा यह प्रलय काल में मूर्च्छा के विषें होतीहै। यद्यपि सर्व निद्राऔं का हेतु तमो गुणहै। तथापि इस में अधिक होताहै। इसीसे इसको तामसी निद्रा कहते हैं।

स्वाभाविकीनिद्रा।

तमोभूयिष्ठानामहः सुनिशासुचभवति
रजोभूयिष्ठानामनिमित्तं सत्वभूयिष्ठानामर्धरात्रे

अर्थ- निद्रा, तमोगुणी पुरुषों को दिन रात, और रजोगुणी पुरुषों को कभी रात में और कभी दिन में कभी सायंकाल में कभी सूर्योदय, कभी तीनों सन्ध्या में निद्रा आती है। और सतोगुणी पुरुषों को आधीरात्रि के समय अल्पसत्व होता है और तमोगुण अधिक होता है इसी सें अर्द्धरात्रि के समय निद्रा आती है।

वैकारिकीनिद्रा ।

क्षीणश्लेष्मधातूनामनिलवहुलानांमन.शरीरा
भिघातवतांचनैवसावैकारिकीभवति ।

अर्थ- जो प्राणियों के शरीर को वल देने वाला कफ, और सप्त धातु ए क्षीण होने में तथा शरीर मे वायु प्रवल होने मे, तथा मन और शरीर इन में किसी प्रकार की चोट लगने मे. उस मनुष्य को निद्रा नहीं आती है, कदाचित् थोडी आने में उस को वैकारिकी निद्रा जाननी ।

लंघन श्रमादिक करके शरीर में वायु वढती है, और कफ क्षीण होता है उस काल मे निद्रा कैसे आती है ? उस को कहते हैं । उस काल में मन को असत ग्लानि होने मे भूतात्मा की विषयों मे निवृत्ति होने में प्राणी सोते हैं इस में प्रमाण है ।

तदुक्तंचरके ।

यदातुमनसिक्लान्ते कर्मात्माचश्रमान्वित.।
विषयेभ्योनिवर्तन्ते तदास्वपितिमानवः ॥

अर्थ- जिस समय मन ग्लानि युक्त होता है, और कर्मात्मा (कर्म पुरुष) को श्रम होने से विषयों से निवृत्त होती है उस काल में मनुष्य सोता है ।

पूर्व गद्य करके कहे हुए अर्थ को सुख वोधार्थ फिर दो श्लोकों से कहते है ।

हृदयंचेतनास्थानमुक्तंसुश्रुतदेहिना । तमोभिभूतेस्तस्मिंस्तु निद्राविशतिदेहिनां ॥ निद्राहेतुस्तमःसत्वंवोधनेहेतुरुच्यते । स्वभावएववाहेतुर्गरीयान्परिकीर्त्तित ॥

अर्थ- हृदय प्राणियों का चेतना स्थान है, वह तमोगुण करके व्याप्त होने में निद्रा आती है, निद्रा का कारण तमोगुण और जगने का कारण सतोगुण है, अथवा परमश्रेष्ठ स्वभावही दोनों अवस्थाओं का कारण कहाहै।

निद्रावस्थामेंस्वप्नदर्शनकैसेंहोताहैसोकहतेहैं ।

पूर्वदेहानुभूतानां भूतात्मास्वपतःप्रभुः ।
रजोयुक्तेनमनसा गृन्हात्यर्थान्शुभाशुभान् ॥

अर्थ– भूतात्मा जो सोने वाले के देह का नियंताक्षेत्रज्ञ वह पहले अनन्त जन्मों के अनुभव करे विषयों के सुख दुःखों को भोगासक्ति रूप मन करके ग्रहण करे है उसी को स्वप्न कहते हैं ।

इन्द्रियोंकेलयकरकेआत्मानिद्रितसादीखताहैं ।

करणानांतुवैकल्ये तमसाभिप्रवर्धिते ।
अस्वपन्नपिभूतात्मा प्रसुप्तइवचोच्यते ॥

अर्थ– तमोगुण की वृद्धि करके इन्द्री विकल होने सैं क्षेत्रज्ञ, न सोता हुआ भी सोता हुआ सा प्रतीत होता है ।

दिनकीनिद्राकाविधिनिषेधकहतेहैं ।

सर्वर्तुषुदिवास्वापः प्रतिषिद्धोऽन्यत्रग्रीष्मात्

अर्थ– ग्रीष्म ऋतु को साग कर अन्य ऋतुओं में दिन का सोना वर्जित है ।

प्रतिषिद्धेष्वपिवालवृद्धस्त्रीकर्षितक्षतक्षीणनित्यमद्यपानवाहनाऽध्वकर्मपरिश्रांतानामभुक्तवतांमेदस्वेदकफरक्तक्षीणानामजीर्णिनांचमुहूर्त्तस्वापनमप्रतिसिद्धम्

अर्थ– वर्जित ऋतु में भी वालक वृद्ध और मैथुन करके क्षीण तथा उरःक्षत करके क्षीण तथा निस मद्यपान कर्त्ता तथा घोडा ऊँट आदि वाहन पर चढने करके थका हुआ तथा उपवास और जिस के मेद, पसीने, कफ रस, रुधिर, ए क्षीण हो गए हों उन को तथा अजीर्ण वाला इन सब को दिन में दो घडी निद्रा लेने का निषेध नहीं है, उसी प्रकार रात्रि में जगे हुए मनुष्य को जितने समय रात्रि जगा हो उस सैं अर्ध काल पर्यंत दिन में सोना हितकारी है ।

अतिनिद्राकेदोष ।

विकृतिर्हिदिवास्वापोनाम तत्रस्वपतामधर्मःसर्व दोषप्रकोपश्चकासश्वासप्रतिस्यायशिरोगौरवअंग मर्दारोचकज्वराग्निदौर्बल्यानिभवंति

अर्थ– दिन में सोने से विकृति होती है, और अधर्म होता है तथा वात रक्तादि सर्व दोषों का प्रकोप हो कर खासी, श्वास, सरेकमा देह भारी अंगों का टूटना, अरुचि, ज्वर, मंदाग्नि और दुर्बलता इत्यादि विकार होते हैं ।

तस्मान्नजागृयाद्रात्रौ दिवास्वापंतुवर्जयेत् । ज्ञात्वादोषकरावेतौ बुधःस्वापंमितंचरेत् ॥ अरोगःसुमनाह्येवं बलवर्णान्वितोबुधः । नातिस्थूलकृशःश्रीमान् नरोजीवेत्समाशतम्

अर्थ– पूर्वोक्त अधर्म और विकार होते है इसी से रात्रि में जागना और दिन में निंद्रा लेना त्याग देवे, पण्डितों को ये दोनों दोष कारक ऐसें जान कर निद्रा तथा जागरण परिमाण के करने चाहिये, इस प्रकार वर्त्ताव करने वाले पुरुष रोग रहित जिन का मन निर्दोष तथा बल करके और वर्ण करके युक्त तथा स्त्री रमण शक्ति युक्त न, अत्यंत मोटे न, बहुत पतले ऐसें होते है, तथा वे शरीर की शोभा युक्त हो सौ १०० वर्ष पर्यंत जीते है ।

निद्रानाशकेहेतु ।

निद्रानाशोनिलात्पित्ता न्मनस्तापात्क्षयादपि ।
संभवत्यभिघाताच्च प्रत्यनीकैश्चशाम्यति ॥

अर्थ– वात, पित्त, क्षय तथा मनःसताप इत्यादि कारणों करके निद्रा का नाश होता है । और वो निद्रा नाश जिन कारणों से होता है, उस के विरुद्ध अभ्यगादि उपचार करने से शान्ति होता है ।

उपचारोंकोकहतेहैं।

निद्रानाशेभ्यंगयोगो मूर्ध्नितैलनिषेवणम्। गात्रस्योद्वर्त्तनंचैव हितसंवाहनानिच॥ शालीगोधूमपिष्टान्न भक्षैरैक्षवसंस्कृतैः। भोजनंमधुरंस्निग्धं क्षीरमांसरसादिभिः॥ रसैर्विलेशयानांच विष्कराणांतथैवच। द्राक्षासितेक्षुद्रव्याणा मुपयोगोभवेन्निशि॥ शयनासनयानानि मनोज्ञानि मृदूनिच। निद्रानाशेचकुर्वीत तथान्यानपिबुद्धिमान्॥

अर्थ निद्रा नाश होनेपर तेल का मालिस कर भलेप्रकार गरमजल से स्नान करें तथा मस्तक में तेल डालना तथा शरीर में उवटना उत्तम रीत से कर अस्नान करें तथा अंगोंका धीरे धीरे मसल वावे तथा सांठी चांवल और खांड से वने हुए गोधूम पिष्टान्न का भोजन तथा दूध और मांस इत्यादि करके स्निग्ध मधुर अैसें भोजन करें विले में रहने वाले ससे सेह आदि जानवर तथा मुरगा तीत्तर आदि विष्कर पक्षी इनका मांस रसकर के तथा दाख मिश्री और गंडे इन का रात्रि मे सेवन कर के तथा सयन स्थान आसन और सवारी ए उत्तम नम्र मन को आल्हाद करने वाली और प्रावर्ण (हिम नाशक कपडे) आदि करके निद्रा नाश का उपशम अर्थात् शान्ति होती है।

अतिनिद्राआनेकाउपाय।

निद्रातियोगेवमनं हितंसंशोधनानिच।
लंघनंरक्तमोक्षश्च मनोव्याकुलतापिच॥

अर्थ– निद्रा का अति योग होने सैं वमन करना हित है, तथा वमन विरेचन स्वेदन इत्यादिकों करके शरीर का शोधन तथा लंघन और रुधिर का कढाना तथा मन को व्याकुलता इत्यादिक उपचार हित कारक होते हैं, यद्यपि संशोधन के कहने सैं हीं वमन का वोध हो गया तथापि पुनः वमन का ग्रहण करने सैं विशेषताद्योतन करी है अैसा जानना।

रात्रिमेंनिद्रावर्जितमनुष्य ।

कफमेदोविषार्त्तानां रात्रौजागरणंहितम् ।

अर्थ– कफ रोगी, मेद रोगी, और विष से व्याकुल पुरुषों को रात्रि में जागरण करना हित कारक है ।

दिनमेंकौनसेमनुष्योंकोसोनाचाहिये ।

दिवास्वापश्चतृट्शूल हिक्काजीर्णातिसारिणाम् ॥

अर्थ– तृषा, शूल, हिचकी, अजीर्ण और अतीसार इन रोगों से व्याप्त मनुष्यों को दिन में सोना हितावह है ।

निद्राकेभ्रमगकरकेतंद्राकोकहते हैं ।

इन्द्रियार्थेष्वसंप्राप्ति गौरवंजृंभणंक्लमः ।

निद्रार्त्तस्येवतस्येहा तस्यतन्द्रांविनिर्दिशेत् ॥

अर्थ– जिस अवस्था में शब्दादिक विषयों का अज्ञान शरीर का जडता तथा जँभाई, क्लम ए होते है तथा निद्रा युक्त होने पर भी चैतन्यता होय उस अवस्था को तंद्रा कहते है, निद्रा के विषे जागने के पश्चात् ग्लानि नहीं होती, और तन्द्रा में ग्लानि होती है ऐसा जानना ।

जँभाईकेलक्षण ।

पीत्वैकमनिलोच्छ्वास मुद्वेष्टंविवृतानन. ।

संमुंचतिसनेत्रांशु सजृंभइतिकीर्त्तित· ॥

अर्थ– जिस अवस्था में मनुष्य एक उच्छ्वास संबंधी वायु मुख को पसार कर पीवे, पीछे छोडते समय मुख विकासित करके आंसू छोडे उस अवस्था को जँभाई कहते हैं ।

छींककेलक्षण ।

प्राणोदानैसमौस्याता मुर्ध्निस्रोतःपथिस्थितौ ।

नस्त·प्रवर्त्ततेशब्द क्षवथुंतंविनिर्दिशेत् ॥

अर्थ– हृदयस्थ वायु और कण्ठस्थ वायु ए मस्तक में जाय कर शिरा

(नाडी) के मार्ग वंद करके क्षण मात्र स्थिर हो कर अकस्मात् नासिका सैं शब्द युक्त वाहर निकले उस अवस्थाको छिक्का (छीक) कहते हैं।

क्लमकेलक्षण।

योनायासश्रमोदेहे प्रवृद्धश्वासवर्जितः।
क्लमःसइतिविज्ञेय इन्द्रियार्थप्रवाधकः॥

अर्थ–जिस अवस्था मे परिश्रम विना देह के विषे श्रम होय परंतु श्रम में भारी श्वास होय वो होय नहीं और इन्द्रियों की सर्व कर्मों के विषय में प्रवृत्ति होय नहीं उस अवस्था को क्लम और ग्लानि कहते हैं।

आलस्यकेलक्षण।

सुखस्पर्शप्रसंगित्वं दुःखद्वेषणलोलता।
शक्तस्यचाप्यनुत्साहः कर्मण्यालस्यमुच्यते॥

अर्थ– जिस अवस्था में सुख स्पर्श की इच्छा और दुःख सैं द्वेष होय और शक्ति होने परभी कर्म करनेमें उत्साह न होय उस अवस्थाको आलस्य कहते हैं।

कोईइसजगेउत्क्लेशऔरग्लानीकेलक्षण।

उत्क्लिश्यान्नंननिर्गच्छे त्प्रसेकष्ठीवनेरितम्। हृदयंपी
ड्यतेचास्य तमुत्क्लेशंविनिर्दिशेत्॥ वक्त्रेमधुरतात
न्द्रा हृदयोद्वेष्टनंभ्रमः। नचान्नमभिकांक्षेत ग्लानि
स्तस्याविनिर्दिशेत्॥

अर्थ– जिस अवस्था में पेट में सैं ठकिल कर ऊर्ध्व वेग आवे परंतु उस वेग के साथ अन्न वाहर न निकले और ओकारी आवे मुख सैं लार और पानी गिरे तथा हृदय में पीडा होय उस अवस्था को उत्क्लेश कहते हैं तथा मुख में मिठास आय कर तन्द्रा होय तथा हृदय भारी और घिरासा प्रतीत हो, भ्रम होय अन्न पर इच्छा होय नहीं उस अवस्था को ग्लानि कहते हैं।

गौरवकेलक्षण ।

आर्द्रचर्मावनद्धंवा योगात्रंमन्यतेनरः ।
तथागुरुशिरोत्यर्थं गौरवंतद्विनिर्दिशेत् ॥

अर्थ- जिस अवस्था में मनुष्य अपनी देह को गीले चमडे सें ढका हुआ सा भारी जाने और मस्तक अयत भारी मतीत होय उस अवस्था को गौरव कहते हे।

मूर्च्छादिकोंकाकारणकहते है ।

मूर्च्छापित्ततमःप्राया रजःपित्तानिलाद्भ्रमः ।
तमोवातकफात्तन्द्रा निद्राश्लेष्मतमोभवा ॥

अर्थ- अकस्मात् अंधकार आय कर मनुष्य निश्चेष्ट गिर पडे ऐसी अवस्था पित्त और तमोगुण इन सें होती है उस को मूर्च्छा कहते है, चाक पर बैठा कर फिराने सें जैसी अवस्था होती है, वह रजोगुण पित्त और वायु इन सें होती हे इस को भ्रम कहते है तद्रा तमोगुण वायु और कफ इन करके होती है, तथा निद्रा, कफ और तमोगुण इन करके होती है।

गर्भवृद्धिविषयमेंअन्यहेतुकहते हैं ।

गर्भस्यखलुरसनिमित्तामारुताध्माननिमित्ताच-
परिवृद्धिर्भवति

अर्थ- गर्भ की वृद्धि दो मकार से होती है, एक रस निमित्ता दूसरी मारुताध्मान निमित्ता तहां रस निमित्ता वृद्धि उसे कहते हैं जैसे माता के रस वाहिनी नाडी से गर्भ की नाभि नाडी लगी हुई है, वह माता के आहार रस सें रस को लेकर गर्भ का पोपण करे है यह मकार मथम कह आए है, और दूसरे मकार की वृद्धी वायु करके शिराओं की पूर्णता हो कर गर्भ के सर्व अवयवों की वृद्धी होती है ऐसे जानना ।

स्रोतसोंकाआध्मानकीमाप्तिकहते है ।

तस्यातरेणनाभेस्तु ज्योतिस्थानंध्रुवंस्मृतं ।

तदाधमतिवायुस्तु देहस्तेनाभिवर्द्धते ॥

अर्थ- गर्भ के नाभी में अग्नि का स्थान है, अैसैं मुनिश्वरों ने कहा है, उस अग्नि को वायु प्रज्वलित करता है वह अग्नि वायु सहवर्त्तमान शिराओं में प्रवेश होकर पूर्ण होने सैं गर्भ की वृद्धि होती है।

सर्वदेहकीवृद्धिकहते हैं।

उष्मणासहितश्चापि दारयत्यस्यमारुतः।
ऊर्ध्वंतिर्यगधस्ताच्च स्त्रोतांस्यापियथातथा ॥

अर्थ- उष्मा करके संयुक्त वायु जैसैं जैसैं आपाद मस्तक पर्यंत शिराओं को पूरण करता है, तैसैं तैसैं गर्भ का देह वढता है।

जैसैं२शरीरवढताहैतैसैं२दृष्ठ्यादिकनहींवढते।

दृष्टिश्चरोमकूपाश्च नवर्द्धन्तेकथंचन।
ध्रुवाण्येतानिमर्त्यानां मितिधन्वन्तरेर्मतम् ॥

अर्थ- दृष्टि और रोम कूप ए मनुष्यों के निश्चल हैं, इसी सैं देह के वढने सैं ये नहीं वढते यह धन्वन्तरी का मत है।

शरीरकेक्षीणहोनेसैंकोईअवयवोंकीवृद्धिहोतीहैसोकहते हैं।

शरीरेक्षीयमाणेपि वर्धतेद्वाविमौसदा।
स्वभावंप्रकृतिंकृत्वा नखकेशाविातिस्थितिः ॥

अर्थ- शरीर के क्षीण होने पर भी नख और केश दोनों सदैव वढते है, इन का कारण स्वभाव जानना।

प्रसंगकरकेप्रकृतीकेरूपहेतु,लक्षणोंकोक्रमकरकेकहते हैं।

सप्तप्रकृतयोभवंतिपृथक्द्विशःसमस्तैश्च

अर्थ- मनुष्यों की प्रकृति वात, पित्त, और कफ इस भेद करके तीन और द्वंद्वज तीन तथा सान्निपात सैं एक अैसैं सात प्रकार की होती है।

उनकीउत्पत्तीविषयमेंहेतुकहतेहैं।

शुक्रशोणितसंयोगा द्योभवेद्दोषउत्कटः।

प्रकृतिर्जायतेतेन तस्याग्रेलक्षणंशृणु ॥

अर्थ- शुक्र शोणित के संयोग होने के समय वातादि दोषों में जो जो स्वभाव करके प्रबल होता है उस दोष करके मनुष्य की प्रकृति होती है उन के लक्षण आगे कहेंगे, उस को तू सुन ! उदाहरण जैसें गर्भाधान के समय वायु प्रबल होने सें वात प्रकृति होती है, उसी प्रकार कफ तथा पित्त के प्रबल होने सें, कफ और पित्त प्रकृति वाला मनुष्य होता है।

वातादि दोष दो प्रकार सें प्रबल होते हैं, एक स्वभाव करके और दूसरे कुपित हो कर प्रबल होते हैं, तिन में स्वभाव करके प्रबल होते हैं वे प्रकृति के कारण हो कर शरीर को उत्पन्न करते हैं, और कुपित हो कर जो प्रबल होते हैं वे दोष रोगोंके कारण होकर गर्भ को नाश करते हैं।

यथोक्तवाग्भटे।

शुक्रासृग्गर्भिणीभोज्य चेष्टागर्भाशयर्तुषु।
यःस्याद्दोषोधिकस्तेन प्रकृतिःसप्तधोदिता॥

अर्थ- गर्भाधान के समय शुक्र, रुधिर और गर्भ की माता के भोजन चेष्टा (आहार विहार) गर्भाशय और ऋतु इन में जो वातादिक दोष अधिक हो उस मैं उसी दोष की प्रकृती होती है इस प्रकार दोष भेद करके सात प्रकार की प्रकृति होती है।

वातकोगुरुत्वनादिखातेहैं।

विभुत्वादाशुकारित्वा द्वलित्वादन्यकोपनात्।
स्वातंत्र्याद्बहुरोगत्वा द्दोषाणांप्रबलोऽनिलः॥

अर्थ- व्यापक आशुकारी और बली होने सें तथा अन्य दोषों को कुपित करने सें, तथा स्वतंत्र और बहु रोगवान् होने सें दोषों में वात प्रबल है, प्रयोजन यहहै कि वायुही व्यापक आशुकारी और बलीहै ऐसे कफ पित्त दोनों नहीं है, उसी प्रकार कफ, पित्त को वायु ही कुपित्त करती है, कफ, पित्त इस प्रकार वायु को कुपित नहीं कर सके, और इन दोनों दो

षों को प्रेरणा करने वाला वातही है * कफ, पित्त, वात को प्रेरणा नहीं कर सक्ते इसी सैं वात को स्वतंत्रता है, तथा वात के जितने अधिक रोग हैं उतने कफ पित्त के रोग नहीं हैं, जैसैं "असीतिर्वातजारोगाश्चत्वारिंशाच्च पैत्तिजाः विंशतिःश्लेष्मजाश्चेति" अर्थात् वात के ८०. रोग हैं, पित्त के ४० रोग हैं, और कफ के २० रोग हैं, इन पूर्वोक्त छः कारणों सैं वात को प्राधान्यता है, इसी सैं प्रथम वात प्रकृति का वर्णन करते हैं।

वातप्रकृतिकेलक्षण।

प्रायोतएवपवनाध्युषितामनुष्या दोषात्मकाःस्फुटितधूसरकेशगात्राः। शीतद्विषश्चलधृतिस्मृतिबुद्धिचेष्टा सौहार्दद्दष्टिगतयोऽतिवहुलापाः॥ अल्पपित्तवलजीवितनिद्राः सन्नसक्तचलजर्जरवाचः। नास्तिकावहुभुजःसविलासागीतहासमृगयाकलिलोलाः॥ मधुराम्लपटूष्णसात्म्यकांक्षाः कृशदीर्घाकृतयःसशब्दयाताः। नदृढानजितेन्द्रियानचार्या नचकान्तादयितावहुप्रजावा॥ नेत्राणिचैषांखरधूषराणि वृत्तान्यचारूणिमृतोपमानि। उन्मीलितानीवभवन्तिसुप्ते शैलद्रुमास्तेगगनंचयांति॥ अधन्यामत्सराध्माताः स्तेनाःप्रोद्वद्धपिण्डिकाः। श्वसृगालोष्ट्रगृध्राखु काकानूकाश्चवातिकाः॥

अर्थ- विशेष करके वात प्रकृति वाले मनुष्य दुष्ट स्वभाव वाले होते हैं उन्हों के केश और गात्र (देह) फटे हुए तथा कुछ कुछ पिलाई लिये होते हैं, शीत सैं द्वेष करने वाले तथा धीरज, स्मरण, बुद्धि, चेष्टा, सुहृदता, दृष्टि और इन की गति ये चंचल होते हैं, अत्यंत वाचाल होते हैं, पित्त,

* पित्तःपंगुकफःपंगु, पंगवोमलधातवः।
वायुनायत्रनीयन्ते, तत्रवर्षन्तिमेघवत्॥

वल, जीवन और निद्रा ये अल्प होते है, तथा वात प्रकृति वाले मनुष्यों में किसी के वचन टूटे हुए, किसी के हकलाय कर और किसी के कुछ के कुछ और कोई फूटे कांसे के शब्द समान बोलता है, नास्तिक, बहुत भोजन करने वाला विलास कर्त्ता तथा गीत, हास, और शिकार तथा कलह करने की रुचि वाला होता है । मीठा, खट्टा, खारी और गरम पदार्थ अनुकूल लगते है, देह पतला और लंबा होता है, तथा शब्द युक्त गमन होता है और न, दृढ देह होते न, जितेन्द्री होते न, साधु होते न, स्त्रियों को प्यारे लगते और न वात प्रकृति वाले के बहुत संतानें होती तथा इन्हों के नेत्र रूखे और सपेदाई लिये गोल सुंदरता रहित मुर्दे कैसे होते हैं, और जब वात प्रकृति वाला मनुष्य सोता है तब नेत्र खुले से हो जाते हैं, तथा सपने में पर्वत, वृक्ष और आकाशमें गमन करताहै, भाग्यशाली नहीं हो द्वेषी और चोर होता है तथा इन की पिंडली गांठदार होती है, तथा कुत्ता, स्यार, ऊंट, गीध, चूहा और कौआ इन्हों का सा सभाव स्वर (आवाज) रूप और चेष्टा के करने वाले होते हैं, इतने लक्षण वात प्रकृति वाले मनुष्य के कहे हैं ।

पित्तप्रकृतिकेलक्षण ।

पित्तंवन्हिर्वन्हिजंवायदस्मा त्पित्तोद्रिक्तस्तीक्ष्णतृष्णाबुभुक्षः गौरोष्णाङ्गस्ताम्रहस्तांऽघ्रिवक्त्रः शूरोमानीपिंगकेशोऽल्परोमा ॥ दयितमाल्यविलेपनमंडनः सुचरितःशुचिराश्रितवत्सलः । विभवसाहसबुद्धिबलान्वितो भवतिभीषुगतिर्द्विषतामपि ॥ मेधावीप्रशिथिलसंधिबंधिमांसो नारीणामनभिमतोऽल्पशुक्रकाम । आवास पलिततरंगनीलिकानां भुंक्तेऽन्नमधुरकषायतिक्तशीतम् ॥ धर्मद्वेषीस्वेदन पूतिगंधि भूर्य्युच्चारक्रोधपानाशनेर्ष्यः । सुप्तःपश्येत्कार्णिकारान्पलाशान् दिग्दाहोल्काविद्युदर्कानलांश्च ॥ तनूनि

पिंगानिचलानिचैषां तन्वल्पपक्ष्माणिहिमप्रियाणि । क्रोधे नमद्येनरवेश्चभासा रागंव्रजंत्याशुविलोचनानि ॥ मध्या युषोमध्यवला: पण्डिताःक्लेशभीरवः । व्याघ्रर्क्षकपिमा र्जार यक्षानूकाश्चपैत्तिकाः ॥

अर्थ– धन्वन्तरि के मत में पित्त ही अग्नि रूप है क्यों कि अन्न और रसादि धातुओं का परिपाक कर्त्ता यही है, अथवा अग्नि सैं उत्पन्न हुआ क्यों कि पित्त को अग्न्याधारत्व लिखा है इसी सैं रुधिर के कीट को पित्त कहते हैं, इन पूर्वोक्त कारणों सैं पित्त प्रकृति वाले मनुष्य को भूख और प्यास अधिक लगती है, गौरांग तथा गरम देह वाला होय है हाथ, पैर और मुख ये लाल होते हैं, शूरवीर और अभिमानी होता है, पीले केश और अल्प रोम (रूआं) वाला होता है, फूल, माला और चन्दन लगाना तथा भूषणों का धारण करने वाला होता है रीत भांत उत्तम होती है, देह वाणी और मन के मलिन व्यापारों सैं दूर रहता है आश्रित मनुष्यों पर प्यार का करने वाला होता है, वैभव, साहस तथा बुद्धिवल युक्त होता है, भय में शत्रुओं का भी रक्षा करने वाला होता है, (फिर इष्ट मित्र और मध्यस्थों की तो क्यों नहीं रक्षा करेगा) स्मरण शक्ति उत्तम होती है, सन्धियों के बंधन तथा मांस ये शिथिल होते हैं तथा स्त्रियों को अप्रिय, वीर्य और कामदेव जिस के अल्प तथा जल में जैसी तरंग पडती है अैसी देह में गुजलट पड जावे, वाल सपेद हो जावें और नीलिका (क्षुद्र रोग विशेष) करके युक्त होता है, मिष्ट, कषेले, कडुए और शीतल अैसे पदार्थों को भोजन करता है, धर्म का विरोधी अथवा [धर्म द्वैषी] अर्थात् गरमी सुहाय नहीं पसीने वहुत आवें देह में दुर्गंध आवे तथा विष्ठा, क्रोध, जलपान, भोजन और ईर्ष्या ए अधिक होते हैं, सपने में कणेर, ढाक, दिशाओं में दाह, उल्का पात, विजली, सूर्य और अग्नि को देखे, तथा पित्त प्रकृति वाले मनुष्य के नेत्र छोटे, पीले, चंचल और छोटी वरुनी तथा पतले पलक और शीतलता प्रिय लगे अैसे होते हैं और क्रोध सैं, मद्य पीने

सें, तथा सूर्य की घाम में, नेत्र तत्काल लाल हो जाते है पित्त प्रकृति वाला मनुष्य मध्यायु, मध्यबली पण्डित, और क्लेशों में डरने वाला होता है तथा बघेरा, रीछ, वानर, बिलाव और शूकर इन की सी चेष्टा, स्वभाव, स्वर और रूप वाले होते हैं, ये लक्षण पित्त प्रकृति वाले मनुष्य के कहे हैं।

कफप्रकृतिवालेमनुष्यकेलक्षण ।

श्लेष्मासोमःश्लेष्मलस्तेनसौम्यो गूढस्निग्धश्लिष्टसंध्यस्थिमासः । क्षुत्तृड्दुःखक्लेशधर्मैरतप्तो बुद्ध्यायुक्त सात्विकःसत्यसंध ॥ प्रियङ्गुदूर्वाशरकाण्डशस्त्रगोरोचनापद्मसुवर्णवर्णा । प्रलंबबाहुःपृथुपीनवक्षा महाललाटोघननीलकेश. ॥ मृदंग.सम्सुविभक्तचारुवर्ष्मा बह्वोजोरतिरसशुक्रपुत्रभृत्य । धर्मात्मावदतिननिष्ठुरंचजातुप्रच्छन्नंवहतिदृढंचिरञ्चवैरम् ॥ समदद्विरदेन्द्रतुल्ययातो जलदाभोधिमृदंगसिंहघोष । स्मृतिमानभियोगवान्विनीतो नचबाल्येऽप्यतिरोदनोनलोल तिक्तंकषायंकटुकोष्णरूक्ष मल्यंसभुंक्तेवलवांस्तथापि । रक्तान्तसुस्निग्धविशालदीर्घ सुव्यक्तशुक्लासितपक्ष्मलाक्ष * ॥ अल्पव्याहारक्रोधपानाशनेर्ष्य प्राज्यायुर्वित्तोदीर्घदर्शीवदान्य । श्राद्धागंभीरःस्थूललक्ष्य. क्षमावानार्योनिद्रालुर्दीर्घसूत्रकृतज्ञ ॥ ऋजुर्विपश्चित्सुभग मलज्जोभक्तोगुरूणा स्थिरसौहृदश्च । स्वप्नेसपद्मान्सविहंगमालास्तोयाशयान्पश्यतिदोयदाश्च ॥ ब्रह्मरुद्रेन्द्रवरुण तार्क्ष्यहंसगजाधिपै । श्लेष्मप्रकृतयस्तुल्या स्तथासिंहाऽश्वगोवृषैः ॥

* अल्पाहारक्रोधपानाशनेर्ष्यः प्रज्ञायुक्तोदीर्घदर्शीवदान्य । हृद्गभीरःस्थूललक्ष्यःक्षमावान आर्योनिद्रालुःचिरात्कृतज्ञः ॥

अर्थ— कफ सौम्य है इसी से कफ प्रकृति वाला मनुष्य भी सौम्य होता है, इस की संधी, हड्डी, और मांस परस्पर मिले हुए स्निग्ध और गूढ होते हैं, भूख, प्यास, दुःख क्लेश आदि धर्मों से तापित (दुखी) नहीं होवे, उत्तम बुद्धि होती है तथा सत्वप्रधान और सत्य वचन का पालन कर्त्ता होता है, प्रियंगुपुष्प, दूब, मूँज, शस्त्र, गोरोचन, कमल और सुवर्ण का सा देह का वर्ण होता है, हाथ लम्बे होते हैं, छाती विशाल और पुष्ट होती है, ललाट विस्तीर्ण होता है घुघरारे, कारे और लम्बे बाल होते हैं, कोमल अङ्ग और सर्व देहके अवयव सुडोल और दिखनौट होते हैं, ओज, रति (स्त्री संग) रस, पुत्र और भृत्य ये अधिक होते हैं, धर्मात्मा होता है, अप्रिय वचन कदाचित् नहीं बोले, किसी को प्रतीत नहो ऐसी रीति से शत्रु के प्रति बहु काल पर्यंत वैरभाव रखता है मतवारे हाथी का सा गमन, मेघ की सी घुमडन, समुद्र की सी गर्जन, मृदंग और सिंह की सी गर्जना के सदृश शब्द होता है, स्मृतिवान् (सब आगे पीछे की बात को स्मरण रखने वाला) श्रेष्ठ उद्योग वाला और विनय वाला होता है, बालकपन में भी बहुत नहीं रोवे, और न बहुत लोलुप होता है कडुआ, कषेला, चरपरा, गरम, रूखा और थोडा ऐसा भोजन मिलने पर भी बलवान् होवे, स्निग्ध, विशाल, लम्बे, स्पष्ट, सपेद और काली बन्नी वाले तथा जिन के प्रांत लाल हो, ऐसे नेत्र होते हैं अल्प है भाषण, क्रोध, पीना, भोजन और ईर्ष्या अथवा [ईहा] देह की चेष्टा जिसकी दीर्घ है आयु और धन जिस के तथा दीर्घ दर्शी (आगे होने वाले कार्य को प्रथम ही विचार करने वाला) मनोहर बोलने वाला, दान आदि में श्रद्धा वाला, गंभीर बहुत देने वाला, क्षमावान् आर्य (सज्जन) बहुत सोने वाला, दीर्घ सूत्री (जो कार्य जल्दी करने का हो उस के करने में देर कर देवे) और कृतज्ञ होता है।

जिस का चित्त कुटिल न हो, और पण्डित हो, सबों को प्रिय और लज्जावान्, माता पिता गुरु आदि की सेवा करने वाला, तथा दृढ सौहृद (मित्रता) वाला होताहै, तथा कफ प्रकृति वाला मनुष्य सपने में कमल और (चक्रवाकादि) पक्षियों की पङ्क्ति सहित जलाशय (तालाब, पुष्करणी)

आदि को और वद्दलों का देखे है । ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, वरुण, गरुड, हंस ऐरावत हाथी तथा सिंह, घोडा, गौ और बैल इन की भी चेष्टा, रूप, स्वभाव, स्वर वाले होते हैं, ये लक्षण कफ प्रकृति वाले मनुष्य के कहे है ।

द्वंद्वजऔरसन्निपातजप्रकृति ।

द्वयोर्वातिसृणांवापि प्रकृतीनांतुलक्षणै. ।
ज्ञात्वासंसर्गजावैद्यैः प्रकृतीरभिनिर्दिशेत् ॥

अर्थ- वैद्यों को दो दोषों की तथा तीन दोषों की प्रकृतियों के लक्षणों करके द्वंद्वज और सान्निपातज प्रकृति जानना, अर्थात् जिस मनुष्य में वात पित्त, वा वात कफ, वा पित्त कफ के लक्षण मिलते हों उस को द्वंद्वज प्रकृति कहनी । और जिस में वात पित्त कफ तीनों के लक्षण पाए जावें उस की सान्निपात प्रकृति कहनी चाहिये ।

वेप्रकृतिकेभावपलटतेनहीं ।

प्रकोपोवान्यभावोवा क्षयोवानोपजायते ।
प्रकृतीनांस्वभावेन जायतेतुगतायुषः ॥

अर्थ- पूर्वोक्त प्रकृति के स्वभाव करके प्रकोप, विकार, और क्षय ए होते नहीं । परंतु गतायु मनुष्य (अर्थात् मरने वाला मनुष्य) जब होता है, उस काल में प्रकृति प्रबल हो कर स्वभाव पलट जाता है । अर्थात् मरण वाले मनुष्य की प्रकृती पलट जाती है ।

शिष्य- वातादि प्रकृती के दोष इस प्राणी को पीडा क्यों नहीं देते ।

गुरु—विषजातोयथाकीटो नविषेणाविहन्यते।
तद्वत्प्रकृतयोमर्त्यं शक्नुवन्तिनबाधितुम् ॥

अर्थ- जैसे विष से उत्पन्न हुआ कीडा उस विष करके पीडित नहीं होता, उसी प्रकार प्रकृति गत वातादि दोष, स्वजन्य मनुष्यों को विशेष बाधा नहीं करते । किंतु हाथ पैर का फटना आदि विकार करके अल्प बाधा करते है ।

इस जगे यह और भी जानना चाहिये कि केवल एक दोष प्रकृति वाले

मनुष्य सदैव रोगाक्रांत रहतेहै क्योंकि एकदोषकी आधिक्यतादेहमें सदैव विशेष रहतीहै, और जो द्विदोषप्रकृतिवालेहै, वो सत्वादि गुणोंके मिश्रित विकार करके रोगवान् भी आरोग्य कहलातेहैं. जैसें भूख प्यास आदि यद्यपि रोगहै परंतु उन्होंकी रोगोंमें गणना नही है.

मतान्तर कहतेहैं ।

प्रकृतिमिहनराणां भौतिकीं केचि दाहुः
पवनदहनतोयैः कीर्तिता स्तास्तु तिस्रः
स्थिरविपुलशरीरः पार्थिवश्च क्षमावान्
शुचिरथ चिरजीवी नाभसः खैर्महद्भिः

अर्थ— कोई आचार्य इसप्रकार कहतेहै कि, मनुष्यकी प्रकृति पंचमहाभूतोंकरके बनी हुई है; तिनमें वात पित्त और कफ इनकरके (पवनवात. दहनपित. और तोयकहिये कफ) येतीन प्रकारकी कहआएहै और जिसका देह स्थिर, पुष्ट, और जो व क्षमावान् हो, उसकी पार्थिव अर्थात् पृथ्वी संबंधी प्रकृति जाननी । तथा जो पवित्र हो बहुतकालपर्यंत जीवे उसकी आकाश प्रकृति जाननी इसप्रकार पंच महाभूतात्मक प्रकृति कही हैं । वो प्रकृति एक–दो. तीन. और चार भूतोंके संबंध करके अनेक प्रकारकी होती है । जैसें एक एक भूतोंके संबंधसें पांचप्रकारकी; दोदो भूतोके संबंधसे दश प्रकारकी, ऐसें प्रस्तार करनेसें अनेक प्रकारकी होतीहै* उसीप्रकार सतोगुण, रजोगुण, और तमोगुण के भेदसें सात प्रकृति होतीहै तथा नागार्जुन आचार्य कहता है. कि, सात प्रकृति दोषों करके और सातही प्रकृति सत्वादि गुण करके होती है । उसीप्रकार जाति, कुल, देश; काल; अवस्था, वल, और आत्मसंश्रय प्रकृति करके सात प्रकारकी प्रकृति होती

* उक्तंच. एकैकेनवदंतिपंचदशतु, द्वाभ्यांत्रिभिस्तावती
भूतैः पंचचतुर्भिरेवभिषजस्त्वेकांसमस्तैरपि ।
एकात्रिंशकमत्रभूमिसलिलस्वाहाप्रियस्पर्शना, ।
काशैश्चप्रकृतीगुणैरपिपुनः प्राहुः स्मसप्तापरः

है. । क्योंकि पुरुषोमें जात्यादि भाव विशेष परस्पर विलक्षण दीखते है. इन्ही सत्वादि असंख्य भेदवशसें और रूप, स्वर, चरित, अनुकरण (अनूक-शब्दवाच्य) भी असंख्य भेदवान् होता है. । सत्वादि आवेश तो अनेक जन्माभ्यास वासना करके प्रगट होता है, इसीसें देव, मानुष, तिर्यक् प्रेत और नारकी जीवोका अनुकरण पुरुषमें उन्ही उन्ही के लक्षणों, से जानना चाहिये. । उनके लक्षण आगे कहते है ।

ब्राह्मकायकेलक्षण

शौचमास्तिक्यमभ्यासोवेदेषुगुरुपूजनम्
प्रियातिथित्वमीज्याचब्राह्मकायस्यलक्षणम्

अर्थ– पवित्रता, परलोक और ईश्वरमें आस्तिक्य बुद्धि; वेदोंमें अभ्यास, गुरु (माता, पिता, आचार्य आदि) का पूजन, सत्कर्मका आचारण अभ्या गतमें भक्ति, क्रिया (यागादि) में प्रीति, इत्यादि लक्षण निरंतर जिसके शरीरमें रहते हो उसकी ब्रह्मकाय जाननी ।

माहेन्द्रकायकेलक्षण

माहात्म्यंशौर्यमाज्ञाचसततंशास्त्रबुद्धयः
भृत्यानांभरणंचापिमाहेन्द्रंकायलक्षणम्

अर्थ– वडप्पन, सूरवीरता, आज्ञाशक्ति, शास्त्राभ्यास, सेवकोंका पोषण; इत्यादि लक्षण निरंतर जिसके देहमें रहते हो उसकी माहेन्द्रकाय जाननी. ।

वरुणकायकेलक्षण

शीतसेवासहिष्णुत्वंपैङ्गल्यंहरिकेशता
प्रियवादित्वमित्येतद्वारुणंकायलक्षणम्

अर्थ–शीतपदार्थ में प्रीति, सहन शीलता, पीले नेत्र, कपिश (किसमि-सी) वर्ण केश हों और मधुर भाषण इत्यादि लक्षण करके युक्तहो उसकी वरुण काय जाननी ।

कुबेरकायकेलक्षण

मध्यस्थतासहिष्णुत्वमर्थस्यागमसंचयौ ।
महाप्रसवशक्तिश्चकौबेरंकायलक्षणम् ।

अर्थ—मध्यस्थपना, सहनशीलता, धनका आना और संचय करना, तथा प्रबल प्रजोत्पादन की शक्ति. ए लक्षण जिस्मे होवे उसकी कुबेर काय जाननी।

गांधर्वकायकेलक्षण

गंधमाल्यप्रियत्वंचनृत्यवादित्रकामिता ।
विहारशीलताचैवगांधर्वंकायलक्षणम् ।

अर्थ—जिसको गंध (चंदन अतर आदि) फूलमाला, नाच, गाना वाजोंका बजानें आदि प्रिय और इनकी इच्छारहे, तथा विहार करने काजिस्का स्वभाव होय, वो गंधर्वकायावाला प्राणीहै. ऐसाजानना.

यमकायकेलक्षण

प्राप्तकारीदृढोत्थानोनिर्भयः स्मृतिमान्शुचिः ।
रागमोहभयद्वेषैर्वर्जितोयामसत्ववान् ।

अर्थ—जो यथार्थ कर्मका करने वाला, आरंभ करेहुए कर्मको समाप्ती करने वाला, भयरहित, स्मृतिमान्, पवित्र, तथा रागद्वेष, लोभ, मोह, भय, ईर्ष्या आदि करके जो वर्जितहो उस्को यमशरीर युक्त जानना।

ऋषिकायलक्षण

जपव्रतब्रह्मचर्य होमोध्ययनसेवनम् ।
ज्ञानविज्ञानसहितं ऋषिसत्वंविदुर्नरम् ।
सप्तैतेसात्विकाकाया राजसांस्तुनिबोधमे ।

अर्थ—जप, व्रत, ब्रह्मचर्य. होम, पढना पढाना, तथा ज्ञान, विज्ञान करके युक्त इन लक्षणोंसै ऋषि कायावान् मनुष्यको जानना। इस प्रकार ब्रह्मकायसैं लेकर ऋषिकाय पर्यंत सात देह सात्विकीकही है। अब राजसी कहते है

आसुरकायकेलक्षण

ऐश्वर्यवन्तंरौद्रंचशूरंचण्डमसूयकम् ।
एकाशिनंचौदरिकमासुरंसत्वमीदृशम् ।

अर्थ—ऐश्वर्यवान्, भयानक, शूर, अत्यंत क्रोधी, पराये गुणोंकी निंदा करने वाला, अकेला भोजनकर्त्ता ऐसा जिस्का स्वभाव, भक्षाभक्ष्य का खाने वाला, गयदास औदरिक के स्थानमें [औपधिकम्] ऐसा कहकर कपट करता ऐसा अर्थ करता है अथवा उपाधिकर्त्ता हो, इस प्रकार असुर काय युक्त मनुष्य जानना ।

सर्पकायलक्षण

तीक्ष्णमायासिनंभीरुचंडंमायान्वितंतथा ।
विहाराचारचपलंसर्पसत्वंविदुर्नरम् ।

अर्थ—जो तीक्ष्णस्वभाव और तीव्रवेगवान्‌हो, डरपनेवाला, और क्रोधी होकर अत्यंत शूर, अथवा [भीरु] कहिये अक्रोधी, मायावी जिसके आहार और आचार अत्यंतचपलहो, उस पुरुपकी सर्प देह जाननी ।

पक्षिकायकेलक्षण

प्रवृद्धकामसेवीचाप्यजस्राहारएववा ।
अमर्पणोनवस्थायीशाकुनंकायलक्षणम् ।

अर्थ—जो मनुष्य प्रबलकाम सेवी हो, तथा स्वभाव करके निरंतर भोजन करने वाला, क्रोधी; एकस्थलमेंक्षणमात्र भी न ठहरने वाला, ए पक्षी देहवान् के लक्षणहे. ।

राक्षसकायकेलक्षण

एकांतग्राहितारौद्राप्रकृतिर्धर्मबाह्यता ।
भृशमात्रंतमश्चापिराक्षसंकायलक्षणम् ।

अर्थ—एकात स्थलमें रहने वाला, उग्रस्वभाव, धर्मकानिंदक, अत्यंततामसी, इत्यादि राक्षस कायाके लक्षण जानने ।

पिशाचकायाकेलक्षण

उच्छिष्टाहारतातैक्ष्ण्यंसहसाप्रियतातथा ।
स्त्रीलोलुपत्वंनैर्लज्यंपैशाचंकायलक्षणम् ।

अर्थ—उच्छिष्ट भक्षण, शास्त्रविरुद्ध कर्ममें प्रीति, तीक्ष्णस्वभाव, स्त्रीविषयमें लंपट, निर्लज्जता, इत्यादि लक्षणोंकरके जो युक्तहो उसको पिशाचकाय जानना ।

प्रेतकायाकेलक्षण

असंविभागमलसंदुःखशीलमसूयकम् ।
लोलुपंचाप्यदातारं प्रेतसत्वंविदुर्नरम् ।
षडेतेराजसाःकाया स्तामसांस्तुनिबोधमे ।

अर्थ—जो कार्य और अकार्य के विचार करके शून्यहो, आलसी, दुःखशील, निंदक, लोभी, और कृपणहो, वो प्रेतसत्व जानना । इसप्रकार राजसी छः प्रकारकी काया कहीहै । अब तामसी काया ओंको कहतेहैं.

पशुकायकेलक्षण

दुर्मेधस्त्वंमन्दताचस्वप्नेमैथुनमिच्छति ।
निराकरिष्णुताचैवविज्ञेयाःपाशवोगुणाः ॥

अर्थ—मूर्खता, सर्वकार्य विषयमें मंदता, सोते में मैथुनका अनुभव, और किसी कार्यको न करना, इत्यादिक पशुदेह के गुण जानने. ।

मत्स्यकायकेलक्षण

अनवस्थितताभौर्ख्यंभीरुत्वंसलिलार्थिता ।
परस्पराभिमर्शश्चमत्स्यसत्वस्यलक्षणम् ॥

अर्थ—सर्व कार्यमें अनवस्थितता, मूर्खता, डरपना, सर्वकाल में जलसें प्रीति, और परस्पर द्वेष, ए मत्स्यकाय अर्थात् मछलीकी देहवाले पुरुषके लक्षण है ।

वानस्पत्यकायकेलक्षण

एकस्थानेरतिर्नित्यमाहारेकेवलेरतः ।
वानस्पत्येनरः सत्वेधर्मकामार्थवर्जितः ॥

अर्थ–एकही स्थानमें प्रीति, सर्वकाल भोजन करनेमें रुचि, तथा धर्म, अर्थ, काम इनकरके वर्जित हो, उसको वनस्पति (वृक्ष) की प्रकृति वाला जानना ।

इत्येतास्त्रिविधाःकायाःप्रोक्तावैतामसास्तथा ।
कायानांप्रकृतीर्ज्ञात्वात्वनुरूपांक्रियांचरेत् ॥

अर्थ–इसप्रकार त्रिविध तामसी प्रकृति कहीहै, वैद्यको उचित है कि पूर्वोक्त देहोकी प्रकृति जानकर उसके अनुरूप चिकित्सा करे । अर्थात् प्रथम वैद्यको रोगीकी कायाका विचार करना चाहिये कि, इस रोगी की वात, पित्त और कफ सें जो सातप्रकार की कहीहै उनमें से कौनसी प्रकृति है। फिर ब्राह्मकाया आदि जो सात्विकी सात प्रकृति, और आसुरी आदि छः राजसी प्रकृती, तथा पशुआदि तीन तामसी प्रकृतीओं का विचार करके पश्चात् चिकित्सा करनी चाहिये इसमें औरभी प्रमाण देतेहै ।

महाप्रकृतयस्त्वेतारजःसत्वतमःकृताः ।
प्रोक्तालक्षणतः सम्यक्भिषक्तांश्चविभावयेत् ॥

अर्थ–ए सत्व, रज, और तमो गुणों की करी महाप्रकृती, लक्षण करके उत्तम प्रकार सें कहीहै । इनका विचार वैद्योंको भले प्रकार करके पश्चात् चिकित्सा कर्त्तव्यहै । इस प्रकार वातादि प्रकृति और सत्वादि प्रकृतियोंको कहकर इन दोनो के ज्ञानार्थ यह श्लोक कहतेहै

आयुकाज्ञान

वयस्त्वाषोडशाद्बाल्यं तत्रधात्विन्द्रियौजसाम् ।
वृद्धिरासप्ततेर्मध्यं तत्रावृद्धिः परंक्षयः ॥

अर्थ–काल कृत शरीरकी अवस्था को (वय) कहते है । उस्के तीन

भेदहै १ बाल २ मध्य. ३ वृद्ध । इन्हौंमें जन्मसै लेकर १६ वर्ष पर्यंत अवस्था को बाल कहतेहै उस बाल अवस्था केभी तीनभेद है; एक तो जिसमें बालक केवल दूधही पीताहै; दूसरी वहहै कि, जिसमें दूध और अन्न दोनो सेवन करे; तीसरी बाल अवस्था का भेद वहहै कि, जिसमें दूधको छोड केवल अन्नही भक्षण करताहै; इन तीनो (क्षीर. क्षीरान्न. और अन्नवृत्तिवाली) बाल्यअवस्था ओंमें रसादि धातु, नेत्र आदि इन्द्री, तथा सर्वधातुओके पोषण करता ओजकी वृद्धि होतीहै । और बाल्य अवस्थामें कफकी अधिकवृद्धि रहनेसैं बालक का देह सचिक्कण नम्र, सुकुमार, अल्पक्रोध, और सुंदर रहताहै तथा सोलह वर्षसै लेकर ६८ वर्ष तक मध्य अवस्था कहातीहै । इस मध्यअवस्था केभी तीनभेदहै; १ यौवन २ संपूर्ण और ३ अपरिहानि; इस मध्यअवस्थामें पित्तकी वृद्धि रहतीहै; इसीसें जठराग्निका प्रबल होना संतानकी उत्पत्ती और पराक्रमकी आधिक्यता होती है. तहां सोलहसें लेकर तीस वर्षपर्यंत यौवन अवस्था कहाती है; और तीस सै लेकर चालीसपर्यंत अवस्थाको संपूर्णता कहते है; इसमें सर्व धातु, इन्द्री, बल, वीर्य, पुरुषार्थ, स्मरण, वचन, विज्ञान, और प्रेमआदिकी संपूर्णता रहती है. । इसके उपरांत अर्थात् चालीसवर्षके उपरांत अवस्थाको अपरहानि कहते है इस मध्यअवस्थामें धातु इन्द्री आदिकी वृद्धि नही होती किंतु जोके त्यों रहते है, इस सत्तर वर्षकी अवस्थासें जो शेष अवस्था बाकी है उस अवस्थाको क्षयअवस्था कहतेहै. इसमें धातु, इन्द्री और ओजका क्रम सें क्षय होता है; तथाबल, वीर्य, पुरुषार्थ, वचन, विज्ञान, स्मरण, आदिकीभी क्षीणता होती है तथा गुजलटका पडना, बालोंका सफेद होना, श्वास, खांसी, मंदाग्नि आदिके व्याप्तहोनेसें जैसें पुराना भवन वर्षाके होनेसें गिरताहै, ऐसें रोगरूप वर्षासें दिनप्रतिदिन यह वृद्धदेह क्षीण होता है । इस वृद्धावस्थामें वात प्रबल होती है, इसीसें बलसिथिल, मांस, संधि हड्डी, त्वचा और पुरुषार्थ ए नष्ट होते है । तथा देहमें कंप कंठमें कफ बोलना नेत्र कान आदिमें मैलका निकलना होताहै ।

सुखायुकेलक्षण

स्वंस्वंहस्तत्रयंसार्द्धंवपुःपात्रंसुखायुषोः

अर्थ– अपने अपने हाथोंसे साडेतीन हाथका लंवा देह उत्तम आयु (उमर) वालेका होताहे.

नचयद्युक्तमुद्रिक्तैरष्टाभिर्निन्दितैर्निजैः ।
अरोमशासितस्थूलदीर्घत्वैःसविपर्ययैः ।

अर्थ–पूर्वोक्त साडेतीनहस्त परिमित भी देह इन निंदित अपने आठ कारणों की आधिक्यता करके शुभ नहीं है। उन आठ कारणोंको कहतेहै कि, जिस्की देहमें, रोम (वाल) रहितहो, उसीप्रकार जिस्की देहमें अधिकरोमहोवे, जो अत्यंत काला होय, और जो अत्यंत गौर होवे, जो अत्यंत मोटा हो, और जो अत्यंत पतला हो; उसी प्रकार जो अत्यंत लंवाहो, और जो अत्यंत ठिगना हो, ए आठकारण सुसायु अर्थात् दीर्घ उमरवालेके नही होते, किंतु अल्पायु और मध्यमायु वालेके जानना,

दीर्घायुकेलक्षण

सुस्निग्धामृदवःसूक्ष्मानैकमूलाःस्थिराःकचाः।ललाटमुन्नतंश्लिष्ट शंखमर्धेन्दुसन्निभम् ।कर्णौनीचोन्नतौपश्चान्महान्तौश्लिष्टमांसलौ नेत्रेव्यक्तासितासितेसुवद्धेघनपक्ष्मणी।उन्नताग्रामहोच्छ्वासापीनर्जु नासिकासमा।ओष्ठौरक्तावनुद्वृत्तौमहत्यौनोल्वणेहनू। महदास्यंघ नादन्तास्निग्धाःश्लक्ष्णाःसिताःसमाः। जिव्हारक्ताऽऽयतातन्वीमां सलंचिवुकंमहत् ।ग्रीवाह्रस्वाघनावृत्तास्कंधावुन्नतपीवरौ। उदरंद क्षिणावर्तगूढनाभिसमुन्नतम्। तनुरक्तोन्नतनखंस्निग्धमाता म्रमांसलम्। दीर्घाछिद्राङ्गुलिमहत्पाणिपादंप्रतिष्ठितम् ॥

अर्थ– जिसके चिकने, नरम, पतले, अनेक जडवाले, (एकजडमेंसे दो तीन न ऊगेहो) और मजबूत ऐसे केश (वाल) उत्तम होतेहै। अर्थात् दीर्घावस्था वालेके होते है। जिस्का ललाट ऊचा [सुढार] और स्पष्ट तथा अर्धचंद्राकार है कनपटी जिस्में, और नीचेसै छोटे, और ऊपर से बडे, पीछेसे विस्तृत

और रमणीक तथा पुष्ट ऐसे कान उत्तम होते है। प्रकाशितहै सफेद और काले भाग जिन्होमें, (अर्थात् कालेभाग कालेहो और सपेद भाग सपेदहो किंतु मिलाहुआ वर्ण नहो) सुबद्ध और घन है. पलकोकी वन्नी जिन्होमें अैसे नेत्र उत्तम होते है। जिस्का अग्रभाग ऊंचा और महान् उच्छ्वास जिस्का तथा पुष्ट शरल और समान अैसी नासिका उत्तम होती है। लाल और बाहर कीतरफ निकलेहुए ओष्ठ (होठ) उत्तम होते है। किंतु बडे होठ उत्तम नही होते; सुंदर ठोडी उतम होती है। बडामुख, मिलेहुए चिकने और सुंदर सपेद तथा समान दांत उत्तम होतेहे। लाल लंबी और पतली जीभ शुभ होती है। मांसल और बडी चिबुक (ठोडीसें ऊपर और अधरोसें नीचेका भाग) शुभ होताहे। छोटी घन और गोल ग्रीवा (नाड) ऊंचे और पुष्ट-कंधे शुभ होतेहै। दक्षिणावर्त्त और गंभीरनाभि जिसमें तथा किंचित् ऊंचा ऐंसा उदर शुभ होताहे। पतले ऊंचे और लाल अैसे नख जिन्होमें तथा चिकने लाल और मांसदार ऐंसै हाथ पैर शुभ होतेहै। तथा लंबी छिद्ररहित परस्पर मिली हुई उंगली दीर्घायु वाले पुरुषकी होती है।

गूढवंशंबृहत्पृष्ठंनिगूढाःसंधयोदृढाः।
धीरःस्वरोऽनुनादीचवर्णःस्निग्धःस्थिरप्रभः।
स्वभावजंस्थिरंसत्वमविकारिविपत्स्वपि।

अर्थ—छिपाहुआहै पृष्ठका वांस जिसमें और विशाल पीठ शुभ होती है भीतर छीपी और दृढ (टूटेनहीं.) ऐसी संधीहो। कृपणतारहित और सुंदर शब्द तथा मेघकीसी घुमडनकासा प्रतिध्वनः करता वचन शुभ होताहे। सचिक्कण और स्थिरहै कांति जिस्की अैसा देहका वर्ण शुभ होताहैं। स्वभाव सैं प्रगट और पलटे नही. तथा विपत्यमें भी क्षोभित न हो अेसी प्रकृति उत्तम होती है.।

उत्तरोत्तरसुक्षेत्रंवपुर्गर्भादिनिरुजम्।
आयामज्ञानविज्ञानैर्वर्धमानंशनैः शुभम्!

अर्थ—उत्तरोत्तरसुक्षेत्र वपु शुभ होताहै।जैसैं अपने अपने हाथोंसे ३॥हाथ

का लंबा देह शुभ होता है; तथा ललाट आदि देहके जो लक्षण कहेहै उन्होंसें युक्त देह शुभतर होताहै, और यथोक्त सत्व (प्रकृति) के लक्षण कहेहै जैसें. [स्वभावजंस्थिरंसत्व] इत्यादि गुणयुक्त देह शुभ तम होताहै, और बाल यौवन आदि अवस्था जिसकी रोगरहितहो ऐसा देह शुभ होताहै, तथा देहका वढना, और ज्ञान (लौकिकव्यवहार) विज्ञान (विशेषज्ञान जो शास्त्राभ्याससै हुआ हो) ए सब जिस्के क्रमसे धीरे २ वढेहो ऐसा देह शुभ होता है अर्थात् ए लक्षण दीर्घायु वालेके जानने. ।

इतिसर्वगुणोपेतेशरीरेशरदांशतम्
आयुरैश्वर्यमिष्टाश्वसर्वेभा वाप्रतिष्ठिताः ॥

अर्थ—इसप्रकार पूर्वोक्त सर्वगुण युक्तदेहकी सौ वर्षकी आयु होतीहै तथा ऐश्वर्य और जो शुभवस्तू होतीहै वो सब इसदेह में सौवर्षपर्यंत रहतीहै ।

इसप्रकारदेहकेउत्तमलक्षणकहकर
बलप्रमाणजाननेकेअर्थकहतेहै

त्वग्रक्तादीनिसत्वांतान्यग्रान्यष्टौयथोत्तरम् । बलप्रमाणज्ञानार्थं साराण्युक्तानिदेहिनाम् । सारैरुपेतः सर्वैः स्यात्परंगौरवसंयुतः। सर्वारंभेषुचाशावान्सहिष्णुः सन्मतिः स्थिरः ॥

अर्थ—त्वचा, रुधिरसै लेकर सत्वपर्यंत जो ए आठसार हैसो क्रमसै उत्तरोत्तर श्रेष्ठ है, अर्थात् त्वक्सारसै रक्तसार, रक्तसारसै मांससार, मांससारसैं मेदसार, मेदसारसै, अस्थिसार, अस्थिसारसैं मज्जसार, मज्जसारसै शुक्रसार, और शुक्रसारसै श्रेष्ठ सत्वसारवान् मनुष्य होताहै. । ये सार मनुष्योंके बलप्रमाण जानने के अर्थ कहेहै इन सर्वसारोंकरके युक्त पुरुप अत्यत गौरव संयुक्त होताहै । और सर्व अशेष कार्यमें आशावान् होताहै, सहनशील, श्रेष्ठबुद्धिवाला और कर्त्तव्यकार्योंमें स्थिर बुद्धिवाला होताहै ।*

* आठप्रकारकेसारोंकेलक्षणचरकमुनिने अपनीसंहितामेंइसप्रकार लिखेहै त्वग्रक्तमांसमेदोस्थिमज्जशुक्रसत्वानि ।तत्रस्निग्धश्लक्ष्णमृदुप्रसन्नसूक्ष्माणागंभीर

सुकुमारलोमशप्रभत्वंत्वक्सारांणांसारता । सुखसौभाग्यैश्वर्योपभोगबुद्धिविद्या रोग्यप्रहर्षाण्यायुष्यानिपरमाचष्टे ।

कर्णाक्षिमुखजिव्हानासौष्ठपाणिपादतलनखललाटमेहनंस्निग्धरक्तंश्रीमत्भ्राजिष्णुरक्तसाराणांसारता । सुखमुदग्रतांमेधांमनस्वित्वंसौकुमार्यमनतिबलमक्लेशसहिष्णुतांचाचष्टे ।

शंखललाटकृकाटिकाऽक्षिगण्डहनुग्रीवास्कंधोदरवक्षःकक्ष्यापाणिपादसन्धयः स्थिरगुरुमांसोपचितामांससाराणांसारता । क्षमाधृतिमलौल्यंवित्तंविद्यांसुखमार्जवमारोग्यंबलमायुश्चदीर्घमाचष्टे ।

वर्णस्वरनेत्रकेशलोमनखदन्तौष्ठमूत्रपुरीषेषुविशेषेणस्नेहो मेदःसाराणांसारता । वित्तैश्वर्यसुखोपभोगप्रदानात्यार्जवंसुकुमारोपचारतांचाचष्टे ।

पार्ष्णिगुल्फजानूरुजत्रुचिबुकशिरःपर्वस्थूलास्थिनखदन्ताश्चास्थिसाराः । ते महोत्साहाः क्रियावंतः क्लेशसहाः सारस्थिरशरीराभवंत्यायुष्मंतश्च ।

तन्वङ्गाबलवन्तश्चस्निग्धवर्णस्वराः स्थूलदीर्घवृत्तसन्धयश्च मज्जसाराः तेदीर्घायुषोबलवंतः श्रुतविज्ञानवित्तापन्नाः सन्मानभाजनाश्च सदाभवन्ति ।

सौम्याः सौम्यप्रेक्षिणः क्षीरचूर्णलेहनादेव प्रहर्षबहुलाः स्निग्धवृत्तसारसम संहतशिखरदशनाः प्रसन्न स्निग्धवर्णस्वराभ्राजिष्णुवो महास्फिजश्च शुक्रसाराः ॥ तेस्त्रियोपभोगाबलवन्तः सुखभोग्यवित्तैश्वर्यसमानाः फलभाजश्चभवन्ति ॥

स्मृतिमंतो भक्तिमंतः कृतज्ञाः प्राज्ञाः शुचयो महोत्साहाधीराः समरविक्रान्तयोधिनस्त्यक्तविषादाः स्ववस्थितगतिगंभीरबुद्धिचेष्टाः कल्याणाभिनिवेशिनश्चसत्वसारा । तेषांस्वलक्षणैरेवगुणाव्याख्याताः ॥

तत्रसर्वैः सारैरुपेताः पुरुषाभवन्त्यतिबलाः ॥ परमगौरवयुक्ताः क्लेशसहाः सर्वारंभेष्वात्मनि जातप्रत्याशाः कल्याणाभिनिवेशिनः स्थिरसमाहितशरीराः सुसमाहितगतयः सानुनादगंभीरमहास्वराः सुखैश्वर्यवित्तोपभोगसन्मानभाजो मंदजरसो मंदविकाराः प्रायस्तुल्यगुणविस्तीर्णापत्याश्चिरजीविनश्च भवंति । अतोविपरीतास्त्वसाराः

देहका प्रमाणभी संग्रहमें लिखाहै.

स्वाङ्गुलैः पादाङ्गुष्ठप्रदेशिन्यौद्व्यङ्गुलायते । तिस्रोऽन्याः क्रमेणोत्तरोत्तरं

सत्वादि तीन्योप्रकृतियोंको कोनसीरीतिसें सुख दुःखका अनुभवहोताहै.

अनुत्सेकमदैन्यंचसुखंदुःखंचसेवते ।
सत्ववांस्तप्यमानस्तुराजसोनैवतामसः ॥

अर्थ—सतोगुणी मनुष्य अभिमानको परित्यागकर सुखका अनुभव करता है। और दीनताको त्यागकर दुःखकासेवन करतेंहै। और राजसी पुरुष तप्यमान होकर अर्थात् हमही इससुखसे सुखीहै ऐसे सुखका सेवन करेंहै। और अहंकार युक्त दुःखका सेवनकर्ता है, अर्थात् मे ही इस दुःखको भोगसकताहू।

पंचभागहीनास्तत्नखहीनावा । चतुरङ्गुलायताः पृथक् प्रपदपादतलपार्ष्णयः षट्पंचचतुरङ्गुलविस्तृता । चतुर्दशैवायामेन पादश्चतुर्दशैव परिणाहेन । तथा गुल्फौजंघामध्यंच । चतुरङ्गुलोत्सेधः पादः । अष्टादशायामाजंघाऊरुश्च । चतुरङ्गुलजानु । त्रिंशदङ्गुलपरिणाहऊरुः । षडायामौ मुष्कमेढ्रावष्टपंच परिणाहौ। षोडशविस्ताराकटी पंचाशत्परिणाहा । दशाङ्गुलं वस्तिशिरः । द्वादशाङ्गुलमुदरम् । दशविस्तारं द्वादशायाम द्वादशोत्सेधं त्रिकम् । अष्टादशोत्सेधं पृष्ठम् । द्वादशक स्तनान्तरम् । द्व्यङ्गुलः स्तनपर्यंतः । चतुर्विंशत्यङ्गुलविशाल द्वादशोत्सेधमुरः द्व्यङ्गुलं हृदयं । अष्टकौ स्कन्धौकक्षेच । षड्भावंसौ । षोडशकौ प्रबाहू । पंचदशकौ प्रपाणी । दशाङ्गुलौ पाणी । तत्रापि पंचाङ्गुलामध्यमा । ततोद्व्यङ्गुलहीने प्रदेशिन्यनामिके । सार्द्धत्र्यङ्गुलौकनिष्ठाङ्गुष्ठौ । चतुरङ्गुलोत्सेधा द्वाविंशतिपरिणाहा शिरोधरा । द्वादशोत्सेधं चतुर्विंशतिपरिणाहमाननम् । पंचाङ्गुलमास्यम् । चतुरङ्गुलं पृथक्चिबुकोष्ठनासादष्टचतरकर्णललाटम् । शंखगंडाश्चतुरंगुलाः त्रिभागाङ्गुलविस्तारौ नासापुटौ । द्व्यङ्गुलायतमङ्गुष्ठोदरविस्तृतं नेत्रम् । तत्र्यङ्गुलि [illegible] कृष्णः । कृष्णनवभागोंगुष्ठदलमात्रादृष्टिः । षडङ्गुलोत्सेधं [illegible] शिर इति । सर्वपुनश्शरीरमङ्गुलानि चतुरशीति । तदायामविस्तारस्तुल्यसमुच्यते । यथोक्तपरिमाणमिष्टम्

उसीप्रकार तामसी पुरुष अत्यंत मूढ होनेसैं न सुखका सेवन करे और न दुः-खका सेवन, उसीप्रकार द्वंद्वप्रकृति वाला भी सुखदुःखका सेवन नहींकरे। समान प्रकृति वाला सुखदुःखका सेवन अदीन होकर करेहै।

आयुबढानेवालेकर्म

दानशीलदयासत्यब्रह्मचर्यकृतज्ञताः॥
रसायनानि मैत्रीचपुण्यायुर्वृद्धिकृद्गुणः॥
इतिश्रीसौश्रुतशारीरेचतुर्थोध्यायः

अर्थ— दानशीलता, दया, सत्यता, ब्रह्मचर्य, कृतज्ञता, रसायन औषध, और सर्वप्राणियोंमे मित्रता इत्यादि गुण पुण्य और आयुके बढाने वालेहै। अर्थात् इनमें कोइ पुण्यको बढाताहैं. और कोईवस्तु आयुको बढाती है।

इतिश्रीआयुर्वेदोद्धारेबृहन्निघंटरत्नाकरेसप्तमतरङ्गः

पंचमोध्यायः

गर्भवर्णनकरनेकेअनन्तरगर्भमेंप्रगटहुएबालककेशरीरकेअवयवोंकीसंख्याक-रनीउचितहै अतएवउससंख्याकावर्णनकरतेहै।

अथातः शरीरसंख्याव्याकरणंशारीरंव्याख्यास्यामः।

अर्थ— पंचमहाभूत शरीर समवायको शरीर कहतेहै। उस शरीरके अव-यवोंकी संख्या का विवरणहै जिस शरीरमें उस शारीरकी हम व्याख्या करेंगे तहां शरीरावयव संख्या विवरण प्रतिपादन की कामना करके शरीर-शब्द के व्यपदेश्य करके उसीका क्रमसे वर्णन करते है।

शुक्रशोणितंगर्भाशयस्थमात्मप्रकृतिविकारसंमूर्छितं गर्भइत्युच्यते।

अर्थ— गर्भाशयमें स्थित जो शुक्रशोणित वो क्षेत्रज्ञ और प्रधान आदि आठ प्रकृति, तथा पंचभूत, ग्या॰इन्द्री, ए सोलह विकार इनसैं मिलकर गर्भसंज्ञाको प्राप्तहोताहै। । इस करके योगियों का उपयोगी पंचविंशति

कोप कहाहै] उसीको वैद्योंका उपयोगी छः धातु वाला कोपहै उसको कहतेहै ।

तंचेतनावस्थितंवायुर्विभजति तेजएनंपचति आपः क्लेदयन्ति पृथ्वीसहनयाति आकाशंविवर्द्धयति एवंविवर्द्धि तः सयदा हस्ताद्यङ्गै रुपेतस्तदाशरीरमितिसंज्ञांलभते ॥

अर्थ— आयु प्रसवकालपर्यंत चेतनायुक्त जो गर्भ उसके दोष, धातु, मल, अंग, प्रत्यग, इन्होंका विभाग करताहै. । तदनंतर तेज उस गर्भका रूपांतर उत्पन्न करेहै । गर्भके विभाग और परिणाम इनके करने वाला वायु और पित्त इसको सुखाताहै । जब वात और पित्त (अग्नि) इसको सुखातेहै तब जल फिर इस गर्भको गीला करदेता है । जब जलसे गर्भ गीला होजाताहै उसको पृथ्वी मूर्तिमान् करेहै तब उस गर्भकी शरीर सज्ञा होतीहै । और इस गर्भको आकाश वढाताहै, इसप्रकार वढाहुआ गर्भ जब हस्तादि अंगों करके युक्तहोताहै तब शरीर संज्ञाको प्राप्तहोताहै.

तच्चपडङ्गं शाखाश्चतस्रोमध्यंपंचमंपष्ठंशिरइति ॥

अर्थ— उस शरीरके छः अंग है । हाथ पैर चार, मध्यम भाग पांचवा और मस्तक छटा अंगहै इस्के उपरात प्रत्यंगोको कहते है

प्रत्यङ्ग

मस्तकोदरपृष्ठनाभिललाटनासाचिबुकवास्तिग्रीवा इत्येताएकैकाः । कर्णनेत्रभ्रुवांसगंडकक्षास्तनवृषण पार्श्वस्फिग्जानुबाहूरूप्रभृतयोद्वंद्वे । विंशतिरङ्गुलयः । स्रोतांसिवक्ष्यमाणानि एषप्रत्यङ्गविभागउक्तः ।

अर्थ— अब प्रत्यगोंकी संख्या कहतेहै तिनमे, मस्तक, पेट, पीठ, नाभि, ललाट, नासिका ठोडी, वस्ती, नाड, ए अवयव एक एकहै । तथा कान, नेत्र, भौंह, कधे, गाल, काख, स्तन, अडकोश, कूख. स्फिक् (कूले) घोटू, हाथ, जांघ, होठ, सृक्कणी कहिये होठोंकेप्रांत इत्यादि अवयव दो दो है । वीस उगली, स्रोतस आगे कहैंगे यह प्रत्यंग विभाग कहा ।

त्वगादिकोकीसंख्या।

तस्यपुनः संख्यानं त्वचः कलाधातवोमलायकृत्प्लीहानौ फुप्फुसउन्दुकोहृदयामीआशयाअंत्राणिवृक्कोस्त्रोतांसि कण्डराजालानिकूर्चारज्जवः सेवन्यःसंघातासीमंतीअस्थी निसन्धयः स्नायवः पेश्योमर्माणिशिराधमन्योयोग वहानिस्रोतांसिच।

अर्थ—उस गर्भके अंग प्रसंग इन करके जो शरीर बना उन अंगोको कहतेहै, त्वचा, कला, धातु, मल, दोष, कलेजा, प्लीहा, फुप्फुस, उंदुक, आशय आंतडी, वृक्क, स्रोतस, कंडरा, जाल, कूर्चा, रज्जू, सेवनी, संघात, सीमंती हड्डी, संधी, स्नायु, पेशी, मर्म, शिरा, धमनी तथा योगवहस्रोतस्, कहिये. धमनी, प्राण, उदक, अन्न, इनको वहने वाली स्रोतस्, ये २९ उनतीस अंग जानने, अव इनको विस्तार पूर्वक बर्णन करतेहै.

रक्तस्याधः क्रमात्परे। कफामपित्तेपक्वेति

अर्थ—आशयोंका वर्णन चतुर्थाध्यायमें कर, आएहै इसीसै इसजगे अर्थ नही लिखाहै.

स्रोतसोंकोकहतेहै.

स्रोतांसिनासिकेकर्णौनेत्रेपाय्वास्यमेहनम्
स्तनौरक्तपथश्चेतिनारीणामधिकंत्रयम्॥

अर्थ—कान, नेत्र, मुख, नाक, गुदा, मेढ़्र, इस प्रकार बहिर्मुख स्रोतस् (छिद्र) ए स्त्री पुरुषोंके समान है। तथापि स्त्रियोंके बहिर्मुख स्रोतस तीन अधि-है; दो स्तनसंबंधी तथा तीसरा योनिसंबंधी आर्त्तवका वहने वाला स्रोतस् है। स्मरातपत्र योनिके तीसरे आवर्त्तमेंहै. इसका प्रमाण लिखतेहै.

विपुलपिप्पलपत्रसमाकृतेरवयवस्यशिरस्तलमाश्रितम्।
सकलकामशिरामुखचुंबितंविमृदितंमदनातपवारणम्॥

अर्थ—बडेपीपलके पत्तेकी सी आकृती वाले अवयव वाली जो योनि उसके मस्तकके आश्रय करके रहती हुई सर्वकामवाहिनी नाडी उनके मुखकरके चुंवित तथा मर्दित ऐसा मदनका छत्र है.

मतान्तरम्

तत्रकेचिदाहुः शिराधमनीस्रोतसामविभागः शिराविकाराएव। धमन्यः स्रोतांसिचेति । तत्तुनसम्यक् अन्यान्येवाहिस्रोतांसि । धमन्यश्चशिराभ्यःकस्माद्व्यंजनान्यत्वान्मूलसांनियमात् । कर्मवैशेष्यादागमाच्च केवलंतु परस्परसन्निकर्षात्सदृशागमकर्मत्वात्सौक्ष्म्याच्च विभक्तकर्मणामप्यविभागइवकर्मसुभवति ।

अर्थ—कोई कोई आचार्य कहतेहै कि, शिरा, धमनी, और स्रोतस् इनमें कुछ भेद नहीहै केवल धमनी, तथा स्रोतस् शिराके रूपातर मात्रहै । यह वार्ता विशेष युक्तिसगन नहीहै स्रोतस और धमनी शिरासे पृथक्है । रूपभेद, मूलनिवेशभेद और कार्यकारित्वभेद हेतु इनतीनोके भिन्न भिन्न है केवल परस्पर सन्निकर्ष, सदृशकर्मकारित्व, सूक्ष्मभेदाश्रयत्व उसी प्रकार शास्त्रमें सदृश रूपवर्णनहेतु इन्होका अभिन्न कहना अनुभूतसा होताहै । वास्तवमे विचारकर देखो तो इन प्रत्येकके कार्य अपने अपने अधीन है ।

स्रोतांसिसन्तिदेहेऽस्मिन्धमन्यश्चशिरायथा। तानिलसीकागर्भाणिकर्मकुर्वन्तिदैहिकम्।मस्तिष्केनाभिरज्जौचनेत्रयोःष्टष्ठमज्जानि नखेषुकण्डरायांचनसन्त्यस्थन्युपास्थनि। स्रोतसांनिखिलानांच परस्परसमागमात्। महास्रोतोद्वयंजातमधस्ताज्जत्रुणोश्चतत् । शिरासङ्गमसंप्राप्तंस्वरसंतत्रनिक्षिपेत् । सरसःशैररक्तेनहृत्कोष्ठंच समागतः।शोणितीभूयव्रजतिदेहमेतन्निरन्तरम् ।सरसोदेहजंपूर्वं पश्चाच्छोणिततांव्रजेत् ।धराभ्यस्तान्याददेतपदार्थान्देहपोषकान्

ग्रहण्यादिभ्यआदायरसमाहारजंतथा। शिरामार्गेणहृदयमानय न्तिनिरंतरम्। बलंपुष्टिंचलावण्यंदेहस्तन्नित्यमाव्रजेत्।

अर्थ—इसदेहमे स्रोतस् समूह, धमनी और शिराके सदृश एक प्रकारकी नाडी विशेषको कहतेहै। इनके भीतर एक प्रकार का जलसंबंधी पदार्थ रहताहै; उसको लसीका कहतेहै; ये देहके सर्व अंशमें रहकर दैहिक कार्योंका निर्वाह करेहै, मस्तिष्क, नाभिरज्जु, नेत्र, पीठकेवांस की मज्जा, नख, कंडरा, हड्डी तथा उपास्थि इन सबजगे स्रोतो नाडी नही है.

जितने स्रोतहै सबके मिलनेसैं दो बडे स्रोत होगएहै। ए दोनो महास्रोत जत्रुके नीचे शिरासंगम (जिसजगे शिराओंके गण मिलकर महाशिरारूपको प्राप्तहुएहै) में मिलकर तहां आत्मगर्भस्थ रसको देतेहै, यह रस शिरामें स्थितरक्तके साथ मिलकर हृत्कोष्ठमें आताहै. उसजगे रुधिरहोकर निरंतर इसदेहमें विचरेहै, यहरस प्रथमदेहसे उत्पन्न होकर फिर रुधिरके भावको प्राप्त होताहै.

स्रोतो नाडीगण धमनियोंमें रहने वाले रुधिरसैं, देहपोषणोपयोगी पदार्थ को आकर्षण करके देहको बढातेहै और येही स्रोतोनाडीगण, ग्रहणी (क्षुद्रांत्रके अंशविशेष) आदिसैं आहारजन्य रसको आकर्षणकरके शिरामार्ग होकर हृदयमें प्राप्त करती है इसीसैं देहमें बल, पुष्टता, और लावण्यता की वृद्धी होतीहै.

कण्डरा

षोडशकण्डराःतासांचतस्रःपादयोःतावन्त्योहस्तग्रीवापृष्ठेषु।

अर्थ—कंडरा (मोटेस्नायु) सोलहहै. तिनमें चारपैरोंमें है. चार हाथोमें. चार नाडमें, और चार पीठमेंहै.

अब हस्तादिगत कंडराओंके अग्रिमभागको कहतेहै.।

तत्रहस्तपादगतानांकण्डराणांनखाग्रप्ररोहाः।
ग्रीवाहृदयनिबंधनीनांअधोभागगतानांमेढ्रं
विंबश्रोण्यासहपृष्ठनिश्चलबंधंकुर्वतीनां

पृष्ठजानांचतसृणामधोभागगतानांविबंमण्डलं
आपान्नितम्बस्यमूर्धोरुवक्षोक्षपिण्डादीनांच ।

अर्थ-तिन कंडराओंमें हाथपरमें गए हुए कडरा उनके अग्रभाग नखाग्रहै। तथा ग्रीवा और हृदय इनका बंधन करके अधोभागमें जानेवाले जो स्नायुहै, उनके अग्रबिंब कहिये मंडलहै । तथा श्रोणी कहिये कमर उसके साथ पृष्ठका बधन करके अधोभागमें जाने वाली जो स्नायु उन्होंके अग्र उदक और कमर एहै उसीप्रकार मस्तक उर वक्षस्थल तथा अक्षिपिंड इनके मंडल तथा आदि शब्दकरके स्तनपिंडोंके मडल ए कंडरा(वडीस्नायु)ओंके अग्रिमभाग जानने।

अथजालानि

मांसशिरास्नाय्वस्थिजालानिप्रत्येकं चत्वारिचत्वारि ।
तानिमणिवन्धगुल्फसंश्रितानिपरस्परनिवद्धानि
परस्परसंश्लिष्टानिपरस्परगवाक्षितानिचेतियैर्गवाक्षित
मिदंशरीरम् ।

अर्थ-मांस, शिरा, स्नायु, और हड्डी इनके जाल कहिये झरोखा के समान छिद्रयुक्तपदार्थ वे एक एक के चारचारहै। उन्होंमें मांसके चार जाल एकएकमणिवध (पहुचों) मेंहै; और एकएकगुल्फ (टकना) में हैं; उसीप्रकार शिराके, स्नायुके और हडडियोंके जाल जानने चाहिये इन चारोंप्रकारके चारचार जालसे यह देह गवाक्षित (झरोखोंकेसदृशहोरहा) है । ए चारो प्रकारके जाले परस्पर बंधेहुए परस्पर मिलेहुए है । तात्पर्य यहहै कि, मणिबंध में एक मांसजाल, तथा एक शिराजाल, तथा एक स्नायुजाल, और एक अस्थिजाल ऐसे चार जाल है। इसी प्रकार दूसरे मणिबंधमें और गुल्फमे जानो।

कूर्च कहतेहैं

षट्कूर्चास्तेहस्तपादग्रीवामेढ्रेषु ।

अर्थ- इसजगे कूर्चशब्द करके कूर्चा के समान तथा लाल; तेजस्वी पदार्थ, मांस, शिरा स्नायु, और हडडियोंके जालकके विस्तारकरकेप्रगट-

हुएजानने तिनमें हाथ तथा पैर, इनमें चार और एक ग्रीवामें तथा एक शिष्णेन्द्रीमें ऐसैं छः है। कुशा पुंजसदृश पदार्थको कूर्चा कहतेहै।

रज्जू (बंधनी)

महत्योमांसरज्जवश्चतस्त्रः पृष्ठवंशेउभयतः पेशी बन्धनार्थंबाह्येआभ्यन्तरेचद्वेद्वे।

अर्थ—बडे मांसमय रस्सीसदृश चारपदार्थ है- वे पीठके वांसके दोनो तरफ है- इन्हीं का कार्य पेशियों का बंधन करनाहै तिनमें दो भीतरके, अंगमेंहै, तथा दो बाहरहै।

अस्थ्नां संयोजिकाः शुभ्राः सौत्रिकारज्जवोमताः।
काश्चित्स्थूलाःप्रशस्ताश्चदीर्घाबहुविधास्तथा।
मध्यकायेतथाबाह्वोः सक्थ्नोरेवचताः स्थिताः।
अस्थीन्याभिर्निबद्धानिस्वस्थानान्नचलंतिहि।

अर्थ—हड्डियोंमे परस्पर संयोजक, सपेदवर्ण सूत्रमय पदार्थ विशेषको रज्जू कहतेहै। कोई कोई रज्जू स्थूल तथाप्रशस्त और कोई दीर्घ इत्यादि अनेक प्रकारकेहै। मध्यदेह, दोनोभुजा, और सक्थीद्वयोमें सब रज्जू अवस्थित है। इन रज्जू ओंसैं बंधीहुईहड्डी संपूर्ण अपने अपने स्थानसैं चलायमान नहीं होतीहै।

पादाङ्गुलीनांपर्वास्थ्नांयोजिन्यस्ताः परस्परम्।अङ्गुल्यस्थ्नां तथासन्तिप्रपदास्थ्नांचयोजिकाः। गुल्फास्थ्नांप्रपदास्थ्नांच गुल्फास्थ्ना चपरस्परम्। गुल्फसन्धेश्चजंघास्थ्नोजानुसन्धेस्ततः परम्। तथावंक्षणसन्धेश्चरज्जवोविविधामताः।

अर्थ—पैरकी उंगलियोंके सब पोरुओंके मिलाने वाली अंगुल्यस्थी, और प्रपदास्थि आदिके मिलाने वाली प्रपदास्थी, और गुल्फास्थि आदिकी योजक, गुल्फास्थि आदिकी परस्पर संयोजक, गुल्फसंधिकी संयोजक जंघास्थि

दोनोकी परस्पर मिलाने वाली, जानु संधिके मिलाने वाली और वंक्षणसंधि-के संयोजक रज्जूसमूह एकएक शक्थीमें रहतेहै । इसका तात्पर्यार्थ यहहै कि जो उंगली की हडडीके बंधन करनेवाली है वोही बंधनी पैरकी हड्डियोंके बंधनकर्त्ता जाननी अर्थात् अंगुलीकी हडडियोंके साथ पैरकी हड्डीयोंको मिलातीहै इसी प्रकार अन्यत्र भी जानना ।

करांगुलीनांपर्वास्थ्नांसंयोजिन्यापरस्परम् । अंगुल्यस्थ्नांतथा संतिकरभास्थ्नांचयोजिका। तदस्थ्नांमणिबन्धास्थ्नांतेषांचापि परस्परम् । मणिबंधस्यसंधेश्चप्रकोष्ठस्थ्नेश्चयोजिका। कफोणेः स्कन्धसंधेश्चतथाप्यंसस्यरज्जवः । अंसजत्र्वस्थ्नियोजिन्यः उरोऽस्थिजत्रुयोजिकाः ॥

हाथकी उंगलियोंके सब पोरुओंके परस्पर योजक अंगुल्यास्थि, तथा कर-भास्थि आदिके मिलाने वाली, करभास्थि और मणिबंधास्थि आदिकी सं-योजक और मणिबंध संधियोंकी योजक, प्रकोष्ठास्थिद्वयकी परस्पर संयोजक, कफोणि(कुहनी) की संधियोंके मिलानेवाली और कंधेकीसंधियोंको मिलावाली, अंसास्थियोजक अंसास्थि औ जत्रु (हसली) के हड्डीयोंके योजक इसीप्रकार जत्रूकी हड्डी और उरूकी हड्डीके मिलाने वाले रज्जूसमूह एक एक भुजामें है.

रज्जवोमध्यकायस्यपर्शुकोरोऽस्थियोजिकाः । त्रयाणामपिभिन्नानांमुरोऽस्थ्नःपरिमेलिकाः । कसेका पर्शुकानांकशेरूणांपरस्पम् । शिरसःपश्चिमास्थ्नश्चतथाप्यू र्ध्वगयोर्द्वयोः । कशेर्वोर्हनुकूल्यस्यपृष्टवस्त्यास्थियोजिकाः संयोजिन्यश्चवस्त्यस्थ्नांपरस्परमुदीरिताः ।

अर्थ—मध्यदेहमें नीचेलिखे सबरज्जूहै । जैसे ऊपर स्थित सातपांशुओंके सहित वक्षोस्थि के योजक, वक्षोस्थिकेखडत्रयके योजक, (एक वक्षस्थलकी हड्डी तीन जगे विभक्तहै) कशेरुका (पिठाडीका वास) और पर्शुका आ-

दिके मिलानेवाले, कशेरुकादिकोंके परस्पर मिलाने वाले, करोटी (मस्तककीहड्डी) के पिछाडीकी हड्डीसहित उर्ध्वस्थकशेरुका दोनो द्वयके संयोजक, हन्वस्थिकेयोजक, पृष्ठवंशास्थि तथा वस्तीकी हड्डी, आदिके मिलानेवाले तथा सर्व वस्ती की हड्डीयोके परस्पर मिलाने वाले रज्जूसमूह मध्यदेहमेंहै. रज्जुओंको बंधनीभी कहतेहै;

सेविन्यः

सप्तसेविन्यःशिरसिविभक्ताःपंचजिव्हाशे
फसोरेकैकाताः परिहर्त्तव्याःशस्त्रेण ।

अर्थ—सेवनी सातहै, तिनमें मस्तक के विषे पृथक् पृथक् पांच, और जीभ तथा शिश्न इनमें एक एक ऐसे सातहै, इनको शस्त्रकरके तोडने चाहिये. सुईके सदृश सिलीहुई जगहको सेवनी कहतेहै ।

संघाताः

चतुर्दशास्थ्नांसंघातास्तेषांत्रयोगुल्फजानुवंक्षणेषु ।
एतेनइतरसक्थिबाहुचव्याख्यातौ । त्रिकशिरसोरेकैकः ।

अर्थ—हड्डियोंके समूह चोदह है, तिनमें पैरोंके टकना, जानु और वंक्षण (ऊरूकीसंधि) इनस्थानों में तीन, इसीप्रकार दूसरे पैरमें तीन तथा दोनो हाथोमें तीन तीन और एक त्रिक (वाहु और मस्तककी संधीमें) और एक मस्तकमें ऐसे १४ संघातहै. ।

मतान्तरः

येह्युक्ताः संघातास्तेखल्वष्टादशैकेषाम् ।

अर्थ—किसी किसी आचार्य के मतसैं पूर्वोक्त संघात१८है । सो इसप्रकारहै. जैसै कि पूर्वोक्त१४श्रोणिकांडके ऊपर एक; वक्षस्थलमें उदर, और उर इनकी संधीमें. एक, और अंसकूट के ऊपर एक ऐसैं हड्डीके समूह, अठारे है । यद्यपि श्रोणी कांडभाग अर्थात् कमरमें त्रिकस्थान प्रसिद्धहै तथापि ना-

डकीजडको भी त्रिक कहतेहै क्योंकि इसजगे दोनो भुजा और ग्रीवा इन-तीनोका समूहएकत्रितहु आहे.

अथास्न्थः स्वरूपमाह

मेदोयत्स्वाग्निनापक्कंवायुनाचातिशोपितम् ।
तदास्थिसंज्ञांलभतेससारःसर्वविग्रहे ।

अर्थ—अव प्रथम हड्डियोंका स्वरूप कहतेहै. जैसेकि मेदा अपनी अग्निसे पक्कहोती है और पवन उसको अत्यंत शोपण करेहै तब वोही मेद अस्थि (हड्डी) कहलातीहै वह हड्डी इस देहमें सारभूतहै ।

तहां कहतेहै कि, शरीरदो प्रकार का है एक स्थूल और दूसरा सूक्ष्म, तिन्में मृत्तिका, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन पंचभूतोंसे निर्मित और चक्षुरादि इन्द्रियों सें ग्राह्य देहको स्थूलदेह कहतेहै । और पंचप्राण, मन, बुद्धि और दशइन्द्री करके समन्वित अपंचभूतसे प्रगट देहको सूक्ष्म देह कहतेहै । परंतु इस आयुर्वेद शास्त्रमें मनुष्यके स्थूलदेहका ही वर्णनहै, देहकी प्रधान उपादान कारण हड्डीहै, अत एव अव उनको वर्णन करतेहै ।

शरीरधारणविपयमेंहड्डियोंकोप्रधानताहै.

अभ्यन्तरगतैःसारैर्यथातिष्ठन्तिभूरुहाः । अस्थिसारैस्तथा देहोध्रियन्तेदेहिनांध्रुवम् । तस्माच्चिरविनष्टेपुत्वङ्मांसेपुशरीरिणाम् । अस्थीनिनविनश्यन्तिसाराण्येतानिदेहिनाम् । मांसान्यत्रनिवद्धानिकलाभिश्छादितानिच । अस्थीन्यालम्ब्यनंकृत्वानशीर्यंतेपतंतिवा ।

अर्थ—जैसे वृक्ष भीतर रहने वाले सारकेऊपरसें खडे रहतेहै, उसी प्रकार देहमें देहके सारभूत हड्डियोंके द्वारा यहमनुष्य का देह खडा हुआहै । त्वचा और मांस आदिके नष्टहोनेपर हड्डीयों का नाश नही होताहै. । ये देहधारियोंके देहमें सारभूतहै, कलाच्छादितमांस समूहसें हड्डी जहाकी तहा अवस्थितहै और देहके बंधन अर्थात् नाडी, नस, कंडरा, बंधनी और स्नायु

आदिसैं बंधीहुईहै· पूर्वोक्त पदार्थ हड्डियोंका· आलंबन करेहुएहै, इसीसे ये हड्डी नतो विखरतीहैं और नगिरतीहै।

कंकाल

त्वङ्मांसादिरहितः स्वस्थानस्थितः शरीरास्थिचयः कङ्कालसंज्ञोभवति। सचकङ्कालः षडङ्गोभवति यथा शाखाश्चतस्त्रोमध्यंपंचमं षष्ठंशिरइति।

अर्थ– त्वचा मांसआदि करके रहित, स्वस्थानस्थित, देहकी हड्डियोंके समूहको कंकाल ऐसा कहतेहै·। अर्थात् केवल हड्डीमात्र वालेदेहको कंकाल जानना। वह कंकाल छः अंगोंमें विभक्तहै। जैसे चार हाथ पैर· एक मध्यभाग· और एक मस्तक।

हड्डियोंकाविशेषवर्णन

सर्वाण्येवास्थीनिबहिरन्तः समन्तात्कलावृतानिसगर्भाणिच तेषांगर्भाः पीताभस्नेहविशेषेणपूर्णाः समज्जेत्यभिधीयते। अस्थ्नांसन्धिषुकलानदृश्यते तेहितनुभिस्तरुणास्थिभिरावृताः। सन्ति। अस्थिगात्राणि क्वचिदवटुमन्तिक्वचिदुत्सेधवन्तिच।

अर्थ– संपूर्ण हड्डी बाहर भीतरसैं कला अर्थात् झिल्ली द्वारा ढकी हुईहै। और हड्डीयोंके भीतर पीले रंगकी चिकनाई भरीहुईहै· उसीको मज्जा ऐसेकहतेहै। हड्डीकी संधियोंमें झिल्लीनहीहै। परंतु संधिस्थान पतली उपास्थियोंसैं ढकाहुआहै। कोई हड्डी गड्ढेके सदृश नीचीहै। औरकोईहड्डी ऊंची प्रतीत होतीहै।

अस्थियोंके पांच प्रकार

तान्यस्थीनिपंचविधानिभवन्ति। तद्यथा। अनुकपालनलकासम गात्ररुचकसंज्ञकानि। कैश्चित्कपालरुचकतरुणवलयनलकसंज्ञानिपंचविधान्युच्यन्तेतत्रवलयादीनामण्वादिष्वन्तर्भावइत्यभेदः सुकोमलास्थीनितरुणसंज्ञामुपास्थिसंज्ञांवालभन्ते।

अर्थ—ए सपूर्ण हड्डी पांच भागोंमें विभक्तहै; जैसें अण्वस्थि, कपालास्थि, नलकास्थि, असमगात्रास्थि, और रुचकास्थि। कोई कोई आचार्य कपाल, रुचक, तरुण, वलय, और नलकसंज्ञक पांच प्रकार हड्डीके कहते है, तिनमे वलयादि अस्थि अण्वस्थि अर्थात् क्षुद्रास्थिके अंतर गत मानतेहैं, सुतरां उभय मतोंमें विशेष भेद नहीहै। और अतिकोमल हड्डियोंको तरुणास्थि अथवा उपास्थि कहतेहै।

अवइनपंचविधअस्थियोंकापृथक् २ वर्णन.

अन्वस्थीनि

देहस्यदृढान्याचलान्यङ्गानिअन्वस्थिभिर्विनिर्मिता
निमणिबन्धगुल्फादिषुतान्येवस्थितानि।

अर्थ—शरीरके मध्यमे दृढ और अचल अंग सब अण्वस्थि समूहद्वारा बने है। मणिबंध तथा गुल्फ आदि में येही अण्वस्थिहैं।

कपालास्थीनि

देहस्यास्थिमयविवराणिकपालास्थिभिर्निर्मितानितानिप्रशस्ता
कृतीनि। करोटिवस्त्याद्यङ्गेषुकपालास्थीनिसन्ति।

अर्थ—देहके अस्थिमय विवर (गड्ढे) समग्रकपालास्थि द्वारा बनेहुएहैं। येसुन्दर आकृतिवालीहै। करोटि (मस्तककी हड्डी) और वस्तीआदि अंगोमें कपालास्थिहै।

नलकास्थीनि

नलकास्थीनिनलवच्छुपिराणिसुदीर्घाणिचतानिशाखा
स्ववस्थितानि।

अर्थ—नलकास्थिसमूह नलके सदृशछिद्रवाले औरलंबेहै। येभुजा और पेरोंमें विद्यमानहै।

असमगात्रास्थीनि

असमगात्राणामस्थ्नांनाम्नैवाकृतिर्व्याख्यात। कशे
रुकाशंखान्थिप्रभृतीस्यसमगात्राणि

अर्थ—असमगात्रास्थियोंकी आकृति नामानुसार कहीहै अर्थात् इनका कोई अंशलंबा कोई अंश छोटा कोई मोटा कोई अंश पतला है। केंशेरुका (पठिकावांस) शंख (कनपटी) आदि कीहड्डी असमगात्रास्थिकहलाती है।

रुचकानि

दशनारुचकानिस्युश्चतुर्धातेभवन्तिहि। छेदनाः शौवनाद्व्यग्राः। पेशणास्तेतुसंख्यया। अष्टोचत्वारश्चाष्टौहिततस्तुद्वादशस्मृताः। दन्तानांपतनंजन्मपुनः पातेत्वसंभवः।

अर्थ— सबदांतोंकोरुचककहतेहै। ए चारप्रकारकेहै, जैसेंकि छेदन, शौवन, द्व्यग्र, और पेषण, छेदन दांतऊपरकीपंक्तिमें ४ और नीचेकीपंक्तिमें ४ है। सौवनदांतऊपर २ और नीचे २ है। द्व्यग्रदांतऊपर४ औरनीचे ४ है। तथा पेषणदन्तऊपर ६ और नीचे ६ है.। सबमिलकर ३२है। बाल्यअवस्थामेंप्रगटहुएदांत. यथाकालमेंगिरजातेहै.। फिर दूसरेस्थायी (ठहरनेवाले) दांतप्रगटहोतेहै। एस्थायीदांतोंकेगिरनेकेपश्चात्फिरदांतनहीआतेहै।

यूनानीवैद्यकहतेहैकिदांतहड्डीकीजातिमेंसेंहै, क्योंकिकठोर और वेहरक्ततहै। इसीसेंइनकेकाटनेसेंकष्टनहीहोता.। परंतु किसी २ की यहसंमतिहैकि ये दांत पट्टेकी जातिमेंसेहै। क्योंकिइनमें शरदीगरमी असरकरतीहै।

आगेके ४ दांत छेदनकहातेहै उनके ओरपासजो दांतहैं उनको सौवन (खूंटा) कहतेहै.। और इनकेपासवाले दांतोकोद्व्यग्र अर्थात्इनके ऊपरके दोभागउठेहुएहै इसीसेंइनकोद्व्यग्रकहतेहै। औरइनकेपासजोचारदांतहै उनको पेषण अर्थात्डाढाकहतेहै। और संस्कृतमेंइनकोदंष्ट्रा कहतेहै.। फारसीमें, सनाया, रवाईतान, नावान, और अजरासकहतेहै, सनायाऔर रवाईतानकाटनेकेवास्तेहै, औरनावानवास्ते चवानेकेहै; और अजरासवास्तेदवानेकेहै, और दांतोकि जडकिबहुतबारीकहै वेवेजाबडेकेछिद्रोंमें गढीहुईहै।और प्रत्येकछिद्रकेचारोतरफगोलगोलमंडलहैकि दांतोपरढकेरहनेसें दृढरहतेहै, उनको मसूढेकहतेहै।

अथास्थिसंख्या

त्रिषष्टीन्यस्थिशतानिवेदवादिनोभाषन्ते।

अर्थ– अस्थि (हड्डी) तीनसौसाठ ३६० हेंऐसेआयुर्वेदवादीकहतेहै।

शल्यतंत्रे त्रीण्येवास्थिशतानि । तेषांविंशमधिकंशतंशाखासु । सप्तदशोत्तरंश्रोणिपार्श्वपृष्ठोदरोरः सुग्रीवांप्रत्यूर्ध्वंत्रिषष्टिः

अर्थ– शल्यतंत्रमेंअस्थी ३०० तीनसौकहीहै, तिनमे १२० हाथपैरोमें तथा ११७ कमरपार्श्व (पसवाडें) उदर उर इन्होमें, और नाडसैलेकरऊप, रकेभागमें ६३ ऐसे सबहड्डी ३०० हुई. ।

शाखागतहड्डियोंकोकहतेहै

एकैकस्यांपादांगुल्यांत्रिणितानिपंचदश तलगुल्फकूर्चसंश्रिता निदश पार्ष्णावेकंजंघायांद्वेजानुन्येकमूराविति । त्रिंशदेवमेक-स्मिन् सक्थीनिभवन्ति । एतेनेतरसक्थिबाहुचव्यारव्यातौ ।

अर्थ– पैरकी एकएकउगली मेंतीनतीनहड्डीहै, सबमिलकर १५ हुई, पादतल (तरुआ) गुल्फ (टकना) कूर्चक (पैरकापिछलाभाग) इनमें १० है, पार्ष्णी (एडी) में १ जंघा (पींडरी) में २ जानु (घोटू) में १ और-ऊरू (जाँघ) में१ हड्डीहै ऐसेएकसक्थी (पैर) में ३० हड्डी हुई, और दोनो-पैरोकीमिलानेसे ६० होतीहै, और दोनोहाथोंकीभी ६० होतीहै, ऐसे दोनो-हाथपैरोकीसंख्यामिलानेसे १२० होतीहै ।

श्रोण्यादिगतहड्डियोंकोकहतेहै

श्रोण्यांपंचतेषांभगगुदनितंबेपुचत्वारित्रिकसंश्रित मेकंपार्श्वेषट्त्रिंशदेकास्मिनद्वितीयेत्प्येवंपृष्ठेत्रिंशदष्टा वुरसिद्वेअक्षकसंज्ञे ।

अर्थ– कमरमें ५ हड्डीहै (तिनमेंभगऔरलिंगमें १ नितंबअर्थात्कू-लेन्मे २ गुदामें १ और त्रिकस्थानमें १ हड्डीहैऐसें ५हुई) एकपार्श्व (पास-अथवाकूख) में ३६ उसीप्रकारेदूसरीपांसूमे ३६ और पीठमें ३० और उर (वक्षस्थल) में ८ औरअक्षकसंज्ञक की २ हड्डीहै, ऐसे कुल्लश्रोण्यादिहड्डी योंकीसंख्यामिलानेसे ११७ होतीहै । -

ग्रीवोर्ध्वगतहड्डियोंको कहतेहै

ग्रीवायांनवकण्ठनाड्यांचत्वारिद्वेहनोः दन्तानां द्वात्रिंशत्नासायांत्रीणिएकंतालुनिगण्डकर्ण शंखेष्वेकैकंषट्शिरसि।

अर्थ—ग्रीवा (नाड) में ९ कंठकी नाडीमें ४ ठोडीमें २, दंतसंबंधी हड्डी ३२ नाकमें ३ तालुअेमें १गालोंमें २, कानोंमें २,कनपटीन्में २और मस्तकमें ६ हड्डीहै अेसैंसबमिलकर ६३ त्रेसठहड्डी हैं।

मतांतरसैंहडडियोंकीसंख्या

एकैकस्यांपादाङ्गुल्यांत्रीणित्रीणिअन्यत्राङ्गुष्ठात् अङ्गुष्टेद्वे तानिचतुर्दश। प्रपदेपंचतान्यग्रतोऽङ्गुलीनामूलास्थिखण्डैः। पंचभिर्मिलितानि। तेषांकतिपयानिगुल्फसन्धिपर्यन्तंवि स्तृतानि गुल्फेसप्त। जंघायांद्वेजानुन्येकम्। एकमुरावितिं। त्रिंशदेवमेकस्मिन्सक्थ्निभवन्ति द्वयोः सक्थ्नोरुपरिवस्ति मुभयतोद्वश्रोणयस्थिनीस्तः अनयोरग्रभागावौपास्थिकास्थि संज्ञांलभते एतेनेतरसक्थिव्याख्यातम्।

अर्थ— अंगूठेकोत्यागकरअन्यचारउंगलियोंमेंतीनतीनहड्डीहै, और अंगूठेमें २ हड्डीहै, अेसैंपांचोउंगलियोंमें १४ हुई, पैरमें ५ हड्डीहै। इनमत्येकके अग्रभागयथाक्रमपांचोउंगलियोंकेमूलपर्वास्थियोंसैंमिलेहुएहै। और येकितनीएकगुल्फसंधियोंसैंमिलेहुएहै।

गुल्फ (टकना) में ७ हड्डीहै, जंघा (पीडली) में २ जानू (घोंटू) में १ ऊरू (जाँघ) में १ हड्डीहै, अेसैंप्रत्येकपैरमें ३० हड्डीहै। दोनोपैरोंके ऊपरबस्तीकेदोनोपार्श्वोंमेंएकएकश्रोणास्थिहै। इनदोनोहड्डियोंकेअग्रभागको उपास्थिकास्थिअर्थात्मेढ्र वायोनिसंपृक्तअस्थिकहतेहै। श्रोणास्थिमिलाकरगणनाकरनेसैंप्रत्येकपैरोंमें ३१ हड्डीहोतीहै।

ऊर्ध्वशाखाकीहड्डीयोंकीसंख्या

पादाङ्गुलिवत्कराङ्गुलिषुचतुर्दश। प्रपदवत्करभेपंच. मणिवन्धे। ष्टौप्रकोष्ठे द्वे प्रगण्डेएकम्। त्रिंशदेवमेकस्मिन्वाहावस्थीनिभव। न्ति. प्रगण्डास्थ्नउपरितिएकमंसास्थि । अंसास्थितउरोऽस्थि पर्यंतंविस्तृतंजत्र्वस्थि. एतेनेतरवाहुर्व्याख्यातः

अर्थ—पैरकी उगलियोंके सदृशहाथकी भी पांचो उगलियोंमें १४ हड्डी है, और पैरके सदृश करभ (हथेली) में ५ हड्डीहै, मणिवंध (पहुचे) में ८हड्डीहै, प्रकोष्ठ (कलाई) में २ प्रगंड (बाजू) में १हड्डीहै, ऐसे प्रत्येक भुजामें ३० हड्डीहै, प्रगडास्थिके ऊपर १ असास्थि (कधेकी हड्डी) है- असास्थि सैलेकर छातीकी हड्डी पर्यंत वक्षस्थलके ऊपर और सन्मुख भा, गमें एक एक जत्र्वस्थि है। (कधेकी सधिको जत्रु कहते है) अंसास्थि और जत्र्वस्थिको मिलाकर गणना करनेसें एक एक भुजामें ३२ वतीस हड्डी होतीहै।

उरोस्थ्येकमुभयतजत्रुसंयुतंसत् क्रमेणोदराभिमुख मागतम् निम्नोऽन्तोऽस्याङ्गुल्यादिभिरनुभूयते.

अर्थ—उरोस्थि अर्थात् वक्षोस्थि १ है, यह दोनो पसवाडेके दोनो जत्रु (कंधेकी सधियों) सेमिले हुये अस्थि क्रमसै उदराभिमुख होकर नीचेको आईहै, इन्होके नीचेका भाग उगली आदिद्वाराकरके अनुभव होताहै । यह उपास्थि अर्थात् उपास्थिसंबधी हड्डीयोंका स्वरूपजानना

मध्यभागस्थितहड्डियोंकास्वरूप

पृष्ठवंशःपरस्परमिलितैःकशेरुकाभिधैःषड्विंशत्यास्थिखण्डै र्निर्मितानि सहिग्रीवामारभ्य क्रमेण निम्नाभिमुखोगुह्य पश्चाद्भागपर्यन्त मागतः । निम्नखण्डंत्रिकनाम्नाभिधीयते

अर्थ—पिछाडीका वांस परस्पर २६ अस्थि खडोंसे निर्मित तथा ग्रीवा (नाड) सैलेकर क्रमसे निम्नाभिमुख होकर गुह्य देश (गुदालिंग) के पश्चात्

भाग पर्यंत आया है। इन २६ हड्डीके टुकडोंके प्रत्येकका नाम कशेरु काहै। सबसैं नीचेके कशेरुका कानाम बहुधा त्रिकास्थि है।

पार्शुओंकावर्णन

एकैकस्मिन्पार्श्वेद्वादशपर्शुकाःपृष्ठवंशतोधनुर्वद्वक्रादेहस्य सन्मुखभागमागतास्तासामूर्द्ध्वस्थाःसप्तउरोऽस्थ्नामिलिताः। शेषाःपंचसांमुख्येनकेनाप्यस्थ्नाभिलिताः।प्रथमामारभ्यअष्टमपर्शुकांयावत्क्रमेणदैर्घ्यवृद्धिस्ततःक्रमशोहानिः।एकैकस्याःपर्शुकायाअग्रतएकैकंतरुणास्थिविद्यते तत्रोर्ध्वस्थानांसप्तानां तरुणा स्थीनिउरोऽस्थ्ना तन्निम्नगतानांतिसृणां त्रीणि परस्परं मिलितानि शेषयोर्द्वयोर्नकेनापिमिलिते।

अर्थ—शरीरके प्रत्येक पार्श्वमें १२ पर्शुका अर्थात् पंजरास्थिहै, ये प्रत्येक पर्शुका पीठके वाससैंलेकर धनुषके समान टेढीहो देहके सन्मुखभाग पर्यंत चलीगई हैं। तिनमें ऊपर की ७ पर्शुका वक्षस्थलकी हड्डीसैं जायकर मिलगईहैं। और नीचेकी५पांशु देहकी सन्मुखवाली किसी हड्डीसैं नहीं मिली, पहलीसैं लेकर अष्टम पर्यंत जो पांशूहै वो क्रमसैं लंबी (अर्थात् पहलीसैं दुसरी दूसरीसैं तीसरी अधिकलंबीहै.) और उन आठपर्शुका ओंके नीचे जो ४ पर्शुका है, वो क्रमसैं छोटी होगईहै, प्रत्येक पर्शुकाके आगे एक एक तरुणास्थीहै, तिनमें ऊपरकी ७ तरुणास्थि वक्षस्थलकी हड्डीसैं मिल रही है और उन सातके नीचे जो ३ तरुणास्थी है, वो परस्पर मिलरही है, वाकी जो २ पर्शुका है उनकी जो २ तरुणास्थी है, वो किसी सैं नहीं मिली किंतु पृथक् है।

शिरकीहड्डीयोंकावर्णन.

करोटावष्टास्थीनिसन्तियथा। एकंललाटेद्वयोःपार्श्वयो रुर्ध्वतः परस्पर मिलितेद्वेऊर्ध्वशिरःपार्श्वास्थिनी। तन्निम्नतोद्वयोःपार्श्वयोर्द्वेशंखास्थिनी। पश्चादेकंपृष्ठवंशस्योर्ध्वकशेरुकोपरिस्थितं।

करोटि मूलेऽग्रतःसौपिरास्थि, बहुभिः सुपिरैर्व्याप्तत्वादस्यसौपिरसंज्ञता। करोटिमूले पश्चिमाएकम् । एतच्छेपैःसप्तभिर्मिलितम्। एवंकरोटावष्टास्थीनिपूर्यंतेकरोटिगह्वरंमस्तिष्कस्यस्थानम्।

अर्थ–करोटि (मस्तक) में आठ हड्डीहै, जैसे १ ललाटमें, दोनो पार्श्वोंके ऊपर २ उर्ध्व शिरः पार्श्वास्थिहै, ए ऊपरसे परस्पर मिल रहीहैं, उर्ध्वशिरः पार्श्वास्थि दोनोके नीचे दोनो पार्श्वोंमें २ शखास्थि (कनपटीकी हड्डी) है पिछाडी १ हड्डीहै, उर्ध्व पृष्ठकशेरुकाके ऊपर स्थित १ हड्डीहै, यह करोटिके मूलमें और आगेहै इसको शौपिरास्थि कहतेहै यह अनेक छिद्रो करके व्याप्त होनेसे इसको शौपिर संज्ञक कहतेहै । करोटिके मूल और पिछाडीमें १ हड्डीहै, यहउक्त ७ हड्डीयोंसे मिलीहुई है. ऐसे मस्तकमें आठ हड्डी गिनी जातीहै, यह करोटि गह्वर मस्तिष्क (घृताकारचरवी) के रहनेकास्थान है।

मुख (चहरे)का वर्णन

वदनमण्डलेचतुर्दशास्थीनिसन्ति। तथाद्वेनासास्थिनिवदनमण्डलस्योर्ध्वमध्यतोद्वयोः पार्श्वयोः स्थितेपरस्परमिलितेच। नेत्रविवरस्याभ्यन्तरे माभितोद्वेतन्वस्थिनी। नासारन्ध्रव्यवधायिन्याभित्तेः पश्चादेकम् नासिकाधश्छिद्रतउपरिद्वेउष्णीपास्थिनी । तालुनिद्वे। द्वेगण्डयोः । द्वेऊर्ध्वहन्वस्थिनीवदनमण्डलमुभयतोधिष्ठिते। दन्तवेष्टीयवृहत् गव्हरवतीच। एकमधोहन्वस्थिनिम्नतोवदनस्यावास्थितम् । अत्रैवाचोदन्तपांक्तिस्तिष्ठति ।

अर्थ–वदनमंडल अर्थात् चहरेमें १४ हड्डीहैं । जैसै नासिकाकी २ हड्डी वदनमंडलके उर्ध्वभागमें और मध्यांशमें दोनो पार्श्वोंमें स्थित तथा परस्पर मिलीहुईहैं। नेत्रोंकेगड्ढोके भीतर सन्मुखमें २ तन्वस्थि अर्थात् पतली हड्डीहै । नासारन्ध्रके व्यवधान कर्त्ता भित्ती (भीत) के पिछाडी १ हड्डीहै नासिकाके नीचेके छिद्रोंके ऊपर २ उष्णीपास्थि है अर्थात् किरीटके

आकार होनेसैं इसको उष्णीषास्थिकहत्तेहै, तालुएमें २ गालोमें २ ऊपरकी हन्वस्थि २ है यें मुखमंडलके दोनो पार्श्वोमेंस्थित तथा उर्ध्वदंत वेष्टीय बृहत्गव्हर संयुक्त है। नीचे १ हन्वस्थिहै, यहमुख मंडलके अधोभागमें स्थितहै. इसमें नीचेकी दंत पंक्तिहै।

कर्ण

एकैकस्यकर्णस्याभ्यन्तरतस्त्रीणि त्रीणिक्षुद्रास्थीनिसंति

अर्थ—एकएककानके भीतर तीन तीन क्षुद्रास्थिहै।

जिव्हा

जिव्हामूलात्पश्चादेकंक्षुद्रास्थिनकेनाप्यस्थ्नासंयुतं।
पेशीभिरेवधृतंतिष्ठति॥

अर्थ—जिव्हा मूलके पिछाडी १ क्षुद्रास्थिहै। यह किसी हड्डीसैमिलीहुईनही है, यह पेशियोने धारण कररक्खीहै।

अङ्गुष्ठमूलादिषुकलायपरिमण्डलानिकतिपयान्यणु
मण्डलास्थीनिसान्तिसंख्यातश्चैतानिप्रायशोष्टौ।

अर्थ—अंगुष्ठमूल आदिस्थानमें कितनी एक अनुमंडलास्थिहै, इनकी आकृती प्राय मटरके समान है. इनकी संख्या सबमिलकर ८ है.

अतःषट्चत्वारिंशदधिकद्विशतसंख्यास्थिमयोऽयम्।
नरकङ्कालइतिभगवतऔरभ्रस्यमतम् यथा
सक्थ्नोर्द्विषष्टिरस्थीनिबाव्होस्तुद्व्यधिकानिच।
उरस्येकंपृष्ठवंशेषड्विंशतिरतः परम्।
पर्शुकाः पार्श्वयोर्ज्ञेयाश्चतुर्विंशतिसंमिताः।
अस्थीन्यष्टौकरोटौचवदनेऽथचतुर्दश।
कर्णयोःषट्तथैकंचरसनामूलसंश्रितम्।

अष्टाणुमण्डलानिस्युर्द्वात्रिंशद्दशनामताः ।
एतेभ्योऽतिरिक्ताप्यपिकतिपयानिक्षुप्राम्थीकङ्कालेदृश्यन्ते

अर्थ—अतएव २४६ हड्डियोंसे,*निर्मित नरकंकाल अर्थात् मनुष्यका अस्थिपजर है यह महर्षि औरभ्र का मतहै, अबउसको स्पष्ट दिखातेहै जैसे

सक्थि (पैर) दोनो में	६२	करोटि में	८
भुजादोनो में	६४	मुखमंडलमें	१४
वक्षस्थल में	१	दोनोकानोमें	६
पृष्ठवंश में	२६	जिव्हामूलमें	१
पार्श्वद्वय में	२४	अनुमडलास्थि	८
		दान	३२

२४६

८ नम्बरके चित्रोंको देखो

अवहड्डिकीं संधियोंको कहतेहै.

उभयोर्मीलनंसन्धिरस्थ्नोःसद्विविधोमतःचेष्टावानस्थिरसंधिश्चचेष्टावांश्चपुनर्द्विधा। सम्यक्चेष्टोऽल्पचेष्टश्चतरुणास्थिभिरादिमः। संयुतःकलयास्नेहस्राविण्याचसमावृतः। तरुणास्थिभिसंश्लिष्टैः। रज्जुभिर्वासमावृतैः । अस्थिप्रान्तैर्वृतोन्त्यश्चस्थिरंतुकेवलास्थिभि। शाखासुहन्वोःकट्यांचतथाप्यूर्ध्वगयोर्द्वयोः।कशेर्वोर्जत्रुणोश्चे

*किसी आचार्यके मतसे हड्डी ३६० है किसीके मतसे २४८ किसीके मतमें २५२ हड्डीमानीहै परंतु सुश्रुतमें जो३०० हड्डी लिखीहै, वो असत्य नहीं है किंतु वहुतसी हड्डी अतिनम्र और पतलीनको और आचार्योंने उनकी हड्डीयोमें नहीं गणना करी इन सवका मतांतर भेद अर्थात् अंग्रेजी डाक्टर युनानीं वैद्य, और अपने सस्कृतका परस्पर विरोध आगे निघंटमें (अस्थि) शब्दकीव्याख्यामें लिखेंगे

वसम्यक्चेष्टान्तसन्धयः। अल्पचेष्टाःकशेरूणां शेषाणांपरिकीर्तिता । इतरेसंधयः सर्वेस्थिरामुनिभिरीरिताः ।

अर्थ—दो हड्डियोंके परस्पर मिलनेके स्थानको संधि कहतेहै । ये संधि दोप्रकारकीहै, जैसै एकचेष्टावान् संधि, दुसरी स्थिरसंधि, अबकहतेहैकि चेष्टावान् संधिके भी दो भेदहै अर्थात् एक विशेष चेष्टावाली और दूसरी अल्पचेष्टावान् संधिहै । तिनमे प्रथम अर्थात् विशेष चेष्टावान् संधि उपास्थि (तरुणहड्डी) संयुक्त तथा स्नेहस्रवणशील कला (झिल्ली) ओंसें सर्वत्र लिपटीहुईहै।शेषजो संधि अर्थात् अल्पचेष्टावान्जो सन्धिहै वो उपास्थियोंसेलिप्त तथा रज्जू करके लिपटीहुईहै, और अस्थिप्रान्तद्वारा निर्मितहै । और स्थिरसंधि जोहै वोसव केवल परस्पर अस्थिप्रान्तयोगकरके बनी हुईहै, शाखाचतुष्टय (हाथपैर) हनुद्वय (दोनोजावडे) कमरके ऊपर रहनेवाले कशेरुकाद्वय तथा जत्रुइनमें विशेष चेष्टावाली सन्धिहै, और वाकी कशेरुका आदि समस्तोंमें, अल्पचेष्टावान् संधिहै, इनसे भिन्न जितनी संधिहै. उनको स्थिरसंधि कहते हैं ।

सन्धियोंकी संख्या

एकैकस्यां पादाङ्गुल्यांत्रयस्त्रयोद्वावङ्गुष्ठे ते चतुर्दश
जानुगुल्फवंक्षणे ष्वेकैक एवं सप्तदशैक स्मिन्सक्थी
निभवान्ति एतेनेतरसक्थि बाहूच व्याख्यातौ

अर्थ—एकएक पैरकीउंगलीमें तीन तीन और अंगूठेमें दो ऐसैं मिलकर १४ तथा घोटू एडी और पेडू इनमे एकएक ऐसै सबमिलकर एक पैरमें १७ संधी है, इसी प्रकार दूसरे पैरमें और दोनो हाथोमें भी सत्तरह सत्तरह सन्धी जाननी ।

मध्यभागऔरग्रीवाआदिकीसंधि

त्रयःकटीकपालेषुचतुर्विंशतिःपृष्ठवंशेतावन्तएवपार्श्वयो रुरस्यष्टौतावन्त एवग्रीवायां त्रयःकण्ठेनाडीषु हृदयक्लोमफुप्फुसेने

बद्धा स्त्वष्टादशदंतपरिमिता दंतमूले एकःकाकलके नासायांच द्वौ वर्त्ममण्डलौनेत्राश्रयौ गण्ड कर्ण शंखेष्वेकैकाद्वौ हनुसंधौ द्वावु परिष्टाद्भ्रुवोः शंखयोश्च पंच शिरःकपालेष्वेकोमूर्ध्नि

अर्थ—कमर और कपालास्थि के वीच २ संधींहै, पीठके वासमें २४ संधिहैं दोनोकू खोमें २४ तथा उरमें आठ८ए सव मिलकर मध्यप्रदेशमें ५९संधी हुई ग्रीवामें ८ आठ तथा कंठमें ३ तीन, "हृदय क्लोमनिवद्धासुनाडीपु" अर्थात् अन्न और जलके वहनेवाली नाडी हृदय और क्लोम इनसे वंधीहुईहै इसका स्पष्टार्थ यह है कि, गलनाडी और कठनाडी इनमें १८अठारे संधिहै, दतमूलसंधि ३२ तथा काकलकमें (गलमणि अर्थात् जिस्को घटिकाकहतेहैं)उसमे १ एक नासिकाकी हड्डीमें तथा नेत्रकोशसंवंधी तरुणास्थिमें २ गाल कान और कनपटी ए तीन जोडोको मिलानेसै ६ ठोडीमें२ भौहके ऊपर अगमे २ और मस्तक संवंधी कपालास्थिमें ५ तथा १ मस्तकमें मिलकर ५३ सर्व मिलकर २१० संधि होतीहै।

उक्तसंधियोंकीगणना

कथितादेहिनांदेहेसन्धयोद्वेशतेदश ।
शाखासुतेऽष्टपष्टिश्चकोष्टेत्वेकोनषष्टिकाः ।
ग्रीवायाऊर्ध्वदेशेतुत्र्यशीतिस्तेप्रकीर्त्तिताः ।

अर्थ—मनुष्योंकी देहमें २१० सन्धिहै, तिनमे हाथपैरमें ६८ कोष्ठ अर्थात् मध्यभागमें ५९ और ग्रीवाआदि ऊपरके देशमें ८३ संधी है।

सन्धियोंके आठ भेद कहते है.

कोरोदूखलसामुद्गप्रतरानुन्नसेवनीवायसतुण्डमण्डलशंखावर्त्ताः। तेषामंगुलिमणिवन्धजानुगुल्फकूर्परेषुकोराःसंधयः। कक्षवंक्षण दशनेषुउदूखलाः। अंसपीठगुदपादनितंवेषुसामुद्गाः। ग्रीवापृष्ठ वंशयोःप्रतराः। शिरःकटिकपालेषुनुन्नसेवनी। हन्वोस्तुवायस

तुंडाः । कंठहृदयनेत्रक्लोमनाडीषुमण्डलाः । श्रोत्रशृंगाटकेषुशं
खावर्त्ताः ।

अर्थ—कोर, उदूखल, सामुद्र, प्रतर, तुन्नसेवनी, वायसतुंड, मंडल और शंखावर्त्त येनामवाली संधी आठ प्रकारकी है. तिनमें उंगली, पहुचा घोटू, एडी और कोहनी इनमें कोर (गट्ढा अथवा कली) के सदृशसंधी है । का, ख, पेडू, दांत, इनमें उलूखल (ओखली) के सदृशसंधिहै. तथा कंधा, पीठ-गुदा, पैर, और कूलेन्मे सामुद्र (संपुट)के आकार संधिहै । ग्रीवा, पीठकावांस इनमें प्रतर (नौका)के सदृश संधिहै । और शिर, कमर, कपाल इनमें तुन्नसेव-नी (वर्तनकी संधिके समान अथवा सिलेहुए) के सदृश संधिहै । और ठोडीके दोनोतरफ जो संधिहै वो वायसतुंड अर्थात् कौआकीचोचके समानहै । कंठ, हृदय, नेत्र, और क्लोमनाडियोंमें मंडलाकृति अर्थात् गोलसंधिहै । कान और शृंगाटक (कसेरुक) इनमें शंखके आंटेके समान संधिहै ।

अस्थ्नांतुसंधयोह्येतेकेवलाःपरिकीर्त्तिताः ।
पेशीस्नायुशिराणांतुसंधिसंख्यानविद्यते ॥

अर्थ—ये जो ऊपरसंधिकही है सो ये केवल हड्डियोंकी संधियोंका वर्ण-न कराहै, वाकीपेशी, स्नायु और शिरा आदि संधियोंकी संख्या नहीं है अ-र्थात् इनकी संख्या अनंत है.

अथस्नायवः

स्नायवःसूत्रवत्सूक्ष्माःशुभ्रानिखिलदेहगाः ॥ कारणानिचेतना
नांसदाचैतन्यसाधने ॥ सुखदुःखावबोधेचप्रवृत्तौचनिवर्त्तने ॥
रूपगंधरसस्पर्शशब्दज्ञानेचहेतवः॥ निखिलास्ताश्चसंजातामास्ति
ष्कात्पृष्ठमज्जनः ॥ शिरोमंडलमेवाद्याः शेषाः शेषाङ्गमाश्रिताः
॥ तेषुतेषुचभावेषुदेहमाप्तेषुवस्नसाःकम्पमाना कम्पयन्तेमस्तुलु
ङ्गश्चतत्क्षणात् । तस्यविकम्पभेदेनज्ञानभेदोभवेद्बहुः ।अतोमास्ति

ष्कमेवैकोज्ञानहेतुः प्रकीर्त्तितः । करोटिगव्हरान्तस्तद्रसेदाज्यसु.
पेलवम् । सुशुभ्रंचासमतलमाभिन्नंचाद्विधोपरि ॥

अर्थ—सर्वस्नायु सूत्रके सदृश सूक्ष्म और सपेद रंगवाली है; तथा येसर्व देहमें व्याप्तहै और चेतन (जीवोंके) चैतन्य करनेकी कारण स्वरूप है; सुखदुःखज्ञान, कार्यकी प्रवृति और निवृत्ति तथारूप, रस, गंध, स्पर्श, और शब्दज्ञानके होनेमें कारण भूतहै । ये सर्व स्नायु मस्तिष्क तथा पृष्ठ शकी मज्जासे उत्पन्न हुई है, मस्तिष्कसे जो स्नायु प्रगटहुई है वो मस्तकमें रहती है, और पृष्ठमज्जासे प्रगटस्नायु हाथ, पैर और उदर आदिमें रहती है। अनेक प्रकारके भाव देहमें प्राप्त होनेसे उसजगे रहनेवाली स्नायुओंके कंपित होनेसें वो स्नायु तत्क्षण मस्तिष्कको कपातिहै उस मस्तिष्कके कापनेके भेद करके पृथक् पृथक् ज्ञानकी उत्पत्ति होतीहै । इसीसे मस्तिष्कही केवल सर्वज्ञान होनेका हेतुहै । करोटिगव्हरके भीतर मस्तिष्क रहताहै, (सुन्दर शुभ्रवर्ण और घृतकेतुल्य अतीव कोमल पदार्थको मस्तिष्क कहते है) यह मस्तिष्क नीचेके भागमें असमतल और ऊपर दो भागोंमें वटाहुआ है । ९ नवरका चित्र देखो ।

नेत्रेरूपवताविम्वपतनान्नेत्रवस्नसाः ।भावान्तरंमस्तुलुंगंनयन्तेत
द्दिदर्शनम्।पदार्थानांगन्धवतांगन्धाणूनांसमागमात् । नासास्थाः
कुर्वतेलद्वत्तघ्राणंपरिकीर्त्तितम्।तथारसवतांचाणुसङ्गमाद्रसनाश्रि
ताः । क्रियांतांकुर्वतेतद्धिरसनंचाभिधीयते । शीतोष्णादिगुणव
तांद्रव्याणांत्वचिसङ्गमात् । तत्रस्थाः कर्मकुर्वंतिताहशंस्पर्शनंहि
तत् परस्पराभिघातेनद्रव्याणामनिलस्तदा। तरङ्गवानभीहन्यात्
कर्णांतः श्रवणंततः । गत्यादिष्वपिकीर्त्यतेस्नायवोमुख्यहेतवः ।
अथकिवहुनोक्तेनजीवत्वंस्नायुसंभवम्। स्नायुनाशोभवेद्यस्मिन्नङ्गे
तत्स्यान्मृतोपमम् । पक्षाघातादिरोगेषुकारणंतद्विधंमतम् ।

अर्थ—नेत्रोंमें रूपवान् पदार्थका प्रतिबिंब पडनेसे सर्व नेत्रकी स्नायु

मस्तिष्क को भावांतर प्राप्त करती है; उसीको दर्शन अर्थात् देखना कहते है। उसी प्रकार गंधवान् पदार्थके गंधपरमाणु नाकमें जानेसैं उसजगेके रहनेवाली स्नायु मस्तिष्कको कंपितकरे तब गंधका ज्ञानहोवे इसीकोघ्राण अर्थात् सूंघना कहतेहै। रसवान् पदार्थके परमाणु रसना (जीभ) संयुक्त होकर उसजगे रहनेवाली स्नायुद्वारा मस्तिष्कको कंपितकरे तब इसप्राणीको रसकाज्ञान होता है। शीत और गरमी संयुक्त पदार्थ सर्वत्वचाको स्पर्शकरे तव उसत्वचाकेरहनेवाली स्नायु मस्तिष्कको कंपितकरे तव इसप्राणीको शीत और उष्णताका ज्ञान होताहै। इसीको स्पर्श कहतेहै इसी प्रकार द्रव्यगणोंके परस्पर अभिघात करके पवनसै तरंग विशेष उठे उसतरंगसै कानकी झिल्लीताडितहो तब उसजगे रहनेवाली स्नायुगण मस्तिष्कको कंपितकरे तब इसप्राणीको शब्दज्ञान होता है अतएव इन्द्रियजन्यज्ञानके होनेका मुख्य कारण स्नायु है। और चलने आदिकार्य विषयमेंभी मुख्य स्नायुगणही कारण है। बहुत कहनेसैं क्याहै मनुष्यका जीवन स्नायुकरके है जिसअंगकी स्नायुनष्ट होजाती है वह अंग मरेके समान होजाताहै। इसीसे पक्षाघातादि (लकवाआदि) पीडामेंभी केवल स्नायुनाश कारण जानना १० नंबरका चित्र देखो।

स्नायुसंख्या

नवस्नायुशतानितेषांशाखासुषट्शता

निद्देशतेत्रिंशच्चकोष्ठग्रीवायांप्रत्यूर्ध्वंसप्ततिः।

अर्थ—स्नायु ९००हैं, तिनमें हाथपैर में छःसौं ६०० है. मध्यप्रांतमें २३० है, और ग्रीवासैंलेकर ऊपरके प्रदेशमें ७० है।

हाथपैरकीस्नायुकहतेहै

एकैकस्यांपादाङ्गुल्यांषट्षट्चिताःतास्त्रिंशत्तावन्त्योनलकूर्पगुल्फेषुतावंत्यएवजंघायांदशजानुनिचत्वारिंशदुरौदशवंक्षणे ।

अर्थ—प्रत्येक पैरकी उंगलीमें ६हैं, सबमिलकरहुई, ३०नल,कूर्पर,गुल्फइनमें ३० जंघामें ३० जानु (घोटु) में १०, उरूमें ४०, वंक्षणमें १०, सबमिलानेसैं एक पैरमें १५० स्नायुहुई, दोनोमें ३०० और इसी प्रकार दोनो हाथोंकी मिलानेसैं ६०० स्नायुहोतीहै.

मध्यभान्तगतस्नायु

षष्टिःकट्यांमध्येअशीतिःपार्श्वयोःषष्टिरुरसित्रिंशत् ।

अर्थ—कमरमें ६० पीठमें ८० कूखमें ६०उरसंबंधी ३०सबमिलकर २३० होती है ।

ग्रीवासैलेकरऊपरकीस्नायु

षट्त्रिंशद्ग्रीवायांमूर्ध्निचतुस्त्रिंशत् ।

अर्थ—ग्रीवा (नाड) में ३६ मस्तकमें ३४ मिलकर ७० होतीहैं पूर्वोक्त सर्वस्नायुभिलाने से ९०० स्नायुहोतीहैं महास्नायु, ओंको कडरा कहते,

चतुर्विधस्नायु

स्नायुश्चतुर्विधाःप्रोक्तास्तांस्तुसर्वान्निबोधमे ।
प्रतानवत्योवृत्ताश्चपृथ्व्यश्चसुषिराःखलु ।
प्रतानवत्यः शाखासुसर्वसंधिषु चाप्यथ ।
वृत्तास्तुकंडराः सर्वाविज्ञेयाः कुशलैरिह ।
आमपक्वाशयान्तेषु वस्तौचसुषिराःखलु ।
पार्श्वोरसितथापृष्टे पृथुलाश्चशिरस्यथ ।

अर्थ—स्नायु, चारप्रकारकीहै । प्रतानवती, वृत्त, पृथु, और सुषिर हाथपैरोंमें और संधियोंमें प्रतानवतीस्नायुहै । और जो वृत्तहै उनको कंडरा कहतेहैं । तथा आमाशय पक्वाशय और वस्तीमें सुषिर संज्ञकहै । पसवाडोंमें छातीमें पीठ और शिरमें पृथुल संज्ञक स्नायु जाननी स्नायुओंसे सर्वदेह बधा-हुआहै ।

इसविषयमेंदृष्टांत

नौर्यथाफलकास्तीर्णाबंधनैर्बहुभिर्युता ।
भारक्षमाभवेदाशुनृयुक्तासुसमाहिता ।

एवमेवशरीरेस्मिन्यावंतःसंधयःस्मृताः।
स्नायुभिर्बहुभिर्बद्धास्तेनभारसहानराः।

अर्थ—जैसें नौका फलकोंसे व्याप्त और अनेक वंधनोसें वधीहुई। वोझाको सहनकरेहै। और मनुष्य युक्त उत्तम तरनेका साधन होता है। उसी प्रकार इसदेहमें जितनी संधी है वोस्नायुओंकर्कैवंधी है इसीसैं मनुष्य भारको सहन कर सकताहै।

स्नायुप्रशंसा

नह्यस्थीनिनवापेश्योनशिरानचसंधयः। व्यापादितास्तथाहन्यु र्यथास्नायुः शरीरिणः। यःस्नायूप्रविजानातिवाह्याश्चाभ्यं। तरास्तथा, सगूढशल्यमाहर्त्तुदेहात्शक्नोतिदेहिनाम्।

अर्थ—जैसा स्नायु विकृतहोनेसैं मनुष्योंको प्राणोंका भय होताहै। अैसा हड्डी; पेशी; संधी, इत्यादिक विकृत होनेसैं नहीं होवे। तथा जिस मनुष्यको वाहर औभीतरकी स्नायुओंका उत्तमरीतिसैं भेदमालुमहै। वह, देहमेसैं गुप्तशल्य (कांटाआदि) काढनेमें समर्थ है अैसा जानना।

५०० पेशीन्कोकहतेहै.

पंचपेशीशतानि तासांचत्वारिशतानिशाखासुकोष्ठे॥
षट्षष्टिः ग्रीवांप्रत्यूर्ध्वंचतुस्त्रिंशत्॥

अर्थ—परस्पर विभक्त अैसेंमांसावयव समूहोंको पेशीकहतेहै। वो ५०० पांचसौं है। तिनमें ४०० हाथ पैरोंमें, ६९ मध्यप्रदेशमें, ३४ कंठसैले कर उपरके भागमेहै; परंतु गर्गाआचार्य कहताहै कि मध्यप्रदेशमें ६० और उपरके भागमें ४० पेशी है। परंतु किसि आचार्यके मतसैं सर्व ४०० पेशी है सो आगे लिखेगे।

पेशियोंकापृथक् २ वर्णन

एकैकस्यांपादाङ्गुल्यांतिस्त्रस्ताः पंचदश। दशप्रपदे पादोपरि कूर्चसंनिविष्टास्तावन्त्यएव। दशगुल्फतलयोः। गुल्फजान्वन्तरे

विंशतिः । पंचजानुनि । विंशतिऊरौदशवंक्षणे शतमेवमेकस्मि । न्सक्थीनिभवंति ।

अर्थ–एकएक पैरकी ऊंगलियोंमें ३ तीन तीन पेशीहै । सबमिलकर १५ हुई, तथा पैरके अग्र भागमें १० और पैरके पृष्ठ भागमें १० गुल्फ और तलवेमे १० गुल्फ और घोंटूके मध्यमें २० घोंटूमें ५ जांघोमें २० वक्षणमें १० अैसे एक पेरमें कुल्ल १०० पेशी होती है । इसी प्रकार दूसरे पैरमें और दोनो हाथोमें मिलानेसे ४०० पेशी होतीहै ।

मध्यप्रदेशकीपेशियोंकोकहतेहै.

तिस्रःपायौएकामेढ्रेसेवन्यांचापरेद्वेवृषणयोः स्फिजोःपंच । द्वेव स्तिशिरसि । पंचोदरेनाभ्यामेकापृष्ठोर्ध्वसन्निविष्ठाःपंचपंचदीर्घाः षट्पार्श्वयोर्दशवक्षसिअक्षकांसौप्रतिसमंतात्सप्तद्वेहृदयामाशय योः षट्यकृत्प्लीहोंदुकेषु ।

अर्थ–गुदामें ३ तीन पेशी है; उन्हीको त्रिवली कहतेहै । एक लिंगमें १ और १ एक शीवनीमे; २ अडकोशोमें, १ कमरमें, २ वस्तीके ऊपरले भागमें: उदरमें १ नाभिमें, १० पैरोमें ऊर्ध्वरचित लंबीहै । कूखमें ५, वक्षस्थलमें १० दोनोकधे और अक्षकमें मिलकर ७ हृदयमें तथा आमायशमें यकृत्, प्लीह; और उदुक इन्होंमें ६ पेशीहै; अैसे सब मिलकर ६६ पेशी होतीहै । परतु गयीआचारी वृद्धवाग्भटके मतको आलबन करके कोष्ठमें ६० पेशी और उर्ध्वप्रदेशमें ४० पेशी है अैसे कहताहै ।

ऊर्ध्वप्रदेशकी ३४ पेशीयोंको कहतेहै

ग्रीवायांचतस्रः अष्टौहन्वोः एकैकाकाकलकगलयोः द्वेतालुनि एकाजिव्हायांद्वेओष्ठयोः द्वेनासायाद्वेनेत्रयोः गण्डयोश्चतस्रोद्वे कर्णयोश्चतस्रोललाटेएकाशिरसीतिएवमेतानिपंचपेशीशतानि।

अर्थ—नाडमें ४ पेशीहैं; ठोडीमें ८ काकलक (काक)में, गलेमें एकएक हैं, तालुअेंमें २ जिव्हामें १ होठोंमें २नाकमें २ नेत्रोंमे २ दोनो गालोंमें ४ चार, कानोमें २ ललाटमें ४ मस्तकमें १ कुल्लजोडनेसै ३४ होतीहै । सब मिलकर५००हुई ये पेशी शिरा, स्नायू, अस्थिपर्व, संधी इनको धारण करती है । इसीसे शिरादिक बलवान् होकर सर्व देहको बल देती है ।

स्त्रियोंकेपेशी अधिककहतेहै

स्त्रीणांविंशत्यधिकास्तासांस्तनयोरेकैकस्मिन्पंचपंचयौवनेतासां परिवृद्धिः अपत्यपथेचतस्त्रः प्रसूतेरभ्यंतरतोद्वेमुखाश्रितवृत्तेचद्वे गर्भच्छिद्रसंश्रितास्तिस्त्रः शुक्रार्तवप्रवेशिन्योगर्भाशयेचतिस्त्रएव।

अर्थ—स्त्रियोंके वीस पेशी अधिकहै, तिनमें स्तनोमें पांच पांच मिलकर १० है, ये यौवन अवस्था आनेपर बडी हो जातीहै । योनिमें ४ पेशीहै, तिनमें दो भीतर, और योनिकर्णिकाके पार्श्वोमें वर्त्तुल तथा स्पर्श करके सुख देनेवाली २ पेशीहै तथा गर्भ मार्गमें गोल आंटेके समान ३ तीन, और गर्भाशयमें शुक्र आर्त्तवके प्रवेश करनेवाली अैसी तीन ३ पेशी है । अैसे सब मिलकर २० पेशीहुई; गर्भाशय योनीके तीसरे आवर्त्तमें रोहूमछलीके मुखके समान है ।

पेशियोंकेस्थानविशेषकरकेस्वरूप

तासांबहुलपेलवस्थूलाणुपृथुवृत्तह्रस्वदीर्घ स्थिरमृदुश्लक्ष्णकर्कशा भावाः। संधिशिरास्नायुप्रच्छादकायथाप्रदेशास्वभावतएवभवंति ।

अर्थ—तिन पेशीयोंमे बहुल कहिये बहुतसी, पेलव कहिये थोडी, सूक्ष्म मोटी विस्तीर्ण, गोल, छोटी, लंबी, अैसी आकृति करके अनेक प्रकारकी है । वह संधी; अस्थि; शिरा, स्नायु इन्होके आच्छादन करनेवाली अपने २ स्थानमें स्वभाव करके कठिन, कोमल, सुख स्पर्शवान्, और दुःख स्पर्शवान् अैसी अनेक प्रकारकी है ।

स्त्रियोंकेशिश्नऔरवृषणनहीहै इसीसै उस जगेकी पेशियोंकी अन्यत्र कल्पना करके कहते है.

पुंसापेश्यः पुरस्ताद्याः प्रोक्तालक्षणमुष्कयोः ।
स्त्रीणामावृत्यातिष्ठंतिफलमंतर्गतंहिताः ।

अर्थ–प्रथम पुरुषके तीनपेशी अर्थात् एक शिश्नमें, तथा दोवृषणमें, जो कहीहै । वो तीनोपेशी स्त्रीके गर्भाशयमें रहतीहै । ऐसा कोई आचार्य कहते है परंतु गयी आचार्य इस तंत्रांतरके प्रमाणको नहीं मानताहै । पांचसौं पेशीहै, ऐसे जो वचन कहाहै उसमें (पुंसा) इस पदकरके पुरुषोंके ५०० है । और स्त्रियोंके तीन पेशीन्यून है ऐसा व्याख्यान करताहै ।

इसमेंभोजवचनप्रमाण

पंचपेशीशतान्येवस्त्रीवर्ज्यंविद्धिभूमिप ।
अतश्चतस्रोहीयंतेस्त्रीणांशेफासिमुष्कयोः ॥

अर्थ–भोजकहताहै कि, हेराजन, पेशी ५०० है; परंतु स्त्रियोंके विना इसका कारण यह है कि, शिश्न और वृषणें संबंधी पेशी स्त्रियोंके नहीहै. इसीसें स्त्रियोंके तीन पेशी न्यूनहै । गर्भाशयका स्वरूप प्रथम लिख आएहै, अतएव इसजगे छोडदियाहै ।

मतांतरेण पेशीसख्यानम्

मानवदेहेचत्वारिपेशीशतानिसन्ति ।
सुश्रुतस्तुपंचशतान्याहतासांकतिचिद्विशेषेणोच्यन्ते ।

अर्थ–मनुष्यके देहमें ४०० चारसौ पेशीहै । परंतु सुश्रुतके मतमें ५०० पाचसौ मानीहै । इनमें कोई पेशीके विषय विशेषको वर्णन करतेहै ।

मूर्द्धन्युपरितएकातन्वीकरोटेःपश्चादस्थ्नःशंखास्थिभ्यांच समुत्थायमूर्द्धोर्ध्वमतिव्याप्यतत्रचकण्डरामयीसतीललाटाधःपेशीपर्यंतमागता । एतयाभ्रुवावूर्ध्वमाकृष्येते ।

अर्थ–मूर्धदेश अर्थात् मस्तकके ऊपरके भागमे एक पसली पेशीहै । यह करोटिके पिछाडी कीहड्डी तथा दोनोकनपटीकी हड्डीसें उत्पन्नहोकर मस्तकके ऊपरके भागमें व्याप्त होकर और इसीस्थानमें कंडरास्वरूपहोकर लला-

टकी अधस्थपेशीपर्यंत आयकर प्राप्तहुईहै । यह मध्यमें कंडरामय और दोनो-प्रान्तोंमें मांसमय हैं । इन दोनो पेशी करके दोनोभ्रू (भौंह) ऊपरको खिची हुईहैं ।

कर्णदेशयोस्तिस्त्रस्तिस्त्रोयथाक्रमंपश्चादूर्ध्वमाभिमुख्येच स्थिताः आभिकर्णौपश्चादूर्ध्वमाभिमुखेचाकृष्येते ॥

अर्थ—प्रत्येक कर्ण प्रदेशमें तीन तीन पेशी है, इनकी यथा क्रमसें दोनो कानोंके पिछाडी ऊपर और सन्मुखमें स्थिती है; इन्होसें दोनो कान पिछाडी ऊपर और सन्मुखकी तरफ खिचे हुएहै ।

समंतान्नेत्रवर्त्मपरिवेष्टयस्थितैकानेत्रंनिमीलयति ।
नयनपुटाधः स्थितापराः भ्रुवौपरस्परासन्नेकरोति ।
अन्यैकाश्रुनाडीमन्तराकर्षति ॥

अर्थ—नेत्रके पलकोको वेष्टन करके रहनेवाली एक पेशी है इस करके नेत्र मुदतेहै, नेत्रपुटके नीचे एक पेशी है उसकरके दोनोभौह परस्पर मिली रहती है, और एक पेशी अश्रुनाडीको भीतरकी तरफ खीचे है । अैसें दोनो वगलमें इसी प्रकार पेशी है ।

नेत्रस्थानांपेशीनांकयाचिदूर्ध्ववर्त्मऊर्ध्वमाकृष्यते । कयाचिन्नेत्रमण्डलमूर्ध्वंकयाचिदधःकयाचिदन्तःकयाचिद्बहिराकृष्येते । कयाचिदन्तरभितःकयाचिद्बहिःपश्चाद्भ्राघूर्ण्यते

अर्थ—नेत्रमे कितनीकि पेशीहै, तिन्होंमें एक पेशीसें नेत्रके ऊपरका पलक ऊपरकी तरफ खिचाहुआ है; और एक पेशी द्वारानेत्र मंडल ऊपरको एक सें नीचेको, एक सें भीतरको, तथा एक पेशी द्वारा वाहरको खिचाहुआहै । और दो पेशीमें से एकसें नेत्रमंडल भीतर तथा आगेको और दुसरी पेशी द्वारा पिछाडी और वाहरकी तरफ भ्रमण करतेहै ।

नासादेशेतिस्त्रोनसोनमनादिक्रियाःकुर्वंति

अर्थ—नासिकामें तीन पेशीहै, इन पेशीयोंके द्वारा नासिकाकी नमनादि क्रिया निर्वाहित होतीहै।

ओष्ठस्थानांपेशीनांकयाचिन्मुखसंवृतिःकयाचिदोष्टनसोरूर्ध्वाकर्पणंकयाचिदोष्ठस्योर्ध्वाकर्पणंकयाचिदास्यप्रान्तयोरन्तराकर्पणंकयाचित्तयोरूर्ध्वाकर्षणंकयाचिद्धास्यंकयाचिन्नासापुटसंवरणंचसंपाद्यतेइति।

अर्थ—ओष्ठस्थ पेशियोंमें सै किसीके द्वारा मुखका आच्छादन, किसीकेद्वारा होठ और नासिकाका ऊपरकी तरफ खिचना, किसीकेद्वारा मुखप्रान्तद्वयका भीतरकी तरफ आकर्पण, किसीके द्वारा मुखप्रान्तोका ऊपरकी तरफ आकर्पण होना, किसीके द्वारा हास्यक्रिया उसीप्रकार किसीके द्वारा नासिका पुटका आच्छादन होताहै।

अधरस्थानाकयाचिदधरस्याधस्तादाकर्पणंकयाचिदूर्ध्वाकर्पणंकयाचित्सृक्कद्वयस्याधस्तादाकर्पणंसंपाद्यते।

अर्थ—अधरस्थ पेशियोंमें सै किसीके द्वारा अधरकानीचेकी तरफ खिचना और किसीके द्वारा ऊपरको खिचना, उसीप्रकार किसीके द्वारा मुख प्रान्तद्वय (दोनोहोठोंका) नीचेकी तरफ आकर्षण होताहै।

हन्वस्थाभिरूर्ध्वहन्वस्थाभिश्चहन्वस्थ्नउर्ध्वाकर्पणंमुखांतर्गृहीततोयादीनांवहिःक्षेपणंहन्वस्थिचालनमित्याद्याःक्रियाःसंपाद्यन्ते।

अर्थ—ठोडीके तथा ऊपर ठोडीके रहने वाली पेशियोमें किसीके द्वारा ठोडीकी हड्डीका ऊपरकी तरफ आकर्पण, किसीके द्वारा मुखमें पीये हुए पानी आदिका वाहरको गेरना तथा किसीके द्वारा ठोडीकी हड्डीका इधर उधरको चलाना इत्यादि क्रियाओंका निर्वाह होताहै।

ग्रीवास्थिताभिश्चिवुकाधश्चर्मणोधोऽवनमनंमुखमंडलस्येतस्ततश्चालनं (आभ्यामेवशिरोमंडलस्याभिनमनंसंपाद्यते)।

जिव्हामूलास्थितस्यास्थ्नःकंठस्यचाधोनमनंआस्यव्यादानंजिव्हाचिबुकयोरधोनमनमभ्यवहरणंतालवधोनमनंतदूर्ध्वाकर्षणमुपजिव्हानमनंपर्शुकानामूर्ध्वाकर्षणंपृष्ठवंशस्यनमनंशिरोमंडलस्यघूर्णनंचेत्याद्याः क्रियाःसंपाद्यते।

अर्थ—ग्रीवादेशस्थ पेशीयोंमें सें किसीके द्वारा चिबुक (ठोडी) के नीचेके चर्मका अधो भागमें लटकना होता है, किसीके द्वारा मुखमंडलका इतस्ततो चालन क्रिया (इन दोपेशीयोंके द्वारा शिरोमंडलका सन्मुखको नवन क्रिया होतीहै) किसीके द्वारा जिव्हामूलास्थिका और कंठका नीचेको नवना (झुकना) होताहै, किसीके द्वारा गलेका नीचेको करना आदिकर्म। किसीके द्वारा तालुएका लटकना, किसीके द्वारा तालुएका ऊपरको आकर्षण होना, किसीके द्वारा उपजिव्हाका नवना, किसीके द्वारा पांशुओंका ऊपरको आकर्षण होना, किसीके द्वारा पृष्ठवंशका नवना उसी प्रकार किसी पेशीकेद्वारा शिरका फिरना इत्यादि क्रियाओंका निर्वाह होताहै।

पृष्ठस्थाभिः स्कंधस्यपश्चादूर्ध्वंचाकर्षणंमध्यकायस्याभितःसमाकर्षणंपृष्ठवंशस्यर्जुकरणमित्याद्याः क्रियाःसंपाद्यन्ते।

अर्थ—पृष्ठस्थ पेशीयोंमेंसें किसीकेद्वारा कंधेन्का पीछेको और ऊपरको आकर्षण, किसीकेद्वारा मध्य देहका सन्मुखकी ओर आकर्षण, उसी प्रकार किसी पेशीकेद्वारा पृष्ठवंशका नम्रता होना इत्यादि क्रियाओंका निर्वाह होता है।

वक्षस्यैकैकस्मिन्पार्श्वेपर्शुकानांबहिर्देशमभिव्याप्यैकादशैकादशसन्ति। तासामेकैकाद्वेद्वेपर्शुकेअभिव्याप्यवर्त्तते। एवमंतरेकादशैकादश। उरोऽस्थ्न्येकातदस्थ्नोऽधोभागाश्चतुर्थीपञ्चमीषष्ठीनांपर्शुकानांतरुणास्थिपर्यंतमुपस्थिता। वक्षस्थलेएकाउदरवक्षसीपृथक्करोति। आभिः श्वसनप्रश्वसनशोणितयंत्रधारणाद्याः क्रियाः सम्पाद्यन्ते।

अर्थ—वक्षस्थलके एक एक पार्श्वमें पांशुओंके बहिर्देशमें व्याप्त ११ ग्यारह पेशीहै, तिनमें एक एक पेशी दोदो पाशुओंमें लिपटी हुई है, इसी प्रकार पाशुओंके भीतरभी ११ पेशी प्रत्येक पसवाडेमें एक एक दोदो पाशूनमें व्याप्त होकर रहती है। उरोस्थि अर्थात् छातीकी हड्डी उसके अधो भागसें लेकर चौथी, पांचवी तथा छटवी पर्शुकाके तरुणास्थिपर्यंत रहनेवाली एक पेशीहै, वक्षस्थलमें उदरके ऊपर एक पेशीहै, इसकेद्वारा उदर और वक्षस्थल पृथक् होते है; इसी वक्षस्थलमें उदरके ऊपरवाली पेशीकेद्वारा निश्वास और रुधिरपत्रधारण आदि कार्य संपादन होतेहै।

उदरस्थिताभिर्वमनरेचनमूत्रणप्रसवनाद्याःक्रियाःसंपाद्यन्ते।गुह्यस्थिताभिर्मूत्रणरेचनपायुसंकोचनलिंगोत्थापनादीनिकर्माणि।

अर्थ—उदरस्थ पेशीयोंकेद्वारा वमन, रेचन, मूत्रण, तथा संतान प्रसवनादि कार्य होतेहै। गुह्यस्थ पेशीयोंकेद्वारा मूतना, दस्त होना, गुदाका संकोचन, और लिंगका उठना आदि कार्य होते है।

उरोस्थिजत्रुपर्शुकांशप्रगण्डप्रकोष्ठकराङ्गुल्यादिपुवह्व्यः पेश्यः। सन्ति। ताः श्वसनालिंगनबाहुचालनग्रहणक्षेपणादीनिबहूनि कर्माणिकुर्वन्ति।

अर्थ—छातीकी हड्डी, जत्रुस्थान, पाशू, कंधे, बाजू, कलाई, हाथ, और उंगली आदि इन स्थानोंमें बहुतसी पेशी है। वे श्वसन (श्वासकालेना) आलिंगन, भुजाओंका चलाना, तथा द्रव्यकालेना देना इत्यादि बहुतसे कार्यको करे है।

श्रोणिस्थानामेकातिपृथुलाइयंत्रिकश्रोण्यस्थितऊर्वस्थ्रऊर्ध्व भागपर्यंतमागता।श्रोणिप्रदेशेअपराअपिकतिपयाः सन्ति। आभिः सुखास्याऊर्वस्थ्नोबहिराकर्षणंक्रमणंतथैवंविधान्यन्यानिचकर्माणिनिष्पाद्यन्ते।

अर्थ- श्रोणिस्थ अर्थात् कमरमेंस्थित पेशीयोंमें एक अतिस्थूल पेशी है। यहत्रिक तथा श्रोन्यस्थिसें लेकर उरूकी हड्डीके ऊर्ध्वांश पर्यंत आयकर समाप्त हुई है, श्रोणिप्रदेशमें औरभी कितनीएक पेशी है। इन्ही पेशी समूहके द्वारा सुख पूर्वक बैठना, जांघकी हडडीका बाहरकी तरफ आकर्षण, तथा पैरोंका उठाना धरना उसी प्रकार और अनेक प्रकारके कार्य निर्वाहित होतेहै।

ऊरूजंघापादाङ्गुलिस्थाभिः सक्थिसंचालनदंडायनगमन प्रभृतीनिकर्माणिसम्पाद्यन्ते।

अर्थ-उरू, जंघा, पैर, तथा पैरकी उंगलीमें रहनेवाली पेशीयोंके द्वारा पैरोंका संचालन, तथा पैरोका सीधा होना और गमन इत्यादि कार्य होते है।

पादयोस्तलतः पृष्ठेग्रीवायामपिताः स्थिताः।
उपर्युपरिभावेन स्वंस्वंकुर्वंतिकर्मच ॥

अर्थ-पैरोंकेतलुए, पीठ, ग्रीवादेशमें पेशीगण ऊपरऊपर भावकरके स्थितहोकर अपनेअपने कर्मोंकोकरतीहै.

पेश्यःकुर्वंतिकर्माणिनिखिलानिशरीरिणाम्।गोपयन्तिचकुल्या निजनयन्तिसुखानिच। नाभविष्यन्नथैताश्चेद्गतिस्पन्दविवर्जिताः। काष्ठीभूतामृतप्रायाअभविष्यन्हिदेहिनः। भारवाहोगतिः स्पन्दोऽव्यायामः श्वसनंस्थितिः। आस्योपगृहणंहास्यंगीतिर्नर्तन वादने। विहाराहारनिर्हाराश्चुंबनंशयनंरतिः। गर्भोत्पत्तिस्ततुसव नंसर्वंपेशीकृतंमतम्। अथकिंबहुनोक्तेनप्राणिनांप्राणधारणे। कारणानिप्रधानानिपेश्यएवेतिनिश्चितम् ॥

अर्थ-पेशीसमूह मनुष्योंके सर्वकार्यकरेहैं, ये हड्डियोंके समूहकीरक्षा औरअनेकप्रकारके सुखोत्पादन करेहै, यदिकदाचित् पेशीनहोवेतो जीवगण हलनाचलना, आदि शक्तिशून्य लकडीकेसमान और मृतप्रायहोजावे वोझे-

कोलेचलना, गमन, स्पन्दन, दंडकसरत, श्वासक्रिया, ठहरना, वेठना, आलिंगन, हास्य, नृत्य, गीत, वाजावजाना, विहार, आहार, मलमूत्रोत्सर्ग, चुम्बन, शयन, शृंगार, गर्भोत्पत्ति और संतानका प्रसव इत्यादि समुदायक्रिया पेशियोंके द्वाराहोतीहैं। अथवा बहुतकहनेसे क्याहै; प्राणियोंके प्राणधारणमें पेशीही प्रधान कारणहै यह निश्चितहै ।

मूढगर्भ निकालनेकेलिये गर्भकी स्थिति कहतेहै.

अभुग्नोभिमुखःशेतेगर्भोगर्भाशयेस्त्रियः ।
सयोनिंशिरसायातिस्वभावात्प्रसवंप्रति ॥

अर्थ–गर्भ गर्भाशयमें सन्मुख तथा अंगोंको संकुचितकरके रहताहै, वह पूर्व कर्मके आक्षेपकरके प्रसवकेसमय योनिकेप्रति मस्तककी तरफसे आताहै॥

अवशल्यतंत्रकी उत्कृष्टतादिखाते है.

त्वक्पर्यंतस्यदेहस्ययोयमङ्गविनिश्चयः । शल्यज्ञानादृते नैववर्ण्यतेङ्गेषुकेषुचित्। तस्मान्निःसंशयज्ञानंहर्ताशल्य स्यवाञ्छति। धावयित्वामृतंसम्यक्द्रष्टव्योङ्गविनिश्चयः ॥

अर्थ–त्वचा; हड्डीआदिपर्यंत देहके अंगोंका निश्चय (अर्थात् इसमें इतनी हड्डी, नस, नाडी, कंडरा, पेशी, धमनी, त्वचा, आदिहै, इस्का यथार्थ विश्वास) विना शल्यतंत्रकेजाने किसी अंगका नहींहोवे। अतएव शरीरमें गुप्तशल्य (कांटा खोवराआदि) के काढनेवाले वैद्यको निःसंदेह सर्वअंगोंका ज्ञान होना अति आवश्यकहै। इसीसे शल्यचिकित्सक (जर्राह) को उचितहै कि, मुर्देके देहको अच्छीरीतिसे पानीसे धोयकर चीरे और चीरकर एकएक अंगके पृथक् २ पुर्जे करके देखे ।

मृतदेहके देखनेकी विधि–

तस्मात्समस्तगात्रमविषोपहतमदीर्घव्याधिपीडितमवर्ष शतकं निष्कृष्टान्त्रंपुरुषमवहनयापगायांनिबद्धंपंजरस्थं मुंजवल्कलकुशादीनामन्यतमेनावेष्टिताङ्गप्रत्यङ्गमप्रकाशेदेशे

कोथयेत्। सम्यक्प्रकुथितंचोधृत्यततोदेहंसप्तरात्रादुशीरवाल्वेणुवल्कजमूर्वानामन्यतमेनशनैःशनैरवघर्षयन्त्वगादीन्सर्वानेवबाह्याभ्यन्तराङ्गप्रत्यङ्गविशेषान्यथोक्तान्लक्षयेच्चक्षुषेति

अर्थ—अब शास्त्रदृष्टको प्रत्यक्ष कैसै देखे इसवास्ते कहतेहै कि, किसी तत्काल मरेहुए मुर्देको लेवे, जिस्का कोई, अंगखंडित नहुआ हो; और जिसका देहलेवे वो मनुष्य विषादिक सैं नमरा हो क्योकि विषखानेसैं या विषैलजानवरके काठनेसैं अथवा विषके स्पर्शसैं जो मनुष्य मरताहै उसकी त्वचा आदि विखरजातेहै; उसीप्रकार जो बहुतदिन बीमाररहाहो उसकाभी-देह नलेवे, क्योकि जो बहुतदिन वीमाररहताहै उसकी त्वचाआदि सूखजा-तीहै, उसीप्रकार जिस्की सौ १०० वर्षकी अवस्था नहो, क्योकि सौवर्षकी अवस्थाहोनेसैं मनुष्य अत्यंत वुड्ढा होजाताहै अत्यंत वुढापेसैंभी देहके अंग और प्रत्यंग यथार्थनहीरहतेहै; इसीसै उक्तलक्षणोंकरके हीनमुर्देकी देहको लेकर उसकेभीतरसैं आंतोको निकालडाले; पीछे मूंज, यावक्क अथवा-कुशाआदिसैं अंगप्रत्यंगोको लपेट किसीपेटी अथवा पिंजडेमें बंदकर, जिस्मे कोइमनुष्य आतेजाते नहो और जिसजगे उजेलानहोवे ऐसीनदीमें उसपेटीको डालकर किसीरस्सी सैं बांधदेवे किजिस्से वो देहसडजावे; इसप्रकार जब-अच्छीरीतिसै सडजावे तब उसदेहको निकाल सातरात्रिपर्यंत उसीर, नेत्र-वाला, वास, औरमूर्वा, इनमेंसैं किसीएकसै घिसे और धीरेधीरे शस्त्रादि-कसैं चीर त्वचा, मांस, पेशी, नस, नाडी, आदिको पृथक् पृथक् करता जाय औरदेखताजावे इसप्रकार बाहर और भीतरके प्रत्येकअंग और प्रत्यंगोको पुर्जेपुर्जे करके शास्त्रोक्तोंको अपनेनेत्रोंसे प्रत्यक्षदेखे; (इसजगे मूंजआदिसैं जो लपेटनालिखाहै सो इसवास्तेहैकि खुलेहुए देहको जलमें रखनेसै मछली आदि जीव खाजावे तो फिर संपूर्ण अवयव नहीरहते और पेटीमें रखनेसैं यह प्रयोजनहै कि, विनापेटीके रखनेसैं कदाचित् जलके वेगसैं छिन्नभिन्न नहो-जावे, और गृध्रादिक भक्षणके भयसैं अंधेरेमें रखना कहाहै)

प्रत्यक्षदेखनेकाफल

प्रत्यक्षतोहियद्दृष्टंशास्त्रदृष्टंचयद्भवेत् समासतस्तदुभयं भूयोज्ञानविवर्धनम्

अर्थ—जो नेत्रादिद्वारा प्रत्यक्षदेखा और शास्त्र दृष्ट अर्थात् शास्त्रपढकर अनुभवकरागया इनदोनोको प्राप्तहोंनेसे अंगोंके ज्ञानका निश्चय होताहै।

देहहीचक्षुइंद्रीकरकेग्राह्यहैक्षेत्रज्ञपुरुषनहींहैइसवातकोकहतेहैं

नशक्यश्चक्षुषाग्राह्योदेहेसूक्ष्मतमोविभुः
दृश्यतेज्ञानचक्षुर्भिस्तपश्चक्षुर्भिरेववा

अर्थ—देहमें आत्मा अंत्यतसूक्ष्महै, इसीसे नेत्रद्वारा नहींदीसे; वो ज्ञानचक्षु अर्थात् ज्ञानी पुरुषोंको और तपश्चक्षु अर्थात् तपस्वियोको ज्ञान और तपके प्रभावसे दीसेहै ।

शास्त्रऔरप्रत्यक्षदेखनेकाफल.

शरीरेचैवशास्त्रेचदृष्टार्थःस्याद्विशारदः
दृष्टश्रुताभ्यांसंदेहमपोह्यारभतेक्रियाम्

सौश्रुतशारीरेपंचमोऽध्यायः

अर्थ—शरीर औरशास्त्र इन्होंमें सबैअर्थदेखनेसे मनुष्यकुशल अर्थात् चतुर होताहै इसीसें दृष्ट औरश्रुत दोनोप्रकारसे संदेह निवृत्तिकरके छेदन-भेदन आदि क्रियाकरनीचाहिये । इसलिखनेसै यहप्रयोजनहैकि, प्रथमतो शारीरकेग्रंथ गुरुमुखसै पढे पश्चात् गुरुके आगे मुर्देको चीर२के शास्त्रकेलेखानुसार मिलानकरे औरजो हड्डी, पेशीआदि समझमें नआवे उसको उसीसमय गुरुसैपूछकर संदेह निवृत्तकरलेवे; इसप्रकार मनुष्य शल्यशास्त्रकी क्रियाओंमें कुशलहोताहै । चीरनेफारनेका विशेष विस्तार शारीरकी समाप्तिके पश्चात् कहेगे ।

इति श्री आयुर्वेदोद्धारे बृहन्निघंटुरत्नाकरेनवमतरङ्गः ।

षष्ठोऽध्यायः

शरीरसख्या व्याकरणाध्यायमें मांसशिरा आदिका वर्णनहै, और मर्म मांस शिराआदिके आश्रयहै, इसीसें मर्मकहेना चाहिये सो मर्मोंकोकहतेहै ।

अथातःप्रत्येकमर्मनिर्देशंशारीरंव्याख्यास्यामः।

अर्थ—मांस, शिरा, इत्यादिकोंके वर्णनके नंतर मांसादिमर्म कथनरूप शारीराध्यायको कहतेहै.

मर्मोंकीसंख्या.

सप्तोत्तरंमर्मशतं । तानिमर्माणिपंचात्मकानिभवंति । तद्यथा। मांसमर्माणिशिरामर्माणि स्नायुमर्माणिअस्थिमर्माणि सन्धिमर्माणिचेति ।

अर्थ—मर्म १०७ एकसैंसातहैं, वो पांच प्रकारके होते हैं; उनकोंकहतेहै. मांसमर्म, शिरामर्म, स्नायुमर्म, अस्थिमर्म, और संधिमर्म, ए पांच प्रकारहै ।

मांसादिभेदकरके मर्मोंकी संख्या.

तत्रैकादशमांसमर्माणि। एकचत्वारिंशत्शिरामर्माणि। सप्तविंशतिस्नायुमर्माणि। अष्टावस्थिमर्माणि। विंशतिः संधिमर्माणि।

अर्थ—मांसमर्म ११, शिरामर्म ४१, स्नायुमर्म २७, अस्थिमर्म ८, संधिमर्म २०, सबमिलनेसैं १०७ होतेहैं.

मांसमर्मोंको कहतेहै

चत्वारितलहृदयानितावंत्येवेन्द्रवस्तीनिगुदमेकंद्वेस्तनरोहिते।

अर्थ—मांसमर्म ११ है, उनमें तल हृदयमें ४ तथा इन्द्रवस्तिसंज्ञक ४ गुद १ और स्तनरोहितसंज्ञक २ इसप्रकारजानने। वाग्भट मांसमर्म १० कहताहै ।

शिरामर्म

चतस्रोधमन्याअष्टौमातृकाःचत्वारिशृंगाटकानिद्वेअपागेएकास्थपणीफणौद्वेस्तनमूलेद्वावपस्तंबौद्वावपलापौएकंहृदयंएकानाभीद्वौपार्श्वसंधीचत्वारिलोहिताक्षाणिचतस्रऊर्व्यःएवमेकचत्वारिंशत् ।

अर्थ—शिरामर्म ४१ कहेहैं, तिनमें ग्रीवासंबंधी धमनी ४ मातृका ८ शृंगाटकमें ४, अपांग २, स्थपणीं १, फण २, स्तनमूलमें २, अपस्तंभ २, अपलाप २, हृदय१, नाभी१, पार्श्वसंधी २, बृहती २, लोहिताक्ष, ४, उर्वी४, ऐसेंइकतालीसहोतेहैं; वाग्भटमें ३७सैंतीसशिरामर्मकहेहैं।

स्नायुमर्म

चतस्रआण्येद्वौविटपौद्वौकक्षधरौचत्वारःकूर्चाश्चत्वारिकूर्चशिरांसिएकोवस्तिश्चत्वारिक्षिप्राणिद्वावंसौद्वेविधुरेद्वावुत्क्षेपौएवंसप्तविंशतिः।

अर्थ—स्नायुमर्म२७, कहेहैं, उनमे आणिसंज्ञक ४, विटप२, कक्षधर २, कूर्च४, कूर्चशिर४, वस्ति१, क्षिप्रसंज्ञक ४, अंश २ विधुर २उत्क्षेपसंज्ञक २ इसप्रकार स्नायुमर्म २७, कहेहैं. वाग्भट स्नायुमर्म २३ कहतेहैं।

अस्थिमर्म

द्वेकटीतरुणेद्वौनितंबौद्वेअंशफलकेद्वौशंखौएवमष्टौ।

अर्थ—अस्थिमर्म ८ है; तिनमे कटितरुण संज्ञक २ नितंब २अंसफलक२ और शंख २ ऐसे ८ है।

संधिमर्म

द्वेजानुनीद्वौकूर्परौपंचसीमंताः एकोधिपतिरितिद्वौगुल्फौद्वौमणिबंधौद्वेककुंदरेद्वावावर्त्तौद्वेकृकाटिकेएवंविंशतिः।

अर्थ—संधिमर्म २० है, तिनमें जानुसंबंधी २ कूर्पर (कलाई) संबंधी २ सीमंत संज्ञक ५ अधिपति संज्ञक १ गुल्फ संबंधी २ मणिबंध (पहुंचा) संबंधी २ ककुंदरस २ आवर्त्त संज्ञक २ कृकाटिका संज्ञक २ इस प्रमाण जानने-वाँग्भट ९ धमनीमर्म पृथक् कहकर १०७ मर्मोंकी पूर्ण संख्या करीहै। अ-र्थात् जैसै सुश्रुत मांस, शिरा, स्नायु, हड्डी, और संधि ए पांच प्रकारके मर्म कहता है उसी प्रकार वाग्भट मांस, हड्डी, स्नायु, धमनी, शिरा, और सं-धि इनके मिलाप होनेवाले स्थानोंको ६ प्रकारके मर्म कहताहै।

मर्मोंकिविशेषज्ञानहोनेकेवास्तेप्रदेशकहतेहै

तेषामेकादशैकास्मिन्सक्थीनिभवंति।

अर्थ—एकसौं सात मर्मोंमेंसें एक पैरमें ११ मर्महैं; इसी प्रकार दूसरा पैर और दोनो हाथोंके मिलानेसैं ४४ मर्म होते हैं; पैरके मर्मोंके नाम । क्षिप्र १ तलहृदय १ कूर्च १ कूर्चशिरस१ गुल्फ १ इन्द्रबस्ति १ जानु १ औरउर्वी १ लोहिताक्ष १ विटप १ इसजगे तल और हृदय पृथक् २ गणना करनेसै ११ संख्या होतीहै । इनक्षिप्रादिकोंके लक्षण स्वयं आचार्य आगे कहेगा इसीसैंयहां व्याख्या नहीकरी । उदर और उरके मिलानेसैं वारह १२ मर्म, और पीठमें १४ ग्रीवासैंलेकर ऊपरके भागमें ३७ मर्म । उदर उरइन्होंके मर्मोंके नाम । गुद १ वस्ति १ नाभि १ हृदय १, स्तनमूल २, स्तनरोहित २, अपलाप २, अपस्तंव २, ऐसे वारहहै । पीठके १४ मर्मोंके नाम । कटितरुण २, ककुंदर २, नितंब २ पार्श्वसंधी २, वृहती २, अंसफलक और अंश २ येचौदहहुए । पैरके ११ मर्मोंके जो नाम कहे है वोही हाथोंके मर्मोंके नाम जानने । परंतु गुल्फ और विटप इनस्थानोंमें मणिवंध और कक्षधर ये पृथक् है । जत्रुके ऊपर ३७ मर्म है, उनके नाम । धमनी ४ मातृका ८, कृकाटिका २, विधुर २, फण २, अपांग २, आवर्त्त २, उत्क्षेप २, शंख २, स्थपणी १, सीमंत ५, शृंगाटक ४, अधिपति १, इस प्रकारहै ।

मर्मोंके पांच प्रकार

सद्यःप्राणहराणिकालांतरप्राणहराणि
शल्यघ्नानिवैकल्यकराणिरुजाकराणि ।

अर्थ—मर्म पांच प्रकारके है । किसी मर्ममें चोटलगनेसैं तत्काल (आठ दिनमें) मरे, वो सद्यःप्राणहारक, तथा कोईकालांतर प्राणहारक कहिये महिने या पक्षमे मरताहै, कोई विशल्य कहिये शल्य निकलजानेके पश्चात्मरे तथा कोई वैकल्यकर (जिसमें विकार होनेसैं विकलताहोवे) और एक रुजाकर अर्थात् जिसमे किसीप्रकारका विकार होनेसैं असंत पीडा होवे, सद्यःप्राणहरण करनेवाले मर्म १९ है कालांतर प्राणहारक मर्म ३२ है, विशल्यघ्न ३, वैकल्यकर ४४, और रुजाकर ८ सबमिलकर १०७ हुए ।

सद्यःप्राणहरमर्म

शृङ्गाटकान्यधिपतिःशंखौकण्ठशिरागुदम् ।
हृदयंवस्तिनाभीचहंतिसद्योहराणितु ॥

अर्थ–शृंगाटक ४ अधिपति १ शख २ कठसंबंधी शिरा ८ जिनको मातृका कहते है, गुदा १ हृदय १ वस्ति १ और नाभी १ अैसे १९ मर्म सद्यःप्राणहरहै।

कालांतर प्राणहारक ३३ मर्म है उन्होकेनाम। वक्षस्थल सबधि स्तनमूलमें २ स्तनारोहित २ अपलाप २ अपस्तव २ सीमत ५ तलहृदय ४ क्षिप्र ४ इन्द्रवस्ति ४ कटितरुण २ पार्श्वसबंधी २ बृहती २ नितंव २ अैसे ३३ है।

विशल्य ३ मर्मोंके नाम। उत्क्षेप २ स्थपणी १ अैसे ३ मर्म है

वैकल्यकारक ४४ मर्म उन्होंके नाम। लोहिताक्ष ४ आणी ४ जानु२ उर्वी ४ कूर्च ४ विटप २ कूर्पर २ ककुंदर २ कक्षधर २ विधुर २ कृकाटिका २ अस २ असफलक २ अपाग २ नीलधमनी २ मन्या २ फण २ आवर्त्त २ अैसे ४४ हुए।

रुजाकर ८ मर्म उनके नाम। गुल्फ २ मणिवध २ कूर्चशिरस ४ अैसे ८ है। अव प्राणहरादि मर्मोंके कार्य ओर उसमें युक्ति।

मर्माणिमांसशिरास्नाय्वस्थिसंधिसंनिपाताः।
तेषुस्वभावतएवविशेषेणप्राणास्तिष्ठंति।

अर्थ–मास, शिरा, स्नायु, अस्थि, और संधि इनका सन्निपात कहिये अत्यंत मिल... यमें अग्न्यादिक प्राण स्वभाव करके रहते है उसको मर्म क... यदि विकार होनेसै भ्रम, प्रलाप, पतन, और प्रमेह इत्य...

...ष्ठ। कूर्पर।
...ह्निककुंदरेद्वावाव...
मर्म २० है, तिनमें जानु
अधिपात सज्ञक १ गुल्फ
आवर्त्त सज्ञक २ कृकाटिका कारण
...टओष्क् कहकर १०७ म...
... , स्नायु, हड्डी,
...के भेदका मास, हड्डी,
...को ६ प्रकारक

तत्रसद्यःप्राणहराण्याग्नेयानिकालांतरप्राणहराणिसौम्याग्नेयानिवैकल्यकराणिसौम्यानिरुजाकराणि।
...आग्नेयानि... वाय्वग्न्याक्षिनिवायोर्निकेवास्तेप्रदेशात्... अग्निवायव्यात्... निभवंति

अर्थ–जिस मर्म... ह तत्काल मारे है, कारण यहहैकि, अग्निमें शीघ्र... ण जिस मर्ममें रहते हैं, वह कालातरमें मृत्यु क... (कफ) स्थिर है। इसीसै

विलंबमें प्राणहरण करेहै और वायुरूप प्राण जिस मर्ममें रहते है, वह विशल्यघ्न है, क्योंकि शल्यसैं वायु रुका रहताहै उसशल्यके निकलतेहीं उसमें वायु निकलकर प्राणीको मारे है । तथा जिस मर्ममें कफ वायु दोनो रहतेहै वह वैकल्यकारक, और जिस मर्ममें अग्नि और वायु रहते है वो पीडा करता जानना ।

मर्मभेदके दूसरे कारण

केचिदाहुर्मांसादीनांपंचानामपिसमृद्धानांसमवायात्सद्यःप्राणहराणिएकहीनानामल्पानांवाकलांतरप्राणहराणिद्विहीनानांविशल्यघ्नानित्रिहीनानांवैकल्यकराणिएकस्मिन्नेवरुजाकराणि ।

अर्थ—कोई आचार्य अैसैं कहते हैं कि, मांसादिक पांच पदार्थ जिस एक मर्ममें है वहसद्यः प्राणहारक, और उनमें एक हीन होनेसैं अथवा आघातादि अल्पहोनेसैं कालांतरमें प्राणहरण करेहै । और जिसमें मांसादि दो पदार्थ नहोवे वो मर्म विशल्यघ्न जानना, तथा तीन पदार्थ न्यून होनेसैं वैकल्य कारक, और मांसादिक एकही होय तो वह मर्म रुजाकर जानना, यद्यपि गुद, वस्ति, नाभि, ह्रदय, ये मर्म सद्यः प्राणहारकहैं, इनमें हड्डी प्रगट नहीदीखे परंतु अव्यक्त अस्थिकी शक्तिकरके सद्य, प्राणहर कहे है ।

स्तनमूल, अपलाप, अपस्तंव, सीमंत, कटितरुण, पार्श्वसंधी, बृहती, नितंव इतनेमर्म मांसहीनहै । स्तनरोहित, तल, हृदय, क्षिप्र, इन्द्रवस्ति, इतनेमर्म अस्थिहीनहै । उत्क्षेपमर्म मांस और संधिहीनहै । अणवसंज्ञकमर्म मांस शिरा और स्नायुहीनहै । गुल्फ मणिबंध और कूर्चशिरस, मांस, शिरा, स्नायु, और अस्थिहीनहै । इसीप्रकार कोईमर्म एकहीन, कोईदो, कोईतीन और कोई चारहीनहै, अैसाजानना । इसजगे हीनशब्द उत्पन्नाभावमेंहै, न्यूनाभावमें नहीहै अर्थात् जहांजहां ऐसालिखाहैकि अमुकमर्म मांसहीनहै, तोउसजगे ऐंसा नसमझनाकि उनमर्मोंमें मांसनहींहै ।किंतुउन मर्मोंमें मांसउत्पन्न नहीहो अैसाजानना ।

मर्मोंमेंमांसादिकपांचहैइसविषयमेंप्रत्यक्षप्रमाण

यतश्चैवमस्थिविद्धेष्वपिशोणितदर्शनंभवत्येतत्प्रत्यक्षप्रमाणात्

अर्थ—अस्थिमर्ममें वेधहोनेसें रुधिरनिकालताहै; इसीसे जाननाचाहिये कि सर्वमर्मोंमें सबोंकासंयोगहै ।

शिराकेप्रकार

चतुर्विधास्तुशिराःप्रायेणमर्मसुसन्निविष्टाः
स्नाय्वस्थिसंधिमांसानिसंतर्प्यदेहंपुष्णाति ।

अर्थ—वात, पित्त, कफ, और रुधिरके वहनेवाली नाडी बहुधाकरके मर्मोंमें स्थितहोकर स्नायु, अस्थि, मांस और संधि इनको तृप्तकर देहको पोषणकरेहै ।

एकदेशमर्मोघातकरकेसर्वशरीरकोपीडाअथवाप्राणवियोगकहतेहैं

ततःक्षतेमर्मणिताःप्रवृद्धःसमंततोवायुरभिस्तृणाति । प्रवृद्धमानस्तुसमातरिश्वारुजःसुतीव्राःप्रतनोतिकाये । रुजाभिभूतंतुततःशरीरंप्रलीयतेनश्यतिचास्यसंज्ञा । अतोहिशल्यंविनिहर्तुमिच्छन्मर्माणियत्नेनपरीक्ष्यकर्षेत् ॥

अर्थ—मर्ममें क्षतहोनेसे वायुबाढताहै, और शिराओंमें प्रवेशकरके सर्वशरीरमें व्याप्तहोताहै, तथा पीडाकरेहै उससमय शरीर मुरझायासा होकर नष्टहोताहै । अथवा मरताहै । इसीसे शल्यको यत्नपूर्वक काढनेवालेवैद्यको सर्वमर्मोंका संरक्षणकरके परीक्षापूर्वक यत्नसें शल्यको निकाले ।

मर्मोंमेंशल्यप्रच्छानलगनेसेउसकीक्रियाकाविकल्पकहतेहैं·

तत्रसद्यःप्राणहरमन्तेविद्धंकालांतरेणमारयति । कालांतरमंतेविद्धंविशल्यवद्भवति । विशल्यंप्राणहरंवैकल्यकरंभवति । वैकल्यकरंचकालांतरेक्लेदयतिरुजांचकरोति ।

अर्थ— सद्यःप्राणहरण करनेवाले मर्मके अंतमें वेधहोनेसै कालांतरमें मारेहै, कालांतर मारक मर्मके अंतमें वेधहोनेसै विशल्यके समान होताहै, विशल्य अंतविद्ध होनेसें प्राणनाश अथवा वैकल्यकरे, वैकल्यकर मर्मके अंत-

विद्ध होनेसें आगे कोई दिवसपर्यंत क्लेदकरे और पीडा करेहै, मर्म अतिशय विद्ध होनेसें पूर्ववत् मर्मोंकेसे कार्य करेहै, अर्थात् रुजाकर मर्म अति विद्ध होनेसें वैकल्यकारक होता है, इसीप्रकार और मर्मोंमें भी जानना।

सद्यः प्राणहरादि मर्मोंकेविषयमें कालावधि कहते है.

तत्रसद्यःप्राणहराणिसप्तरात्रान्मारयंति। कालांत रहराणिपक्षान्मासाद्वा। तेष्वपिक्षिप्राणिकदाचि दाशुमारयंति। विशल्यप्राणहराणिचेति।

अर्थ—सद्यःप्राणहारक मर्म सात दिवसमें मारेहैं, और कालांतर प्राणहारक मर्म पंधरा दिनमें अथवा एक महिनेमें मारे है, तिनमें क्षिप्रसंज्ञकमर्म कदाचित् अतिविद्ध होनेसें तत्काल मारे हैं, उसी प्रकार विशल्यादि मर्म मारते है।

क्षिप्रादि मर्मोंके स्थान

तत्रपादस्यांगुष्ठांगुल्योःक्षिप्रमितिमर्मतत्रविद्धस्याक्षे पकेमरणम्, स्नायुमर्मैदमर्धांगुलंकालांतरप्राणहरन्ति।

अर्थ—पैरोंके अंगूठा और उसके समीपकी उंगली इनमें अर्धांगुल जगेमें स्नायुमर्म है, उसीको क्षिप्रमर्म कहतेहै। उसका वेध होनेसें आक्षेप वायुका रोग होकर प्राणी मरे है, यह कलांतरमें प्राणहरण करेहैं।

मांसमर्म

मध्यमांगुलीमनुक्रमेणमध्येपादंतलहृदयंतत्ररुजा भिर्मरणंमांसमर्मैदमर्धांगुलंकालान्तरप्राणहरंच।

अर्थ—पैरकी मध्यमांगुलीके अनुक्रम करके वीचमें तलहृदय नामक मर्म है, उसके विद्धहोनेसें मरण होताहै, यह अर्धांगुल प्रमाण मांसमर्म कालांतरमें प्राणहारक है।

स्नायुमर्म.

क्षिप्रस्योपरिष्टादुभयतःकूर्चस्तत्रपादस्यभ्रमणवे पनेभवतः स्नायुमर्मैदंचतुरंगुलंवैकल्यकरम्।

अर्थ—क्षिप्रसंज्ञक मर्मके ऊपर दोनोतरफ (ऊपरनीचे) कूर्च सज्ञक मर्म है, यह स्नायुमर्म चार अंगुलका वैकल्यकारक है इसके वेध होनेसें पैरकांपते है अथवा पैरफिरे है ।

स्नायुमर्मकहतेहै

गुल्फसंधेरधः उभयतः कूर्चशिरस्तत्ररुजाशोफौ इदमपिस्नायुमर्मएकांगुलंवैकल्यकरम् ।

अर्थ—गुल्फ (टकना) सधीके नीचे दोनोतरफ कूर्चशिरस नामक मर्म है । वो विद्ध होनेसें पीडा और सूजन इत्यादि होतेहै, यह स्नायुमर्म एकांगुलप्रमाण वैकल्य करनेवाला है ।

संधिमर्म

जंघापादयोः संघातेगुल्फस्तत्ररुजास्तद्वयपादखंजतावा । संधिमर्मेदंद्व्यंगुलप्रमाणंवैकल्यकरम् ।

अर्थ—पीडरी और पैर इनकी संधिको गुल्फ कहते है । यह संधीमर्म दो अंगुलका वैकल्पकारक है, इसमें विकार होनेसै अत्यंत पीडा होती है, पैरका रुकूजाना अथवा लगडाहो जाता है ।

मासमर्म.

पार्ष्णिप्रतिजंघामध्येइन्द्रवस्तिस्तत्रशोणितक्षयेमरणंमांसमर्मेदमर्धांगुलंकालांतरप्राणहरम् ।

अर्थ—एडीकेपास तेरह अंगुलपर जंघाके मध्यमें इन्द्रवस्तिक नाम मांसमर्म अर्धअंगुलका है, उसमेंसै रक्तस्राव होनेसें कालांतरमें मरण होय, भोज तथा गयदासके मतसें यह मर्म दो अंगुलका है ।

संधिमर्म

जंघोर्वोःसंघातेजानुसंधिमर्मेदंवैकल्यकरम् ।

अर्थ—पीडरी और जंघा इनकी संधि को घोटू कहते है, यह संधिमर्म वैकल्पकारक दो अंगुल्का है इसमें विकार होनेसे मनुष्य लगडा होताहै ।

स्नायुमर्म

जानुनउभयतऊर्ध्वंत्र्यंगुलादाणितत्रशोफाभिवृद्धि
स्तब्धसक्थिताचस्नायुमर्मेदमर्धांगुलम् ।

अर्थ–घोंटूके दोनो बगल तीन अंगुलपर आणि संज्ञक स्नायुमर्म अर्धांगुल प्रमाण है, उसमें विकार होनेसैं सूजन होवे और जांघोमें स्तब्धता होवे।

शिरामर्म

ऊरूमध्येऊर्व्यस्तत्रशोणितक्षयात्सक्थिशोषः
शिरामर्मेदमर्धांगुलंवैकल्यकरम् ।

अर्थ–जांघोके मध्य देशमें ऊर्वी नामक शिरामर्म अर्धांगुल प्रमाण वैकल्यकारक है उसजगे रुधिरक्षय होनेसैं जांघ सूख जावे ।

शिरामर्म

ऊर्ध्वमधोवंक्षणसंधेरूरुमूलेलोहिताक्षंतत्रलोहितक्षयेन
पक्षाघातःसक्थिसादोवाशिरामर्मेदमर्धांगुलंवैकल्यकरंच

अर्थ–वंक्षणसंधिके ऊपर नीचेके अंगमें ऊरूके मूलमे लोहिताक्ष संज्ञक शिरामर्म अर्धांगुल प्रमाण वैकल्यकारक है, उसमेंसैं रुधिरस्राव होनेसैं पक्षाघात अथवा पैर रहजावे ।

स्नायुमर्म

वंक्षणवृषणयोर्विटपंतत्रषांढ्यमल्पशुक्रता
वास्नायुमर्मेदमेकांगुलंवैकल्यकरंचएवमेता
निएकादशसक्थिमर्माणिव्याख्यातानि ।

अर्थ–वंक्षण और वृषण इनके बंधनरूप स्नायुको विटप संज्ञक मर्म कहते है, इसमें विकार होनेसैं षंढपना अथवा अल्पशुक्रता होय. इसप्रकार एक पैरमें ११ मर्म कहे है, इसीक्रमसैं दूसरे पैरमें और दोनो हाथोके मिलानेसैं ४४ मर्म होते है ।

पेटऔरउरइनकेमर्म

अतऊर्ध्वमुदरोरसोमर्माणिव्याख्यास्यामः तत्रवातवर्चो विरसनंस्थूलांत्रप्रतिवद्धंगुदंनाममर्मतत्रसद्योमरणम् ।

अर्थ—अबउदर और उर इनके मर्मोंको कहते है । तिनमें बडे आंतडोंसे बंधेहुए तथा जिनसें विष्ठा और अपान वायूकी प्रवृत्ति होती है, उसको गुदा कहते है, उसका आघात होनेसे तत्काल मरणहोय यह मांसमर्म चार अंगुल का है ।

मूत्राशयवस्तिमर्म

अल्पमांसशोणिताभ्यंतरतःकट्यांमूत्राशयोवस्तिः तत्रापिसद्योमरणंअश्मरीव्रणादृतेतत्राप्युभयतोभिन्ने नजीवतिएकतोवाभिन्नेमूत्रस्रावोव्रणोवाभविष्यति॥

अर्थ—अल्पमांस तथा अल्परुधिरसे प्रगट और कमर, नाभि, पृष्ठ, मुष्क, गुदा, वंक्षण, शिश्न; इनसबकेबीचमें अधोमुख एकद्वार तथा मूत्रकाआशय ऐसा यहवस्तीसंज्ञकमर्महै । इसमर्ममें पथरीकृत व्रणके विना अन्यविकार होनेसै तत्कालमरणहोय, इसवस्तीकें दोनोतरफ छिद्र पडनेसें तत्कालमरणहोय, एकअंगमें छिद्र पडनेसै उसमेंहोकर मूत्रनिकलनेलगेऐसा व्रणहोय. यहस्नायुमर्म चारअंगुलकाहै ।

नाभिमर्म

पक्वामाशययोर्मध्येशिराप्रभवानाभिस्त ॥
त्रापिसद्योमरणंशिरामर्मैदंचतुरंगुलम्

अर्थ—पक्वाशय और आमाशय इनके मध्यमें शिरासमुदाय से बनीऐसी नाभीहै; इसमर्ममें विकारहोनेसै तत्कालमरणहोय, यहशिरामर्म चारअंगुलकाहैं ।

आमाशयमर्म

स्तनयोर्मध्यमधिष्ठायोरसिआमाशयद्वारंसत्वर

जस्तमसामधिष्ठानंहृदयंतत्रापिसद्यएवमरणंशि
राममर्मेदंकमलमुकुलाकारंअधोमुखंचतुरंगुलंच ।

अर्थ—दोनोस्तनोंके मध्यदेशमें व्याप्तहोकर उरके अंतमें आमाशयका द्वार और सत्वरज और तमोगुणका अधिष्ठान ऐसा हृदयसंज्ञक शिरामर्महै, यहकमलकीकलीके समान तथा अधोमुख चारअंगुलकाहै, यह सद्यमरण-देनेवालाहै ।

स्तनमूलशिरामर्म

स्तनयोरधस्तात्द्व्यंगुलमुभयतस्त
नमूलेतत्रकफपूर्णकोष्टतयाम्रियते ॥

अर्थ—दोनोस्तनोंकेनीचे दोअंगुलपर स्तनमूलसंज्ञक शिरामर्म दोअंगुल-काहै; यह कालांतरमें मारकहै, इसमेंविकारहोनेसैं कफकरके पूर्णकोष्ठहोकरमरेहै ।

रोहितसंज्ञकमांसमर्म

स्तनचुबुकयोरूर्ध्वंस्तनरोहितेतत्रलोहित
पूर्णकोष्टतयाश्वासकासाभ्यांम्रियते ।

अर्थ—स्तनचिबुकके ऊपरदोअंगुलदेशमें अर्धांगुलप्रमाण स्तनरोहितसं-ज्ञक मांसमर्महै, इसमेंचोटलगनेसैं रुधिरसैंकोष्टपरिपूर्णहोकर श्वास, खांसीकेरो-गसैं कोईदिनमेंमरे ।

अपलापशिरामर्म

अंशकूटयोरधस्तात्पार्श्वस्योपरिभागेऽपलापस्तत्ररक्तेनपूर्ण
भावगतेनमरणम्शिरामर्मणीअर्धांगुलेकालांतरेणप्राणहरे ।

अर्थ—अंशकूट (कंधे) केनीचे और पसवाडोके ऊपरकेभागमें अपला-पसंज्ञक शिरामर्म अर्धांगुलप्रमाण कालांतरमें प्राणहरणकर्त्ताहै, उसमें विकार होनेसै अत्यंतरुधिरसंचितहोनेसै रोगीमरे ।

अपस्तंबशिरामर्म.

उभयतोरसोनाड्यौवातवहेअपस्तंबौतत्रवा
तपूर्णकोष्ठतयाश्वासकासाभ्यांचम्रियते ।

अर्थ—उदरके दोनोतरफ वातवाहकनाडीहै, उनकोअपस्तंबमर्मकहतेहै। उसनाडीमें विकारहोनेसे वायुकरकेकोष्टपरिपूर्णहो श्वास खांसीके रोगसें कोई- दिनमें रोगी मरे, यहशिरामर्म अर्धअंगुलप्रमाण कालांतरमें प्राणहरणकर्ताहै, इसप्रकार उदरऔर उरमें बारह १२ मर्मकहेहै।

अबपीठकेमर्मकहतेहैं.

अतऊर्ध्वंपृष्ठमर्माणिव्याख्यास्यामः तत्रपृष्ठवंश
मुभयतः प्रतिश्रोणीकांडमस्थीनिकटितरुणे
तत्रशोणितक्षयात्पांडुविवर्णोहीनश्चम्रियते।

अर्थ—अब पृष्ठमर्मोंको कहतेहै। तहांपीठके बांसके दोनोतरफ आगे- कमरकीजो हड्डीहै उसको कटितरुणसंज्ञकअस्थिमर्म कहतेहै, उसमेंआघात होकर रक्तस्राव होनेसें मनुष्य विवर्ण तथा हीनवर्ण होकर कोईदिनोंमेंमरे।

ककुन्दरसन्धिमर्म।

पार्श्वजघनबाहिर्भागेपृष्ठवंशमुभयतः ककुंद
रेतत्रस्पर्शाज्ञानमधः कायचेष्टोपघातश्च ।

अर्थ—पार्श्व और जघनके बाहरकेभागमें तथापृष्ठवंशकेदोनोतरफ कुकुंदर- कहतेहैं, इसमें विकारहोनेसे वहस्थल बधिरहोजावे औरकमरकेपास नीचेका अंग निर्जीव होजावे।

नितंबअस्थिमर्म।

श्रोणिकांडयोरुपर्याशयाच्छादकौ पार्श्वान्तरप्रति
बद्धानितम्बौतत्राधः कायशोषोदौर्बल्याच्चमरणम् ।

अर्थ—कटितरुण अस्थिमर्म जो पूर्व कहआएहै उसकेऊपर आमाशयका आच्छादक तथा पार्श्वसंधीसे बंधा ऐसा नितंबसंज्ञक अस्थिमर्महै, उसमेंविकार होनेसें नीचेकेआधे अङ्गकाशोषहो निर्बलपनेसे प्राणीमरेहै।

पार्श्वसंधिशिराबंधनमर्म

जघनमध्यपार्श्वयोस्तिर्यगूर्ध्वंचजघनात्पा श्वसंधिस्तत्रलोहितपूर्णकोष्ठतयाम्रियते ।

अर्थ—जघनकेमध्य अंगसैं तिरछा तथा ऊपरके दोनोपार्श्वोमें शिराओंका बंधनहै । उसको पार्श्वसंधिकहतेहैं उसमें विकारहोनेसैं रक्तपूर्णकोष्ठहोकर थोडे दिनमें मरेहै; इसकाप्रमाण अर्धाङ्गुलहै ।

वृहतीसंज्ञकशिरामर्म

स्तनमूलाद्युभयतः पृष्ठवंशस्यबृहतीतत्रशोणितातिप्रवृत्तिनिमित्तैरुपद्रवैर्म्रियते शिरामर्मणोअर्धांगुले ।

अर्थ—स्तनमूलमर्मके अनुमानकरके पृष्ठवंशके दोनोतरफके अंगमें वृहतीसंज्ञक शिरामर्म अर्धांगुलप्रमाणहै; उसमेंसैं रुधिरकीप्रवृत्तिहोकर मनुष्य मरताहै ।

अंशफलकमर्म

पृष्ठोपरिपृष्ठवंशमुभयतस्त्रिकसंधावंशफलके ।

अर्थ—पीठकेऊपर दोनोतरफ तथाजिसजगे मन्यानाडी औरकंधेन्का संयोगहुआ उसस्थलकी संधीको त्रिककहतेहै, उसकेसमीप अंशफलकमर्म अर्धांगुलप्रमाण वैकल्यकारकहै ।

स्नायुबंधनअंशमर्म

वाहुमूर्ध्वग्रीवामध्येंशपीठस्कंधबंधनेअंशेतत्रस्तब्ध वाहुतास्नायुमर्मणिअर्धांगुलेवैकल्यकरे ।

अर्थ—बाहुकाऊपरलाभाग और मन्यानाडी इनकेमध्यमें अंशफलकास-हवर्त्तमान भुजशिरसैंबंधीहुई स्नायुवंधनहै, उसको अंशकहतेहै, यहस्नायुमर्म अर्धांगुलप्रमाण वैकल्यकरताहै ।

जत्रुमूलकेऊपरकेमर्मकहतेहै.

तत्रकण्ठनाड्यामुभयतश्चतस्रोधमन्योद्वेनीले

द्वे मन्येव्यत्यासेनतत्रमूकतास्वरवैकृतमरसग्रा
हिता चशिराममर्मणिचतुरंगुलेवैकल्यकरे ।

अर्थ–कंठनाडीके दोनोतरफ चारधमनीहै । उनकेनाममन्या, तथानीला, उनमेंसे एकएक तरफ एकमन्या और नीलाहै । येशिराममर्म चारअंगुलप्रमाणहै इनमेंविकारहोनेसैं गूंगापना, स्वरभेद, इत्यादिविकार होतेहै ।

-मातृकाशिराममर्म

ग्रीवामुभयतश्चतस्रश्चतस्रःशिरामातृकास्तत्रसद्योमरणम्

अर्थ–नाडकेदोनोतरफ चारचारशिराहै, उनआठोंको मात्रिकाकहतेहै, येशिराममर्म चारअङ्गुलप्रमाण सद्यःप्राणहारक जानने ।

कृकाटिकसंधिमर्म

शिरोग्रीवयोःसंधानेकृकाटिके । त
त्रचलमूर्धतासंधिमर्मणिअर्धांगुले ।

अर्थ–मस्तक और नाडइनकेसयोगमें कृकाटिकसंज्ञक संधिमर्म अर्धांगुलप्रमाण है, इसमें विकारहोनेसै मस्तककांपे, यहमर्मपीठके और मन्यानाडीकेंजोडमेंहै ।

विधुरसंज्ञकस्नायुमर्म

कर्णपृष्ठयोरधःसंश्रितेविधुरेतत्रबाधिर्यंस्नायु
मर्मणीकिंचिन्निम्नाकारेवैकल्यकारिणीच ।

अर्थ–कानोंकेपिछाडी किंचित्नीचे विधुरसंज्ञक स्नायुमर्महै इसमेंविकारहोनेसै मनुष्यबहराहोताहै ।

फणसंज्ञकशिराममर्म

घ्राणमार्गमुभयतःस्रोतोमार्गप्र
तिबद्धेअभ्यन्तरतःफणेतत्रगंधाज्ञानं ।

अर्थ—नासिकाके भीतर दोनो मार्गके दोनो तरफ बंधा फणसंज्ञक शिरामर्म अर्धांगुल प्रमाण वैकल्यकरी है, इसमें विकार होनेसैं गंधकाज्ञान नही होवे।

अपाङ्गसंज्ञकशिरामर्म.

भ्रूपुच्छांतयोरधोक्ष्णोर्वात्यतोपाङ्गौतत्रान्ध्यंदृष्ट्युप घातोवाशिरामर्मणीअर्धांगुलेवैकल्याकारिणीच

अर्थ—भौहके अंतमें नीचे नेत्रोंके बाहरकी तरफ अपांग संज्ञक शिरामर्म अर्धांगुल प्रमाण वैकल्य करहै; उसमें विकार होनेसैं अंधा अथवा नेत्रविकारी होताहै।

आवर्त्तसंज्ञकसंधिमर्म

भ्रुवोरुपरिनिम्नयोरावर्त्तौतत्राप्यान्ध्यंदृष्ट्युपघातोवा।

अर्थ—भौहके ऊपरले अंगमे किंचित् गढेदार प्रदेश है; उसमें आवर्त्त संज्ञक संधिमर्म अर्धांगुल प्रमाण वैवल्यकारीहै; उसमें चोटलगनेसैं अंधा वा दृष्टीका उपघात होवे।

शंखनामकअस्थिमर्म.

भ्रुवोरंतरोपरिकर्णललाटयोर्मध्येशंखौ तत्रसद्योमरणंअस्थिमर्मणीअर्धांगुले।

अर्थ—भोहोंके ऊपर कान और ललाट इनमें शंखनामक अस्थिमर्म अर्धांगुल प्रमाण है उसमें विकार होनेसैं तत्काल मरे।

उत्क्षेपसंज्ञकमर्म.

शंखयोरुपरिकेशान्तेउत्क्षेपौतत्रसशल्योजीवेत्।

अर्थ—कनपटीके ऊपर केशपर्यंय उत्क्षेपसंज्ञकमर्म है; उसमें जबतक शल्यरहै तबतकबचे और शल्यनिकालतेही मरजावे।

स्थपणीशिरामर्म

भ्रुवोर्मध्येस्थपणीतत्रोत्क्षेपवत्।

अर्थ— दोनोभोहोंकेमध्यमें स्थपणीसंज्ञक शिरामर्म है, इसमेंभी जबतक शल्यरहे तबतक जीवे शल्यनिकलतेहीमरे ।

सीमंतसंधिमर्म

पंचसन्धयःशिरसिविभक्ताःसीमन्ताः ।

अर्थ— मस्तकमें वर्तनोंकी संधिके सदृश पृथक् २ पांच संधिहै, उनको सीमंतकहतेहैं. एमर्म चारअंगुलप्रमाण कालांतरमें प्राणहरणकरनेवाले जानने।

शृङ्गाटकनामकशिरासंयोगमर्म

घ्राणश्रोत्राक्षिजिव्हासंतर्पणीनांशिराणांमध्यशिरःसन्निपातः शृङ्गाटकानितानिचत्वारिमर्माणितत्रापिसद्योमरणम् ।

अर्थ— नाशिका, कान, नेत्र, जिव्हा, इनचारोइन्द्रियोंको तृप्तकरनेवाली जो शिरा उसकेमुखका संयोगमस्तकमे जिसस्थलमें हुआहै, उसजगे शृंगाटकसंज्ञक चार शिरामर्म सद्यःप्राणनाशकहै ।

अधिपतिशिरामर्म

मस्तकाभ्यन्तरतोपरिष्टात्शिरासंधिसन्निपातोरोमावर्त्तोधिपतिः।

अर्थ—मस्तकके मध्य ऊपरले भागमें जिसजगे सर्वशिरा तथा संधी इनका संयोग हुआहै उसस्थलमें अधिपति संज्ञक शिरामर्म अर्धांगुलप्रमाणहै. उसके बाहरकी तरफ केशोंकी भोंरीहै ये मर्म सद्य प्राणहारक जानना ।

मर्मोंकासूत्रोक्तप्रमाणकहतेहैं

उर्व्यःशिरांसिविटपेचसकक्षपार्श्वेएकैकमंगुलमितास्तनपूर्वमूलम्, विद्ध्यंगुलद्वयमितंमणिबंधगुल्फंत्रीण्येवजानुमपरंचसकूर्पराभ्यां । हृद्बस्तिकूर्चगुदनाभिवदंतिमूर्ध्निचत्वारिपंचगलकेदशयानिचद्वे, तानिस्वपाणितलकुंचितसंमितानिशेषाण्यवेहिपरिविस्तरतोंगुलार्धम् ।

अर्थ—उर्वी, शिरस, विटप, कक्षधर, एचारप्रकारके मर्म विस्तारमे

एकएकअंगुल प्रमाणहै और मणिबंध, गुल्फ, स्तनमूल, एमर्म दोदोअंगुलके है. जानु, कूर्पर, ए तीनतीनअंगुलकेहै तथाहृदय, वस्ति, कूर्च, गुद, नाभि सीमंत, शृंगाटक, मातृका, मन्या और नीलधमनी एसब मर्म चारचार अंगुलकेहै और बाकीके मर्महै, वोसब अर्धांगुल प्रमाण जानने।

मर्मोंकाप्रयोजनकहतेहै

एतत्प्रमाणमभिवीक्ष्यवदन्तितज्ज्ञाःशस्त्रेणकर्मक रणंपरिहृत्यकार्यम्। पार्श्वाभिघातेतमपीहानिहं तिमर्मतस्माच्चमर्मसदनंपरिवर्जनीयम्

अर्थ—पूर्वोक्त मर्मोंका प्रमाण देखकर मर्मस्थानको छोड वैद्योंको शस्त्रक्रिया (छेदनभेदनआदि) करनी चाहिये। क्योंकि मर्मोंमें शस्त्रलगनेसैं मरजावे, और हाथ तथा पैर इनका छेदनहोनेसै मनुष्य बचेहै। परंतु तदवयवभूत मर्मका छेद होनेसैं मरताहै।

हाथपैरटूटनेसैंवचजावेऔरमर्मभेदकर्केमरेहैयहकहतेहैं.

छिन्नेषुपाणिचरणेषुशिरानराणां, संकोचमापुरसृ गल्पमतोनिरेति। प्राप्यामितव्यसनमुग्रमतोमनु ष्यः संछिन्नशाखतनुवन्निधनंनयांति। क्षिप्रेषुतत्त्व सतलेषुहतेषुरक्तं गच्छत्यतीवपवनश्चरुजंकरोति। एवंविनाशमुपयांतिहितत्रविद्धा * वृक्षाइवायुध निपातवशांह्यनीशाः॥

अर्थ—मनुष्योंके हाथपैर टूटनेसैं उसजगे की शिराओंके मुख सुकडकर रुधिर बहुतनहीं निकले, केवल अत्यंत पीडा होती है, परंतु मरे नहींहै। और हाथपैर टूटते समय क्षिप्रमर्म अथवा तलहृदय इनमें शस्त्रलगनेसैं रुधिर अत्यंत निकल कर उसजगे वायु कुपितहोकर अत्यंत पीडाकरेहै, उससैं मनुष्य

* पाठांतरम्—किंजल्कपत्रमथनादिवपङ्कजानीति

मरजाताहै । इसपे दृष्टांतहै किजैसे वृक्ष कुठार आदिकरके शाखासंधिके विषे खंडितहोनेसे पत्तेआदि सूखकर मरताहै ।

मर्मकौनसेकार्यकेउपयोगीहोतेहैंसोकहतेहैं.

मर्माणिशल्यविषयार्धमुदाहरन्ति यस्माच्चमर्मसुहृतानभवन्तिसद्यः। जीवन्तितत्रयदिवैद्यगुणेनकेचित्तेप्राप्नुवंतिविकलत्वमसंशयंहि

अर्थ— मर्मोंको शल्य (शस्त्रकंटक) विषय कहाहै, ऐसैं कोई आचारी कहते है तथा शल्यकंटकादि करके शरीर और मन इनको पीडा देना या मारना इनमें मरणकारक धर्म तो शल्यविषयक आघातकरके होताहै; परंतु तत्काल मरता नहीहै, सातदिनके अंतरसे मरे है; इसीसे मर्मोंको शल्यविषयों का अर्थ है ऐसा कहतेहै; और मर्मस्थानमें शल्पलगनेसे भी वचजाताहै, ऐसा देखागयाहै एसे कहनेसैं कहतेहैकि वह वैद्यकी कुशलतासे कदाचित् कोई बचनेसें उसीउसी अंगकी विकलता होती है, वह अगकार्योपयोगी नहीं रहै ।

मर्महतअनेकउपद्रवोंकरके मरताहै सो कहतेहै.

तंभिन्नजर्जरितकोष्ठशिरःकपालाजीवंतिशस्त्रविहतेश्वशरीरदेशैः। छिन्नश्वसक्थिभुजपादकरैरशेषै येषांनमर्मसुकृताविषयःप्रहाराः।

अर्थ—शस्त्रसेहत शरीरमें मर्मकामदेश, उसविकार करके जिन्होंके कोष्ठ, मस्तक, कपाल, ये जर्जरहुए वो वचे नहीहैं । और मर्मके विना इतर अवयव जे हस्तपादादिक इनमें विघातहोनेसे जर्जरित होकर बचतेहै ।

मर्माभिघातकरकेमनुष्यमरणमेंकारणकहतेहैं.

सोममारुततेजांसिरजःसत्वतमांसिच । मर्मसुप्रायशःपुंसां भूतात्माचावतिष्ठते।मर्मस्वभिहतास्तस्मान्नजीवंतिशरीरिणः।

अर्थ—पाचप्रकारका कफ, पांचप्रकारका वायु, पांचप्रकारके पित्त, भूतात्मा, रज, सत्व और तम, ये सर्व प्राय करके मर्ममें रहतेहै । इसीसैंमर्मका छेद तथाभेद होनेसे मनुष्य मरताहै

सद्यःप्राणहरादिमर्मपंचकके लक्षण

इन्द्रियार्थेष्वसंप्राप्तिर्मनोबुद्धिविपर्ययः। रुजश्चविविधास्ती व्राभवन्त्याशुहतेहते। हतेकालान्तरघ्नेतुध्रुवोधातुक्षयोनृणाम्। अतोधातुक्षयाज्जन्तुर्वेदनाभिश्चनश्यति। हतेवैकल्यजननेकेवलंवैद्यनैर्गुणात्। शरीरंक्रियायुक्तंविकलत्वमवाप्नुयात्। विशल्यघ्नेतुविज्ञेयंपूर्वोक्तंयत्तुकारणम्।

अर्थ—सद्यः प्राणहरणकर्त्ता मर्ममें किसीप्रकारकी चोट लगनेसैं सर्वइन्द्री विकलहो स्वस्वविषयोंके ग्रहणकरनेकी शक्ति नहींरहे, तथा मन बुद्धि इनका विपरीत होना, अनेक प्रकारकी उग्रपीडा होतीहै। और कालांतर प्राणहरणकर्त्ता मर्मोंके अभिहत होनेसैं शरीरकी धातुनष्टहोतीहै, और मनुष्यके वेदना होनेसैं मरताहै। और वैकल्यकारक मर्मके आघातहोनेसैं वैद्यकी कुशलतासैं शरीर अच्छा होजावे, परंतु विकलहोताहै। और विशल्य मर्ममें जो शल्यहै वो जबतक उसमें रहेहै तबतकबचताहै, यह पूर्वोक्त कारणके लक्षण करके जानने।

रुजाकरमर्मोंकोकुवैद्यबिगाडेहै.

रुजाकराणिमर्माणिक्षतानिविविधारुजः।
कुर्वन्त्येतानिवैकल्यंकुवैद्यवशगायदि।

अर्थ—रुजाकर मर्मोंको विकृति होनेसैं नानाप्रकारकी पीडा होतीहै, और उत्तम वैद्यके न मिलनेसैं अर्थात् दुष्टवैद्यके वशहोनेसैं शरीर और बलको हीनकरेहै।

मर्मसमीपचोटकरकेमर्मतुल्यपीडाकहतेहै.

छेदभेदाभिघातेभ्योदहनाद्दारणादपि।
उपघातंविजानीयान्मर्मणांतुल्यलक्षणम्।

अर्थ—मर्मसमीपके देशोंमें छेदन, भेदन, आघात, अग्निसे फुकजाना, अथवा विदीर्णहोनेसैं अथवा उपघात होनेसैं, उनके लक्षण पूर्वोक्त मर्मलक्षणोंके सदृश जानने।

मर्माभिघातविषयमेंवैद्यत्नकहतेहै.

मर्माण्यधिष्ठायचयेविकारामूर्च्छन्तिकायेविविधान्नराणाम् ।
प्रायेणतेकृच्छ्रतमाभवंतिनरस्ययत्नेनपिसाध्यमानाः ।

इति सौश्रुतशारीरेषष्ठोऽध्यायः।

अर्थ—मर्मोमें जो विकार होतेहै वे सर्व शरीरमें व्याप्त हो अत्यंत क्लेशदायक होतेहै, अतएव वैद्यको बडे यत्न करके साध्यभी कृच्छ्रतम होतेहै ।

इतिश्री आयुर्वेदोद्धारे बृहन्निघण्टु रत्नाकरे दशमस्तरङ्गः १०

अथ सप्तमोध्यायः ।

(मर्म शिरास्नायु धमनीः परिहरन्) इत्यादि पदोंमें मर्मके पश्चात् शिरा शब्दके कहनेसे मर्मैक मर्मनिर्देश शारीराध्याय कहनेके अनंतर शिरावर्ण विभाग शारीर कहना उचितहै, अतएव उसीको कहते है ।

अथातः शिरावर्णविभक्तिशारीरंव्याख्यास्यामः ।

अर्थ—शिरा और उन्होंके शुक्ल लोहितादि (लाल काले पीले आदि) वर्ण और उन्होंके समुदायसै पृथक्करण जिसमें वर्णन करा, अैसी शिरावर्ण विभक्ति शारीराध्यायकी व्याख्या करते है ।

सर्वशिराओंकीसख्या

सप्तशिराशतानिभवन्ति ।

अर्थ—शिरा (नस) सब ७०० सातसौ है ।

शिराओंकेकार्य

याभिरिदंशरीरमारामजलमिवजलहारिणीभिः केदारमिवकुल्याभिरुपस्निह्यतेअनुगृह्यतेचाकुञ्चनप्रसरणादिभिर्विशेषैः ।

अर्थ—शिरा सर्व शरीरमें आपाद मस्तक पर्यंत रस लेजाय कर शरीरको स्निग्धकरती है जैसे बगीचेमें वृक्षोंकी क्यारी वरहा के जलसैं तृप्तहोती है,

उसीप्रकार नहर के वंवा सें जैसें खेत परिपूर्ण होताहै, उसीप्रकार बडी और छोटी शिराओंके द्वारा देह पुष्ट होताहै। और आकुंचन, प्रसारण, भाषण, निद्रा, जागने आदि कर्मकरके शरीरका पालन पोषण होताहै।

शिराओंकेअतिसूक्ष्मप्रकारदृष्टांतकरकहतेहैं.

द्रुमपत्रसेवनीनामिवतासांप्रतानाः तासांनाभि मूलंततश्चप्रसरंत्यूर्ध्वमधश्चतिर्यक्चप्रताना।

अर्थ—शिराओंके विस्तार, वृक्षोंके पत्तेके शिराप्रमाण असंख्यात है उन सबका मूल नाभीहै। उसनाभिसें निकल ऊपर नीचे आडे तिरछे सर्वदे, हमें फैलरहे हैं।

प्रमाण

यावत्यस्तुशिराकायेसंभवंतिशरीरिणां। ना भ्यांसर्वानिवद्धास्ताः प्रतन्वंतिसमंततः

अर्थ—जितनी शरीरमें शिराहै सब नाभिसें बंधीहै उसीजगेसें चारोतरफ फैली हैं। (कोई आचार्य कहतेहै कि नाभिमें शिरा गोपुच्छाकृतिहै।)

शिराओंकाऔरप्राणोंकाआधाराधेयभावसंवंधकहतेहैं.

नाभिस्थाः प्राणिनांप्राणाः प्राणानाभिंव्यपाश्रिताः। शिराभिरावृतानाभिश्चक्रनाभिरिवारकैः।

अर्थ—सर्व प्राणियोंके प्राण नाभिमें नाभीके आवरक शिराओंका आश्रय करके रहते है, उन शिराओंसे इसप्रकार नाभि लिपटी हुईहै जैसें गाढीके पहिये की नाभि लकडियों करके चारो तरफसें घिरी हुई होती है।

शिराओंकीगणना

तासांमूलशिराश्चत्वारिंशत्तासांवातवाहिन्योदश पित्तवाहिन्योदशकफवाहिन्योदश रक्तवाहिन्योदश।

अर्थ—उन नाभिचक्रस्थ शिरा समुदायमें मुख्य ४० चालीस शिराहै, तिनमें १० वातवहने वाली, १० पित्तवहने वाली, १० कफवहने वाली,

और १० रुधिरके वहनेवाली सब मिलकर ४० हुईं ।

तासांवातवाहिनीनावातस्थानगतानांपंचसप्तशतंभवतिएवं पित्तवाहिन्यः पित्तस्थाने कफवाहिन्यः कफस्थाने रक्तवाहिन्यः रक्तस्थाने यकृत्प्लीहोरेवमेतानिसप्तशिराशतानिभवन्ति ।

अर्थ—वातवाहिनी शिराओंकी शाखा जो वातस्थान के प्रतिगईहै वो, १७५ एकसौ पिचत्तरहै । कफवाहिनी की शाखा जो कफस्थानके प्रति गई है वो १७५ हैं. पित्तवाहिनी की पित्तस्थानमें जानेवाली १७५ है, और रक्तवाहिनी नाडीयोंकी शाखा जो रक्तस्थान (यकृत्प्लीह) के प्रतिगई हैं वो भी १७५ एकसौं पिचत्तर इसप्रकार सबमिलकर ७०० हुई ।

अंगविभागकरकेशिरासंख्याकहते है

तत्रवातवहाशिराएकस्मिन्सक्थिनिपंचविंशतिः । एतेनेतरसक्थिबाहूचव्याख्यातौ ।

अर्थ—वातवाहिनी शिरा एक पैरमें २५ पच्चीस है, उसीप्रकार दूसरे पैरमे और दोनो हाथोंमें मिलकर १०० सौ होतीहै ।

कोष्ठगतशिराविभाग

विशेषतस्तुकोष्टेचतुस्त्रिंशत् तासांगुदमेढ्राश्रिताःश्रोण्यामष्टौद्वेपार्श्वयोः षट्पृष्टेतावंत्येवोदरेदशवक्षसि ।

अर्थ—कोष्ठ (मध्यप्रदेश)में ३४ वातवाहिनी, तिनमें भी गुदा और लिंग इनके आश्रयकरके रहने वाली श्रोणीमें ८ दोनो कूखोंमें ४ पीठमें ६ पेटमें६ उरमें १० सब मिलकर ३४ हुई ।

नाडसेलेकरऊपरकेभागमेंशिराओंकीसंख्या

एकचत्वारिंशज्जत्रुणऊर्ध्वंतासांचतुर्दशग्रीवायां कर्णयोश्चतस्रोनवजिव्हायांषट्नासिकायामष्टौ नेत्रयोः एवंपंचसप्तशतंवातवहानांव्याख्यातम् ।

अर्थ—जत्रु (दोनोकंधे और नाडकी संधि) से लेकर ऊपरके प्रदेशमें ४१ वातवाहिनी शिराहै, तिनमें नाडमें १४ कर्णगत ४. जीभमें ९ नाकमें ६, नेत्रमें ८, सब मिलकर ४१ हुई। अब कोष्ठ और नाड दोनोकी जोडनेसें १७५ शिरा होती है। इसीप्रकार पित्तवाहिनी आदि नाडियोंका प्रमाण जानना, परंतु पित्तवाहिनी शिरा नेत्रगत १० कर्णगत २ इतना भेद है।

शिराश्रितवातादिकोंकेप्राकृतऔरवैकृतकार्यकहतेहैं.

क्रियाणामप्रतीघातः प्रमोहोबुद्धिकर्मणाम्
करोत्यन्यान्गुणांश्चापिस्वाःशिराःपवनश्चरन्।

अर्थ—वायु स्ववाहिनी नाडियोंमे सुप्रकृति पूर्वक संचार करनेसें आकुंचन, प्रसरण, भाषण इत्यादि क्रिया यथास्थित होती है। तथा नेत्रादि ज्ञानेन्द्रिय मन बुद्धि इनकी शक्ती अपने अपने कार्योंमे उत्तम रहती है। और वायु अन्यगुण प्रस्यंदन, उद्वहन, पूरण इत्यादिकोंको करे है।

वातवाहिनीशिरागतकुपितवातकेविकारकहतेहैं.

यदातुकुपितोवायुःस्वाशिराःप्रतिपद्यते।
तदास्यविविधारोगाजायन्तेवातसंभवाः।

अर्थ—जिसकालमें वायु कुपितहोकर स्ववाहिनी नाडियोंमे संचार करने लगे है, उसकालमें अनेक प्रकारके वातसंभव रोग होते है।

पित्तकेकार्य

भ्राजिष्णुतामन्नरुचिमग्निदीप्तिमरोगताम्।
संतर्प्यस्वाशिराःपित्तंकुर्यादन्यान्गुणानपि।

अर्थ—पित्त, स्ववाहिनी नाडियोंमे सुप्रकृती पूर्वक रहता हुआ उनको तृप्त करने करके शरीरमें कांति तथा अन्नपर रुचि जठराग्निकी दीप्ती, नैरोग्यता, तेजस्वीपना, रागपंक्ति, और ओज इत्यादि कर्मकरे है।

पित्तवाहिनीशिरागतकुपितपित्तकेविकारकहतेहै

यदातुकुपितंपित्तंसेवतेस्ववहाःशिराः । तदास्यविवि
धारोगाजायन्तेपित्तसंभवाः ।

अर्थ—जिसकालमें पित्त कुपितहोकर स्ववाहिनी नाडियोंमें संचार करने लगे है, उसकालमें इस मनुष्यके अनेक प्रकारके पित्तसभव रोग होते है ।

कफकेकार्यकहतेहै

स्नेहमङ्गेषुसन्धीनांस्थैर्यंबलमुदीर्णताम् ।
करोत्यन्यान्गुणांश्चापिबलासःस्वाःशिराश्चरन्

अर्थ—कफ, स्ववाहिनी नाडियोंमे सुभकृती पूर्वक रहनेसै अगोंमें सचिक्कणता, संधियोंकी स्थिरता, बल, इत्यादि गुण करेहै ।

विकृतकफकेकार्य

यदातुकुपितःश्लेष्मास्वाःशिराःप्रतिपद्यते ।
तदास्यविविधारोगाजायन्तेश्लेष्मसंभवाः ।

अर्थ—जिसकालमें कफकुपित होकर स्ववाहिनी नाडियोंमें संचार करने लगेहै उसकालमें इस मनुष्यके अनेक प्रकारके कफसभव रोग होते है ।*

रक्तकेकार्य

धातूनांपूरणंवर्णस्पर्शज्ञानमसंशयम् ।
स्वाःशिराःसंचरद्रक्तंकुर्याच्चान्यान्गुणानपि ।

अर्थ—रक्त, स्ववाहिनी नाडियोंमें निर्दोप वहनेसैं धातुओंका पूरण, वर्ण, स्पर्शज्ञान, और पित्तके गुण सदृश गुणकरे है । तथा "रक्तवर्णप्रसाद" इत्यादि अन्यगुणोंकोभी करेहै ।

---

*वात पित्त कफ इनतीनो दोपोंकावर्णन आगे दोषवर्ण विज्ञानीयाध्यायमें विस्तार पूर्वक कहेगे

कुपितरक्तकेकार्य

यदातुकुपितंरक्तंसेवतेस्ववहाःशिराः।
तदास्यविविधारोगा जायन्तेरक्तसंभवाः।

अर्थ—जिसकालमें रुधिरकुपितहोकर स्ववाहिनी नाडियोंमें विचरे है, उससमय इस मनुष्यके देहमें अनेक रुधिरके विकार होते है।

वातादिशिरासर्वदोषोंकोवहती है सोकहतेहै.

नहिवातंशिराःकश्चित्नपित्तंकेवलंतथा।
श्लेष्माणंवाहयंत्येताअतःसर्ववहाःशिराः।

अर्थ—कोईभी शिरा केवल एक वायुको अथवा केवल पित्तको किंवा केवल एक कफको नहीं वहे है किंतु सर्वशिरा अंशतः वात पित्त कफादिकोंको वहती है अतएव उनको सर्ववहा कहतेहैं।

सर्वदोषवहनेवालीशिराओंकोहीसर्ववहत्वकहतेहै

प्रदुष्टानांहिदोषाणांमूर्च्छितानांप्रधावताम्
ध्रुवमुन्मार्गगमनमतःसर्ववहाःस्मृताः।

अर्थ—कुपित वातादिदोषोंकोही सर्वशिरा अंशांश प्रमाण करके वहती है, इसीसें उनको सर्ववह कहतेहैं।

शिराओंकावर्णविभागकहते है.

तत्रारुणावातहाःपूर्यन्तेवायुनाशिराः। पित्तादु
ष्णाश्चनीलाश्चशीतागौर्यःस्थिराःकफात्। असृग्व
हास्तुरोहिन्यःशिरानात्युष्णशीतलाः

अर्थ—वातके वहने वाली शिरा लाल और वायुकर्के पूर्ण है, पित्तके वहनेवाली शिरा उष्ण और नीलवर्ण कीहै। और कफवाहिनी शिरा शीतल सपेदरंग वाली और स्थिरहै, और रक्तवाहिनी शिरा न अत्यंत गरम न बहुत शीतल किंतु मध्यम होती है, और इनका लोहितवर्ण होताहै।

वर्जितशिराओंकोकहते है

अतऊर्ध्वंप्रवक्ष्यामिनाविच्छिद्येच्छिराभिषक्।
वैकल्यंमरणंचाशुव्यधात्तासांध्रुवंभवेत।

अर्थ—अब उनशिराओंको कहते है कि, जो न खोलनी चाहिये, कदाचित् इन अवेध्य शिराओंकी फस्तखोलेतो विकलता और मरण होताहै।

अवेध्यशिरा

शिराशतानिचत्वारिविन्द्याच्छाखासुबुद्धिमान्।षट्त्रिंशच्चशतं कोष्ठेचतुःषष्ठंचमूर्धसु।शाखासुषोडशशिराःकोष्ठेद्वात्रिंशदेवतु।
पञ्चाशज्जत्रुणश्चोर्ध्वंनव्यध्याःपरिकीर्तिताः।

अर्थ—हाथपैरोंमें पूर्वोक्त प्रकारकरके ४०० शिराहै, तिनमें १६ शिराओंका खोलना वर्जितहै, तथा मध्यप्रदेशमें १३६ शिराहै, तिनमें ३२ शिराओंकी फस्त खोलना वर्जितहै, तथा मस्तकमें १६४ तिनमें ५० शिरावेधने योग्य नहीं है।

शाखागत १६ अवेधशिरा

जालधरावेकातिस्रश्चाभ्यन्तराःतत्रोर्वीसंज्ञेद्वे लोहिताख्यसंज्ञैका।

अर्थ—हाथ और पैरमें १६ नाडी वेधनेयोग्य नही है, तिनमें १ जालधरा और तीनशिरा भीतरहै, उनमें दोशिरा उर्वी संज्ञक है, और तीसरी लोहितसंज्ञक है, ऐसे एक पैरमें चार और दूसरे पैरमें चार इसीप्रकार, दोनो हाथोमें ८ सब हाथ पैरकी मिलकर सोलह शिराहै इनको न तोडे।

द्वात्रिंशच्छ्रोण्यांतासामष्टौअशस्त्रकृत्या
द्वेद्वेविटपयोःकटिकतरुणयोश्च।

अर्थ—पृष्ठ, उदर और उर इन्में ३२ शिराअवेध्य है, (इसजगे पृष्ठशब्द करके श्रोणि और पार्श्व इनका ग्रहण होताहै) साराश यहहै कि, श्रोणीगत ८ पार्श्वगत ८ पृष्ठगत २ और उदरमें १४ ऐसेमिलकर ३२ शिरामध्य

प्रदेशमें है, तथा कमरमें ३२ शिराहै, तिनमें विटपसंज्ञक ४ और कटितरुणा स्थिसंबंधी ४ ऐसेआठशिरा अशस्त्रकृत्यहै, अर्थात् इनकी फस्त न खोले। तथा एकएक कूखमें आठ आठ शिराहै; तिनमें ऊपरको गई ऐसी दो शिरा अशस्त्रकृत्य है तथा पृष्ठवंशके दोनो अंगोंमें २४ शिराहै, तिनमें ऊपरको गई ऐसी बृहती संज्ञक ४ शिरा अशस्त्रकृत्यहै, तथा उरमें ४० शिरा है, तिनमें १४ अशस्त्रकृत्य उनको वर्णन करते है। हृदयगत २, स्तनमूलगत ४, तथा स्तनरोहितगत ४, अपलाप और अपस्तंव मिलकर ४, ऐसै सब १४ उदरगत २४ तिनमें ४ अशस्त्रकृत्यहै, ऐसैं ३२ शिरा मध्यप्रदेशगत जाननी तथा जत्रुसे लेकर ऊपरके प्रदेशमें १६४ शिराहै, तिनमें ५८ शिरा नाडमेंहै तिनमें मातृका ४ मन्या २ नीला २ कृकाटिकगत २ विधुरगत २ सब मिलकर १६ शिरा नाडमें अशस्त्रकृत्यहै, अर्थात् इनकी फस्त न खोलनी चाहिये।

ठोडीकीशिरावेध.

हनोरुभयतोष्टावष्टौतासांसंधिधमन्यौद्वेद्वेपरिहरेत्।

अर्थ—ठोडीके दोनोतरफ आठ २ शिराहे, तिनमें ठोडीकी संधीके हेतुभूत ऐसी एकएक तरफ २ है, येही केवल ४ शिरामात्र अवेधयोग्य है, ठोडीके सोलहशिरा नाडके अंतर्भूतहै, इसीसे पृथक् नहीं कहीगई. किसी आचार्यके मतसे ठोडीमें १६ शिरा पृथक्है, तिनमें दो संधिबंधन मर्मरूप वर्जितहै।

जिव्हाकीशिरा

षट्त्रिंशज्जिव्हायांतासामधःषोडशअशस्त्रकृत्या
रसवहेवाग्वहेच।

अर्थ—जिव्हामें ३६ शिराहै, तिन जिव्हागत ३६ शिराओंमें १६ शिरा नीचे के भागमें और वीसऊपरके अंगमें, तिनमें दो रसवाहिनी और दो वाणीके वहने वाली ऐसैं चारशिरा मात्रको न तोडनी चाहिये।

नासिकाकीशिरा.

द्विर्द्वादशनासायांतासामौपनासिक्यश्चतस्रःपरिहरेत्
तासामेवतालुन्येकांमृदावुद्देश्ये।

अर्थ—नासिकामें १४ शिराहे, तिनमें नासिका के समीप चार तथा तालुअँमें काकके समीपकी १ अँसे पाच शिरा शस्त्रकर्मोपयोगी नहींहे ।

अपाङ्गकीशिरावेध

षट्त्रिंशदुभयोर्नेत्रयोस्तासामेकैकामपाङ्गयोःपरिहरेत् ।

अर्थ—नेत्रमें ३६ शिराहे, तिनमें अपाङ्गगत (नेत्रकेअंतकेभागमें) एकएक त्याज्यहै ।

नासानेत्रादिकोंमेंशिरावेध

नासानेत्रतालुललाटेषष्टिस्तासांकेशान्तानुगताश्चतस्रः आवर्त्तयोरेकैकास्थपण्याचैकापरिहर्त्तव्या ।

अर्थ—ललाटमें ६० शिराहे, तिन्होमें आवर्त्त मर्मके समीपकी ४ शिरा तथा आवर्त्तमें एकएक और स्थपणी में १ अँसे ७ शिरा त्यागने योग्यहै, ललाटगत ६० शिरा नासिका तथा नेत्रमें जानेवालीहे, इसीसे नहीकहीं अर्थात् २४ नाककी और ३६ नेत्रकी येही मिलकर ६० शिरा ललाटमें है ।

शंखगतशिरावेध

शंखयोर्दशतासामेकैकांपरिहरेत् ।

अर्थ—शंख (कनपटी) में १० शिराहे, तिनमें एकएक त्यागनें योग्यहै, शखगत शिरा येभी नासिका नेत्र गतहीहै ।

मस्तकसीमंतऔरअधिपतिइनमेंशिरावेध

द्वादशमूर्धनितासामुत्क्षेपयोर्द्वेपरिहरेत् सीमन्तेष्वेकैकामधिपतौ ।

अर्थ—मस्तकमें १२ शिराहै, तिनमें उत्क्षेप मर्मगत एकएक और सीमंत गत ५ अधिपति गत एक अँसें आठ शिरा त्यागने योग्यहै, येभी शिरा नेत्रगत ही हैं, इसीसे पृथक इनके नामनहीं कहे ।

गिनीहुईशिराओंकीन्यूनाधिक्यताकहतेहै

व्याप्नुवन्त्यभितोदेहंनाभितःप्रसृताःशिराः ।
प्रतानाःपद्मनीकन्दाद्विशादीनांजलंयथा ।

अर्थ–शिरा, नाभिसैं निकलकर विस्तृतहो सर्वदेहमें व्याप्त होतीहै, जैसै कमलनीकंदसैं मृणाल तंतु निकलकर जलमें फैलतेहै। अतएव उक्त संख्यामें न्यूनाधिक्य मालूम होताहै।

अथमतान्तरेणविशेषमाह.

धमन्यइवविज्ञेयाःशिराश्चसर्वदेहगाः। रक्तस्रोतःप्रवाहिण्यो देहरक्षणहेतवः। शिरस्युरसिकण्ठेचबाहोरपिचयाःस्थिताः। सर्वास्ताजत्रुणोरारान्मिलित्वैकत्वमागताः। सक्थ्नोरुदरबस्त्योर्याबस्तिदेशेचसङ्गताः। भित्वावक्षस्थलेपेशींनयन्त्यस्त्रंहृदालयम्। शिराभिर्निखिलाभिश्चशिरासङ्गमजातयोःद्वयोर्महत्योःशिरयोरप्यंतेशोणितंसदा। हृदयाच्छोणितंशुद्धमाश्रित्यधमनीपथम्। गुणविश्राणनाद्देहंक्षीणंपुष्णातिनित्यशः। एवंत्यक्तगुणंकृष्णंदेहनाशगुणान्वितम्। शिराभिश्चपुनर्यातिदक्षिणंहृदयालयम्। तत्रनिश्वासवातेनवीतदोषंगुणान्वितम्। सुरक्तंधमनीभिश्चपुनर्भ्रमतिवर्ष्मतत्। एकैकस्याधमन्यश्चकुत्राचित्पार्श्वयोर्द्वयोः। विद्यमानेशिरद्वंद्वे वहतोदुष्टशोणितं। नाड्यःसूक्ष्मानयन्त्यस्त्रंधमनीभ्यःशिराःसदा। शिराभिर्हृदयंयातिततस्तद्धमनीपुनः। एवंपुनःपुनर्देहंभ्रमेदस्त्रंनिरंतरम्। आभूमिस्पर्शनाद्यावन्मृत्युंसर्वस्यदेहिनः। निवृत्तायांगतौरक्तस्रोतसांसद्यएवहि। मृत्युर्भवतिजीवस्याविचिकित्सानाविद्यते। सन्तिसूक्ष्माःशिराःकाश्चित्काश्चिच्चपृथुलास्तथा। काश्चिद्गंभीरदेहस्थाअगम्भीरगतास्तथा। बाह्वोःसक्थ्नोरधःस्थानाअगम्भीरस्थिताहियाः। अमांसलेषुदेशेषुव्याधिक्षीणस्यदेहिनः। शिराव्यक्ततराःस्युस्तास्त

ह्लक्षयलक्षणम् । वृंहणंवातशमनंतत्रकार्ययथायथम् ।
इतिश्रीसौश्रुतशारीरेसप्तमोध्यायः ।

अर्थ—धमनियोंके सदृश शिरा सर्वदेह गत जाननी, ये रुधिर को स्रोतो द्वारा वहन करके देहके रक्षणकी हेतुभूत है मस्तक, वक्षस्थल, कंठ, और बाहू दोनों इन सब स्थानोमें शिरा स्थित है ये सब जत्रुके निकट आय मिलकर एकहोगईहै, सक्थीद्वय, उदर, और वस्ती इन स्थानोकी सब शिराहै वो सब वस्तिदेशमें मिलकर एकहोकर वक्षस्थलस्थ पेशियांको भेदकर हृत्कोष्ठमे प्राप्त हुई है. देहमें जितनीशिराहै वो सब इन दोनो बडी शिराओ में मिलकर रुधिरको हृदयमें प्राप्तकरेहै और और स्थानके सदृश शोणित यत्रशिराकी अवस्थिती जाननी हृदयसै शुद्धशोणित निकलकर धमनीमार्ग होकर समस्त देहमें परिभ्रमण करके क्षीण अंगोंको आत्मगुण देकर नित्य पोषण करेहै, इसप्रकार गुणहीन कृष्णवर्ण और देहनाशक शक्तिसंपन्न होवे यह दुष्टशोणित शिरामार्गहो दक्षिण हृत्मकोष्ठमें प्राप्त होता है उसजगे निश्वासकी पवनके योगसैं दोषवर्जित देह पोषण शक्ति सम्पन्न तथा लोहितवर्ण होकर फिर दूसरीवार धमनी मार्गहो देहमें भ्रमण करेहै, किसीकिसी स्थलमें एकएक धमनीके दोनो पार्श्वोमें दोदो शिरा विद्यमानहै, वे दुष्टशोणित को वहतीहै । छोटीछोटी नाडीसमूह धमनी सै शिराओंमें रुधिरको लातीहै, उन शिरा ओंमें होकर वह रुधिर हृदयमें प्राप्तहो फिर उसी प्रकार विशुद्धहो पुनर्वार धमनी नाडियोंमें होकर देहमें घूमेहै, इसीप्रकार देहमें रुधिर निरंतर घूंमा करेहै जबसे बालक गर्भसैं निकल पृथ्वीमें गिरेहै और जबतक मृत्युनहीं हो तावत्कालपर्यंत इसकी देहमें निरतर यह रुधिर भ्रमण करेहै कभी डोलनेसै बंद नहीं होता । कदाचित् किसी कारण वश रक्तस्रोतकी गति रुकजावे तो तत्क्षण मृत्युहोवे । इसमें कुछ सदेह नहीहै, और फिर इसका कुछ इलाज भी नहींहै, शिरासमूह के मध्यमें वहुतसी शिरा सूक्ष्म और वहुतसी स्थूलहै कोई शिरादेहके गभीर स्थानोंमें स्थितहै । और कोई अगभीर अर्थात् बाहरके देशमें निस्नेह विद्यमानहै । बाहु और सक्थीद्वयके अधोभागस्थ अगभीर शिराहै । अप्रासन्न प्रदेशस्थ शिरा तथा व्याधिक्षीण देहवाले मनुष्योंके अंग-

की शिरासमूह सुव्यक्त अर्थात् चक्षुद्वारा लक्षित होतीहैं। इसप्रकार शिराप्रकाश होनेसैं बलक्षीण के लक्षण जानने। ऐसे मनुष्योंको बृंहण और वायुप्रशमक क्रिया कर्त्तव्यहै १० नंबरका चित्र देखो.।

इतिश्रीआयुर्वेदोद्धारेबृहन्निघंटुरत्नाकरेएकादशस्तरङ्गः ११

अष्टमोऽध्यायः

शिरावर्णविभक्तिकहनेकेपश्चात्ज्ञातव्यव्याधिमेंशिरावेधविधिकहनीउचितहै सोईकहतेहैं.

अथातःशिराव्यधविधिशारीरंव्याख्यास्यामः।

अर्थ—अथेत्यनंतरं अर्थात् शिरावर्ण विभक्ति कहनेके पश्चात् अब हम शिरावेध शारीरको कहेंगे.

फस्तखोलनावर्जित

बालस्यरूक्षक्षतक्षीणभीरुपरिश्रान्तमद्याध्वस्त्रीकर्षितवां तविरक्तास्थापितानुवासितजागरित क्लीबकृशगर्भिणीनां कासश्वासशोषप्रवृद्धज्वराक्षेपकपक्षाघातोपवासपिपासा मूर्च्छाप्रपीडितानांशिरांनाविध्येत्।

अर्थ—बालक, रूखादेहवाला, क्षतक्षय करके क्षीण, चोट आदि करके सप्तधातु क्षीणहुआ, डरपोका, थकाहुआ, मद्यपान करके शुष्क, मार्ग अथवा स्त्रीके संयोगकरके थकाहुआ, अत्यंत वमन करचुकाहो, दस्त वाला, निरूह-वस्ति तथा अनुवासनवस्ति ये उपचार कराहुआ, षंढ (हिजडा) कृश, गर्भिणी, खांसी, श्वास, क्षयरोग, अत्यंत ज्वरवान, आक्षेपकवायु, पक्षाघात (लकवा) उपवास, मूर्च्छा, प्यास, इनकरके पीडित मनुष्योंकी शिरावेध अर्थात् फस्त न खोले। इस्का कारण यहहै कि, खांसी, श्वास, घोरज्वर, आक्षेपक, पक्षाघात और क्षतक्षीण, वाले पुरुषोंके रक्तस्राव होनेसैं वायुकोप होनेका भय होताहै। डरपे हुए मनुष्यमें तमोगुण होताहै। इसीसैं उसको रुधि-

रके देखते ही मूर्च्छा होतीहै । तथा श्रीमंत मनुष्योंके वायु कुपित होताहै । वह रक्तस्रावसे अधिक कुपितहो शरीर का नाश करेहै । मद्यप मनुष्यका रुधिर काढनेसें मदकरके विक्षिप्त चित्तहो अतिमूर्च्छित होताहै । और मार्ग तथा स्त्री इनकरके कृश मनुष्यके रुधिर निकालनेसें वातकोप होताहै । आस्थापित, तथा कुपित इन्होको रुधिर निकालनेसें वातकुपित होताहै। अनुवासित मनुष्यके जठराग्नि मंद होताहै यदि ऐसेका रुधिर काढाजाय तो अतिमंदाग्नि होवे, नपुंसकका रुधिर काढनेसें सर्वप्रधान धातूकाक्षय होकर निसंदेह मरे । कृश, और गर्भिणी इनका रुधिर निकालनेसें धातुक्षीण होनेपर देहनाश का भय होताहै, श्वास, खासी, शोष, इनसें ग्रस्त मनुष्योंका रुधिर निकालनेसे धातुक्षीण होकर देहनाशकी शंका होतीहै ।

रक्तस्रावमेंसाध्यविकार

शोणितावसेकसाध्याश्चयेविकारास्तेषुवापक्केषुअन्येषुचानु रक्तेषुयथाभ्यासंयथान्यायंशिराविध्येत्

अर्थ—जेविकार रक्तस्राव साध्यहै उनको कहतेहै, त्वगदोष, ग्रंथी (गांठ) सूजन, रक्तविकार ये रक्तस्राव साध्यहै, ऐसा शोणित वर्णन प्रसंगमें कहाहै।वे विकार पक्क होनेपर रक्तस्राव करना चाहिये, और जिनसे पश्चात् दाहादि विकारहोवे ऐसे पूर्वरक्तसेक साध्योमें नहीकहे, उनमें रोगस्थलके समीप प्रदेशको रक्तके यथान्याय अर्थात् स्नेहस्वेदादि उपचार पूर्वक कढाना चाहिये ।

फस्तखोलनेमेंवर्जितमनुष्योंकीभीफस्तखोलनाकहतेहै

प्रतिसिद्धानामपिविशेषोपसर्गेआत्ययिकेवाशिराव्यधनमप्रतिषिधम्

अर्थ—रक्तस्रावके विषयमें जो वर्जित बाल क्षीण इत्यादि प्रथम कहआएहै उन्होंके अतिउपद्रव देनेवाली व्याधि अथवा मृत्युकारक विद्रधि आदि रक्तस्राव साध्य व्याधिहोनेसे, रक्तकढाना निषेध नहीहै, अर्थात् ऐसे रोगमें अवश्य रुधिरकढाना चाहिये ।

शिरावेधकेपूर्वकृत्य

तत्रस्निग्धास्विन्नमातुरंयथादोषप्रत्यनीकंद्रवप्रायमन्नंभुक्तवंतंयवागूंपीतवंतंवायथाकालमुपस्थाप्यासीनंस्थितंवाप्राणानवाधमानोवस्त्रपटचर्मवल्कलानामन्यतमेनयंत्रयित्वानातिगाढंनातिशिथिलंशरीरप्रदेशमासाद्यप्राप्तंशस्त्रमादायशिरांविध्येत्।

अर्थ—फस्त खोलने के पूर्व रोगीकैं तेल मालिस आदि उपचार कराने चाहिये, और पसीनें निकाले; परंतु नैरोग्य पुरुषकी फस्त न खोलनी चाहिये। तथा दोषोंके विरुद्ध न होवे अैसे द्रवद्रव्य प्रधान अन्न, अथवा यवागू, स्वस्थ होने सैं भोजनकरके, तथा वर्षा और बद्दल न होवे अैसे दिन वैद्य, रोगीको अपने पास खडा कर अथवा विठलाकर धीरजदेकर वस्त्र, पटवस्त्र, चर्म, अथवा वक्कल इनमेसैं किसी एकसैं लपेटे; परंतु वहवेष्टन (बांधनेकी पट्टी आदि) मस्तकमें बांधनेकी आवश्यता होवे तो मस्तकको बहुत करडा न बांधे, और हाथपैर बांधने होवेतो इनको बहुत ढीले न बांधे, इसप्रकार बांधकर मर्मप्रदेश स्थानको बचायकर जैसा मिले ऐंसे शस्त्रको लेकर शिराको वेधे अर्थात् फस्त खोल रुधिर निकाले।

वेधकालकहतेहैं.

नवातिशीतेनात्युष्णेनप्रवातेनचाभ्रिते।
शिराणांव्यधनंकार्यमरोगेवाकदाचन।

अर्थ—अतिशीतदेश, अतिशीतकाल, तथा अत्युष्णदेश और काल, तथा अत्यंत पवन चलता हो अैसा दिन, तथा बद्दलहोरहा हो अैसा दिवस इनमें शिरावेध (फस्त) न करे उसीप्रकार रोगहीन पुरुष की भी फस्त न खोले।

शिरोत्थापनकाप्रकारकहतेहैं.

तत्रव्याध्यशिरंपुरुषंप्रत्यादित्यमुखंअरत्निमात्रोच्छ्रितंउपवेश्यासनेसक्न्थोराकुंचितयोर्निवेश्यकूर्परसंधिद्वयस्यो

परिहस्तावर्तगूढांगुष्ठकृतमुष्टिमन्ययोःस्थापयित्वायंत्रेण शाटकंग्रिवामुष्ट्योरुपरिपरिक्षिप्यान्येनपुरुषेणपश्चात्स्थि तेनवामहस्तेनोत्तानशाटकांतद्वयंग्राहयित्वाततोवैद्योयान तुशिरोत्थापनार्थनात्यायितशिथिलंयंत्रमाचरेत्असृक्स्राव णार्थंचयंत्रंपृष्ठमध्येपीडयेदितिकर्मपुरुषमुखंवायुनापूरये देषउत्तमाङ्गगतानांअन्तर्मुखवर्जानांशिराणांयंत्रेणव्यध नेविधिः।

अर्थ–जिस पुरुषकी फस्तखोलनी हो उसको सूर्योभिमुखकर एकविलस्त ऊचा आसनपर बैठाल पैरोंको नीचे लटकायदेवे और यत्किंचित् झुकाकर ऊंकरू के सदृश बैठारे और उसपुरुष के दोनो कूर्पर (कोहनी) घोंटु ओंकी संधिके ऊपर धरवावे और अंगूठेको भीतरकर मुट्ठीवद करावे अथवा हाथमेंकिसी वस्तुकी पोटली देकर दोनोको एकत्र करके धरावे,और नाडमें वस्त्रकी पट्टी बांध और यंत्र करके अर्थात् दोनोवगलकपडे आदिकी दृढपट्टी लेकर उसको कलाईके तीन अंगुलठौरकोछोड दृढबाधे, और दूसरा मनुष्य उस मनुष्यके पिछाडी खडाहोकर उस यंत्ररूप शाडीके दोनोपरले अर्थात् जो नाडमें पडीहै उसको दोनोहाथोंसे पकडकर खडारहै, अथवा दोनोपरलोंको वाएहाथसै पकडकर खडारहे, पीछे उसरोगीको वैद्य आज्ञादेवेकि शिराओंके उत्थापन होने चाहिये अतएव वाएहाथसे बहुत करडा न होवे तथा अत्यंत शिथिल न होने पावे, ऐसै यंत्रको कुछउठावे और रक्त अच्छीरीतिसे निकले इसलिये पीठमें यंत्रको अच्छी रीतिसै दावे, जिस्का शिरावेधरूप कर्म करे उसका मुख पवनसें परिपूर्ण करे, अर्थात् उसमनुष्यको मुखद्वारा श्वासका लेना और छोडना न करने देवे। इसप्रकार उत्तमाग गत शिराका वेध यंत्रकरके करे परंतु यहविधि मुखकी शिराओंके सिवाय इतर उत्तमागगत शिराओंमें जानना।

पादादिगतशिरावेधनेकाप्रकार.

पादविध्यस्यपादंसमेस्थानेसुस्थितंस्थापयित्वाअन्यपाद मीषत्संकुचितमुच्चैः कृत्वाव्यध्यशिरपादंजानुसंधौशाटके

नावेष्ट्यचहस्ताभ्यांवाप्रपीड्यगुल्फंव्यध्यप्रदेशस्योपरिच तुरंगुलेप्रोतादीनामन्यतमेनबध्वाशिरांविध्येत्।

अर्थ—जिसमनुष्यके पैरकी शिरावेध करनी होवे; उस मनुष्यका पैर समान भूमिमें अच्छी रीतिसें धराकर दूसरे पैरको कुछसकोड ऊंचाधरे, और जिसपैरकी शिरावेधनीहो उसपैरके घोंटुओंकेनीचे दृढकपडेकी पट्टीसें बांधे, अथवा हाथोसेंदबावे, पीछे गुल्फसंधीके विषे व्यध्य स्थलछोड चार अंगुलपर वस्त्र चर्मादिकोसें बांधकर शिरावेधकरे।

हस्तगतशिरावेधप्रकार.

अथोपरिष्टाद्धस्तेगूढांगुष्ठकृतमुष्टींसम्यगा सनेस्थापयित्वासुखोपाविष्टस्यपूर्ववद्यंत्रंबध्वा हस्तशिरांविध्यात्।

अर्थ—ऊपरके प्रदेशोंमें हस्तादिकोंका शिरावेध करनेके लिये पूर्ववत् अंगूठे को भीतरी दवाकर मुठ्ठी बांध लेवे; और मध्य प्रदेशको त्याग ऊपरकी तरफ चारअंगुल पर पट्टीसें बांध शिरावेध कर रुधिर निकालना चाहिये। इसप्रकार गृध्रसी और विश्वाची इन वातरोगोमें आसनपर विठलाकर कुछ घोंटू और कोहनीको संकोचित करके शिरावेधकरे।

श्रोणीपीठऔरकंधेइनमेंशिरावेध.

श्रोणीपृष्ठस्कन्धेषुउन्नामितपृष्ठस्या वटुःशि रःस्कन्धस्योपविष्टस्यविस्फूर्जितस्यपृष्ठस्य।

अर्थ—जिस मनुष्यकी पीठ उन्नामित कहिये नवीहुईहो, तथा जिसका अवटु कहिये नाडके पीछाडीकी शिरा और मस्तक तथा स्कंध इनमें विकारहो कर स्तंभित सरीके होनेसें तथा पृष्ठ विस्फूर्जित कहिये चौडी होनेसें; श्रोणी, पृष्ठ, स्कंध इनमें शिरावेध कर रुधिर कढावे तथा जिस्का मध्यशरीर स्तंभित होजावे उसकी फस्त खोले.

कौनसीठौरशिरावेधकरेयहकहते.

वाहुभ्यामवलम्बमानदेहस्यपार्श्वयोरवनामितमेढ्रस्यमेढ्रे विदष्टजिव्हाग्रस्याधोजिव्हायाः । अतिव्यात्ताननस्यतालुनि दन्तमूलेषुच

अर्थ—जिस पुरुषके दोनोहाथ स्तंभित सरीखे लंवायमान होकर दोनो कूखोंसे चिपटेसे होजावे; उसके पार्श्व सबधी शिराका वेध करे, तथा शिश्न स्तब्ध होनेसें शिश्नसंवधी शिरावेधकरावे, और जिव्हाग्र काटनेनेसै जैसी हो एसी होजावे उसके जीव्हाके नीचेकी शिरावेधे, तथा मुखफटासा रहजावे उस पुरुषकी तालुस सम्बधी और दंतसवंधी शिरावेधनी चाहिये ।

अनुक्तयंत्रप्रकारकहतेहै.

एवंयंत्रोपायानन्यांश्चशिरोत्थापनहेतून्बुध्यावेक्ष्य शरीरवशेनव्याधिवशेनविदध्यात्

अर्थ—इसप्रकार यंत्रोपाय, तथा अन्ययंत्रोपाय शिराओंके उत्थापनके हेतु कहे है ऐसे उपायोंकरके वैद्य स्वबुद्धिसे व्याधि और शरीरका बलदेस उसके अनुसार उपचारकरे, अर्थात् शरीर प्रदेश विशेष करके शस्त्रविशेषकी योजना करनी चाहिये ।

वेध्यशरीरकेतारतम्यकरकेशस्त्रयोजना.

मांसलेषुअवकाशेषुयवमात्रंशस्त्रंविदध्यात् अतोन्यथा अर्धयवमात्रंव्रीहिमुखेनअस्थ्नामुपरि ।

अर्थ—मासल प्रदेश कहिये जठर, कूले, ऊरू आदि इनमें शिरावेध करके रक्तकाढनेके लिये यवप्रमाण शस्त्र योजना करे। और इतर स्थलके रुधिर निकालनेको अर्धयवके प्रमाण शस्त्रलेवे, और बहुतहड्डीवाले अगमें रुधिर निकालनेके वास्ते चावलकी कनीके समान शस्त्रलेवे, शीत, उष्ण, वर्षा, इस भेदसें काल तीनप्रकारका है, उनमें विशेष कहते है ।

शिरावेधकाल

व्यभ्रेवर्षासुग्रीष्मेशीतलेहेमन्तेउष्णे ।

अर्थ—वर्षाकालमें जिस दिन बदल न हो उसदिन फस्त खोले, और ग्रीष्मऋतुमें जिसदिन अत्यंत गरमी न हो उसदिन शिरावेध करे, अथवा तीसरे प्रहर जिससमय ठंडक होजावे उससमय रुधिर निकलवावे, हेमंत ऋतुमें जिसदिन गरमी होवे उससमय रुधिर निकलवाना चाहिये, परंतु हेमंत ऋतुमें रोग असाध्य प्राणनाशक दीखेतो कढवावे, अन्यथा न कढाना चाहिये। इसजगे हेमंत ग्रहण सामान्य शीतकालका बोधकहै।

सुविद्धशिराकेलक्षण

सम्यक्शस्त्रनिपातेनधारयायास्रवेदसृक् ।
मुहूर्तंरुध्वातिष्ठेत्तुसुविद्धांतांविनिर्दिशेत् ।

अर्थ—उत्तम शस्त्र लगनेसैं धारारूप करके क्षणमात्र रक्त निकले और पट्टी बांधनेके पश्चात् निकले नहीं वह शिरा उत्तम विधी जाननी ।

दूषितशिराकेवेधहोनेसैंप्रथमदुष्टरुधिरनिकलताहैयहदृष्टांतदेकरकहतेहै.

यथाकुसुम्भपुष्पेभ्यःपूर्वंस्रवतिपीतिका ।
तथाशिरासुदुष्टासुदुष्टमग्रेप्रवर्तते ।

अर्थ—जैसैं कसूमके फूल भिजोनेसैं प्रथम पीला पानी निकलताहै. पश्चात् उत्तमरंग निकले है. उसीप्रकार फस्तखोलनेसैं प्रथम विकृत रुधिर निकलकर पीछे उत्तम रुधिर निकलता है ।

उत्तमविद्धहोनेपरभीरुधिरननिकलनेकाकारण

मूर्छितस्यातिभीतस्यश्रांतस्यतृषितस्यच ।
नवहंतिशिराविद्धास्तथानुत्थितयंत्रिता ।

अर्थ—फस्त खोलनेके समय जिस मनुष्यको मूर्छा आजावे, अथवा अत्यंत डरपे, तथा अत्यंत श्रम युक्त होजावे, वा अत्यंत प्यासा हो, ऐंसे मनुष्यकी शिरासैं रुधिर अच्छे प्रकार नहीं स्रवे। कारण यह है कि मूर्च्छादिक करके वायू कोपको प्राप्तहो शिरा (नसों) के मुखको बंदकर देताहै । तथा शिराके फूलनेविनायदिवेधी जावे तोभी रुधिर नहीं निकले, कारण यह है कि, ऐंसी शिराओंसें रक्तप्रवाह अभिमुख नहीं होवे.

क्षीणमनुष्यके रुधिर काढनेपर अत्यंत घवडा हट होनेसे
क्रम कहते है

क्षीणस्यवहुदोपस्यमूर्च्छयाभिहतस्यच ।
भूयोपराण्हेविश्राव्याअपेरद्युस्र्यहेपिवा ।

अर्थ—जो मनुष्य अत्यंतक्षीण होगयाहो, तथा जिसकी देहमें वातादि दोप अत्यंत प्रवल होवे; उस मनुष्यका रुधिर एकहीवार न काढे, किंतु दूसरीवार अपरान्हमें अथवा दूसरे-तीसरे दिन कढावे। तथा रुधिर काढते समय जिसको मूर्छा आयजावे उसकाभी रुधिर एकहीवार न निकाले, धीरेधीरे अपरान्ह कालमें अथवा दूसरे तीसरे दिन काढना चाहिये।

रक्तस्रावकावहुवानिषेध

रक्तंसशेपदोपंतुकुर्यादपिविचक्षणः ।
नचातिनिस्रुतिंकुर्याच्छेपंसंशमनैर्जयेत् ।

अर्थ—विचक्षण वैद्य वहुत रुधिर निकाल एकही दफे दोप दूर न करे किंतु कुछशेप रहनेदे अवजो शेपदोप थोडे रहगएहो उनको सशमन आदि औषधों करके जीते

रक्तकाढनेकीपरमावधि.

वलिनोवहुदोपस्यवयस्थस्यशरीरिणः ।
परंप्रमाणमिच्छंतिप्रस्थंशोणितमोक्षणे ।

अर्थ—जो पुरुप वलवान्हो तथा जिसके शरीरमें वातादि दोप वलवान् हो तथा प्रौढ अवस्था हो, उसमनुष्यका रुधिर १ एकप्रस्थ निकालना चाहिये (इसजगे १३॥ साढेतेरह पलका एकप्रस्थ होताहे)

इस्मेप्रमाण

वमनेचविरेकेचतथाशोणितमोक्षणे ।
सार्धत्रयोदशपलंप्रस्थमाहुर्मनीपिणः ।

अर्थ—वामन और विरेचन तथा रक्तस्राव इसविषयमें साडेतेरह पलका प्रस्थजानना.

कौनसेरोगमेंकौनसीशिरावेधनी.

तत्रपाददाहपादहर्षअपवाहुकचिमचिमविसर्प वातशोणितवातकंटकाविचर्चिकापाददारिप्रभृति षुक्षिप्रमर्मोपरिष्टात्द्व्यङ्गुलेव्रीहिमुखेनशिरांविध्येत् ।

अर्थ—पाददाह, पादहर्ष, अपबाहुक, चिमचिम, विसर्प, वातरक्त, वातकंटक, विचार्चिका, और पाददारी आदिरोगोंमें तथा तत्सदृश अन्यरोगोंमें तथा तत्संबंधी अन्यरोगोंमें क्षिप्रसंज्ञक मर्मके ऊपर दो अंगुल जगे छोड उसजगे शिरा व्रीह्यग्रप्रमाण शस्त्रकरके वेधनी, श्लीपदरोगमें उसके चिकित्सा प्रकर्णमें जिस प्रमाण वेधना लिखाहै उसीप्रमाण शिरा वेधनी चाहिये, क्रोष्टुशीर्ष, खंज, पंगु; इत्यादिक वातरोगोंमें, जंघामें, इन्द्रमर्मके नीचेकी शिरावेधनी चाहिये।

अपचीरोगमेंशिरावेध.

अपच्यामिन्द्रवस्तेरधस्तात्द्व्यंगुले ।

अर्थ—अपची रोगमें, इन्द्रवस्ती मर्ममें अधोभागमें, दो अंगुल जगेमें शिरावेधनी चाहिये। परंतु अपची उत्पन्नहोतेही वेधनी चाहिये।

गृध्रसीमेंशिरावेध.

जानुसन्धेरुपर्यधोवाचतुरंगुलेगृध्रस्याम् जानुमूलसंश्रितायांगलगंडे ।

अर्थ—गृध्रसी नामक वातरोगमें, घोंटुओंके ऊपर अथवा नीचे चार अंगुल के वीच शिरावेधे। जानुमूलाश्रित शिरा गलगंडमें वेधे इसकरके दूसरा पैर और हाथ इनकी शिराका वर्णन हुआ कारण यहहै कि, हाथमें ये दाहादि रोग है, और उसीप्रकार शिरा भी है।

हस्तपादादिकोंमेंविशेषकहतेहै
प्लीहमेंशिरावेध.

विशेषतस्तुवाहौकूर्परसंधेरभ्यन्तरतोवाहु
मध्येप्लीन्हिकनिष्ठिकानामिकयोर्मध्येवा।

अर्थ—पैरोंकी अपेक्षा हाथोमें विशेषकर्के प्लीहसबधी रोगोंके दमनार्थ कूर्पर (कोहनी) की सधीको संधीके समीप भुजाके मध्यकी शिरा अथवा कनिष्टका उगली और अनामिका इन दोनोंके मध्यकी शिरा वेधे, उसीप्रकार यकृदाल्युदर तथा कफोदर कफजन्यक श्वासयुक्त. कफावृत वायुजन्य खासी और श्वास इनमें दहनी हाथकी शिरावेधनी चाहिये। परंतु यकृदाल्युदरके पूर्वावस्थामें वेधनी चाहिये; गयी आचार्य कहताहै कि, श्वास खासी अल्प होनेसे इनके मार्ग शुद्धकरने मात्रको शिरावेध करना लिखाहै। किंतु अतिरिक्त होनेसे शिरावेध न करे क्योंकि श्वास खांसी में शिरावेध निषेध लिखआएहै। इसीसे गृध्रसीमें जो शिरावेधनी कहीहै वही विश्वाचीमें जाननी।

प्रवाहिकामेंशिरावेध

श्रोणींप्रतिसमंताद्व्यंगुलेप्रवाहिकायांशूलिन्याम्।

अर्थ—जो रक्तवृत्त वातशूल करके युक्त तथा वहुत दिनोकी प्रवाहिका उरुके शांत्यर्थ श्रोणिके आसमंतात् भागकी द्व्यंगुलदेशमें शिरावेधे, और परिकर्तिका, उपदंश, शुक्रदोष, शुक्रव्यापत्, इनरोगोमें लिंगकी शिरावेधे

मूत्रवृद्धीमेंशिरावेध

वृषणयोः पार्श्वेमूत्रवृध्याम्।

अर्थ—मूत्रवृद्धीरोग पूर्णदशामें पहुचनेसे वृषणोंके दोनो वाजू की शिरा वेधनी और नाभीके अधोभागमें सेवनके वामभागमें ऊपरकी शिरावेधे.

विद्रधितथापार्श्वशूलमेंशिरावेध

वामपार्श्वेकक्षास्तनयोरन्तरेविद्रधौपार्श्वशूलेच।

अर्थ—इसजगे वामपार्श्व करके दोनो पार्श्व जानने, इनमें विद्रधि अथवा पार्श्वशूल होनेसे दोनो कूखोंमें और स्तन इनके मध्यमें शिरावेधनी

चाहिये, उदाहरण। जैसें वाए अंगमें होनेसें वामस्तन और वामकूख इन दोनोके मध्यकी शिरा वेधनी, उसीप्रकार दहनी वाजू जाननी, कोई ऐंसें कहतेहै कि कफोदरमें ही ये शिरावेधनी, परंतु यहबात ठीक नही है। क्योकि पहले यकृद्दाल्युदर, और कफोदर इनमें दक्षिणवाहु संबंधी शिरा वेधने के लिये कह आएहैं।

बाहुशोषतथाअपबाहुकइनमेंशिरावेध

बाहुशोषापबाहुकयोरप्येकेवदन्त्यंसयोरंतरे।

अर्थ—शोणितावृत वातजन्य जो बाहुशोष और अपबाहुक तिनमें कंधे के मध्यदेशकी शिरावेध करे, केवल एकवात सें प्रगटमें न करे, ऐंसें कोई आचार्य कहतेहै। परंतु अपबाहुकको स्नेहन, स्वेदनादि उपचारोंकानिषेधहै। सामान्यशिरावेधकानिषेधनहीं है। बाहुशोषमें केवल वायुका निषेध है परंतु अवस्था भेदकरके शिरावेध करावे। तथा जिस कालमें उष्णाम्ल लवणादि को करके पित्तकुपित होकर उसमें वायु मिलकर पीडादेता है। उस कालमें शिरावेध करावे।

तृतीयकज्वरपरशिरावेध

त्रिकसंधिमध्यगतांतृतीयके

अर्थ—तृतीयक ज्वरमें कंधेके मध्यगत त्रिकसंधी कहिये नाडकीसंधी उसकी शिरावेध करे।

चातुर्थकज्वरमेंशिरावेध

अधस्कंधगतामन्यतरपार्श्वस्थितांचतुर्थके

अर्थ—चातुर्थक अर्थात् चोथैया ज्वरमें कंधेके नीचे वांईतरफ अथवा दहनी तरफकी शिरावेधे.

अपस्मारमेंशिरावेध

हनुसंधिगतामपस्मारे

अर्थ—अपस्मार कहिये मृगी इसरोगमें हनुसंधिके समीपस्थ शिरावेधनी चाहिये.

उन्मादरोगमेंशिरावेध

शंखकेशान्तसन्धितामुरोपाङ्गललाटेषुउन्मादे ।
केचिदत्रउन्मादेअपस्मारेचेतिपठन्ति

अर्थ—उन्मादरोगमें शंखगत, केशांतसंधिगत, उर, अपांग, और ललाट इनमें शिरा वेधकरे । तथा कोई अपस्मारमें यह शिरावेधे ऐसा कहतेहै, परंतु वाग्भटादि *ग्रंथोंके विरुद्धहोनेसैं यह पाठ उत्तम नहींहै ।

जिव्हारोगतथादंतव्याधिमेंशिरावेध

जिव्हारोगेअधोजिव्हायाःदन्तव्याधिषुच

अर्थ—कटकादि जिव्हारोग तथा कृमिदंतादि दंतरोग इनमें जिव्हाके अधोभागकी शिरावेधे ।

तालुरोगमेंशिरावेध

तालुनितालव्येषु

अर्थ—तालुसंबंधी रोगोंमें तालुसंबंधी शिरावेधनीचाहिये

कर्णशूलऔरकर्णरोगमेंशिरावेध

कर्णयोरुपरिसमंतात्कर्णशूलेतद्रोगेच

अर्थ—कर्णशूल और इतर कर्णरोग इनमें कानके ऊपर आसमंतात् भागकी शिरावेधे ।

गंधग्रहणादिनाशारोगमें

गंधाग्रहणेनासारोगेषुचनासाग्रे

अर्थ—नाकमें गंधका ज्ञान जाता रहे अथवा इतर नासिकाके रोगोंमें नासाग्र संबंधी शिरावेधे, कर्णशूल और गंधाग्रहण इन दोनो रोगोंके कर्णरोग और नासारोगके कहनेसैंही ग्रहणहोगया तथापि विशेषता दिखानेको दूसरे कहाहै ।

*तथाचवाग्भट उरोपाङ्गललाटस्थामुन्मादेह्यस्मृतौपुनः । हनुसंधौसमस्ते वाशिराभ्रूमध्यगामिनी ॥

तिमिरपाकादिनेत्ररोगोंमें

तिमिरपाकप्रभृतिषुअक्ष्यामयेषु।
उपनाशिकाल्ललाटस्थाअपांग्यावा

अर्थ—तिमिर और नेत्रपाक इत्यादि नेत्ररोगोंमें नाशिकाके समीपकी अथवा ललाटस्थ अथवा अपांगस्थ शिरावेधनी। अधिमंथ आदि मस्तक रोगोंमें यही शिरावेधे, इसजगे प्रभृति ग्रहण जो करा है उससैं क्षुद्ररोगोंमें जो अरुंषिका आदि मस्तकरोग लिखे है उनका ग्रहण है।

दुष्टशिरावेधकेलक्षण

अतऊर्ध्वंदुष्टव्यध्यान्मनुष्याव्याख्यास्यामः। तत्रदुर्विद्धा
ऽभिविद्धासंकुचितापिचिताकुटिताप्रसृताऽत्युदीर्णान्तेवि
द्धापरिशुष्कक्वणितावेपिताऽनुत्थिता आविद्धशस्त्रहतातिर्य
कूविद्धाअपविद्धाअव्यध्याविद्रुताधेनुकापुनःपुनर्विद्धाशि
रास्नाय्वास्थिसंधिमर्मसुचेतिविंशतिर्दुष्टव्यध्या

अर्थ—अब दुष्ट विद्ध शिराओंको कहते है जैसैं कि दुर्विद्धा१अभिविद्धा २ संकुचिता३पिचिता ४ कुटिता ५ अप्रस्तुता ६ अत्युदीर्णा७अन्तेविद्धा८परिशुष्का ९ क्वणिता १० वेपिता ११ अनुत्थिता १२ अविद्धशस्त्रहता १३तिर्यक्विद्धा १४ अपविद्धा १५ अव्यध्या १६ विद्रुता १७ धेनुका१८ पुनःपुनर्विद्धा १९ शिरास्नायु अस्थिसंधिमर्म सुविद्धा २० इसप्रकार दुर्विद्ध शिरा वीसप्रकारकी जाननी

दुर्विद्धशिराओंकापृथक् २ वर्णन

तत्रयासूक्ष्मविद्धाऽव्यक्तमसृक्स्रवतिरुजाशोफवतीसादुर्वि
द्धाप्रमाणातिरिक्तविद्धायामन्तःप्रविशतिशोणितमितिप्रवृ
त्तशोणितावासाऽतिविद्धा। कुञ्चितायामप्येवम् कुण्ठशस्त्र
मथिताप्टथुलीभावमापन्नापिच्चिता। अनासादितापुनःपुन
रंतरयोश्वबहुशस्त्राक्षिहताकुट्टिता। शीतभयमूर्च्छाभिरप्रवृत्त
शोणिताप्रस्तुता। तीक्ष्णमहामुखशस्त्रविद्धात्युदीर्णा।अल्पर

क्तस्राविण्यन्तेविद्धा। क्षीणशोणितस्यानिलपूर्णापरिशुष्का। चतुर्भागासादिताकिंचित्प्रवृत्तशोणिताक्कणिता । दुःस्थानबन्धनाद्वेपमानायाःशोणितसंमोहोभवतिसावेपिता। अनुत्थितविद्धायामप्येवं। छिन्नातिप्रवृत्तशोणिताक्रियासङ्करीशस्त्रहता। तिर्यक्प्रणिहितशस्त्राकिंचिच्छेषातिर्यक्विद्धा। बहुशशतावधिशस्त्रप्रणिधानेनापविद्धा। अशास्त्रकृत्याअव्यध्या। अनवस्थितविद्धाविद्रुता। प्रदेशस्यबहुशोघटनादारोहव्यधात् मुहुर्मुहुःशोणितास्त्रावाधेनुका । सूक्ष्मशस्त्रव्यधनात्बहुशो भिन्नापुनःपुनर्विद्धा ॥

अर्थ—यदि शिरा सूक्ष्मविद्ध होनेसे, अत्यंत थोडा रुधिर निकले और जिस्में पीडा तथा सूजनहो उस्को दुर्विद्ध शिरा कहते है। तथा जो प्रमाणसें अधिक वेधी गईहो; उसमें रक्तभीतर प्रवेश होकर अच्छे प्रकार न निकले उसको अभिविद्धा शिरा कहते है, तथा संकुचिता शिराकेभी येही चिन्हहै, और भौंतरे शस्त्रद्वारा वेध करनेसें जो शिरा मर्थीसी होकर मोटी हो जावे उसको पिच्चितशिरा कहते है, जो शिरा अच्छी रीतिसें शुद्ध न हुईहो वह वारंवार अनेक शस्त्रोंसें वेधी गईहो उसको कुट्टिता कहते है, तथा शीत भय मूर्च्छा इत्यादि कारणों करके जो स्रवे नही उसको अप्रस्तुता कहते है, तथा तीक्ष्ण और बडे मुखवाले शस्त्रसें जो शिरा विद्ध हुईहो उसको अत्युदीर्णा कहते है, जिसमें थोडा रुधिर निकले उसको अंते विद्धा कहते है, जो रक्तक्षीण होनेके अनंतर वायुकरके परिपूर्ण होजावे उसे परिशुष्का कहते है, जो चारोतरफसे वेधी जावे और जिसमेंसे थोडा रुधिर निकले उसे क्कणिता कहते हैं, जो दुष्टस्थानमें बाधनेसे कंपयुक्त होवे और रुधिर निकले नहीं उसे वेपिता कहते है, और जो अच्छी रीतिसें फुली नहो उसे बेधे इसीसे उसमेंसे रुधिर निकले नही उसे अनुत्थिता कहते है, जो शस्त्रसे टूटकर उसमेंसे अत्यंत रुधिर निकले इसी कारण अवयवोंके चलन वलनादि व्यापार बंद होजावे

उस शिराको अविद्ध शस्त्रहता कहते है, तथा तिरछा शस्त्र लगनेसैं यथार्थ विधी नहो और कुछ अंश विधनेसैं रह गया हो उसैं तिर्यक् विद्धा कहते है तथा सैंकडो शस्त्रोंके लगनेसैं यथार्थ न विधे उसे अपविद्धा कहते है और जो शस्त्रोंके लगनेसैं न विधे उसे अव्यध्या कहते है. तथा जगेजगे पर वेधीगईहो उसे विद्रुता कहते है जो अत्यंत वेधनेसैं वारंवार स्रवे उसे धेनुका कहते है. बहुत सूक्ष्म शस्त्र करके वेधनेसैं रक्त स्रवे नहीं अर्थात् वारंवार वेधनेसैं जगे-जगे छिद्र पडजावे उसे पुनः पुनर्विद्धा कहते है और जो अस्थि शिरा संधीम-र्मोंमें विद्धहुई है उससैं वही वही अवयव पीडा करे उसैं मर्मविद्ध शिरा जाननी.

शिरावेधनेमेंअत्यंतसावधानीचाहिये

शिरासुशिक्षितोनास्तिचलाह्येताःस्वभावतः
मत्स्यवत्परिवर्त्ततेतस्माद्यत्नेनताडयेत्

अर्थ—शिराओंके विषयमें अभ्यास करके निपुण अैसा कोई नहीं होवे. इसका यह कारण है कि वे शिरा स्वभाव करके मछलीके सदृश अतिचंचल है अतएव बहुत सावधानीके साथ वेधनी चाहिये। शस्त्रकर्ममें निपुण वैद्य उससैं भी कभी २ विपर्यय होजाताहै यह कहते है.

अयोग्यशस्त्रद्वारावेधनेकेअवगुण

अजानतागृहीतेतुशस्त्रेकायनिपातिते।
भवन्तिव्यापदश्चैताबहवश्चाप्युपद्रवाः॥

अर्थ—वैद्य विनाजाने दुष्टशस्त्रको लेकर शिरावेधकरे अर्थात् फस्तखोले तो अनेक प्रकारके उपद्रव तथा व्याधि होती है.

इतरउपचारोंकीअपेक्षाशिरावेधकोआधिक्यताकहते है

स्नेहादिभिःक्रियायोगैर्नतथालेपनैरपि।
यान्त्याशुव्याधयः शांतिंयथाशांतिंशिराव्यधात्।

अर्थ—जैसी शिरावेध करके व्याधि शीघ्रशांति होतीहै; अैसी स्नेहन लेपन आदि उपचारोंसैं शीघ्र शांति नहीहो

शिरावेधचिकित्साकाअर्धांगहै.

शिराव्यधश्चिकित्सार्धंशल्यतंत्रेप्रकीर्त्तितम् ।
यथाप्रणिहितंसम्यक्बस्तिःकायचिकित्सिते ।

अर्थ–चिकित्सा कहिये रोगकी प्रतिक्रिया (इलाज) उसमें फस्त खोलना प्रधान अंगहै, जैसे कोष्ठशोधनके विषे बस्तिप्रयोगप्रधानहै, इसी प्रकार चिकित्सामें शिरावेधको प्रधानताहै । कोई (अर्ध) शब्दको सख्या वाचक कहते है; अर्थात् शिरावेध आधी चिकित्साहै और वमन, विरेचन, शमनादि सर्व आधीचिकित्सा है ।

अवस्निग्धादिपुरुषोंकोक्रोधादिकसामान्यकरके
त्यागनेयोग्यहैयहकहतेहै.

तत्रस्निग्धस्विन्नवांतविरक्तास्थापितानुवासिताशिराविद्धैःपरिहर्तव्यानिक्रोधोपवासमैथुनदिवास्वप्नवाग्व्यायामाध्ययनस्थानासनचंक्रमणशीतवातातपविरुद्धासात्म्याजीर्णान्यावल्लाभान्मासमेकेमन्यंते ।

अर्थ–स्निग्ध, स्विन्न, वांत, विरक्त, (जिसने दस्ताकी औषधलीनीहो) आस्थापित, अनुवासित, और शिराविद्ध; इतने पुरुषोंको क्रोधकरना, उपवास, मैथुन, दिनमेंसोना, बहुतबोलना, पढना, पढाना, स्थान और आसन, इनकी उलटपलट, और शीत, पवन, गरमी, और विरुद्ध, असात्म्य अजीर्ण, ऐसे अन्न इत्यादिक वर्जित है ।

रक्तस्रावकरनेकेसाधन

शिराविषाणतुंबैस्तुजलौकाभिःपदैस्तथा ।
[illegible]वगाढंयथापूर्वंनिर्हरेद्दुष्टशोणितम् ॥

अर्थ–अ[illegible]भ्यतराश्रित रुधिरके दूषित होनेसे उसको शिरा, विषाण, तूंबी, और जो[illegible]स इत्यादि कों करके पूर्वोक्त अतिक्रम न करके कढावे,

स्पष्टार्थयहहै कि, अभ्यंतराश्रित रुधिर अत्यंत गाढा न होवेतो जोख लगाकर निकालना, यदि अत्यंतभीतरहो उसको तूंबडीसैं निकाले, और उससैं भीतरी रुधिरको सिंगीसैं कढावे और सर्व देहगत हो उसको शिरावेध अर्थात् फस्त खोलकर निकालना चाहिये.

स्थानभेदकरकेउपायविशेषकहतेहै.

अवगाढेजलौकास्यात्प्रच्छन्नंपिण्डितेहितम्।
शिराङ्गव्यापकेरक्तेश्रृङ्गालाबूत्वचिस्थिते।

इतिसौश्रुतेअष्टमोध्यायः

अर्थ—अभ्यंतराश्रित रुधिर दुष्टहोनेसैं जोकलगावे, और जमकर गांठदार होगयाहो उसका फासणिद्वारा निकाले और सर्वांग दुष्टहुएरुधिरको शिरावेधकरनिकाले. त्वचागत दूषित रुधिरको तूंबी अथवा सिंगी लगाकर निकाले.

इतिश्रीआयुर्वेदोद्धारेबृहन्निघण्टुरत्नाकरेद्वादशस्तरंगः

नवमोध्यायः

शिराव्यधविधिशारीराध्यायके अनंतर शिरा धमनी और स्रोतस् एसब समान् होनेसैं धमनी व्याकरण अर्थात् धमनीका वर्णन करेहै.

अथातोधमनीव्याकरणंशारीरंव्याख्यास्यामः

अर्थ—धमनीके वर्णनरूप शारीराध्यायकी व्याख्या करतेहै।

धमनीशब्दकीव्युत्पत्ति

ध्मानादनिलपूरणाद्धमन्यः

अर्थ—वायुकरके पूरितहोकर जिन्होंका स्फुरणहोवे उनको धमनी कहते है।

धमनियोंकीसंख्या

चतुर्विंशतिधमन्योनाभिप्रभवाभिहिताः

अर्थ—नाभिसें २४ धमनी उत्पन्न हुईहै, ऐसें शोणित वर्णन प्रकरण में कहीहै।

शिराधमनीस्रोतसोंकाऐक्यकहतेहैं

तत्रकेचिदाहुःशिराधमनीस्रोतसामविभागः शिराविकाराएवधमन्यःस्रोतांसिच ।

अर्थ—कोई कहतेहै कि शिरा, धमनी, और स्रोतस् ए भिन्न नहीं है, किंतु कर्मभेद करके नाममात्र पृथक् २ है।

शिरादिकोंकाभेदकहतेहै.

शरणात्शिरास्ताएवध्मानात्धमन्यःस्रवणात्स्रोतांसि

अर्थ—(शरणात्) कहिये सर्वरस, शरीरमें जगेजगे पहुचानेसें शरीर-को पोपण करेहै, इसीसें शिराकहतेहे। तिनमें कोई पवनपूरितहोकर स्फुरण युक्त होतीहै, वो धमनीनामसें विख्यात है। तथा कोई प्रकारकी शिरा मल-मूत्रादिकोंको स्रवतीहै, अतएव उन्होको स्रोतस् कहतेहै जैसें गेहूं का चूंन, मेंदा और दूधके दही मक्खन आदि प्रकारांतर होजाते है उसीप्रकार शिरा, धमनी और स्रोतसोंमें भेदहै।

मतान्तर

आकाशीयावकाशानांदेहेनामानिदेहिनाम् । शिराः स्रोतांसिभागाःखंधमन्योनाड्यआशयाइत्यादि

अर्थ—देहधारी पुरुपोंके देहमें आकाश संबधी जो अवकाशहै उसीके शिरा, धमनी, स्रोतस्, ख, नाडी, और आशय इत्यादि नामहैं

उक्तमतकाखण्डन

तत्तुनसम्यक्अन्याएवधमन्यःस्रोतांसिचशिराभ्यःकस्मा दव्यंजनान्यत्वात्मूलजान्नियमात्कर्मवैशेष्यात्आगमाच्च

अर्थ—ऊपर कहा हुवा मत उत्तमनहींहै क्योंकि शिरासैं धमनी, स्रोतस् ये जुदै २ है. इनका कारण यहहै. कि इन्होंकें पृथक् होनेयें चार हेतुहै. उनको कहतेहै (व्यञ्जनान्यत्वात्) कहिये. इनके लक्षण और वर्ण नील, अरुण, शुक्ल, लोहित, इत्यादिकहै. और शब्दादि वह धमनियोंका वर्ण नहीं कहा इसीसैं (स्वधातुसमवर्णत्वम्) अर्थात् धमनी जिस २ धातुओंको वहतीहैं उसी २ धातुके वर्ण समान वर्ण जानना चाहिये. इसी प्रकार स्रोतसोंके भी लक्षण जानने सो चरकमेंभी लिखाहै.

स्वधातुसमवर्णत्वकहतेहै.

स्वधातुसमवर्णानिवृत्तस्थूलान्यणूनिच ।
स्रोतांसिदीर्घाण्याकृत्येत्यादिकम्

अर्थ—स्रोतस् जिसजिस धातुओंको वहतेहै; उसीउसी धातुके समान उन्होंका वर्ण जानना, स्रोतस् आकृति करके गोल, तथा कोई २ मोटी, कोई बारीक, लंबीलंबी, ऐसीहै । इसप्रकार शिरा और धमनीयोंमें भेद जानना चाहिये ।

मूलनियमकहते हैं.

मूलजान्नियमात् । तासांमूलशिराश्चतु
श्चत्वारिंशत्इत्यारभ्ययावत्एतानिसप्तशि
राशतानिभवंतिधमनीनांचतुर्विंशतिधमन्यः
स्रोतसांपुनर्द्वाविंशतिः

अर्थ—मूलशिरा ४४ तिनमें से ७०० शिरा निकली हैं, तथा मूलभूत धमनी २४ है, और स्रोतस् २२ है, इसप्रकार मूलभूतशिरा धमनी और स्रोतस् इन्में भेद जानना ।

कर्मभेदकहते हैं.

शिराणांकर्मवैशेष्यंधमनीनांशब्दरूपरसगंधवहत्वा
दिकंप्राणान्नरसशोणितमांसवहत्वादिकंस्रोतसाम् ।

अर्थ—शिराओंके कर्म अतिघातादिक, धमनीके कर्म शब्दादि वहत्वादिक, और स्रोतसोंके कर्म प्राण, अन्नरस, रुधिर मास, मेद, इनूका वहनरूप जानना। इसप्रकार कर्मभेदरूप तृतीय हेतु जानना।

आगमरूपचतुर्थहेतुकहतेहै.

आगमोत्रायुर्वेदः सचतुर्थोभेदहेतुःतद्यथा शिराधमन्योयोगवहानिस्रोतांसीति।

अर्थ—आगमके कहनेसें इसजगे आयुर्वेदका ग्रहणहै। वह आयुर्वेद धमनी शिरा आदिके पृथक् होनेमें चतुर्थहेतुहै; जैसे इसी आयुर्वेद शास्त्रमें शिरा, स्रोतस्, धमनी ऐसा पृथक् निर्देशकियाहै, यथा [मर्मशिरास्नायुसन्ध्यस्थिधमनीः परिहरन्] इत्यादि वाक्योंमें शिरासें धमनी निर्दोप- पृथक् करके कहीहै। इसीसै स्पष्ट प्रतीति होताहैकि शिरा धमनी और स्रोतस् ए पृथक्रहै।

अवशिरास्रोतसादि परस्पर भिन्नहै तथापि उन्केकर्म मिलेहुएसे दीखतेहैं ऐसैंकहतेहै।

केवलंतुपरस्परसन्निकर्षात्सदृशाङ्ककर्मकत्वात्सौक्ष्म्याच्च। विभक्तकर्मणामपिअविभागइवकर्मसुभवतिअतिसंनिकृष्टत्वादिहेतुचतुष्टयेनकर्मसुअपृथक्त्वमिवभवति।

अर्थ—शिरा, धमनी, स्रोतस्, ये परस्पर मिले हुएहै। तथा सबका आगम और कर्म ये समान है तथा ए सब अतिसूक्ष्म है। अतएव कर्मकरके विभक्त अर्थात् पृथक् २ होनेपरभी कर्मकेविषे अविभक्तसै (मिलेहुएसै) प्रतीत होतेहै इस विषयमें दृष्टांतहै। जैसै पाच सात प्रकारके पदार्थ एकत्रकर बरानेसै सबकी ज्वलनक्रिया वस्तुतः भिन्न भी होनेपर एकही दीखेहै। इसप्रकार इसजगे समझना। उसीप्रकार दूसराहेतु कहतेहै [सदृशागमकत्वात्] अर्थात् शिरादिकोंके आप्त वाक्य [आकाशीयावकाशाना] इत्यादि सर्वोके समानहै। तीसरा हेतु कहतेहै [सदृशकर्मकत्वात्] अर्थात् शिरा धमनी स्रोतस् इनके रसादि वहन रूपकर्म समानहै तथा अतिसूक्ष्म है, चारोहेतुओंसें शिरादिकर्म विषयमें एकसे दीखतेहै।

नाड्यादिकोंकीगतिकहतेहै.

तासांखलुनाभिप्रभवानांधमनीनाम्
ऊर्ध्वगादशदशाचाधोगामिन्यश्चतस्रास्तिर्यगाः।

अर्थ—नाभिसें प्रगट हुई जो २४ धमनी, तिनमें ऊपरके भागमें जानेवाली १० और अधोभागमें जानेवाली १० तथा आडी तिरछी जानेवाली ४ धमनीहै ऐसें २४ हुई।

धमनीनाडियोंकेकर्म

ऊर्ध्वगाःशब्दरूपरसगंधप्रश्वासोच्छ्वासजृंभितक्षुधितहसित
कथितरुदितादीन्विशेषानभिवहन्त्यःशरीरंधारयन्ति।

अर्थ—ऊर्ध्वगत धमनी शब्दादि क्रियाविशेषोंको वहतीहुई देहको धारण करतीहै। शब्द, रूप, रस, गंध, एप्रसिद्धहै, प्रश्वासोच्छ्वास कहिये पवनका भीतरलेना और छोडना, स्वप्रकृत धमनीका धर्म, रोदनादिअश्रुवाहिनीके धर्म. आदिशब्दकरके रूपादिवाहिनी संबन्धी प्रेक्षणादि कर्मोंका ग्रहण जानना.

धमनीकेकार्यकहतेहै.

तास्तुहृदयमभिपन्नास्त्रिधाजायन्ते।

अर्थ—ऊर्ध्वगत धमनी नाभिसें हृदयके प्रति आयकर तीनप्रकारकी होतीहै। तिनमें दो धमनी करके भाषण, दोसें घोषण, दोसें निद्रा, दोसें जागना, और दो अश्रुवाहिनी, तथा दो स्तनाश्रितहोकर स्त्रियोंके स्तनसंबंधी दूधको वहतीहै, तथा वेही स्तनाश्रित होनेपर पुरुषोंके शुक्रको वहतीहै, इसप्रकार ऊर्ध्वगत धमनी तीनप्रकार के ३० विभागकहेहैं। ये उदर, पार्श्व, पृष्ठ, उर, स्कंध, ग्रीवा, बाहु इनको धारण करतीहै. तथा शब्द, घोष, निद्रा, प्रबोध, इनको प्रत्येक दोदो धमनी वहतीहैं। ऐसें ये आठधमनी रजप्रवर्तित आत्मप्रयत्न प्रबोध मनोनुगत धमनीकरके ग्रहणकराजायहै। परंतु मन परमाणुरूपहै, इसीसें एककालमें उसधमनीके विषे प्रवृत्त नहींहोता। तात्पर्य यहहैकि, उनधमनीयोंमें जो धमनी मनसहवर्त्तमान युक्तहोतीहै, उसके योगकरके शब्दादिकोंका ग्रहणहोताहै। एकही कालमें सर्व शब्दस्पर्शादि कोंका धमनीकरके ग्रहण नहींहोवे। ?दिक तिर्यग्गत धमनीके कर्म आगे

इसीअध्याय में कहेगे । भाषण (ताल्वादि स्थान व्यापार निष्पादित अकारादि वर्णयुक्त शब्द) और घोपा (एतद्विपरीत अव्यक्तशब्द) तथा द्वाभ्यां स्वापिति (अर्थात् तमोगुण युक्त दो धमनी करके निद्रा लेना) सतोगुण युक्त दो धमनीकरके जाग्रतहोना, तथा ऊर्ध्वगत धमनी उदरादि कोंको धारण करेहै ।

अधोगतधमनीकेकार्य

ऊर्ध्वगमास्तुकुर्वन्तिकर्माण्येतानिसर्वशः । अधो
गमास्तुवक्ष्यामिकर्मचासांयथायथम् ।

अर्थ—इसप्रकार ऊपर जानेवाली धमनियोंके कर्म कहकर अब अधोगत धमनियोंके कर्म कहतेहै.

अधोगमास्तुवातमूत्रपुरीषशुक्रार्त्तवादीनधोवहन्ति
तास्तुपित्ताशयमभिप्रपन्नास्तत्रस्थमेवान्नपानरसंवि
पक्वमौष्ण्याद्विवेचयन्त्योऽभिवहन्त्यःशरीरंतर्पयन्ति ।

अर्थ—अधोभागमें जानेवाली धमनी वात, मूत्र, मल, शुक्र, आर्त्तव, इत्यादि कोंको अधो भागमें वहतीहै, और वे धमनी पित्ताशयमें प्राप्तहो उसजगे अन्न, पान, संबंधी रस जठराग्नि की उष्मा करके पक्वहुए उनको यथास्थित योजना करके जितना पक्वहुआ उतनेको जहा तहां पहुचाकर सर्वशरीरको पोषण करेहै ।

अधोगतधमनीसेऊर्ध्वशरीरपोषणकैसेंहोताहैसोकहतेहै.

ऊर्ध्वगानांरसस्थानंचाभिपूरयान्तिमूत्रपुरी
षस्वेदांश्चविवेचयान्ति ।

अर्थ—अधोगत धमनी, ऊर्ध्वदेशगत धमनीके रसस्थानको पूर्ण करती है. स्पष्टार्थ यह है कि, वेधमनी आमाशय और पक्वाशयमें प्राप्तहो अन्न रसको वर्तुलीकृत करके रसस्थानको पूर्ण करे है, और ऊर्ध्वगामिनी धमनी उसजगेसें रस जगेजगे पहुचायकर सर्व शरीरको तृप्त करे हैं, अतएव अधोगत धमनीही सर्व शरीको पोषण करती है, अैसे फलित होता है । और आम पक्वाशयमें

अधोगत धमनी विपक्व हुए अन्नसैं मूत्र, पुरीष, इत्यादिकोंको पृथक् २ करे है तथा उसजगे तीनप्रकार होते है अतएव ३० धमनी जाननी।

अधोगत ३० धमनियोंकेकर्म.

तासांवातपित्तकफशोणितरसान्द्वेद्वेवहत स्तादशद्वेअन्नवाहिन्यौअंत्राश्रितेतोयवहेद्वेमूत्रवस्तिमाभिप्रप न्नमूत्रवहेद्वेशुक्रप्रादुर्भावायद्वेविसर्गायद्वेतेएवरक्तमाभिवहतो विसृजतश्चनारीणामार्त्तवसंज्ञेद्वेवर्चोनिरसिन्यौस्थूलांत्रप्रतिबद्धे

अर्थ—तिनमें वात, पित्त, कफ, रस, रक्त, इनके वहनेवाली प्रत्येककी दोदो है। सर्व मिलकर१०हुई, तथा अंत्राश्रित होकर अन्नके वहनेवाली २और उदकवहनेवाली२मूत्राश्रित मूत्रवहनेवाली २तथा शुक्र उत्पन्न करनेवाली२और शुक्रका विसर्ग करनेवाली २ वेही स्त्रियोंके आर्त्तव संज्ञक रक्त वहनेवाली २ तथा विसर्ग करनेवाली जाननी, और२ स्थूलांत्रोंसैं बंधीहुई पुरीषको वहती है।

अष्टावन्यास्तिर्यग्गामिनीनांधमनीनांस्वेदमपतर्पयन्तिता स्त्वेतास्त्रिंशत्सविभागाव्याख्याताःएताभिरधोनाभेःपक्का शयकटीमूत्रपुरीषगुदवस्तिमेढ्रसक्थीनिधार्यंतेयाप्यंतेच।

अर्थ—दूसरी आठधमनी औरहै, वे तिर्यग्गत धमनीके मुखप्रति स्वेदको प्राप्तकर उनको तृप्त करेहै, इसप्रकार अधोगत धमनीके विभाग कहेहै। वे नाभिके अधोभागके पदार्थ पक्काशय, कटि, मूत्र, पुरीष, गुदा, वस्ती, शिश्न, उरू, इनको भलेप्रकार धारण करेहै। वातादिकोंका वहन इनका सामान्य कर्म जानना।

तिर्यक्गतधमनी कहतेहै.

अधोगमास्तुकुर्वन्तिकर्माण्येतानिसर्वशः।
तिर्यगाःसंप्रवक्ष्यामिकर्मचासांयथायथम्।

अर्थ—नाभीके अधोभागमें जाने वाली धमनी पूर्वोक्त प्रकार कर्म करती है; अबतिर्यग्गत धमनीके जैसेजैसे कर्महै, तैसे तैसे कहतेहै।

तिर्यगानांचतसृणांधमनीनामेकैकाशतधासहस्रधाचोत्तरो त्तरंविभज्यन्ते तास्त्वसंख्येयास्ताभिरिदंशरीरंगवाक्षितंवि बद्धमाततंच । तासांतुमुखानिरोमकूपप्रतिबद्धानियैःस्वेदम भिवहंतिरसंचाभिसंतर्पयंत्यंतर्बहिश्चतैरेवाभ्यङ्गपरिषेकाव गाहालेपनवीर्याणिअन्तःशरीरमभिप्रतिपद्यत्वचिविपकानि तैरेवस्पर्शसुखमसुखंवागृण्हीते ।

अर्थ—शरीरमें बाँकी, तिरछी जानेवाली अैसी चार धमनी है, वो एक एक सौसौ हजारहजार अैसे उत्तरोत्तर विभागोंमें बटकर असंख्य होगई है । उनसे यह सर्वशरीर व्याप्तहो जालके सदृश बनाहुआ है । तथा उन धमनीयोंके मुख रोमकूपोंसे प्रतिबद्धहै, उनसे पसीना निकलताहै, तथा उस मुख करके सर्वशरीरके बाहरभीतर त्वचादिकोंके प्रति रसको प्राप्तकरतीहै । तथा उन्हीकरके अभ्यङ्ग, परिषेक, और जलादिकोंके बीच स्नान, तथा लेपन, इत्यादिको का वीर्य शरीरमें पहुचता है । तथा मनोनुगत उसी धमनी करके त्वचामें सुखदुःख, स्पर्श, आत्मा को अनुभव होताहै । इसप्रकार तिर्यग्गत चारधमनी सर्वांग गत विभागपूर्वक कहीहै, अब शब्दादिकोंको ग्रहण करनेवाली और सर्ग, स्थिति, प्रलय इनमें प्रकृतिभूत अैसीजो धमनी है उन्होंकी प्रक्रिया कहतेहै ।—

शब्दादिग्राहिणीतथासर्गादिकारकधमनीइनकीप्रक्रियाकहतेहै

पञ्चाऽभिभूतास्त्वथ पञ्चकृत्वः पञ्चेद्रियं पञ्चसु भावयन्ति । पञ्चेद्रियं पञ्चसु भावयित्वा पञ्चत्वमायान्ति विनाशकाले ।

पञ्चाभिभूताः पञ्चेद्रिय पञ्चकृत्व पचसुभावयन्तिच परं विनाशकाले पञ्चत्वं आयान्ति किंकृत्वापञ्चेद्रिय पञ्चसुभावयित्वा इत्यन्वयः ।

अर्थ—पंचभूतोंकरके व्याप्त, अथवा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, करके व्याप्त, अथवा आकाश, पवन, दहन, जल, और पृथ्वी, इनकरके व्याप्त अैसी धमनी उस [पचेंद्रिय] कहिये कर्मपुरुष जो है, ताय [पञ्चधाकृत्वा]

कहिये पांचजगे विभक्तकर पंचेद्रियोंके विषे [भावयन्ति] कहिये योजना करेहै, और विनाशकाल प्राप्तहोनेपर [पञ्चसु] कहिये श्रोत्रादिक इन्द्रियोंके अधिष्ठानोंके विषे अर्थात् आकाशादि कोंके विषे पृथक् पृथक् योजनाकर आप विनाशको प्राप्त होताहै। इसका खुलासा अर्थ यहहैकि आकाशादि पञ्चमहाभूतोंसैं प्रगटजो धमनी वे कर्म पुरुषको इन्द्रियोंके अधिष्ठानोंमें पांचवार भावनाकर तदनंतर इन्द्रीपंचकको आकाशादि भूतोंमें संयोजनाकर विनाशकालमें वे धमनी नाशको प्राप्त होती है।

अन्य आचार्य [पंचाभिभूतान्यथपंचकृत्वः इतिपठन्ति व्याख्यानयंतिच] इसप्रकार पाठको लिखकर उसकी व्याख्या करते है कि, आकाशादि पंच महाभूत कर्मपुरुषको श्रोत्रादि इन्द्रीयाधिष्ठानोके विषे योजनाकर आप विनाशकाल प्राप्त होनेसैं पंचत्वको प्राप्त होते है।

अन्य आचार्य [पञ्चाभिभूतास्त्वथपंचधा चेति पठंति व्याख्यानयंति च] इसप्रकार लिखकर उसकी व्याख्या करतेहैं कि, पंचाभिभूत जो धमनी है सो, पंचेन्द्रिय कहिये बुद्धीन्द्रिय पंचकोको शब्दादिकोके जो वचनादि पंचक अर्थोमें पांचवार योजनाकर विनाशकालमें आप नाशको प्राप्त होती है।

अबमतान्तरसैं धमनियोंकेकर्म आदि कहते है.

सव्यप्रकोष्ठात्कृदयस्यनाडी द्वितीयपर्शोस्तरुणास्थियावत्।
उर्द्ध्वगतात्र्यंगुलसंमितासा शाखेचतस्याहृदयंप्रयाते।
ततश्चपश्चात्प्रसृताक्तृतीयं कशेरुभित्तंननुसव्यपार्श्वे।
समागतास्यावपुषोमहत्यः शाखाश्चतिस्रोविसृताःसमन्तात्।
अवाङ्मुखीसाथकशेरुखण्डं तृतीयमासाखलुनिम्नदेशे।
भागत्रयंवर्णितमेतदेवस्मृतंहिमूलंधमनीगणस्य। धमन्यथोरस्थलगाविभिद्यपेशीप्रविष्टोदरगह्वरान्तः। इयंचमूलंधमनीगणस्यस्कंधोऽथवोक्तोऽपियथाद्रुमस्य। अतःशाखाःप्रशाखाश्चक्रमात्सूक्ष्मतराश्चताः। व्याप्नुवन्निखिलंदेहंशोणितौघप्रवाहिकाः। कलास्वस्थिषुपेशीषुमस्तुलुङ्गेचमज्जसु। सर्वत्रैवास्थि

ताएताधमन्योधमनीष्वपि । नास्तिवर्ष्माणितच्चाङ्गंधमन्यो यत्रनास्थिताः । केशादिष्वेवनाभ्यस्तानदृश्यन्तेकदाचन । हृदयाच्छोणितंशुद्धंनिर्मलंप्राणधारणम् । सुलोहितंसुखोष्णं चवाहयन्तिसमंततः । मुहुर्मुहुःक्षयंयान्तिसर्वाण्यङ्गानिदेहि नाम् । श्वासभापगतिस्पन्दरतिचिंताविकारणात् । क्षपयि त्वाक्षयंतेपामङ्गानांरक्तयोगतः । कुर्युःसम्वर्द्धनंनाड्योजनये रन्बलंतथा । सर्वाण्येवोपदानानिशारीराणिचशोणिते ।यतः सन्तिततस्तस्यात्कारणंदेहरक्षणे ।शोणिताज्जायतेपेशीकला मज्जास्थिरेतसी । बलौजसीमस्तुलुङ्गःसर्वंशोणितसम्भवम् । कुल्याभिःसलिलंयद्वदौद्यानिकमहीरुहान् । जीवयेत्तर्पयेत्तद्वद् धमनीभिश्वशोणितम् । सर्वाण्यङ्गानिजीवनामितिधन्वन्तरे र्मतम् । अतोधमन्योविज्ञेयाःप्रीणनेचापिहेतवः। शोणितस्रो तसांवेगात्स्पंदन्तेचधरामुहुः । तासांस्पन्दनतोज्ञेयंसुखंदुः खंचदेहिनाम् । अंगुष्ठमूलेधमनीसततंयापरीक्ष्यते । भागो द्वितीयोमूलस्यतदादिकीर्तिताबुधैः । कक्षेचापिप्रगण्डेचप्रको ष्ठेऽथकरेतथा । अंगुल्याद्यनुभूयेतबाह्वोरेपादयोरपि । मणि बन्धेयथानाडीतथागुल्फेऽनुभूयते। कण्ठेपार्श्वकपालेचवंक्षणे योनिशिश्नयोः । तनुत्वगावृतेष्वेवतथाङ्गेष्वपरेषुच । शोणि तौहाञ्चसूक्ष्माणामनुभावोगतेर्भवेत्यंयंहेतुंसमाश्रित्ययाति यांयांगतिंधरा । ययाययासुखंगत्यादुःखं वापिययायया । ययाययाचजीवोऽयंयातिमृत्युवशंध्रुवम् । मयासावर्ण्यतवे दस्यदर्पणेनाडिकाभिधे ।

अर्थ—हृदयके वामप्रकोष्ठसैं मूलधमनी की उत्पत्तीहै, यह इसस्थानसैं उत्पन्न होकर ऊर्ध्वाभिमुखहो दूसरी पांशूकी तरुणास्थिपर्यंत उपस्थितहै। यह ऊर्ध्वगामी अंशप्राय १ अंगुलके प्रमाणहै, इसजगेसैं दो शाखा निकलकर हृदययंत्रमें गमनकरेंहै। अनंतर ये पश्चान्मुखी होकर तीसरे कशेरुका के वामपार्श्वमें उपस्थित हुईहै। इसीजगेसैं तीसरी बडीशाखा निकलकर देहके अनेक स्थानोंमें फैलगईहै, इसके उपरांत यह अधोमुखी होकर चतुर्थ कशेरुकाके निम्नदेशमें उपस्थित हुईहै, यह कहे हुए भागत्रय समुदायको धमनीका मूलकहतेहै, अनंतर यह धमनी कुछथोडीदुर निम्नमुखहो वक्षस्थलकी पेशीको भेदकर उदरमें प्रवेश करतीहै इसको धमनीगणका मूल अथवा स्कंध कहतेहै। जैसैं वृक्षकी जड मेंसैं एकशाखा निकल ऊपर उसीमेंसैं डाली गुदेनके समूह प्रगट होतेहै, उसीप्रकार कहेहुए धमनीके भागत्रयमें सैं बहुतसी शाखा प्रशाखा रूप नाडी उत्पन्नहो क्रमसैं अतिसूक्ष्म होकर सर्वदेहमें फैलीहुईहै, कलासमूह, अस्थिगण, सबपेशी, मस्तिष्क, और मज्जा इन सबमें धमनी विद्यमानहै, धमनी समूहमें भी अतिसूक्ष्मतर धमनी देखनेमें आतीहै, शरीरमें असा कोईसा अंग नहींहै कि जिसमें धमनी नहींहै, केवल केशादिकोंमें धमनी नहीं दीखती धमनीगण हृदयसैं शुद्ध, निर्मल, सुलोहित, सुखोष्ण और प्राणरक्षण शक्तिसम्पन्न रुधिरको शरीरके सर्वस्थानोंमें वहन करतीहै, श्वासक्रिया, शब्दोच्चारण, गमन, स्पंदन, मैथुन, और चिंता आदि कारणमें जीवगणके समस्त अंग निरंतर क्षयहोतेहै, संपूर्ण धमनीविशुद्ध रुधिरके योगसैं उसी क्षीण अंशोको परिपूर्ण कर अंगसमूहको संवार्धित तथा वलोत्पादन करतीहैं, रुधिर सर्वप्रकार शारीरिक उपादान कारणरूपसैं विद्यमानहै इसहेतुसैं रुधिर देहरक्षाका मुख्य कारणहै, पेशी, कला, मज्जा, हड्डी, शुक्र, वल, ओज, और मस्तिष्क समुदाय इसीरुधिरसैं बनतेहै, जैसे पानीके वरहासैं खेत वा बगीचेकी क्यारीके वृक्षसमूह तृप्त होतेहै, और उसजलसैं उनवृक्षोंको जीवन और रक्षा होतीहै, उसीप्रकार धमनी नाडियोंके द्वारा शुद्धरुधिर श्रोतोंमें वहकर सर्व अंगोंको तर्पितकर जीवितरक्खेहै। अतएव धमनी समूहको जीवनके रक्षाका मुख्य हेतु समझना चाहिये।

श्रोणित स्रोतोंके वेगसें धमनीगण वारंवार स्पंदित होती है, अर्थात् रुधिरका संचार होनेसें धमनीनाडी वारंवार फडकतीहै, इसी स्पंदनद्वारा जीवोंके सुखदुःखका निर्णय होताहै, (इसीसे वैद्य नाडीको देखाकरे है) अंगूठेकी जडमें जो सर्वदा नाडीपरीक्षा करते है उसका मूल, मूलधमनीका द्वितीयअंग (अर्थात् यह द्वितीयपर्शुकाके उपास्थिसें लेकर पश्चान्मुख वाले तीसरे कशेरुकाके वामपार्श्वपर्यंत विद्यमान है) यह नाडी कांख,बाजू, पहुंचा और दोनो हाथोंमें उगलीयोंकरके अनुभूत अर्थात् प्रतीतहोती है. जैसे मणिबंध (पहुचे) में नाडीजानी जाती है उसीप्रकार गुल्फ (अेडी) कण्ठ, पसवाडे, कपाल, वंक्षण, योनि, और लिंग इन्में जानी जाती है. इसीप्रकार और सूक्ष्मत्वगाच्छादित अंगकी धमनियोंका स्पन्दन (फडकना) अंगुली आदिद्वारा अनुभव होताहै.

जिस २ कारणसें नाडीकी जैसी २ गतिहोय, और जिस २ गतिद्वारा शुभ और अशुभ प्रतीत हो, तथा जिस २ गतिद्वारा इसमनुष्यकी मृत्युघटना होय इत्यादि संपूर्ण नाडीके भेद आगे हम नाडीदर्पणमें लिखेंगे, १२ नंबरका चित्र देखो.

स्रोतस्कहतेहै

अतऊर्ध्वंस्रोतसांमूलविधिलक्षणंउपदेक्ष्यामः

अर्थ—धमनीके सविस्तर वर्णनानन्तर स्रोतसोंके मूलविधि लक्षणोंको कहतेहै ।

तानितुप्राणान्नोदकरक्तमांसमेदोमू
त्रपुरीषशुक्रार्त्तववहानियेष्वधिकारः

अर्थ—जिनके मूलविधि लक्षण कहनेके विषयमें अधिकार वो स्रोतस्, प्राण, अन्न, जल, रस, रुधिर, मांस, मेद, मूत्र, पुरीष, शुक्र, आर्त्तव, इनको कहतेहै । यह स्रोतसोंकी मूलविधि लक्षण जाननी ।

स्वरूपकहतेहै

स्वधातुसमवर्णानिवृत्तस्थूलान्यणूनिस्रो
तांसिदीर्घाण्याकृत्याप्रतानसदृशानिचेति

अर्थ—स्रोतस् जिसजिस धातुओंको वहतेहै. उसी २ धातुके सदृश स्रोतसों-का वर्ण जानना, स्रोतस्गोल, मोटी, लंबीलंबी, तथा कोई बारीक ऐसीहो सर्वदेहमें कमलतंतु मंडलके समान फैलीहुईहै, तथाप्राणसें लेकर आर्त्तव पर्यंत जो ग्यारे पदार्थहै उनके वहनेवाली स्रोतस् प्रत्येक दोदोहै. और हड्डी मज्जादि स्रोतस् यद्यपिहै. तथापि उनका अधिकारनहींहैं, इसका यह कारणहै. कि, अस्थिवह स्रोतसोंका मेदमूलहै. और मज्जावहोंका सर्वअस्थि मूल वे सर्व-देहगतहै, इसीसें उनकी विधिलक्षण ये साध्यासाध्य आदि ज्ञानविषयमें नियामक नहीं है, उसीप्रकार स्वेदवह स्रोतसोंका मेदमूलहै अतएव शल्य-तंत्रमें उसकी विधि लक्षणका अधिकार नहीं करा। इसी अर्थको मनमें रखकर (येष्वधिकार) ऐसै आचार्य कहतेहुए, चिकित्सा विषयमें स्रोतो दुष्ट-लक्षण कहना चाहिये। इसका यहतात्पर्यहैकि, चिकित्सा विषयमें सर्वशरीर गत स्रोतसोंका अधिकार और शल्यतंत्रमें नियतदेश स्थित स्रोतस् विद्धहों-नेसैं वेदना विशेष तथा साध्यासाध्य ज्ञान विषयमें नियामक अधिकारहै। तथा देहचिकित्साधिकार सर्वशरीर गतत्व करके साध्यादि ज्ञाननियामक होता-है, इसीसें अस्थि मज्जादि वह स्रोतसोंका अधिकार नहीहै ऐसें उक्तग्रन्थ-का तात्पर्य जानना।

अन्यमतकहतेहै.

एकेषांबहूनि

अर्थ—किसी आचार्योंका यहमतहै कि स्रोतस् बहुतसे है, परंतु उनका अधिकार इसजगे नही है।

स्रोतसोंके भेद कहते है.

एतेषांविशेषाबहवः

अर्थ—स्वतंत्रोक्त प्राणादि वह २२ स्रोतस् है उनके अनेक भेद है।

प्राणवहस्रोतसोंकामूलकहते हैं.

तत्रप्राणवहेद्वेतयोर्मूलंहृदयंरसवाहिन्यश्चधमन्यः

तत्राविद्धस्यक्रोशनंविनमनंभ्रमणंवेपनंनिःसरणंवाभवति

अर्थ—पूर्वोक्त प्रकरणमें प्राणवह स्रोतस् दोकहे है, उनका मूल हृदय और रसवाहिनी धमनी जाननी उस मूलके विद्धहोनेसे आर्त्तस्वर युक्त रोदन वक्रता, भ्रमण, कंपन, इत्यादि उपद्रव होते है ।

अन्नवहस्रोतसोंकेमूलको कहते है.

अन्नवहेद्वेतयोर्मूलमन्नाशयोन्नवाहिन्यश्चधमन्यः
तत्रविद्धस्याध्मानंशूलान्नद्वेषोमरणम् ।

अर्थ—अन्नवह स्रोतस् दो है, उनकामूल अन्नाशय और अन्नवाहिनी धमनीहै, उनके मूलवेध होनेसै अफराहोवे, तथा शूल, अन्नद्वेषहो, तथा मरण भी कभी होजावे ।

उदकवहस्रोतसोंकामूल

उदकवहेद्वेतयोर्मूलंतालुक्लोमच । तत्राविद्धस्यपिपासा
श्यावास्यतामरणञ्च

अर्थ—उदकवह स्रोतस् दो है; उनकामूल तालु और पिपासस्थानहै । उसका वेधहोनेसैं प्यास, मुखपर कालौंच आयकर मरणहोय ।

रसवहस्रोतसोंकामूलकहते है

रसवहेद्वेतयोर्मूलंहृदयंरसवाहिन्यश्चधमन्यःतत्राविद्धस्यशोषः
प्राणवहविद्धवच्चमरणं तत्रहाविद्धवल्लिङ्गानि

अर्थ—रसवह स्रोतस् २, उनकामूल हृदय और रसवाहिनी धमनी उनकावेध होनेसैं शरीरशोष तथा प्राणवह स्रोतस् विद्धहोनेसै जो लक्षण होवेहै वो लक्षण रसवाहिनी धमनी विद्धहोनेसै होते है ।

रक्तवहस्रोतसोंका मूलकहते है

रक्तवहेद्वेतयोर्मूलंयकृत्प्लीहानौरक्तवाहिन्यश्च धमन्यः
तत्राविद्धस्यश्यावाङ्गताज्वरदाहपाण्डुताशोणितागमनंच।

अर्थ—रक्तवह स्रोतस् २ है, उनकामूल यकृत्, प्लीहा और रक्तवाहिनी

धमनी है उनका वेध होनेसैं अंगमें कालौंच हो; तथा ज्वर, दाह, पीलिया, तथा ऊपरनीचेके मार्गहोकर रक्तस्राव, तथा नेत्रोंमें लाली इत्यादि उपद्रव होते है।

मांसवहस्रोतसोंकामूलकहतेहै

मांसवहेद्वेतयोर्मूलंस्नायुत्वचेरक्तवाहिन्यश्चधमन्यःतत्र विद्धस्यश्वयथुर्मांसशोषःशिराग्रंथयोमरणञ्च।

अर्थ—मांसवह स्रोतस् २ है, उनके मूल स्नायु और त्वगादिक रसरक्तवह धमनी है। उनका वेधहोनेसैं सूजन होय तथा मांसशोष होय, और शिराओंमें गांठहोजावे, तथा मरणभी होवे। इसजगे त्वक्शब्द करके तदाश्रित रसका ग्रहण हैं।

मेदोवहस्रोतोंकामूलकहते है.

मेदोवहेद्वेतयोर्मूलंकटिवृक्कौतत्राविद्धस्यस्वेदागमनं स्निग्धाङ्गतातालुशोषस्थूलशोफपिपासाच।

अर्थ—मेदोवह स्रोतस् २ है, उनके मूल कटि-तथा वृक्कहै। एवेध होनेसैं अत्यंत पसीनें अंगचिकना, तथा तालुशुष्कहो; स्थूलता और अंगमें सूजनहो तथा प्यासलगे।

मूत्रवहस्रोतसोंकामूल.

मूत्रवहेद्वेतयोर्मूलंवस्तिमेढ्रं तत्राविद्धस्यानद्धवस्तिता मूत्रनिरोधस्तब्धमेढ्रताच।

अर्थ—मूत्रवह स्रोतस् २ है. उनके मूल वस्ती और शिश्न (लिंग) है; उनका वेध होनेसैं मूत्राशय तनके समान होजावे, तथा मूत्रका रुकना और शिश्न स्तंभित होजावे

पुरीषवहस्रोतसोंकामूल.

पुरीषवहेद्वेतयोर्मूलंपक्वाशयोगुदंचतत्राविद्ध स्यानाहोदुर्गंधताग्रन्थितान्त्रताच।

अर्थ—पुरीषवह स्रोतस् २ हे उन्के मूल पक्काशय और गुदाहै इन्में आघातहोनेसें अनाह (कहियेवातकारोग) और दुर्गंध आवे तथा आंतडोंमें गांठ पडजावे

शुक्रवहस्रोतस्

शुक्रवहेद्वेतयोर्मूलंस्तनवृषणौचतत्र
विद्धस्यक्लीबताचिरात्प्रसेकोरक्तशुक्रताच।

अर्थ—शुक्रके वहनेवाले २ स्रोतस्हे, उन्के मूल स्तन और वृषणहै उन्में किसीप्रकार की चोटलगनेसें नपुसकता, अथवा चिरकालकरके वीर्यका स्राव होताहै, तथा शुक्रका लाल रंग होताहै।

आर्त्तववहस्रोतस्

आर्त्तववहेद्वेतयोर्मूलंगर्भाशयोआर्त्तववहधमन्यश्च
तत्रविद्धायांवंध्यात्वंमैथुनासहिष्णुत्वमार्त्तवनाशश्च।

अर्थ—आर्त्तववह स्रोतस् २ है उन्के मूल गर्भाशय और आर्त्तववह धमनीहै। उन्का वेधहोनेसे वंध्यापना होय तथा मैथुनकरना अच्छा न मालूम हो, तथा आर्त्तवका नाशहोय शुक्रवहस्रोतसोंके समीपकी सेवनी विद्धहोनेसें उसके लक्षण अश्मरी चिकित्सित वस्तिप्रसंग करके कहीहै. अब चिकित्सासूत्रकहतेहै।

चिकित्सा

स्रोतोविद्धंतुप्रत्याख्यायोपाचरेदिति।

अर्थ—उक्तस्रोतसोंके विषे विद्धहोनेसें असाध्यत्व कहाहै उसको शल्योद्धरण प्रकार करके चिकित्सा करे।

उद्धृतशल्यचिकित्सा

उद्धृतशल्यंतुक्षतविधानेनोपाचरेत्।

अर्थ—जिस पुरुषका शल्य निकलगयाहो उसकी क्षतविधान करके चिकित्सा करे.

स्रोतोलक्षण

मूलात्खादन्तरंदेहेप्रसृतत्वाभिवाहियत्।
स्रोतस्तदितिविज्ञेयंशिराधमनिवर्जितम्।
इतिसौश्रुतशारीरेनवमोध्यायः॥९॥

अर्थ—(मूलात्खात्) कहिये हृदय छिद्रसे लेकर जो अन्तरछिद्र प्रवहनशील हैं उसको स्रोतस् जानना परंतु धमनी और शिरा इनको छोडकर जानना।

इतिश्रीआयुर्वेदोद्धारेबृहन्निघण्टुरत्नाकरेत्रयोदशस्तरङ्गः

दशमोऽध्यायः

धमनी व्याख्यानंतर शुक्रार्त्तवस्रोतसोंका वर्णन होनेसें अब शुक्रार्त्तव मूलक पूर्वकहेहुए गर्भकी आश्रयभूत गर्भिणी उसका वर्णन करना उचितहै अतएव उसीको कहतेहै।

अथातोगर्भिणीव्याकरणंशारीरंव्याख्यास्यामः

अर्थ—धमनीव्याख्यानंतर अब हम गर्भिणीका वर्णनजिसमेंहै ऐसी शारीराध्यायकी व्याख्या करेंगे।

गर्भिणीकेनियम

गर्भिणीप्रथमादिवसात्प्रभृतिनित्यंप्रहृष्टाशुचिरलंकृताशुक्लवसनाशांतिमङ्गलदेवताब्राह्मणगुरुपराभवेत्। मलिनाविकृतहीनगात्राणिनस्पृशेतुउद्वेजनीयाश्चकथाः। शुष्कंपर्युषितंकुथितंक्लिन्नंचान्नंनोपभुञ्जीत। बहिर्निष्क्रमणंशून्यागारचैत्यस्मशानवृक्षाश्रयान्क्रोधामयसंस्कारांश्चभावान् उच्चैर्भाष्यादिकंचपरिहरेत्।

अर्थ—गर्भिणीको गर्भधारण दिवस से लेकर सर्वकाल आनन्दयुक्त रहना चाहिये, तथा उसके प्रियमनुष्य उसको प्रियपदार्थदेकर सदैव संतुष्टराखे,

और वहस्त्री स्वयं पवित्र रहे, अलंकारोंको धारण सुपेदवस्त्रोंको पहिराकरे, शांतिपूर्वक मंगलाचरण करे, देवता, ब्राह्मण, गुरु, इन्सेंप्रीतिकरे। मलिन, विकृत, हीनगात्र, इनका स्पर्श न करे। तथा शुष्क, मलिन, वासा, दुर्गंधवान्, गीला और कच्चाअन्नभोजन न करे। तथा वाहर वहुत न जावे, सूनेघरमें, जिस वृक्षपर अथवा नीचे उसके देवताका स्थानहो ऐसे वृक्षके नीचे अथवा बौद्धोंके मंदिरमें, श्मशान वृक्ष इनका आश्रय न लेवे. जिससें क्रोध आवे ऐसे कर्मोंको न करे. वहुतजोरसें न वोले. और उद्वेग कर्त्ता वार्त्ता को भी नसुने।

भोज्यंतुमधुरप्रायंस्निग्धंहृद्यंद्रवंलघु। संस्कृतंदीपनीयंतु नित्यमेवोपयोजयेत्॥ गुर्विणीनतुकुर्वीतव्यायाममपतर्पणम्। रात्रौजागरणंशोकंयानस्यारोहणंतथा॥ रक्तमोक्षंवेगरोधंनकुर्यादुत्कटासनम्। नजिघ्रेदपिदुर्गंधंनपश्येन्नयनाप्रियम्॥ वचांसिनापिशृणुयात्कर्णयोरप्रियाणिच। तैलाभ्यंगोद्वर्त्तनंस्वभावाश्चाप्ययशस्करान्। नामृद्वास्तरणंकुर्यान्नात्युच्चंशयनासनम्। अन्यांश्चापिनतत्कुर्याद्येनगर्भोविनश्यति। एतांस्तुनियमान्सर्वान्यत्नात्कुर्वीतगुर्विणी।

अर्थ—गर्भिणी मधुरप्राय, सचिक्कण, हृदयको हितकारी, पतले हलके तथा उत्तम पाककर्त्ताने विधिपूर्वक बनाएहो, और जो दीपनहो ऐसे पदार्थोंको नित्य सेवनकरे, तथा गर्भिणी व्यायाम, अपतर्पण रात्रिमें जागना, मैथुन, शोक, सवारीमें वैठना, रुधिर निकालना मलमूत्रआदिवेगोंका रोकना, ऊंचे और दुष्टआसनपर वैठेनहीं, दुर्गंधको नसूंघे, और नेत्रोंको अप्रियपदार्थकोनदेखे, कानोंको अप्रिय ऐसे वाक्योंको नसुने, अत्यन्त तैलका लगाना, और उवटना त्यागदेवे, और जो अपयशकर्त्ता कर्महै उन्कोनकरे, कठोरविछौयानविछावे, अत्यंतऊंचेपर शयन और आसननकरे, और भी जो दुष्टकर्म है, कि जिनसें गर्भ नष्टहोवे उन्को कदाचित् नकरे, इनकहेहुए नियमोंको गर्भवती यत्नपूर्वकसाधनकरे।

गर्भिणीकाअन्नकहते है.

गर्भिणींप्रथमद्वितीयमासेषुषाष्टिकांपयसाभोजयेत् ।

अर्थ—गर्भिणीको प्रथम तथा दूसरे महिनेमें साठी चावलोंका भात दूधके साथ भोजनको देवे.

अन्यमत.

चतुर्थेदध्नापञ्चमेपयसाषष्ठेसर्पिषेत्येके ।

अर्थ—कोई आचार्य कहतेहैकि, चौथे महिनेमें दही मिश्रित. पांचवे महिनेमें दूधमिश्रित. छठवे महिनेमें घृतमिश्रित भोजन अधिक देवे. वाग्भटकहताहै कि * गर्भकरके पीडित दोष सातवे महिने हृदयमें प्राप्त होतेहै इसीसे गर्भिणीके खुजली और दाह तथा खीखस करेहैं

स्वमतकहते है.

चतुर्थेपयोनवनीतसंसृष्टमाहारयेत् ।

अर्थ—चौथे महिनेमें दूध और मक्खन मिला जंगली जीवोंका मांस भोजनमें देवे. पांचवे महिनेमें दूध और घृत मिला भोजन देवे. छठे महिनेमें गोखरू करके सिद्ध घृतकी मात्रा यवागू सहित देवे. सातवे महिनेमें विदारीकंद करके सिद्धकरा घृत पिवावे. आठवे महिनेमें चंदनके जलमें बला अतिवला, सौंफ, मांस, दूध, दही, छाछ, तेल, नोन, मैनफल, सहत, घृत, इनको मिश्रितकर निरूहवस्ती देवे । इसप्रकार करनेसैं पुराने पुरीष (मल) की शुद्धि तथा वायुकी अनुलोमगति होती है । अनंतर दूध और मधुर पदार्थ इनके कषाय करके सिद्धकरे हुए तैलसैं अनुवासन बस्तिकरे। इस करके वायुकी अनुलोमगति होतीहै. उस अनुलोमगति होनेसै स्त्री सुखपूर्वक प्रसव करतीहै और उपद्रवरहित होतीहै. आठवे महिनेके अनंतर प्रसवकालपर्यंत स्निग्धादिको करके तथा यवागू जांगलरस इन करके उपचार करावे। इसप्रकार उपचार करनेसैं गर्भिणी स्निग्ध तथा बलवती होकर सुखपूर्वक उपद्रवरहित प्रसूत होती है.

* गर्भेणो त्पीडिता दोषा स्तस्मिन्हृदय माश्रिताः । कण्डुंविदाहं कुर्वंति गर्भिण्याः किक्किसानिच ॥

प्राक्चैवनवमान्मासात्सूतिकागृहमाश्रयेत् ।
देशेप्रशस्तेसंभारैःसम्पन्नंसाधकेऽहनि ।

अर्थ–गार्भिणी नवमहिनेके पूर्वही उत्तमदेशमें वास्तुविद्याके जानने वालोंने परीक्षा करके वनाया और संपूर्णसामग्री करके युक्त तथा शुभतिथि नक्षत्र मुहूर्त्तमें सूतिकाग्रहका आश्रयलेवे ।

सूतिकागारकीविधि

तत्रारिष्टंब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राणांश्वेतपीतरक्तकृष्णेष्वप
हतास्थिशर्कराकालेदेशंप्रशस्तरूपरसगंधायांभूमौप्राग्द्वार
मुदग्द्वारंवाबिल्वन्यग्रोधतिन्दुकेंगुदभल्लातकनिर्मितसर्वांगा
रंवायानिचान्यान्यपिब्राह्मणाः शंसेयुरथ यनाप्रियम् । व
र्यंकंसमुपलिप्तभित्तिंसुविभक्तपरि । तैलाभ्यङ्गोद्वर्त्तन
स्तविस्तृतंरक्षामंगलसम्पन्नंवि स्तरणंकुर्यान्नात्युच्चंश
पिधानसम्पदुपेतमग्निसलिल ाद्येनगर्भोविनश्यति ।
महानसमृतुसुखं । कुर्वीतगुर्विणी ।

अर्थ–सूतिकागारकी भूमि हृदयको हितकारी, पतले हलके सपेद, पीली, लाल और काली हो, और जो दीपनहो ऐसे पदार्थोंको धूल जिसमें तथा शुभकाल मन्द अपतर्पण रात्रिमें जागना, मैथुन, पृथ्वीमें सूतिकागार वनावे कि, मलमूत्रआदिवेगोंका रोकना, ऊंचे तरफ होवे (कोई दक्षिण द्वार हो घे, और नेत्रोंको अप्रियपदार्थकोन- और मिलाया इनकाष्ठोंसें उसग्रहक ने, अत्यन्त तैलका लगाना, और जो अथर्ववेदके जानने वाले ब्राह्मण कर्महै उन्कोनकरे, कठोरविछैयान- कानकी भीतोंको लीप पोतकर उ नकरे, और भी जो दुष्टकर्म है, परिच्छद (सामग्री) हो तथा उस न करे, इनकहेहुए नियमोंको ४ चार हाथकी चौडाई तथा रक्षा और ये, तथा वस्त्र, लेपन, आच्छादन और पिधान

सामग्री आदिसें युक्तहो, अग्नि, जल, ओखली, मलमूत्र त्यागनेकी जगे, स्नान की भूमि, रसोई करनेकीठौर, और जाडे, गरमी, वर्षाऋतुमें सुखकारक इत्यादि स्थानो करके युक्त घर होना चाहिये (उस सूतिकाके स्थानमें इतनी वस्तु औरभी उपस्थित रखनी चाहिये। घृत, तेल, मधुरक, सैंधानिमक, सौंचरनोन, राल, गुड, कूठ, तेलीया, देवदारु, सौंठ, पीपलामूल, गजपीपल, मंडूकपीपल, इलायची, कलयारी, वच, चित्रक, चिरविल्व, हींग, सरसों, लहसन, धतूरा, कदंब, बावची, भोजपत्र, कुलथी, मैरेय मद्यविशेष, आशव, और सुरा (दारु) दोपत्थरके टुकडे, दो अंडकीजड, ओखली मूसल, गधा, वैल, दो लोहके टूक, दो पिप्पलक, सुवर्ण, चांदी, दो शस्त्रलोहेके, दो वेलके पलग, तेंदू, इंगुदीकी लकडी, अग्निके वरानेको पंखा इत्यादि सामग्री सूतिका घरमें उपस्थित रहनी चाहिये जो अनेकवार प्रसूति होचुकी हो, मोहाधंयुक्त, निरंतर अनुरागवती, आचार विचारमें कुशल, तथा निर्णयमें और उपचारकरनेमें कुशल, वात्सल्य प्रकृतिवाली, खेदरहित, क्लेशको सहनेवाली, ऐसी स्त्री उस प्रसूति घरमेंउपस्थित रहे। तथा अथर्व वेदके ज्ञाता ब्राह्मण स्थित रहे, और जो वृद्धस्त्री और ब्राह्मण वतावे वोभी उपस्थित रखने चाहिये)

तत्रोदीक्षेतसासूतिंसूतिकापरिवारिता।

अर्थ—गर्भिणी उस सूतिका घरमें अनेकवार प्रसूतीहो चुकीहों ऐसी स्त्रियोंके साथ स्थितहो प्रसूत समयकी वाट देखे अर्थात् इस घरमें मैं प्रसूती होऊंगी।

तथाचचरके

ततःप्रवृत्तेनवमेमासेपुण्येऽहानिनक्षत्रमुपगते प्रशस्तेभगवतिशशिनिकल्याणेकरणेमैत्रेमुहूर्तेशान्तिंहुत्वागोब्राह्मणमग्निमुदकञ्चादौप्रवेश्यगोभ्यःतृणोदकंमधुलाजांश्चप्रदायब्राह्मणेभ्योऽक्षताः सुमनसोनान्दीमुखानिचफलानीष्टानिदत्वाउदकपूर्वमासनस्थेभ्योऽभिवाद्यपुनराचम्यस्वास्तिवाचयेत्ततः पुण्याहशब्देनगोब्राह्मणमन्वावर्त्तमानाप्रदक्षिणंप्रविशेत्सूतिकागारम् तत्रस्थाचप्रसवकालं प्रतीक्षेत।

अर्थ—तदनंतर नवम महिने लगतेही शुभ दिवस नक्षत्र और चन्द्रमा तथा कल्याणकारी करण, मैत्रमुहुर्त्तमें शांति हवन करके गौ ब्राह्मण, अग्नि जल को, प्रथम उस घरमें प्रवेशकर गौओंको तृण जल मिली खील देकर और ब्राह्मणोंको अक्षतादि द्वारा पूजनकर इष्टफल दक्षिणा देकर उत्तर वा पूर्वाभिमुख स्थित ब्राह्मणोंको प्रणामकर फिर आचमनकर स्वस्तिवाचन पढाकर पुण्याह शब्दकरके गौ ब्राह्मणोंको संगले प्रदक्षिणापूर्वक प्रथम दहना पैर * धरकै गर्भवती स्त्री सूतिकागारमें प्रवेश करे उस प्रसूत घरमें स्थित होकर प्रसवकालकी वाट देखे.

आसन्नप्रसवाके लक्षण

अद्यःश्वःप्रसवेग्लानिःकुक्ष्याक्षिश्लथताक्लमः।
अधोगुरुत्वमरुचिःप्रसेकोबहुमूत्रता।
वेदनोरूदरकटीपृष्ठहृद्बस्तिवंक्षणे।योनि
भेदरुजातोदस्फुरणस्रवणानिच।

अर्थ—आज या दूसरे दिन ऐसी आसन्न प्रसवा स्त्रीकै ग्लानि (हर्ष जातारहे) कूख और नेत्र एशिथिल होवे, उपताप, और नीचेका भाग भारी, अरुचि मुखसै पानीका गिरना, वारंवार अधिक मूत्रका उतरना जांघ, उदर, कमर, पीठ, हृदय, वस्ति, और वंक्षण इनमें पीडा होवे। योनिका फटना, पीडा और चवकाओंका चलना तथा स्फुरण और कफके सदृश पदार्थ निकले। इत्यादि लक्षणोंसें जानेकि इसके अब बालक होनेवाला है।

ततोऽनन्तरमावीनांप्रादुर्भावःप्रसेकश्चगर्भो
दकस्यावीप्रादुर्भावेतुभूमौशयनंविदध्यात्।

अर्थ—तदनंतर गर्भनिष्क्रमण कालमें जो शूलहोते है उनका प्रादुर्भाव होता है। मुखसै पानी गिरता है। जव शूल और भगमेंसें गर्भोदक अर्थात् गर्भका पानी निकलने लगे उसी समय उसस्त्रीको पृथ्वीमें शयन करावे।

* प्रयाणकाले स्वगृहप्रवेशे विवाहकाले पिच दक्षिणांघ्रिम्। कृत्वाग्रतः शत्रुपुरप्रवेशे वामंनिदध्या चरणं नृपालये। १।

अथोपस्थितगर्भांताकृतकौतुकमङ्गलाम्। हस्तस्थपुन्नामफलांस्वभ्यक्तोष्णाम्बुसेचिताम्। पाययेत्सघृतांपेयाम्

अर्थ-इस प्रकार उपस्थित गर्भा अर्थात् तत्काल होनेवाला बालक जान उस गर्भिणीका रक्षा बंधन रूप मंगल करके और पुरुष नामके फल (अनार आम्र आदि) है हाथमें जिसके तथा तैल आदिका मालिस कर गरम जलसें स्नान कराय उसको घृत सहित पेया (यवागू) कंठ पर्यंत पिवावे।

तनौभुशयनेस्थिताम्

आभुग्नसक्थिमुत्तानामभ्यक्ताङ्गींपुनःपुनः।
अधोनाभेर्विमृद्नीयात्कारयेज्जृम्भचंक्रमम्।

अर्थ-पृथ्वीमें मखमल आदिके नम्रबिछैये पर सीधी सुलावे और पैंरोको सकोड वारंवार तैलका मालिसकरे, नाभिसे नीचे धीरेधीरे मुतवावे तथा जंभाई और इधर उधर को डोलना उससे करावे। इस प्रकार करनेसैं क्या होताहै सो कहते है।

गर्भः प्रयात्यवागेवं तल्लिङ्गंहृद्विमोक्षतः।
आविश्यजठरंगर्भोवस्तेरुपरितिष्ठति।

अर्थ-इस प्रकार करनेसैं गर्भ हृदय स्थानको त्याग कर नीचे आताहै उस गर्भके ये लक्षण होते है कि, वह हृदय छोडकर पेटमे आनकर वस्तीके ऊपर ठहरे है।

दद्यात्कुष्ठलाङ्गलकी वचाचव्यचित्रकचिराबिल्वचूर्णमुपाघ्रातुंमुहुर्मुहुर्योजयेत्तथाभूर्जपत्राशिंशपासर्जरसानामन्यतमंधूममन्तरान्तराच। पार्श्वपृष्ठकटीसक्थिदेशान्कोष्णेनतैलेनाभ्यज्यानुसुखमस्याविमृद्नीयादेवमवाक्परिवर्ततेगर्भः।

अर्थ-कूठ, कलयारी, वच, चव्य, चित्रक, कंजा, इनका चूर्ण कर वारंवार गर्भवतीके सूंघनेको देवे। तथा भोजपत्र, सीसो, राल, इनसैं आदिले

औरभी औषधोंकी धूनी ठहर २ के देता जावे। पसवाडे, पीठ, कमर, पैर, इत्यादि अंगोंको गुनगुने तैलसै मालिस कर सुहाता सुहाता मर्दन नीचेको करावे इस प्रकार करनेसै गर्भ नीचेको उतरता है।

ताःसमन्ततः परिवार्ययथोक्तगुणाः स्त्रियःपर्युपासीरन्नाश्वासयन्त्योवावाग्भिर्संग्राहिणीभिःसान्त्वनीयाभिः। साचेदावीभिः संक्लिश्यमानानप्रजायेताथैनांब्रूयातुउत्तिष्टमुसलमन्यतरत्गृह्लीष्वानेनतदूलूखलंधान्यपूर्णमुहुर्मुहुरभिजहिमुहुर्मुहुरवजृम्भस्वचंक्रमस्वचान्तरान्तरातन्नेत्याहभगवानात्रेयः

अर्थ—उस गर्भिणीके समीप दोचार स्त्री यथोक्तगुणसंपन्न होनीचाहिये और जवजव पीडासैं गर्भिणी ववडावे तभी तभी उसको धीरज वंधाती रहे, और मिष्टवचनोसैं उसको शांतिकरतीरहे। जव देखेकि अब अत्यंत पीडा होनेलगी और गर्भ नहीं निकले उससमय उसगर्भिणीसैं कहेकि, हेसुभगे! तू खडी होजा और मूशलको लेकर येजो ओखलीमें धानहै इनको वारंवार कूट और वारंवार जभांईले. तथा धीरे २ ठहरकर इधर उधर डोल. परंतु इस कर्म करनेको भगवान् आत्रेय वर्जित करते है, क्योंकि गर्भवतीको व्यायाम (मेहनत) करना वर्जित कहाहै। दूसरे विशेषकरके प्रसवकालमें प्रचलित सर्वधातु दोषादिक जिस्के ऐसी सुकुमार आशयवाली स्त्रीको मूशलके उठानें धरने रूप मेहनसैं वायु कुपित होकर उस गर्भिणीके प्राणहर्ता होतीहै, अतएव धानोंका कूटना गर्भिणीको निषेधहै।

आव्योहित्वरयन्त्येनांखट्वामारोपयेत्ततः।
अथसंपीडितेगर्भेयोनिमस्याःप्रसाधयेत्।

अर्थ—जव प्रसवकालकी अधिक पीडा दुखदे तव इसको शय्यापर आरोपण करे, तदनंतर गर्भ अत्यत पीडा करे तव इस गर्भिणीकी योनिको तैल आदिसै विकाशित करे।

मृदुपूर्वप्रवाहेत वाढमाप्रसवात्ततः।

अर्थ—वह गर्भिणी गर्भको नम्र कर२ प्रथम वहनकरे जवतक गर्भ यो-

निके मुखतक न आवे और जब योनिके मुखपर आयजावे तब अत्यंत जोरसैं वहे अर्थात् धक्का देवे।

हर्षयेत्तांमुहुः पुत्रजन्मशब्दजलानिलैः।

अर्थ–उस समय समीप रहने वाली स्त्री वारंवार पुत्र जन्मशब्दकरके इस गर्भिणीको प्रसन्नकरे अर्थात् (हे सुभगे! तूं परम सुंदर पुत्रको जनेगी) तथा शीतल गुलाबजल छिडक और शीतल पवन करके उस गर्भिणीको प्रसन्न करे।

एनांब्रूयाच्चसुभगेशनैः शनैःप्रवाहयस्वशोभनस्तेमुखवर्णःपुत्रं जनयिष्यसि। तथाअन्यातुवामकर्णेऽस्यामंत्रमिमंजपेत्।

अर्थ–इस गर्भवतीसैं समीपकी स्त्रीकहे कि, हे सुभगे! तूं धीरेधीरे गर्भको ढकेल, देख कैसा सुन्दरतेरे मुखका वर्ण है तूं पुत्रको प्रगट करेगी तथा दूसरी स्त्री इसके वामकर्णमें इन मंत्रोको पढे।

मन्त्राः

क्षितिर्जलंवियत्तेजोवायुर्विष्णुःप्रजापतिःसगर्भात्वांसदापातु वैशल्यं वादधातुते १ प्रसुष्वत्वमविक्लिष्टमाविक्लिष्टाशुभानने। कार्त्तिकेयद्युतिंपुत्रंकार्तिकेयाभिरक्षितम् २ इहामृतंचसोमश्च चित्रभानुश्चभामिनि। उच्चैःश्रवाश्चतुरगोमन्दिरेनिवसंतुते ३ इदममृतमपांसमुद्धृतंवैतवलघुगर्भमिमंप्रमुंचतुस्त्री। तदनल पवनार्कवासवास्तेसहलवणाम्बुधरैर्दिशन्तुशांतिम् ॥ ४ ॥

अर्थ–यदि बहुत कष्टी होवेतो ये नीचे लिखे अर्जुनके दसनाम है इनको पढता जावे और कूएमेंसैं एकही हाथ करके जलखीचे उसजलके पीतेही गर्भिणी कष्टसैं छूट जावे।

अर्जुनःफाल्गुनोजिष्णुः,किरिटीश्वेतवाहनः।
वीभत्सुर्विजयः कृष्णःसव्यसाचिर्जनंजयः।

अर्थ–अथवा चकावूका यंत्र अष्टगंधसैं लिखकै उस गर्भिणीको दिखावे

पीछे उस यंत्रको धोयकर उस गर्भिणीको पिवाय देवे तो गर्भिणी कष्टसे छूट जावे।

हर्षोत्पादनकाप्रयोजन

प्रत्यायांतितथाप्राणाःसूतिक्लेशावशादिताः।

अर्थ—गर्भिणीको पुत्रजन्मादि कारणोंसें प्रसन्नकरनेका यह प्रयोजनहै कि प्रसूतिके दुःखसें ग्लानिको प्राप्तहुए प्राण हर्षोत्पादनसें फिर नवीन होतेहै।

गर्भकेरुकनेमेंउपचार

धूपयेद्गर्भसङ्गेतुयोनिंकृष्णाहिकञ्चुकैःहिरण्यपुष्पीमूलञ्च। पाणिपादेनधारयेत्। सुवर्चलांविशल्यांवाजराय्वपतनेऽपिच। कार्यमेतत्तथोत्क्षिप्यबाह्वोरेनांविकम्पयेत्। कटीमाकोटयेत्पार्ष्ण्याफिज्जौगाढंनिपीडयेत्। तालुकण्ठंस्पृशेद्वेण्यामूर्ध्निदद्यात्स्नुहीपयः। भूर्जलाङ्गलिकीतुम्बीसर्पत्वक्कुष्टसर्षपैः। पृथक्द्वाभ्यांसमस्तैर्वायोनिलेपनधूपनम्। कुष्टतालीसकल्कंवासुरामण्डेनपाययेत्। यूषेणवाकुलत्थानांविल्वजेनासवेनवा।

अर्थ—गर्भके रुकनेमें ये उपचार करे कि, कालेसर्पकी कांचली की योनिको धूनी देवे, हिरण्यपुष्पी (छोटीखजूरीवा मूसली) की जडको हाथपैरोमें धारणकरे अथवा सुवर्चला और विशल्या कलहंडी को हाथपैरोंमें धारणकरे, यह यत्न जरायु (आमरवेवर) के न निकलने में भी करे, तथा जवतक जरायु न गिरे तवतक इसगर्भिणीके हाथोंको कंपितकरे (चरकमें लिखाहै कि, यदि जरायु न निकले तो उसस्त्रीके नाभिके ऊपर दहनेहाथसें खूब दवावे और दूसरेहाथसे उसकी पीठको पकडकर कपावे)तथा पीठ और कमरको पीडितकरे, और कूलेन्को पीडित करे, मायेकी वेणीसे उसके तालु और कंठको स्पर्शकरे तथा मस्तकमें थूहरकादूधडाले एवं भोजपत्र,

कलयारी, तूंबी, स्यापकीकांचली, कूठ, और सरसो प्रत्येककी पृथक् २ अथवा सबको मिलाके योनिको धूनीदेवे, अथवा लेपकरे। तथा कूठ और तालीसपत्रका कल्क अथवा सुरा और मंडको मिलाके पिवावे। अथवा कुलथीका काढा वा वेलकी दारू पिवावे, (चरकमे लिखाहैकि भोजपत्र काचमणि, और सर्पकी काचली इनकी योनिको धूनीदेवे। अथवा भोजपत्र और गूगलकी धूनीदे, अथवा चावलोकीजडसैं सिद्धकरे हुए घृतसैं योनिको लेपनकर, कडुई तूंवी, तोरई, नीम, और सर्पकी कांचली इन सवकी कूरव, आदिको धूनीदेवे, अथवा गुड सोठके कल्कका भगमें लेपकरे और इसीकल्कको पीवे, अथवा कलयारीकी जडके कल्कको हाथ पैर और उदरमें लेपकरे, कूठ इलायची का कल्क मद्यमें मिलायकर पीवे, आक थूहरके काढेमें मद्य मिलायकर पीवे. अथवा कूठ कलयारीकी जडके कल्कमें मद्य अथवा गोमूत्र मिलायकर पिवावे. अथवा, सौंफ, कूठ, मैनफल, हिंग, इनसैं सिद्धकरे हुए तैल में कपडा भिगोकर योनिमें धरे।

शताव्हासर्षपाजाजीशिग्रुतीक्ष्णकचित्रकैः। सहिंगुकुष्टमदनैर्मूत्रेक्षीरेचसार्षपम्। तैलंसिद्धंहितंपायौयोन्यांवाप्यनुवासनम्। शतपुष्पावचाकुष्टकणासर्षपकल्पितः। निरूहःपातयत्याशुसस्नेहलवणोऽपराम्। तत्सङ्गह्यनिलोहेतुःसानिर्यात्याशुतज्जयात्।

अर्थ– सौंफ, सरसों, जीरा, सहजना, चव्य, चीतेकीछाल, हींग, कूठ, मैनफल, इन सवको एकत्र करे पीछे गोमूत्रमें और गौके दूधमें ए सब औषध मिलाय सरसोंका तेल मिलावे, उसको तैलपाकविधिसैं सिद्धकर इस तैलसैं गुदा और योनिमें अनुवासन करना हित होताहैं। तथा सौंफ, वच, कूठ-पीपल, और सरसों इनका कल्क कर उसमें तैल और नोन मिलाय कर निरूहवस्ती करेतो तत्काल पेटमेंसैं जरायुको निकालकर पटकदेवे, उस जरायु, के रुकनेका कारण वायुहै. उसवायुके पराजयहोनेसैं वह जरायु कूखसैं वाहर निकल आताहै, अतएव पवनके जीतने को वस्तिप्रधानहै, (चरकमेंलिखाहैकि, गर्भिणीको कुवडीकर उसके निरूहन और अनुवासन वस्तिकरे. इसप्रकार विवृतमार्गहोनेसैं औषधी भलेप्रकार प्रवेश करतीहै.)

कुशलापाणिनाऽक्तेनहरेत्क्सनखेनवा ।

अर्थ— गर्भ निकालनेमें कुशल अँसीस्री शस्त्रसे नखोंको दूरकर औरहाथोंमें घृतचुपड नालके अनुसार उसको बाहर खींचे ।

मुक्तगर्भापरांयोनिं तैलेनाङ्गञ्चमर्दयेत् ।

अर्थ—जब स्त्रीके गर्भ और जरायु योनिसे बाहर आयजावे तब उसकी योनिको तथा सब अंगोंको तैलसे मर्दन करे.

मकल्लाख्येशिरोवस्तिकोष्ठशूलेतुपाययेत् । सुचूर्णितंयवक्षारंघृतेनोष्णजलेनवा । धान्याम्बुवागुडव्योपत्रिजातकरजोन्वितम् ।

अर्थ— प्रसूतहोनेके पश्चात् स्त्रीके मकल्लाक्षरोज प्रगटहोनेसे तथा उसमें शिर, वस्ति, और कोठाइनमें शूलहोनेसें जवाखार को पीस घृतकेसाथ अथवा गरम जलके साथ पीनेकोदेवे अथवा पुरानागुड सोंठ, मिरच, पीपल, इलायची, दालचीनी, और पत्रज, इनका चूर्णमिलायके देवे.

बालकजन्मकेपश्चात्कर्म

अथबालेसमुत्पन्नेविदधीतविधिंततः ।
यथैवकुलवृद्धास्त्रीव्यवहारःपरम्परा ।

अर्थ— बालक उत्पन्न होनेके उपरांत, जैसी अपने कुलमें वृद्धस्त्रियोंकी रीति भातहोवे, उसके अनुसार बालकजन्म विधिकरे

अथजातस्योल्वंमुखंचसैन्धवसर्पिषा
विशोध्यघृताक्तंमूर्ध्निपिचुंदद्यात् ।

अर्थ—बालकके उत्पन्नहोतेही. उसके अंगके ऊपरकी जरायु उतारकर दूरकरे, तथा सेंधानोन घीमें मिलाय मुखमें डाल कंठमें जमेहुए कफको निकालकर मुख निर्मलकरे; और घीमें कपडेको अछीतरह भिजोय उसको चौलडकरके बालकके तालुवे ऊपर धरे.

नाभिनाडीमष्टाङ्गुलमायम्यसूत्रेणबध्वाछेदयेत् । तत्सूत्रैकदेशञ्च ग्रीवायासम्यग्बध्नीयात् । अश्मनोः संघट्टनंकर्णमूलेकार्यं ।

अर्थ—तदनंतर नाभिनाल आठ अंगुल खींच उसमें सूतबांधकें छेदनकरे और उस सूतमें नालको लपेट बालककी नाडमेंबांधे. और उसबालककेकानोंपर पत्थरोको वजावे परंतु इसमध्यदेशमें कांसेकी थाली वजानेकी बहुधाचालहै, और शीतलजल अथवा गरमजलको इसके मुखपर छिडके कि जिस्सैं गर्भके-क्लेशसैं घवडाया हुआ बालकस्वस्थहोवे. जबतव वालक को होसनहोवे तवतक इसको कृष्णकपालि सूर्यकरके धारणकरे. जबहोसमें आयजावे तब स्नानआदि कर्मकरे चरक लिखवाहै कि बालककी नालको तीखेधारवाले सोनें, चांदी, और लोहेके टूकसैं छेदनकरे. यदि नाडी वेडौल टूटजावेतो लोध, महुआ, फूल-प्रियंगु, दारहलदी, इन्केकल्कसैंसिद्धहुएतेलसैंसेककरे, औरतैलकीऔषधउसजगे लगावे, अविधपूर्वक नाडीके काटनेसैं आयमत्तण्डी, पिपीलिका, विनामिका, विजृंभिका; आदिरोगोंसैं, बालक को भय होताहैं.। यदि पूर्वोक्तरोग होवेतो वातपित्त प्रशमक अविदाही अैसे अभ्यंग आछादन और परिषेक आदिसैं दूरकरे.।

ततोनन्तरंजातकर्म्मकार्यम्।

अर्थ—तदनंतर जातकर्मकरे, जातकर्ममें घृत, और सहत मिलाय उसमें थोडा सोनाडाल अनामिकासैं चटावे, परंतु आजकल कहींकहीं नालच्छेद-नके पूर्व मधुघृत चटातेहै, जातकर्म होनेके अनंतर बलाके तेलसैं अथवा व-टादि क्षीर वृक्षोंके काढेसैं अथवा सर्व प्रकारके गंधोदकोंसैं शरीर चुपड सुवर्ण अथवा चांदी तपाय पानीमें वुझाय उस पानीको कुछ गरम कर उस मंदोष्ण पानीसैं उस वालकको न्हिलावे, इस कर्ममें कालका अतिक्रम न होनेदेवे, तथा वातादि दोषोंमें जिसका प्राबल्य होवे उसी उसी दोषकी नाशक औषधोंके काढे मिलायकर न्हिलावे, जैसा अपना वैभव होवे तत्सह-श सर्व सुगंधोदक करके न्हिलावे।

वृद्धवाग्भटमेंऔरहीप्रकारसैंप्राशनविधिकही. है

ऐन्द्रीशङ्खपुष्पीवचाकल्कंमधुघृतोपेतंहरेणुमात्रंकुशेना भिमन्त्रितंसौवर्णेनाश्वत्थपत्रेणमेधायुर्बलजननंप्राश येत्। तद्वत्तुब्रह्मीवचानन्ताशतावर्यन्यतमचूर्णंचेति।

अर्थ-ऐंद्री, सखाहूली, वच इनके कल्कमें सहत घृत मिलाय गुंजा प्रमाण लेकर कुशासे अभिमन्त्रितकर सुवर्ण मिलाय पीपलके पत्ते पर धरके चटावे यह मेधा, आयुष्य, बल, इनको देयहै उसी प्रकार ब्रह्मी, वच, दूब, और शतावर, इनमेंसे किसी एकका चूर्णमें घृतसहत मिलाय चटावे।

इसकाफल

धमनीनांहृदिस्थानांनिवृतत्वादनन्तरम्।
चतूरात्रात्त्रिरात्राद्वास्त्रीणांस्तन्यंप्रवर्तते।

अर्थ-स्त्री प्रसूत होनेके पश्चात् उसके हृदय सबधी धमनियोंके मुखविकसित होकर तीन चार दिवस के अनंतर स्तनोमें दूध उतरताहै। इसीसे प्रथम दिन सहत और घृतमें १ रत्तीभर सोना उवालकर मन्त्रोंसे अभिमंत्रितकर तनिवार चटावे, इसी प्रकार दूसरे दिन लक्ष्मणा डालकर सिद्धकरा हुआ घृत पिवावे और पूर्वोक्त औषध देवे; तथा रक्षोघ्न औषध हातपैरमें ग्रीवा, मस्तक, इनमें बाधे जलके पूर्णपात्र मंत्रोंसे अभिमंत्रित इसके समीप स्थापित करे, आरी, खैर, वेर, पीलू फालसे, इन वृक्षोंकी शाखासे प्रसूताके सब घरको रक्षित करे, और प्रसूताके घरके चारो तरफ सरसों, अलसी, तिल, जौ, तथा अन्य धान्य विखेर देवे। तथा रक्षोघ्न औषधोंकी पोटली बांध प्रसूताके घरके उत्तर देहलीमें स्थापित करे तथा प्रसूताके घरमें सदैव अग्नि जलती हुई रक्खे। और इसकी शैयाका शिर पूर्वकी ओर रक्खे। और निरंतर दीपक समीप रक्खे तथा सकल गुण चतुरास्त्री और इसके सुहृद दशदिन वा वारहदिन वरावर जगाकरे। तथा दान, मंगल, आशीर्वाद, स्तुति, गीतगाना, वाजेवजाना, अन्न, पान, और बहुतसे प्रहृष्ट मनुष्यों करके प्रसूताके घरको परिपूर्ण रक्खे। अथर्वणवेदके जानने वाले ब्राह्मण सायंकाल और प्रातःकालमे शांति हवन कराकरे। कि जिस्से प्रसूता और वालककी रक्षारहे तथा फूलमाला आदि जो व्रणवाले पुरुषके पास रखना लिखाहै वो सब प्रसूताके पास रखने चाहिये।

प्रसूताको भूखलगे तब घृतपिवावे। यदि केवल घृत न भावेतो अन्य पदार्थोंमें मिलायकर देवे तथा पीपल, पीपरामूल, चव्य, चित्रक, और सोंठका चूर्णमें घृत गुड मिलाय कर देवे, घृत तैलका देहमें मालिस करे; और

बडे वस्त्रसैं इसके पेटको बांध देवे, कि, जैसैं वायु कुपित होकर विकारोंको न प्रगट करे, जबघृत, तैल आदि पीयेहुए पचजावे तब पूर्वोक्त पीपल आदि औषध डालकर सिद्धकरी यवागू पिवावे. उसमेंभी घी डालदेवे और यह पतली. होवे यदि कुछ दोष वाकी रहगयाहो तो उस स्त्रीको पीपल, पीपरामूल, गजपीपल, चित्रक, अदरख, और चव्यके चूर्णको गुडके जलसैं अथवा गरम जलसैं पीवे, अैसे दो तीन रात्रिपर्यंत करे जवतक दुष्टरुधिर रहे, जबरुधिर शुद्ध हो जावे तब विदारीकंद, और असगंध आदिसैं सिद्ध स्नेहयवागू अथवा क्षीरयवागू तीन रात्रपीवे । और जो कुलथी, कंकोल, करके सिद्ध जांगल रसकेसाथ साठी चावलो का भात भोजनकरे इसप्रकार डेढमहिने करनेसैं प्रसूताविधानसैं छूटे. धन्वभूमि (मारवाडआदि) की प्रसूतास्त्रीको घृततेलमेंसैं एककीमात्रापिवावे. और पिप्पल्यादि कषायका अनुपान देवे । और नित्य चिकनाई देवे । जांगल देशकी प्रसूतास्त्री को उसकीआत्माके अनुकूल घृततेलकी मात्रादेवे । ये सब उपाय बलवान् प्रसूताकेहै और निर्बल प्रसूतास्त्रीको. सब औषधोसैं सिद्धकरी घृतमिली यवागू पिवावे। प्रसूतास्त्री क्रोध, परिश्रम , मैथुन, आदि कर्म को न करे ।

प्रसूतास्त्रीकोनियमनपालनेकेदोष

मिथ्याचारात्सूतिकायायोव्याधिरुपजायते ।
सकृच्छ्रसाध्योसाध्योवाभवेदत्यर्थतर्पणात् ।

अर्थ—प्रसूताके मिथ्या आहार विहारादिकसैं जो व्याधिहोतीहै वह कृच्छ्रसाध्य अथवा असाध्य होतीहै । अतएव उस प्रसूताको देश, कालके उचित व्याधिसात्म्य कर्मकरके परीक्षा पूर्वक नित्य उपचार कर्त्तव्यहै । प्रसूताको व्याधि कृच्छ्रसाध्य और असाध्य होनेमें क्याकारणहै सो कहतेहै (गर्भके बढनेसैं क्षीण और सिथिल हुईहै सब शरीरकी धातु तथा प्रवहन वेदना पूर्वक रुधिरके निकलजानेसैं सर्वदेह शून्य होजाताहै , इसीसै प्रसूताके जो रोगहोतेहै वो कृच्छ्रसाध्य और असाध्य होतेहै ।)

ततोदशमेत्वहनिसपुत्रास्त्रीसर्वगंधौषधैर्गौरसर्षपैश्चस्नाता
लघ्वहतवस्त्रपरिहितापवित्रेष्टलघुविचित्रभूषणवतीसंस्पृ

इयमङ्गलान्युचितामर्चयित्वादेवताशिखिनःशुक्लवाससो
ऽव्यङ्गान्ब्राह्मणान्स्वस्तिवाचयित्वाकुमारमहतानाश्चवा
ससांचप्राक्शिरसमुदक्शिरसंवासंवेश्यदेवतापूर्वेद्विजाति
भ्यःप्रणमतीत्युक्त्वाकुमारस्यपिताद्वेनामनीकुर्यात्नाक्षत्रि
कंनामाभिप्रायिकञ्च

अर्थ—तदनन्तर दशमे दिन सपुत्राकी सर्वगंधौपध और सपेदसरसों करके स्नानकर हलके और विनाफटे वस्त्रोंको धारणकर तथा पवित्र और प्रिय हलके विचित्र भूषणोंसे भूपितहो मंगली गौ आदिका स्पर्शकर उचित-देवता और अग्निका पूजनकर सपेदवस्त्र धारणकरने वाले ब्राह्मणोंसे स्वस्ति-वाचन पढाय कुमारकोभी दिव्यनवीन वस्त्र पेहनायकर पूर्वशिर अथवा उत्तर शिर स्थितकर देवता पूर्वब्राह्मणोंको प्रणामकर पिता बालकके दो नामकरे। एकतो नाक्षत्रिक अर्थात् जो नक्षत्रसे संबध रखताहो और दूसरा नामाभिप्रा-यिक, परतु इनमेंभी ब्राह्मण अपने बालकका नाम देवशब्दपूर्वक शर्माशब्द रक्खे (जैसै रामचन्द्रदेवशर्मा) और क्षत्री अपनेबालककानाम वर्मा त्रातात रक्खे (जैसै रामसिंहवर्मा) तथावैश्य गुप्त और भूति रक्खे और शूद्र अंतमें दासशब्दरक्खे औरनामके प्रथम घोपवान् अक्षररक्खे और नामके अंत्यअ-क्षरे दीर्घ विसर्जनीय रहित होने चाहिये।

इस जगे यहभी जानलेनाचाहिये कि बालकका अशोभित और अर्थहीन नाम नरक्खे जैसै कि हमारे बहुतसे माथुर आदि प्यारकेवस चिरैया, कुत्ती, लुची, बोन्टा, आदि अनर्थ और दुष्टनाम रखतेहै । परंतु बंगवासी कैसे सुशोभित और सार्थक रक्खतेहै (जैसै तारानाथतर्कवागीश, सुरेन्द्रमोहन, तारानाथ तर्कवाचस्पति और शरच्चन्द्रचक्रवर्त्तीबंद्योपाध्याय आदि परतु नाम दो या चार अक्षरका होना चाहिये और स्त्रियोंकेनाम मनोहर स्पष्टार्थ तथा मंगली होने चाहिये. (जैसै यशोदा, वसुदा, चन्द्रभागा आदि) विशेप विधि धर्मशा-स्त्रके ग्रथोंसे देखलेना नामकरणके अंतमें बालककी आयुका निर्णयकरे कि यह दीर्घायुहोगा वा मध्यायु वा अल्पायु, यह प्रकार हम आगे लिखेंगे।

अथधात्रीपरीक्षा

अथब्रूयात् धात्रीमानयेति समानवर्णां यौवनस्थां निवृत्तामनातुरामव्यंगामव्यसनामविरूपामविजुगुप्सामजुगुप्सितदेशजातेयामक्षुद्रामक्षुद्रकर्मणांकुलेजातांवत्सलांजीवद्वत्सां पुंवत्सां दोग्ध्रीमप्रमत्तामशायिनींकुशलोपचारांशुचिमशुचिद्वेषणीं स्तनस्तन्यसम्पदुपेतामिति

अर्थ– तदनंतर कहेकि धायको लाओ, जो समानवर्णकी (अर्थात्ब्राह्मणको ब्राह्मणी क्षत्रीको क्षत्राणी वैश्यको वैश्यजातिकी और शूद्रको शूद्रास्त्री) हो तथा जवान, सौशील्य गुणयुक्त, रोगरहित, सर्वांगवाली, व्यसनरहित, रूपवान्, अनिंद्य देशमें प्रगटहोनेवाली, क्षुद्रतारहित, अक्षुद्रकर्म करने वाली के कुलमें प्रगट, वात्सल्ययुक्त, जीवितसंतानवाली, तथा पुत्रसंतान वाली, अत्यंत दूधवाली, अप्रमत्त, अल्पनिद्रावाली, सर्वोपचारोंमें कुशल, पवित्र, अपवित्रतासें द्वेषकरने वाली स्तनऔरस्तन्यसंपत् वालीहो, आजकल जाटगूजरआदि हीनजातिही सर्वत्रधायहोतीहै. ।

अथस्तनसम्पत्

तत्रेयंस्तनसम्पत्नात्यूर्ध्वौनातिलम्बौअनातिकृशावनातिपीनौयुक्तिपिप्पलकौ सुखप्रपानौचेतिस्तनसम्पत् ।

अर्थ– तहां स्तनसम्पत् कहतेहै कि, न वहुत ऊंचेहो नवहुत लम्वेहो नवहुत कृशहो नवहुत मोटेहो पीपलकेपत्ते सदृश सुढारहो, सुखपूर्वक वालकके पीनेमें आवे । ऐसे धायकेस्तनहोवे ।

स्तन्यसम्पत्

स्तन्यसम्पत् प्रकृतवर्णगन्धरसस्पर्शमुदपात्रेवदुह्यमानमुदकं व्येतिप्रकृतिभूतत्वात्तत्पुष्टिकरमारोग्यकरं चेतिस्तन्यसम्पत् । अतोऽन्यथाव्यापन्नंज्ञेयम् ।

अर्थ– स्तन्य (दूध) संपत्कहतेहैकि, जिस धायका दूध प्रकृत वर्ण गंध

रस और स्पर्शवालाहो तथा जलकेपात्रमें दुहनेसें जलमें मिलजावे कारण यह हैकि, जलप्रकृतिभूतहोनेसै उत्तमहोताहै इससे ऐसा दूध वालककोपुष्टिकरे। और आरोग्य कर्त्ता जानना इस्सैंविपरीत दूषितदूधजानना ।

अथनिषिद्धधायकेलक्षण

शोकाकुलाक्षुधार्त्ताचश्रान्ताव्याधिमतीसदा। अत्युच्चानितरांनीचास्थूलातीवभृशंकृशा।।गर्भिणीज्वरिणीचापिलम्बोन्नतपयोधरा। अजीर्णभोजनीचापितथापथ्यविवर्जिता। आसक्ताक्षुद्रकार्येतुदुःखार्त्ताचञ्चलापिच। एतासांस्तन्यपानेनशिशुर्भवतिसामयः।

अर्थ– शोकाकुल, क्षुधासेंव्याकुल, थकीहुई, सदैवरोगिणी, अत्यंतऊंची, अत्यंतनीची, अतिस्थूल, अतीवकृश, गर्भिणी, ज्वरवाली, लंबेऔरऊंचेस्तनवाली, अजीर्णमें भोजनकरनेवाली, तथापथ्यवर्जिता, तुच्छकर्मोंमेंफसीरहे, दुःखसैआर्त्त, चञ्चल, ऐसी धायके स्तनपीनेसै वालक रोगग्रस्त होजाताहैं.

अथस्तनपानविधि

ततःशिरस्नातांहतवसनोदङ्मुखीउपविश्यधात्रींप्राङ्मुखींचोपविश्यदक्षिणंस्तनंधौतमीषत्परिस्रुतमभिमंत्र्यमन्त्रेणानेन ।

अर्थ–तदनंतर वालककी माता शिरसहित स्नानकर धुएहुए नवीन वस्त्रोंको पहनकर उत्तरमुख वैठे और धायकोभी स्नानकराय पूर्वाभिमुख वेठालकर उसका दहनास्तन अच्छीरीतिसें धोय कुछ दूधको प्रथम पृथ्वीमें टपकाय पीछे इस मन्त्रसें अभिमन्त्रित करे (चरकमें लिखाहैकि जवधायका स्वादु और वहुतसा शुद्ध दुग्धहोवे, तव वामरिष्टा, वाघपुष्पी, विष्वक्सेनकाता इनवृक्षडीन्को धारणकर पूर्वमुखवाले वालकको प्रथम दहना स्तनपिवावे)

अस्रावितदुग्धकेअवगुण

अस्रावितंस्तनंवालःपिवन्स्तन्येनभूयसा। पूर्णस्रोतावमीकासश्वासैर्भवतिपीडितः।

अर्थ—प्रथम स्तनोसैं दूधके विनाटपकाए जो बालकउसदूधको पीताहै, वह पूर्णस्रोतका दूध बहुधा वमन, खांसी, और श्वाससैं पीडित होताहै।

अभिमंत्रणकेमंत्र

क्षीरनीरनिधिस्तेऽस्तुस्तनयोःक्षीरपूरकः। सदैवसुभगोबालोभवत्येषमहाबलः। पयोमृतसमंपीत्वाकुमारस्तेशुभानने। दीर्घमायुरवाप्नोतुदेवाःप्राप्यामृतंयथा।

अर्थ—इन मंत्रोंकों पिताके स्थानमें ब्राह्मणको पढने चाहिये जबतक मंत्रपाठहोवे तबतक माता वा धाय दहनें हाथसैं स्तनका स्पर्शकरेरहे पश्चात् पिवावे।

अनेकउपमाताहोनेकेदोष.

अतोऽन्यथानानास्तन्योपयोगश्चासात्म्यवाद्यादिजन्माभवति।

अर्थ—अनेक उपमाता (धाय) होनेसैं उन्होंके दूध बालककी प्रकृतिमें न आनेसैं वह वातादि रोगोंसैं पीडित होताहै।

दूधसूखनेकेकारण.

क्रोधशोकावात्सल्यादिभिश्चस्त्रियःस्तन्यनाशोभवति।

अर्थ—क्रोध, शोक, अवात्सल्य आदि कारणोंसैं स्त्रीका दूध नष्ट होताहै।

क्षीरउत्पन्नकारकप्रयोग

अथास्याःक्षीरजननार्थंसौमनस्यमुत्पाद्ययवगोधूमशालीषष्टिकांमांसरससुरासौवीरकपिण्याकलशुनमत्स्यकशेरुकशृंगाटकबिषविदारीकंदमधुकशतावरीनालीकालाबूकालशाकप्रभृतीनिविदध्यात्।

अर्थ—इस स्त्रीके दूध प्रगटकरनेको मनसंतुष्ट करके जों गेहूंकासत्व (निशास्ता) शाल्योदन, सांठीचावल, मांसरस, मद्य, कांजी, खल, लहसन, मछली,

कसेरू, सिघाडे, विष, विदारीकंद, मुल्हटी, सतावर, नाडीकासाग और काल-शाक इत्यादि सुसंस्कृतकरके भोजनकोदेवे ।

सप्तरात्रात्परंचास्यैक्रमशोबृंहणंहितम् ।
द्वादशाहेऽनतिक्रान्तेपिशितंनोपयोजयेत् ।

अर्थ— प्रसूता स्त्रीको सातरात्रीव्यतीतहोनेपर क्रमसैं बृंहण (जिनसे देह पुष्टहोवे) देवे और बारहदिन व्यतीत नहो तबतक मांस खानेको न देवे

दूधकीपरीक्षा

अथास्यस्तन्यमप्सुपरीक्षेत। तच्चेच्छीतलममलंतनुशंखा वभासमप्सुस्तन्यमेकीभावंगच्छतिअफेनिलमतन्तुमत्नो त्प्लवतेवसीदतिचतच्छुद्धमितिविद्यात् ।

अर्थ— तदनंतर स्त्रीके दूधकी परीक्षा जलमें इसप्रकार करे कि, बालककी माताका दूध अथवा धायकादूध निकलवावे, यदि वह शीतलहो और स्वच्छ पतला, शंखके समान सपेद, तथा जलमें गेरनेंसे एकत्रहोजावे, तथा झागर-हित और तंतुरहित होकर तरेनहीं और जलमें बूडेनहीं उसको शुद्धजाने ऐसे दूधके पीनेसे बालकको आरोग्य, बल, और पुष्टी होतीहै. ।

दुष्टस्तन्यकेविकार

धात्र्यास्तुगुरुभिर्भोज्यैर्विषमैर्दोषलैस्तथा। दोषादेहेप्रकुप्यं तिततःस्तन्यंप्रदुष्यति। मिथ्याहारविहारिण्यादुष्टावाता दयःस्त्रियः । दूषयन्तिपयस्तेनशारीराव्याधयःशिशो । भ वन्तिकुशलास्ताश्चभिषक्सम्यक्विभावयेत ।

अर्थ— धायके गुरु, विषम, दोषकारक, ऐसे रोगोत्पत्ति करनेवाले प-दार्थ खानेमें तथा मिथ्या विहार करनेसे उसके शरीरके वातादिदोष कुपित-होकर स्तन्य (दूध) को दूषितकरके बालकके शरीरमें अनेकप्रकारके रोग उत्पन्नकरेहै। अतएव कुशलवैद्यको विचार करकेउनरोगोंको दूरकरने चाहिये

कुमारकेहरनेकास्थान

अतोऽनन्तरंकुमारागारविधिमनुव्याख्यास्यामः

अर्थ— इसके अनंतर कुमारके गृह (घर) की विधि कहतेहै । जैसेकि, वास्तुविद्यामें कुशल कारीगरोंनें बनायाहो, प्रशस्त और रमणीय, अंधकाररहित, जिस्में बहुत पवन न आतीहो, और ऐसाभी न हो कि विलकुल हवा न आवे, मजबूत, और जिस्मैं पशु डाढावालेजीव, मूसे, पतंग, (मच्छर, मक्खीआदि, नहो) जल, ओखली, मलमूत्रत्यागनेकेस्थान, स्नानकीपृथ्वी, रसोईकाघर, ऋतुसुखकारीघर, तथाऋतु २ केशयनकरनेकास्थान, बैठक, परदा इनकरके युक्तहोना चाहिये । तथा यथा विहित रक्षाविधान, बलि, होम, मंगल, प्रायश्चित्त, युक्तहो । पवित्र वृद्धवैद्यके अनुरक्त और अनेक मनुष्यों करके युक्त ऐसा बालकका घरहोना चाहिये. ।

बालकके ओढने विछाने और पहरनेके वस्त्र, मृदु, हलके, पवित्र, और सुगंधवाले होनेचाहिये । तथा पसीना, मल, मूत्र, खटमल, आदि जीव, और मैले वस्त्रोंकोत्यागदेवे । और त्यागनेकी शक्ति न होवेतो उन्ही मळ मूत्र और मेलेवस्त्रोंको अच्छेप्रकार जलसैं धोय पवन और धूपसैं शुद्ध और सूखे करकार्यमें लेने चाहिये.

सूतिकाकेकपडेआदिमेंधूनीदेनेकीऔषध.

वस्त्र, शैया, ओढना, विछैया, और पडदे आदिमें जों, सरसो, अलसी, हींग, गूगल, वच, गठोना, हरड, गोलोमी, जटामांसी, लाख, शोकरोहिणी, स्यापकीकांचली, इन सबको कूट घीमिलाकर धूनीदेवे ।

बालक मणीन्को धारणकरे, जैंडा, रूरू, हाथी, रोज, बैल, इन जीवतेहुए पशुओंके दहने सींगके अग्रभागको धारणकरे । ऐंद्र्यादि औषधोंको और जीवक ऋषभसै आदिले और जोऋखडी ब्राह्मण वतावे उन्को धारणकरे । बालकके खेलनेके खिलोने विचित्र और वजने दिखनौट. और हलकेहो तथा तीखे न होवे और जो मुखमें न जानेपावे. तथा प्राणहारक न हो. तथा जिनके देखनेसैं भय न लगे. ऐसे होनेचाहिये ।

वालकको त्रासदेना अच्छानहींहै । अतएव रोनेसे अथवा भोजन न कर-

नेसै दुःखहोताहै तथा और कार्योसे उद्विग्न न करे। तथा राक्षस, पिशाच, पूतना आदिका नाम लेकर बालकको न डरपावे।

पुनःस्तन्यस्वरूप

रसप्रसादोमधुरःपक्काहारनिमित्तजः। कृत्स्ना
देहात्स्तनौप्राप्तःस्तन्यमित्यभिधीयते।

अर्थ—पक्वआहारसें प्रगट हुए रसका मधुर २ सार संपूर्णदेहमेंसे स्तनमें प्राप्तहो दुग्धरूपहोताहै ऐसें विद्वान् कहतेहै।

स्तन्यकीप्रवृत्ति

पयःपुत्रस्यसंस्पर्शाद्दर्शनात्स्मरणादपि। ग्रहणादप्युरोजस्य
शुक्रवत्संप्रवर्त्तते। स्नेहोनिरंतरस्तस्यप्रवाहेहेतुरुच्यते।

अर्थ—पुत्रके स्पर्शसें, देखनेसें, स्मरणसें, तथा बालकके स्तनपकडनेसे वीर्यके सदृश दूध उतरताहै। पुत्रके ऊपर निरंतर स्नेहरहना यही दूधके प्रवाहमें कारण कहाहै।

स्तन्यकेअल्पहोनेमेंकारण

आवात्सल्याद्भयाच्छोकात्क्रोधादत्यपतर्पणा
त्। स्त्रीणांस्तन्यंभवेत्स्वल्पंगर्भान्तरविधारणात्।

अर्थ—पुत्रके ऊपर प्रीति न होनेसे, भयसें, शोकसे, क्रोधसें, भूखेरहनेसें, अथवा दूसरे गर्भके रहनेसे स्त्रियोंकें दूध थोडाहोताहै।

स्तन्यवृद्धिकेउपायान्तर

कलमस्यतण्डुलानांकल्कंवाक्षीरपेषितंपिबति।
साभवतिभृशंतरुणीक्षीरभरेणैवतुङ्गकुचयुगला।

अर्थ—कलमके चामलोंको दूधमें पीसकर पीवेतो उसके दोनो स्तन दूधकी आधिक्यतासे निरंतर ऊंचे रहतेहै।

कलमधान्यकेलक्षण

कलमःकिलविख्यातोजायतेसन्त्रहद्वने।
काश्मीरदेशएवोक्तोमहातण्डुलसंज्ञकः

अर्थ—कलम नामका धान्य बृहद्वनमें उत्पन्नहोताहै। उसीको काश्मीरमें महातण्डुल कहतेहै।

विदारिकन्दस्यरसंपिबेत्स्तन्यवृद्धये:।
तच्चूर्णंतस्यवृद्ध्यर्थंपिबेद्वाक्षीरसंयुतम्।

अर्थ—विदारीकंद का रस स्त्री, दूधबढनेको पीवे अथवा विदारीकंदका चूर्ण दूधकेसाथ स्तन्यवृद्धीके अर्थ पीवे।

दुष्टस्तन्यकेलक्षण

कषायंसलिलप्लाविस्तन्यंमारुतदूषितम्। पित्तादम्लश्च कटुकंराज्योऽम्भसितुपीतिकाः। कफदुष्टंतुयत्तोयेनिमज्जतिचपिच्छलम्। द्वन्द्वजंतुद्विलिङ्गंस्यात्त्रिलिङ्गंसान्निपातकम्।

अर्थ— स्त्रीका दूध जो जलमें डालनेसें ऊपरही तेरा करे 'तथा स्वादमें कषेला होवे' वह वातदूषित जानना, और पानीमें डालनेसें जिसमेंसें पीलीपीली कलीसी होजावे, तथा स्वादमें खट्टा और तीखाहोय उसे पित्तदूषित जानना। और पानीमें गेरनेसें जो डूबजावे और चिकना होवे उस दूधको कफसें दूषित जानना। और जिसमें दो दोषके लक्षण मिले वो द्विदोषसें दूषित जानना, और तीनदोषोंके लक्षण मिलनेसें त्रिदोषसें दूषित दूध जानना। दुष्टस्तन्यकी शुद्धी प्रथम लिखआएहै अब औरभी लिखतेहै.

दुष्टस्तन्यकाशोधन

पटोलनिम्बासनदारुपाठामूर्वागुडूचीकटुरोहिणीच।
सनागरश्चक्वथितंतुतोयेधात्रीपिबेत्स्तन्यविशुद्धिहेतोः।

अर्थ— पटोलपत्र, नीमकीछाल, खेरसार, देवदारू, पाढ, मूर्वा, गिलोय, कुटकी, और सोंठ इन सबको पानीमें काढा करके पीवेतो दूधकी शुद्धीहोवे।

वालककेरोगज्ञानकाउपाय

अङ्गप्रत्यङ्गदेशेतुरुजायस्यात्रजायते । मुहुर्मुहुःस्पृशातितं स्पृश्यमानेचरोदिति । निमीलिताक्षोमूर्धन्येशिरोरोगेण धारयेत् । वस्तिस्थोमूत्रसंसर्गोरुदिष्यातिचमूर्च्छति । विण्मूत्रसङ्गवैवर्ण्यछर्द्याध्मानांत्रकूजनैः । कोष्टेरोगान्विजानीयात्सर्वत्रस्थांश्चरोदिति । तेषुयथाविहितंऋद्धछेदनैा यौषधमात्रयाक्षीरपस्यक्षीरसर्पिंषाधात्र्यास्तुकेवलमेवविदध्यात् । क्षीरान्नादस्यात्मनिधात्र्याश्चअन्नादस्यकषायादीन्यात्मन्येवनधात्र्याः ।

अर्थ— अग और मत्यंग इनमें जिस २अग मत्यंगोमें पीडाहोवे उसीउसी अगको वारंवार वालक स्पर्शकरताहै, और स्पर्शकरके रोवे, मस्तक पीडा होनेसे नेत्रमूंद वारवार मस्तकपटके, वस्ति स्थानमें रोगहोनेसे मूत्रवंदहोवे और रोवे, तथा मूर्च्छाको माप्तहोवे, सर्व कोष्टगत रोगहोनेसें विष्ठा मूत्र वदहोवे, शरीर में विवर्णता तथा वमनहोवे, पेटफूलजावे, आतडेन्मे विलक्षण शब्द होवे, और रुदनकरे, इत्यादि लक्षणोसें रोगअच्छीरीतिसे जान उसी २रोगमें यथायोग्य अर्थात् जोजो औषध जिसजिस रोगमें लिखीहै उसीउसी रोगमें देवे, परतु इसमेंभी ग़हवात यादरहेकि, तीखी और छेदन कर्त्ता औषध न देवे, तथा कफमेदको दूर करने वाली औषध देनी चाहिये, इनकी मात्रा आगे कहेगे उसको दूध और घृतमें मिलाय कर देवे, वालक केवलदूधही पीताहो उसको घृतदूधमें मिलाय न देवे, किंतु दूधमें घोलकर औषधदेवे । और दूध अन्न दोनो सेवनकरने वाले वालकको देवे तो उसकी धायको भी देनी चाहिये, और केवल अन्न खानेवाले वालकको क्वाथआदि औषध उसीको देवे उसकी माताको न देनी चाहिये ।

वालककीमात्राकाप्रमाणकहतेहै

तत्रमासादूर्ध्वक्षीरपस्यांगुलिपर्वद्वयग्रहणसम्मितामौष

धमात्रांविदध्यात् । कोलास्थिसंमितांकल्कमात्रांक्षीरा न्नादायकोलसंमितामन्नादायेति ।

अर्थ—एक महिनेके अनंतर दूध पीने वाले बालकको बीचकी ऊंगली और अनामिका एकत्र करके उन दोनोके आगेके पोरुओंमें अंगूठा धरके पोरुओंके गड्ढेमें जितना कल्क आवे इतनी मात्रा देवे। परंतु वहकल्क सहत, घी, अथवा दूध मिलाय कर देवे, तथा दूध और अन्न खानेवाले को अथवा केवल अन्न खानेवाले बालकको कोल प्रमाण मात्रा देनी चाहिये ।

अन्यग्रंथमेंदूसराप्रकारकहाहैयथा

प्रथमेमासिजातस्यशिशोर्भेषजरक्तिका । अवलेह्यातुक र्त्तव्यामधुक्षीरसिताघृतैः । एकैकांवर्द्धयेत्तावद्यावत्संवत्सरो भवेत् । ततोर्ध्वंमाषवृद्धिःस्याद्यावत्षोडशकाब्दिकेति ।

अर्थ—एक महिनेके बालकको औषधोंमें दूध और घी मिलाय चाटने योग्यकरके उसकी मात्रा एकरत्तीकी जाननी। तदनंतर १ वर्षपर्यंत प्रति- मास एक २ रत्ती वढावे। और एक वर्षके पश्चात् सोलह वर्ष पर्यंत एक २ मासे मात्राबढानी चाहिये ।

प्रकारान्तरकरकेऔषधोपायकहतेहैं.

येषांगदानांयेयोगाःप्रवक्ष्यन्तेगदङ्कराः ।
तेषुतत्कल्कसंलिप्तौपाययेत्तांशिशुंस्तनौ ।

अर्थ—जिस रोगका जोजो परिहारक औषधोपाय कहाहै उसीउसी औषधका कल्ककरके स्तनोंमें लपट बालकको पिवाना चाहिये ।

ज्वरविषयमेंविशेषकहतेहैं.

एकंद्वित्रीणिवाह्ानिवातपित्तकफज्वरे ।
स्तन्यंपयोहितंसर्पिरितराभ्यांयथार्थतः ।

अर्थ—जो बालक केवल दूधपीने वालाहै. उसको वातपित्तकफज्वरमें स्तन्य (स्तनसंबंधीदूध) दूध, घी, एक, दो, तीनदिनके अंतरकरकेपिवावे।

तथा क्षीर और अन्नखानेवाला, तथा केवल अन्नखाने वाले बालकको जैसा प्रयोजनहो उतना घी हितावह होताहै । तथा ज्वरमें तृषाके भयसें बालकको स्तनपान देवे, परन्तु विरेक, वस्ति, वमनरूप नाशकारक विकार न होनेसे स्तनपान देवे*

वालकके तालुवा फाकलटकआनेकाउपाय.

मस्तुलुङ्गक्षयाद्यस्यवायुस्ताल्वस्थिनामयेत्।तस्यतृड्दैन्ययुक्तस्य सर्पिर्मधुरकैःशृतम् । पानालेपनयोर्योज्यंसीताम्बुव्यञ्जनंतथा।

अर्थ—मस्तककी वायु अभ्यन्तर स्नेहका किसी कारणसे क्षय करके तालुएकी हड्डीको नवाय उग्र पीडा उत्पन्न करे, इससें बालक तृषा, और दीनता इनकरके युक्तहोताहै । अतएव उसको सहत घीमें मिलाय भलेप्रकार तपाय कर पिवावे तथा देहमें लगावे, तथा शीतल जल और पंखासे पवन करनी चाहिये ।

वालककीनाभिफूलआवेतथागुदपाकहोजावेउसकाउपाय

वातेनाध्मापितांनाभिंसरुजांतुण्डसंज्ञिताम् । मारुतघ्नैःप्र शमयेत्स्नेहस्वेदोपनाहनैः । गुदपाकेतुवालानांपित्तघ्नींका रयेत्क्रियाम् । रसाञ्जनंविशेषेणपानलेपनयोर्हितम् ।

अर्थ—वालककी नाभी वायुसें वेदनायुक्त फूलकर अत्यन्त बडी होजावे, उसमें वायुनाशक स्नेहादिक उपचार करावे, तथा गुदपाक होनेसे पित्तनाशक उपचार करावे तथा पान लेपन इस विषयमें रसाजन हितकारक होताहै ।

घृतवालककोसदैवहितकारीहोताहैयहकहतेहै.

क्षीराहारायसर्पिःसिद्धार्थकवचामांसीपयस्याप्रामार्गशता वरीसारिवाब्राह्मीपिप्पलीहरिद्राकुष्ठसैन्धवसिद्धं । क्षीरा

* नचतृष्णाभयादत्र पाययेतशिशुंस्तनौ । विरेकवस्तिवमनाद्दतेकुर्यात्तुना त्ययात् ।

न्नादायमधुकवचापिप्पलीमूलकत्रिफलासिद्धम् । अन्ना दायद्विपञ्चमूलीक्षरिभद्रदारुमरीचमधुकाविडङ्गद्राक्षाद्वि ब्राह्मीसिद्धं तेनारोग्यबलमेधायूंषिशिशोर्भवंति ।

अर्थ– जो बालक केवल स्तनपान ही करताहो उसको सरसो, वच, जटामांसी, अर्कपुष्पी, ओंगा, सतावर, सारिवा, ब्राह्मी, पीपल, हलदी, कूठ, सैंधानोन, इन औषधों का कल्क तथा काढा करके सिद्धकराहुआ घृत पिवावे। और दूध अन्नखाने वालेको मुलहटी, वच, पीपरामूल, और त्रिफला इनका कल्क अथवा काढा आदि कर उससें सिद्धकरा हुआ घृतपिवावे तथा अंगमें लगवावे । और केवल अन्न खानेवाले बालकको द्विपंचमूल (लघुपंचमूलऔरबृहत्पंचमूल) दूध, तगर, देवदारु, कालीमिरच, मुलहटी, बायविडंग, दाख, ब्राह्मी और मंडूकपर्णी इनसे सिद्धकरा घृत पिवावे । तथा अंगोंमें मालिस करावे, इसकरके बालकके आरोग्य, बल, मेधा, और आयुष्यकी वृद्धि होवे.

अथबालककीपरिचर्याकीविधि

बालंपुनर्गात्रसमंगृण्हीयात्नचैनंभर्त्सयेत्सहसावानप्रतिबोधयेत् तद्वित्रासभयात् । सहसानापहरेत्उत्क्षिपेद्वावातभयात् । नोपवेशयेत्कौब्ज्यभयात् नित्यंचैनमनुवर्त्तेतप्रियशतैर्नाजिघांसुः ।

अर्थ– परिचारक (नोकर) मनुष्य बालकको धीरेधीरे फूलके समान जैसें उसके शरीरको सुखहोवे ऐसे उठावे, तथा इसको धमकावे नहीं. और अकस्मात् जगावे नहीं क्योंकि अकस्मात् जगानेसें बालक भयभीत हो जाताहै, वातादिदोषोंके कुपित होनेके भयतैं बालकको खींचे नहीं तथा जल्दी शय्यापर गेरे वी नहीं कुवडे होनेके भयसैं बालकको बहुतदेरतक बैठारे बी नहीं, और सर्वकाल उसके इच्छानुसार वर्त्ते, तथा बालकके खेलनेंके खिलोंने आदिपदार्थ देकर संतोषयुक्त रक्खे, कभी इसको मारेनही, तथा औषधका पिवाना, तेल, काजर, उवटना आदि आवश्यक विधिके विना बालकको कभी न रुलावे ।

उक्तपरिचर्याकाफलकहतेहै.

एवमव्याहतमापोह्यभिवर्द्धतेनित्यमुदग्र
सत्वसम्पन्नोनीरोगःसुप्रसन्नमनाश्चभवाति

अर्थ— इसप्रकार निरंतर उपचार करनेसै उत्तम वृद्धिहोय, उन्नत सत्व-सम्पन्न, निरोगी, तथा सुप्रसन्न अंतःकरण ऐसा होवे।

वालककीरक्षाकाप्रकार

वातातपाविद्युत्प्रभापादपलतानानागारानिम्न
स्थानगृहच्छायादिभ्योग्रहोपसर्गतश्चबालंरक्षेत्।

अर्थ— वालकको, अत्यंतहवा, गरमी, विजली, वृक्ष, वेल, अनेकघर, नीचीजगह, गृहोंकी तथा ग्रहसंबंधी अनेक प्रकारके उपसर्ग इनसैं रक्षा करनी चाहिये।

नाशुचौविसृजेद्बालमाकाशविषमेपि
च। नोष्णमारुतवर्षेषुरजोधूमोदकेषुच॥

अर्थ— वालकको अपवित्रस्थान, आकाश, तथा ऊंचेनीचेप्रदेशमें न वैठारे। गरमी, वायु, वर्षा, धुंआ, धूर, और जल इनमेंभी बालकको न वैठारे

वालककोस्वाभाविकहितवस्तूकहतेहैं

अभ्यङ्गोद्वर्त्तनंस्नानंनेत्रयोरञ्जनन्तथा। वसनंमृदुयत्तच्चत
थामृद्वनुलेपनम्।जन्मप्रभृतिपथ्यानिबालस्यैतानिसर्वथा।

अर्थ—तेलकालगाना, उवटनाकरना, स्नान, नेत्रोंमेंअंजनलगाना, नम्र २ वस्त्रोंको धारण करना, तथा नम्रपदार्थोंका लेपन करना, इतनी वस्तु वालकको जन्मसेही सर्वथा हितकारीहै, कोई वसनकी जगे (वमन) ऐसा कहतेहै अर्थात् नम्र वमन करना चाहिये।

माताकेदूधनहोवेऔरधायमिलेनहींउससमयकीविधिकहतेहै.

क्षीरसात्म्यतयाक्षीरमाजङ्गव्यमथापिवा।
दद्यादास्तन्यपर्याप्तेर्बालानावीक्ष्यमात्रया।

अर्थ—बालकको माताका दूध न मिलनेसैं गौ, अथवा बकरी इनमेंसैं जिसका आत्मोपयोगी जानपडे उसका दूध आहार देखके देवे, वह दूध याव त्कालपर्यंत स्तनपान योग्यता होवे तबतकदेना चाहिये। अंग्रेजी डाक्टरोकी रायहैकि, बालकको गधीका दूध अतिहितावह होताहै

बालककाअन्नप्राशनकासमय

यथोक्तविधिनाबालंमासिषष्ठेऽष्टमेऽपिच।
अन्नंसंप्राशयेत्किञ्चित्ततस्तद्वर्द्धयेत्क्रमात्।

अर्थ—छटे महिने अथवा आठमें महिने शास्त्रोक्त विधिसैं बालकको कुछ अन्नदेवे और पीछे अनुक्रमसै बढावे।

बालककेकवलादिककासमय

कवलःपञ्चमाद्वर्षादष्टमान्नस्यकर्मच
विरेकःषोडशाद्वर्षाद्विंशतेश्चैवमैथुनम्।

अर्थ—बालकको पंचमवर्षसैं कवलादि विधिकरे, और आठवर्षका होवे तब नस्य (नास) देवे तथा विरेक (जुल्लाब) सोलह वर्षके होनेपर देना चाहिये, और वीसवर्षकी अवस्था होनेपर मैथुनकरना चाहिये। अर्थात् इससमयसैं प्रथम एउक्त कोईक्रिया न करे।

ग्रहोपसर्गकेलक्षण

अथकुमारउद्विजतेत्रस्यातिरोदितिनष्टसंज्ञोभवतिनखदशनै र्धात्रीमात्मानञ्चपरिद्रुह्यतिदन्तान्खादतिकूजतिजृम्भतेभ्रुवौविक्षिपत्यूर्ध्वंनिरीक्षतेफेनमुद्वमतिसंदष्टौष्ठःक्रूरोभिन्नामव र्च्चादीनार्त्तस्वरोनिशिजागर्त्तिदुर्बलोम्लानाङ्गोमत्स्यछुछुंदरि मत्कुणगन्धायथापुरास्तनमभिलषतितथानाभिलषतीतिसा मान्येनग्रहोपसर्गलक्षणमुक्तंविस्तरेणोत्तरेवक्ष्यामः।

अर्थ—बालक मातृकादि ग्रहोंसैं पीडितहोनेसै उद्विग्न होकर क्षण २ में

ववके, त्रासको प्राप्तहोवे, रोवे, निश्चेष्टहोवे, और नख , तथा दांतोंसें माताको और आपको छेदनकरे, दातोंको चवावे, कीकमारे, अत्यंत जंभाई लेवे, भौहोकों चलावे, ऊपरकी तरफ देखे, मुखसै झागगेरे, होठोंको डसे, क्रूरमाल्रूमहो, वारंवार दस्तजावे, आर्त्तस्वरकरे, रात्रिमेंजगे, दुर्बल और कुमलायासाहोजावे, देहमें मछली, छछूंदर और खटमलकीसी दुर्गन्धआवे, पूर्ववत् स्तन पान करेनहीं ये सामान्यग्रहग्रस्त बालकके लक्षण कहेहै । विस्तारपूर्वक आगे बालककी चिकित्साभे लिखेंगे ।

कुमारकीपुरुषार्थसाधनहेतुभूतक्रियाकहतेहै

शक्तिमन्तञ्चैनंविज्ञाययथावर्णविद्यांग्राहयेत् ।

अर्थ— जब बालक विद्यार्जनक्लेश सहने योग्य होजावे, तब ब्राह्मणका बालक होवे तो वेदविद्या शास्त्रविद्या पढावे, क्षत्रीहोवेतो दंडनीति, वैश्यहोवे तो उसको हिसाब किताब, इसप्रकार विद्याग्रहणकरावे । और पचीसवर्षकी अवस्था वालेको वारहवर्षकी स्त्रीसे विवाहकरे यह प्रथमही गर्भाधानके प्रकर्णमें लिखआएहै ।

सहेतुकसप्रतीकारगर्भस्रावकेलक्षण

तत्रपूर्वोक्तैःकारणैःपतिष्यतिगर्भेगर्भाश यकटिवंक्षणवस्तिशूलानिरक्तदर्शनञ्च ।

अर्थ— पूर्वोक्त कारण मूढगर्भ निदानमें कहेहै, जैसे ग्राम्यधर्म (मैथुन) तथा यानवाहनादि इनकरके गर्भपातहोते समय गर्भाशय, कमर, वंक्षण, और वस्ति-इनमें शूलहोवे, तथा योनिके मुखसे रुधिर निकले उसमें शीतलजलका तरडा स्नान आदिशीतोपचार करावे,विशेष विधि वाग्भटसे लिखतेहै

गर्भस्रावकाउपचार

गर्भिण्याःपरिहार्याणासेवयारोगतोऽपिवा । पुष्पेदृष्टेऽथ वाशूलेवाह्यतःस्निग्धशीतलम् । सेव्याम्भोजहिमक्षीरी वल्ककल्काज्यलेपितान् । धारयेद्योनिवस्तिभ्यामार्द्रार्द्रा नपिचुनक्तकान् ।

अर्थ— गर्भिणीको त्याज्यआहार विहार जो प्रथम कहआएहै, उन्होंके सेवनकरनेसैं अथवा रोगकर्के यदि पुष्प (रजोदर्शनकारुधिर) दीखे, अथवा शूलहोवे तो स्निग्धशीतल ऐसे अन्नपान और परिषेकादि कर्म करने चाहिये, तथा स्त्रीकेयोनि और वस्तिमें, उसीर, कमलगट्टा, चंदन, और पीपलसैं आदिले क्षीरवालेवृक्षोंका वक्कल इनसैं बनाहुआ कल्कका लेपकर पिचु (रुईकेनामे) और नक्तक (कपडेकाटूक) गीले करके रखने चाहिये, सुश्रुतमें लिखाहै कि " जीवनीयाञ्चितशीतक्षीरपानैश्च " अर्थात् जीवनीय कहिये कांकोली क्षीरकांकोली आदिका कल्क दूधमें मिलाय अच्छीरीतिसैं तप्तकर शीतलकरके पिवावे. ।

शतधौतघृताक्तांस्त्रीतदम्भस्यवगाहयेत् । ससिताक्षौद्रकुमुदकमलोत्पलकेशरम् । लिह्यात्क्षीरघृतंखादेच्छृङ्गाटककसेरुकम्। पिबेत्कान्ताब्जशालूकबालोदुम्बरवत्पयः ।शृतेनशालिकाकोलीद्विबलामधुकेक्षुभिः पयसारक्तशाल्यन्नमद्यात्समधुशर्करम् । रसैर्वाजाङ्गलैःशुद्धिवर्जेचास्त्रोक्तमाचरेत् ।

अर्थ— हजारवार जलसैं धुलेहुअे घृतको नाभीसैं नीचे मालिसकर उस स्त्रीको उसजलमें बैठारे, और कमोदनी, कमल, नीलाकमल, इनकी केशरमिश्री और सहत इन सबको घृत और दूधमें मिलायकर पीवे, सिघाडे और कसेरूओंको खावे, तथा गंधप्रियंगु, कमल, नीलकमल, और कच्चा गूलरकाफल, इनको दूधमें औंटाकर पीवे, तथा सांठीचावल, कांकोली, बला, अतिवला, मुलहटी, और ईख इनको दूधमें औंटायकर उस दूधके साथ लालचावल और सांठीचावलोंमें सहत और खांडमिलायकर खावे, अथवा देश और आत्माके अनुकूल जंगलीजीवोंके रसके साथ शाठीचावलोंका भात खावे, क्षीरपाककी विधि ग्रंथान्तरोमें लिखीहै*। तथा शुद्धिको त्याग रक्तपित्तोक्तक्रिया इसजगे करनी चाहिये ।

* द्रव्यादष्टगुणंक्षीरंक्षीरात्तोयंचतुर्गुणम्।क्षीरावशेषःकर्त्तव्यःक्षीरपाकेत्वयंविधिः

असंपूर्णत्रिमासायाःप्रत्याख्या
यप्रसाधयेत् । आमान्वयेच

अर्थ— जिसगर्भिणीको पूरेतीनमहिने न हुएहो। और उसके कदाचित् रक्तदर्शन होवेतो उसका निश्चयकर यत्नपूर्वक साधनकरे। उसीप्रकार आमानुगत रक्तदर्शन होनेसे उसको विरुद्धोपक्रमहोनेसे यत्नपूर्वक साधनकरे।

अबआमरक्तकेअविरुद्धक्रियाकहतेहै.

तत्रेष्टंशीतंरूक्षोपसंहितम् । उपवासोघनोशीरगुडुच्यरलुधान्यकाः । दुरालभापर्पटकचन्दनातिविपावलाः। क्वथिताःसलिलेपानंतृणधान्यादिभोजनम् । मुद्गादियूषैरामेतुजितेस्निग्धादिपूर्ववत् ।

अर्थ—आमानुगत रक्तदर्शनमें शीतल अन्नपानादिकोको वाहर और भीतर योजना करना हितहै । परंतु शीतलवस्तु रुधिरको हितकारीहै और आमको वढानेवालीहै, इस्से कहतेहैकि (रुक्षोपसहितम्) अर्थात् तिक्तकषायआदि करके पूर्वोक्त शीतलपदार्थ युक्त होने चाहिये। तथा उपवासकरना हितहै, तथा नागरमोथा, उसीर, गिलोय, श्योनाक, धनिया, जवासा, पित्तपापडा, चन्दन, अतीस, और बला इन्का काढा करके पीनाहितहै,तथा तृणधान्य (सामखिया. कोदो.) आदिका भोजनहितहै, मूंगकायूप, और आदिशब्दकरके अरहर मसूर आदिशिंबीधान्य हितहोतेहै. इसप्रकार आम्को जीवे जब आमको जीतचुके तब पूर्ववत् स्निग्धादि हितहोतेहै ।

एवमुपक्रांतायाउपावर्त्तन्तेरुजोगर्भश्चाप्यायते।

अर्थ—इसप्रकार उपचार करनेसै संपूर्ण गर्भपात संबंधी उपद्रव शांतहोवेहै. और गर्भवढताहै ।

गर्भपातमेंउपचार

गर्भेनिपतितेतीक्ष्णंमद्यंसामर्थ्यतःपिवेत् । गर्भकोष्ठविशुद्ध्यर्थमर्त्तिविस्मरणायच ।लघुनापञ्चमूलेनरूक्षांपेयां ततःपिवेत्।

पेयाममद्यपाकल्केसाधितांपाञ्चकौलिके । बिल्वादिपञ्चक क्काथेतिलोद्दालकतण्डुलैः । मासतुल्यदिनान्येवंपेयादिःप तितेक्रमः । लघुरस्नेहलवणोदीपनीययुतोहितः ।

अर्थ—गर्भिणीका इसप्रकार सेवनकरने परभी अदृष्टवससैं गर्भनिःशेष गिरजावे तो तीक्ष्णमद्य बहुतसापीवे । कारण यहहैकि, मद्यपीनेसैं गर्भकी शुद्धि और पीडाका विस्मरणहोताहै । तदनंतर मद्यपीनेके लघुपंचमूलसैं बना ऐसा रूक्षपेयाको पीवे । और जो स्त्रीमद्यनपीतीहो वह गर्भगिरनेके पश्चात् पंचकोलसैं बना पेयाकोपीवे मद्यको न पीवे। तथा बृहत्पंचमूलके काढेसैं बने पेयाको पीवे । और तिल, उद्दालक (चावलविशेप) और चावलसैं जोबनाहुआहो वह पेया जितने महिनेका गर्भगिराहो उतनेदिन पीना चाहिये । फिर कैसा पेयाहोकि जिसमें चिकनई और नोन न होवे, तथा दीपनकर्त्ता (मरिच चित्रक आदि) द्रव्यजिसमैं मिलीहोवे ।

यहविधिकिसलियेकरनीचाहियेसोकहतेहै.

दोषधातुपरिक्लेदशोषार्थविधिरित्ययम् ।

अर्थ—दोष (पित्तकफ.) और धातुओंके क्लेदसुखानेके अर्थ यहविधि करनी चाहिये. (दोषशब्दकरके इसजगे पित्तकफकाही ग्रहणहै ।)

स्नेहान्नबस्तयश्चोर्ध्वबल्यजीवनदीपनाः ।

अर्थ—दोष धातुके परिक्लेद सुखनेके अनंतर चतुर्विध स्नेहपीनेमैंहितहै. और चिकना अन्नहितहै । तथा चिकनी वस्तीहितहै । अर्थात् चिकनाई वादीको दूरकरतीहै । स्नेहपान बलकेअर्थहितहै, अन्न जीवनके अर्थ और बस्ती ओजवृद्धि करताहै ।

उपविष्टकगर्भकेलक्षण

सञ्जातसारमहतिगर्भेयोनिपरिस्रवात् । वृद्धिमप्राप्नुवन्गर्भः कोष्ठेतिष्ठतिसस्फुरः । उपविष्टकमाहुस्तंवर्द्धतेतेननोदरम् ।

अर्थ— प्राप्तहुआहै बलजिसमें ऐसागर्भ, गर्भिणीके पथ्यापथ्य आदिसैं

जो स्रावहोवे, अर्थात् कभी रुधिर और कभी अन्य प्रकार स्रवे, इसी कारण गर्भवृद्धीको न पाता फडकताहुआ कोष्ठ (उदर) में ही रहे, उस गर्भको उपविष्टक कहतेहै । इस उपविष्टकसे गर्भिणीका उदर नहीं वढताहै ।

नागोदरगर्भकेलक्षण

शोकोपवासरूक्षाद्यैरथवायोन्यतिस्रवात्। वातेकुद्धेकृशः शुष्येद्गर्भोनागोदरंतुतत्।उदरंवृद्धमप्यत्रहीयतेस्फुरणंचिरात्।

अर्थ— शोक, उपवास, रूक्षआदि गर्भ और गर्भिणीके अपुष्टकारक और पवनके कोपकारक हेतुओंसें तथायोनिके अत्यंतस्रवनेसे वातकुपितहोकर गर्भको कृशकरदेवे तथा सुखायदेवे, उस गर्भको नागोदरसंज्ञक कहतेहै, और कोई आचारी उपशुष्कक कहतेहै, इस नागोदरसंज्ञक गर्भमें वढाहुआभी उदर घटजाताहै । तथा देरीमेंफडकताहै । उपविष्टकगर्भ की तो वृद्धिनहीहोती जैसाका तैसा रहताहै और इस नागोदरमें गर्भ नष्टहोजाताहै।

उपविष्टकनागोदरगर्भकीचिकित्सा

तयोर्वृंहणवातघ्नमधुरद्रव्यसंस्कृतैः। घृतक्षीररसैस्तृप्तिरामगर्भाश्चखादयेत्। तैरेवचसुतृप्तायाःक्षोभणंयानवाहनैः।

अर्थ— उनदोनो उपविष्टक और नागोदर गर्भवती स्त्रीकी द्रव्य (घृत दूध) करकें संस्कृत ऐसें वृहण वातघ्न और मधुरद्रव्यों सें तृप्तिकरे, तथा आम गर्भवालीको वैद्य खवावे जव वृहणादि द्रव्योसे सिद्धकरे घृत दूधसे गर्भिणी तृप्त होजावे तव उसको रथ हाथी घोडा आदि सवारीमें वैठार वेगसें चलावे इस प्रकार करनेसे गर्भवतीको क्षोभण करना चाहिये ।

वृद्धकाश्यपकेमतसेंशुष्कगर्भकेलक्षण

गर्भनाड्याह्यवहनादल्पत्वाद्धाररसस्यच। चिरेणाप्यायतेगर्भस्तथैवाकालभोजनात्। आकुक्षिपूरणंगर्भोमन्दस्पन्दनएवच ।

अर्थ—गर्भपोषण करनेवाली शिराओंके न वहनेसे, और माताके शरीरमें रस अल्प होनेसे कुसमय भोजनके करनेसें गर्भ वहुत कालमें पुष्ट होता है वह गर्भ माताकी कूखको पूर्ण नहीं करे तथा धीरेधीरे पेटमें फिरता है ।

लीनाख्यागर्भकीचिकित्सा

लीनाख्येनिस्फुरेश्येनगोमत्स्योत्क्रोशबर्हिजाः। रसाबहु घृतादेयामाषमूलकजाअपि। बालबिल्वंतिलान्माषान्सक्तूं श्चपयसापिबेत्। समेद्यमांसंमधुवाकट्यभ्यङ्गञ्चशीलयेत्।

अर्थ—लीनाख्य गर्भमें गर्भिणीको, शिकरा, गौ, मछली, उत्क्रोश (टटीहरी) मोर, इनके मांसकारस तथा उडद, मूलीकारस, इनमें बहुत सा घृत मिलायकर देवे, तथा कच्चेवेल, तिल, उरद और सत्तु इनमेंसैं किसी एकको दूधमें मिलायकर पीवे अथवा स्निग्धमांसके साथ दाखकी आसवपीवे, तथा कमरमें तेलकी मालिसकरे, लीनाख्य * गर्भके लक्षण संग्रहमें लिखेहैं।

उपायान्तर.

हर्षयेत्सततंचैनामेवंगर्भप्रवर्द्धते। पुष्टो ऽन्यथावर्षगणैःकृच्छ्राज्जायेतनैववा।

अर्थ—लीनाख्य गर्भवती स्त्रीको वारंवार प्रसन्नकरे, कोई कहताहै कि उपविष्टक, नागोदर, और लीनाख्य इनतीनो गर्भवाली स्त्रियोंको प्रसन्नकरे क्योंकि प्रसन्न करनेसैं गर्भबढे है।

अन्यप्रकारसैं अर्थात् रूक्षपदार्थोंके सेवनसैं जोगर्भ पुष्टहुआ वह वर्षोंमेंभी बडेकठिनतासैं प्रगट होय अथवा नभी होवे।

गर्भिणीकेउदावर्त्तकायत्न.

उदावर्त्तन्तुगर्भिण्याःस्नेहैराशुतरांजयेत् योग्यै श्चबस्तिभिर्हन्यात्सगर्भांसाहिगर्भिणीम्।

अर्थ—गर्भिणीके उदावर्त्त रोगको चतुर्विध स्नेहकरके शीघ्रजीते, तथा योग्य कहिये तत्कालोचित बस्ती करके जीते, क्योंकि, वह उदावर्त्त गर्भके साथ गर्भिणीकोभी नष्ट करे है।

---

* यस्याः पुनर्वातोपसृष्टस्रोतसोलीनो गर्भः। प्रसुप्तोनस्पन्दते तंलीनमित्याहुः

मृतगर्भास्त्रीके लक्षण.

गर्भेऽतिदोषोपचयादपथ्यैर्दैवतोपिवा । मृतेऽन्तरुदरं शीतंस्तब्धंध्मातंभृशव्यथम् । गर्भास्पन्दोभ्रमस्तृष्णाकृच्छ्रादुच्छ्वसनंक्लमः । अरतिःस्रस्तनेत्रत्वमावीनामसमुद्भवः ।

अर्थ—वातादि दोषोंके सञ्चय होनेसे, अपथ्य करनेसे, दैव (पूर्व जन्मके शुभाऽशुभसैं) उदरमें गर्भ मरजावे उस गर्भके मरनेसै गार्भिणीका उदर शीतलहो, तथा निश्चलहो, धोकनीके समान फूलाहुआ हो और अत्यंत वेदनायुक्त होता है । तथा गर्भ फडके नहीं. भ्रम, प्यास, और बडी कठिनतासे गार्भिणीको उर्ध्वश्वास लिया जावे क्लम, ग्लानि, अरति, नेत्र गिरे पडे, और आसन्न प्रसवके शूल होवे नही ए मृतगर्भास्त्रीके लक्षण है ।

मृतगर्भास्त्रीकायत्न.

तस्याःकोष्णाम्बुसिक्तायाः पिष्ट्वायोनिंप्रलेपयेत् । गुडंकिण्वंसलवणंतथान्तःपूरयेन्मुहुः । घृतेनकल्कीकृतयाशाल्मल्यतसिपिच्छया । मंत्रैर्योग्यैर्जरायुक्तैर्मूढगर्भोनचेत्पतेत् । अथाप्रच्छ्येश्वरंवैद्योयत्नेनाशुतमाहरेत् । हस्तमभ्यज्ययोनिंचसाज्यशाल्मलिपिच्छया । हस्तेनशक्यंतेनैव ।

अर्थ—उस अंतरगर्भ मृतास्त्री की योनिको तचे गरम जलसे सुहाता२से ककरे, पीछे गुड, चामलकी दारू, और नोन इनको पीसके लेपकरे तथा इसमें सेमर, अलसी एगादी २ घृतमें कल्ककर पूर्वोक्त औषधमें मिलाय लेपकरे और योनिके भीतर भरे, तथा जरायुमें कहेहुअे मन्त्रोंसे (क्षितिर्जलमित्यादि) अथवा जरायु पातनके अर्थ अथर्वण वेदमें कहेहुए मन्त्रोंका अनुष्ठान करे । यदि इस प्रकार अनुष्ठान करने परभी मराहुआ बालक पेटसै न निकले तो राजाकी आज्ञा लेकर वैद्य उस मूढ गर्भको शीघ्रही गर्भसै निकाले इस प्रकार कि प्रथम घृतको हाथोमें चुपड तथा घृत और सेमरके गोंदसे योनिको लेपनकर उस मरेहुए बालकको निकाले ।

गात्रञ्चविषमंस्थितम्

आञ्छनोत्पीडसम्पीडविक्षेपोत्क्षेपणादिभिः।
अनुलोम्यसमाकर्षेद्योनिंप्रत्यार्जवागतम्।

अर्थ—विषमस्थित गर्भके देहको लंबाकरके ऊपरको चढायकर तथा चारो और घुमायकर विशेष ऊपरकी तरफ करके और उत्क्षेपण करके आदिशब्दसैं इसी प्रकार अपनी बुद्धिसैं अन्य प्रकार कल्पना कर सीधाकरे और योनिके मुख प्रतिलायकर निकाले. १८ नम्बरके चित्रोंको देखो।

मूढगर्भकीशस्त्रचिकित्साकहतेहै

हस्तपादशिरोभिर्योयोनिंभुग्नःप्रपद्यते। पादेनयोनिमेकेनभुग्नोऽन्येनगुदंचयः। विष्कम्भौनामतौमूढौशस्त्रदारणमर्हतः।

अर्थ—कभीहाथकरके, कभी पैरकरके, कभीशिरकरके योनिके प्रति टेढाहोकर मूढगर्भ प्राप्तहोताहै। उसमें एकको विष्कंभनाम कहतेहै. तथा एकपैरकरके योनिके प्रति आवे. औरदूसरेपैरसैं गुदाकेप्रतिटेढाहोकर जोमूढगर्भआवे वो दुसराविष्कंभनामक मूढगर्भकहाताहै. ए दोनो मूढगर्भ शस्त्रसैं विदीर्णकरनेयोग्यहै अर्थात् हाथसैं नहींनिकलसक्के इसीसैं शस्त्रद्वारा काटने चाहिये।

शस्त्रकर्म

मण्डलाङ्गुलिशस्त्राभ्यांतत्रकर्मप्रशस्यते।
वृद्धिपत्रंहितीक्ष्णाग्रंनयोनाववचारयेत्।

अर्थ—मण्डलाग्र और अंगुलिशस्त्र जो आगे शस्त्राध्यायमें कहेंगे इनसैं मूढगर्भोंका छेदन आदि कर्मकरे और वृद्धिपत्र तथा तीक्ष्णाग्रशस्त्र इनको योनिमें कदाचित् न करे।

मूढगर्भकेछेदनकीविधि

पूर्वंशिरःकपालानिदारयित्वाविशोधयेत। कक्षोरस्तालुचिबुकेप्रदेशेऽन्यतमेततः। समालम्ब्यदृढंकर्षेत्कुशलोगर्भशंकुना। अभिन्नशिरसंत्वक्षिकूटयोर्गण्डयोरपि। तत्रमे

वंसप्ताहंस्नेहमेवततःपिबेत् । सायंपिबेदरिष्टंवातथासुकृत मासवम् । शिरीषककुभक्वाथपिचून्योनौविनिक्षिपेत् । उप द्रवाश्चयेऽन्येस्युस्तान्यथास्वमुपाचरेत् ।

अर्थ—स्नान और अभ्यंग करनेके अनंतर अजमायन, अतीस, रास्ना, हींग, इलायची, औरपंचकोल इनसबके चूर्णको घृतकेसाथ यथायोग्य स्त्रीकी प्रकृतिके अनुसार पिवावे, अथवा । अजमायन आदि औषधोंको जलमें पीस कल्ककर घृतकेसाथ पिवावे, अथवा क्वाथकरके पिवावे. उसीप्रकार कुटकी, अतीस,पाढ, खरच्छद, दालचीनी, हींग, और मालकांगनी इनको चूर्णकर घृतसे कल्ककरे अथवा क्वाथकरके उसस्त्रीके रक्तादि स्रावकेअर्थ और पीडादूर-करनेको तीनरात्रि पिवावे । तीनरात्रीके अनतर उसस्त्रीको सातरात्रीपर्यंत घृतही पिवावे और कोईरूक्षादि औषध न पिवावे. और सायकालमें अरिष्ट* पिवावे तथा उत्तमरीतिसे बना ऐसा मद्यपिवावे और सिरस तथा कोहवृक्ष-कीछाल इनसे बना क्वाथ उसमें भीगेहुए रुईके गाले योनिमें धरे और उस-स्त्रीके जो ज्वरादि उपद्रवहोवे उनको उनकी चिकित्सा द्वारा दूर करे ।

पयोवातहरैःस्निग्धंदशाहंभोजनेहितम् । रसोदशाहंचपरं लघुपथ्याल्पभोजना । स्वेदाभ्यङ्गपरास्नेहान्बलातैलादि कान्भजेत् । ऊर्ध्वंचतुर्भ्योमासेभ्यःसाक्रमेणसुखानिच ।

अर्थ—पूर्वोक्तविधि आचरणके पश्चात् वातहरणकर्ता औषधोंसेसिद्ध ऐसा दूध दशदिन पिवावे, दशदिन पीछे दूसरेदशाहमें भोजनमें रसकादेना हितहै इसके उपरात अर्थात् वीसदिनकेपश्चात् वहस्त्री हलका, पथ्य, और थोडा भोजनकरे । और स्वेद, अभ्यंगको करतीहुई. बलाआदितैलोंका सेवनकरे इसप्रकार आचरण चार महिने पर्य्यंतकरे पीछे निष्क्रातमूढगर्भास्त्री पाचवें महिनेमें क्रमसे सुखकारी अन्न पान आहार विहारादिकोंका सेवनकरे ।

*अरिष्टकेलक्षण आगेआसवोंकेप्रकर्णमेंकहेंगे

बलातैलकीविधि

बलामूलकषायस्यभागाःषट्पयसस्तथा। यवकोलकुलत्थानां दशमूलस्यचैकतः १ निःक्काथभागोभागश्चतैलस्यच चतुर्दशाद्भि मेदादारुमंजिष्ठाकांकोलीद्वय्यचन्दनैः २ सारिवाकुष्टतगरजी वकर्षभसैंधवैः। कालानुसार्याशैलेयवचागुरुपुनर्नवैः ३ अश्व गन्धावरीक्षीरशुक्रायष्टीवरारसैः। शताव्हासूर्पपर्ण्येलात्वकूप त्रैःश्लक्ष्णकल्कितैः ४ पक्कंमृद्वग्निनातैलंसर्ववातविकारजित्सू तिकाबालमर्मास्थिक्षतक्षीणेषुपूजितम् ५ ज्वरगुल्मग्रहोन्मा दमूत्राघातांत्रवृद्धिजित्। धन्वन्तरेरभिमतंयोनिरोगक्षयापहः।

अर्थ—बलाकी जडका क्काथ ६ भाग, दूधके ९ भाग, इन्द्रजो, बेरकीछाल, कुलत्थी, दशमूल, इनके काढेका १ भाग, तैल १४ मांभाग, मेदामहामेदा, देवदारु, मजीठ, कांकोली, सपेदचंदन, लालचंदन, सारिवा (सरिवन्) कूठ, तगर, जीवक, ऋषभ, सैंधानोन, उत्पलसारिवा, शिलाजीत, वच, अगर, सांठ, असगंध, शतावर, क्षीरविदारी, मुलहटी, त्रिफला, बोल, सौफ, शूर्पपर्णी, इलायची, तज और पत्रज एप्रत्येक औषध दोदो मासे लेवे सबको कूट चूर्णकर कल्कबनावे इसकल्कको तथा पूर्वोक्त बलाआदिके काढेको तैलमें मिलाय अग्निपरचढावे नीचे मंद २ अग्निदेवे जब सबरस जलजावे केवल तैलमात्र शेषरहजावे तबउतारलेवे। यह तैल सर्ववातकेविकार प्रसूतकेरोग, बालककेरोग, मर्म, हड्डी, क्षत (घाव) इनरोगोंसैं क्षीण, ज्वर, गुल्म, ग्रहोन्माद, मूत्राघात, अंत्रवृद्धि; इनसबरोगोंकोयहदूरकरे। यह धन्वंतरिके अभिमतहै और सर्वयोनिके रोगोंको दूरकरने वालाहै।

वस्तिद्वारेविपन्नायाःकुक्षिःप्रस्यन्दतेयदि
जन्मकालेततःशीघ्रंपाटयित्वोद्धरेच्छिशुम्।

अर्थ—यदि गर्भिणीस्त्री प्रसूतकालमें मरजावे और उसका गर्भ जन्मकालमें वस्तिद्वारमें आनेसैं कूखफडके उससमय कुशलवैद्य शीघ्र कूखकोचीर बालक-

को निकाललेवे। विशेषचिकित्सा आगे चिकित्सास्थानमें गर्भणीके प्रकर्ण-में कैहै।

प्रसंगवसअन्नविपाकक्रियाकहतेहै

अथान्नविपाकक्रिया

हस्तविंशतिसम्माना कलापेशी विनिर्मिता । अन्नपाकक्रियार्थाच पाकनाडी प्रकीर्त्तिता १ ऊर्ध्वांशोमुखनामास्य अधोऽशोगुदनामकः । कण्ठादामाशयंयावदन्ननाडीतिकथ्यते २ ततश्चामाशयस्तस्मात्क्षुद्रान्त्रंस्थूलमन्त्रकं । आमाशयात्समारभ्यभागप्रथमआन्त्रिकः ३ ग्रहणीचाग्न्यधिष्ठानं बुधैराद्यैःप्रकीर्त्तितः । ततःपक्वाशयः प्रोक्तःपक्वान्नपरिधारणात् ४ स्थूलान्त्रस्याप्यधोभागःसरलोगुदसंज्ञकः । अन्नकिट्टंमलंसर्वं वहिर्निःसारयत्ययम् ५ श्वासनाड्याःस्थिता पश्चादन्ननाड्यन्नवाहिनी । अधस्तात्कुण्डलीभूतानाडीचोदरमध्यगा ६ कण्ठादधोगतिर्नाडीभित्त्वावक्षस्थलाश्रयाम् । पेशीसुखद्वयवतीप्रविष्टेयमधोगुहाम् ७

अर्थ– अन्नपरिपाकार्थ वीस हाथकी कला और पेशी द्वारानिर्मित एक परिपाकनाडी इसमनुष्यकी देहमें वर्त्तमानहै, इसके ऊपरके भागको मुख और नीचेकेभागको गुदाकहतेहै। इसके भिन्नभिन्नअंश, रूप, और क्रियासाधकता भेद, भिन्नभिन्ननामोसें प्रचलितहै। सवके ऊपरका भाग मुख, उस्सैपरे कंठसें लेकर आमाशयपर्यंत अन्ननाडी, उसकेआगे आमाशय, उस्सैपरे क्षुद्रांत्रऔर पश्चात्स्थूलात्रहै। आमाशयमें लेकर क्षुद्रात्रके आद्यभागको ग्रहणी अथवा अग्न्याधिष्ठाननाडी कहतेंहैं। उस्सैपरे पक्काशय, अर्थात् आमाशय और ग्रहणी यहा अन्नपरिपाकहोकर इसीस्थानमें उपस्थितहोताहै। स्थूलात्रके अधःस्थित सपूर्ण अंगको गुदाकहतेहै। यह गुह्यद्वारअतमेंहै। इसीकेद्वारा समस्त-मल वाहरको गिरताहै।

श्वासनाडीके पिछाडी अन्ननाडीहै। चर्वितअन्न ग्रासादि इसी स्थानमें उपस्थित होतेही इसी नाडीके आधीन पेशियोंके द्वारा तत्क्षण आमाशयमें प्रेरित होताहै। पाकनाडीका उदरस्थभाग अतिशय कुण्डलाकृतिहै। यह मुखद्वयविशिष्ट पाकनाडी कंठदेशसैलेकर नीचेको आनकर वक्षस्थलस्थ पेशीको भेदकर उदरमें प्रवेश करेहै।

अन्नंमुखार्पितंदन्तैश्चर्वितंसृणिकायुतम् । पिण्डीभूतंचान्ननाडीं प्रापितंपततिक्षणात् ८ आमाशययकृद्वक्षस्थलपेश्योरधःस्थिते। तत्रप्रक्वाथितोऽत्यम्लःघूर्णितंप्रकृतेर्बलात् ९ क्षुद्रान्तान्तमुहूर्त्तेनविशेत्सजलपङ्कवत्। आमाशयाद्दक्षिणतः क्षुद्रान्त्रंकुण्डलाकृति १० अस्यैवप्रथमोभागोग्रहणीतिनिगद्यते। असम्यग्जीर्णमन्नंतत्प्रविश्यग्रहणींकलाम् ११ आन्त्रकेनरसेनात्रमिलितंपरिपच्यते। तदैवयकृतोनाड्यापित्तकोशात्तदङ्गजात् १२ पीतास्तिक्तपित्तरसोग्रहणीमुपतिष्ठति। अन्नपाकेरसोऽप्येषप्रधानंकारणंमतम् १३ पित्तमेवाग्निनाम्नैतन्मुनिभिःपरिकीर्त्तितम्। नकेवलंकालखण्डमन्नपाकप्रयोजनम् १४ यतःशोणितसंशुद्धिंविदधातिनिरन्तरम्। औदरेदक्षिणेपार्श्वेतदास्तेपर्शुकावृतम् १५ ऊर्ध्ववक्षस्थलस्थास्यापेश्योधस्ताच्चवृक्कक‌ः। यकृद्वत्कारणंक्लोमविज्ञेयंपाककर्मणि १६ प्लीहक्षुद्रान्त्रयोर्मध्ये मध्यास्तेदीर्घवर्ष्मतत्। आमाशयोऽस्यपुरतोवर्त्ततेऽस्माद्विनिःसृतः १७ रसोनाडीविशेषेणक्षुद्रान्त्रमुपतिष्ठति। प्लीहाप्यन्नस्यपचनेहेतुर्मुनिभिरीरितः १८ वामतोऽधोगुहायांसवर्त्ततेपर्शुकावृतः। अरुणाभोऽग्रतश्छिद्रैर्बहुभिश्चसमाततः १९ ऊर्ध्वेवक्षस्थलस्यास्यपेश्यधोवामवृक्ककः। स्रोतास्यंत्रादधोपक्वंश्वेताभंरसमन्न

जम् २० शिरामार्गेण निखिलंप्रेरयन्तितद्वदालयम् । आमाशयकलाचारिधमनीभिरपोऽखिला २१ गृह्लन्तेप्रायशःशेषा अन्त्रस्थाभिरनन्तरम् । आकृष्टद्रवमन्नंतात्किट्टशेषन्तुपङ्कवत् २२ स्थूलान्त्रंप्रविशेत्पश्चात्पुरीषंतान्निगद्यते । ततःप्राप्यगुदंकाले सर्वथासारवर्जितम् । तद्वहिर्निःसरेद्देहान्नित्यंकल्याणहेतवे २३

अर्थ— मुखमें दियाहुआ अन्नका ग्रास दांतोंसे चर्वित और लाल(लार)से मिलकर तथा पिंडके समानहो अन्ननाडीमें प्राप्तहो तत्क्षण आमाशयमें जाताहै।आमाशययन्त्र उदरगव्हरमें यकृत् औरवक्षस्थलस्थ पेशियोंके अधोभागमेंस्थितहै।इसयन्त्रमें भुक्त(भोजनकराहुआ)द्रव्यप्राप्तहोनेपर इसजगेसैंएकप्रकारका अतितीव्रअम्लरस निकल भुक्तपदार्थकेसाथ मिलकर उसपदार्थको जीर्णकरताहै अर्थात्पचाताहै। आमाशयगतअन्न इसयन्त्रकी स्वाभाविकशक्तिद्वारा क्रमागत चलायमानहो आमाशयिक अम्लरसके योगसैं और इतस्ततो भ्रमणकरनेसे संपूर्ण भुक्तद्रव्य कीचकेसदृश होजाताहै, अर्थात्इसका कोईअंश पतला और कोईअंश गाढारहताहै । भुक्तान्न ऐसीअवस्थासैं क्षुद्रांत्रोंमेंप्रवेशकरेहै । आमाशयके दक्षिणस्थ कुण्डलाकृति नाडीका नाम क्षुद्रान्त्रहै । यह आमाशयके दक्षिणसे लेकर कुछदूर तिरछेभावमें वाईतरफ और अधोमुख आयकर अतिशय कुंडलीभूतहोगयाहै । इसका-प्रमाण न्यूनाधिक १२ ॥ हाथहोवेगा इसका प्रथमभाग अर्थात् तिरछा और अधोगामी अंशको ग्रहणी अथवा अग्न्याधिष्ठान कला कहतेहै, इससै आगेके अंशको पक्वाशयकहतेहै । भुक्तद्रव्य, कुछद्रव अवस्थाहोकर ग्रहणीमें उपस्थितहो आँतोंसैंनिकलेहुए एकप्रकारके रसकेसाथ मिलताहै । इसीस्थानमें यकृत्जोहैसो नाडीविशेषद्वारा तदंगस्थित पित्तकोशसैं पित्तरसकोलायकर भुक्तान्नकेसाथमिलाताहै । पित्तरस पीलेरंगका और तिक्त (कडुआ) स्वादवाला है । यही अन्नपरिपाक विषयमें मुख्यप्रधानकारणहै । इसी पित्तरसको अग्निकहतेहै । यकृत् केवल अन्नपरिपाककाही साहाय्यकरता नहींहै किंतु यह रुधिरशोधनका एकप्रधान यंत्रहै । यहयन्त्र उदरके दक्षिणपार्श्वमें वक्षस्थल

पेशीकेनीचे तथा दक्षिण वृक्कके ऊपर पर्शुकाओंसैं आवृतहोकर स्थितहै। क्लोमनामक और एकयंत्रहै वह नाडीविशेषद्वारा तदीयरस क्षुद्रांत्रोंमें प्राप्तहोकर अन्नपरिपाककार्यका निर्वाह करेहै, यहयंत्र दीर्घाकृति प्लीहा और क्षुद्रांत्रोंके मध्यमें अवस्थितहै। इसके सन्मुख आमाशयहै उक्तयंत्रोंके समान प्लीहाभी अन्नपचनेका कारण मुनीश्वरोंने कहाहै। यह अरुणवर्ण तथा सन्मुखकीतरफ अनेक छिद्रोंसैं व्याप्तहै। यह उदरगव्हरके वांईतरफ वक्षस्थलपेशीके नीचे और वामवृक्ककेऊपर पर्शुकाओंसैं व्याप्तहोकर स्थितहै। जलविशिष्ट पतले पदार्थ पीनेसै अमाशयिक कलास्थित धमनीगण का जलप्राय समुदाय भाग-तत्क्षण खिचकर रुधिरकेसाथ मिलताहै और अवशिष्टअंश यंत्रस्थधमनी गणोंसेंखिचकर इसीजगेरहताहै। २० के नंबरका चित्र देखो

भोजनकरा अन्न इसप्रकार पक्कहोकर स्वेतवर्ण द्रवपदार्थरूप परिणामको प्राप्तहोताहै इसद्रवका देहरक्षणोंपयोगी सारांश स्रोतोनाडी समूहद्वारा खिचकर शिरामार्गहो क्रमसैं हृत्कोष्टमें प्राप्तहो रुधिरके स्वरूपको धारणकर देहको रक्षा और पोषण करताहै। अन्नद्रवकासारहीन कीचकेसमान जो अंश वचे उसको किट्ट और मल कहतेहै वह स्थूलांत्रोमें प्रवेश होताहै फिरवही मलयथासमयमें गुदाकेद्वारा पुरीषरूप हो देहके कल्याणार्थं नित्य वाहर निकलताहै।

अहोकुशलिनोधातुर्महिमाकोऽयमुल्वणः।विचित्रविधिनापक्क मन्नंसत्वानिर्जीवयेत्। अन्नग्रासोरदैपिष्टोलालाक्लिन्नोन्ननाडिकाम्। श्वासरंध्रंनसोरन्ध्रंचातिक्रम्यमुखंविशेत्। निरुणद्ध्युपजिव्हासा सर्वथाश्वासनाडिकाम्। जिव्हाप्रयातिपश्चाच्च पाकनाडीततोऽभितः। किंचिदूर्ध्वमुखीभूत्वापिंडंग्रसतियत्नतः। आद्यरन्ध्रंप्रविष्टंचेदन्नंकासैर्विनिःसरेत् द्वित्तीयगंक्षवथुना क्षणेनप्रकृतेर्बलात्। अतोनैवातित्वरणंश्रेयःपानान्नकर्मणि। अन्नंवैप्राणिनांप्राणाइतिश्रुतिनिदेशतः। तदन्नंविधिनासेव्यमदोषंप्राणवर्धनं। अन्नंरसोऽन्नमस्त्रंचमांसमन्नमपिस्मृतं मेदोऽन्नमस्थ्यमन्नंमज्जान्नंशुक्रमेवच। अन्नंवलमथौजाऽन्नंमनोऽ

न्नमपिचोच्यते । चराचरेषुनिखिलाःप्रजाचान्नसमुद्भवाः । अन्नपानविधिर्यश्चतत्कालेचोचिता क्रिया । क्रियतेविकृतिर्व त्ससंकीर्णवर्गसंग्रहे ।

अर्थ—कैसी अद्भुत विधाताकी महिमा है कि, विचित्र रीतिसे अन्नकाप रिपाककर जीवोंको जीवाताहै। अन्नकाग्रास दांतोंसे पिसकर और लाला(लार) से आर्द्र होकर पिंडरूप होकर श्वासके छिद्रको और नाकके पिछाडीके छिद्रको त्यागकर अन्ननाडीमें जायकर गिरताहै। यहकार्य अति कौशल्यता-से होताहै। अन्नादिक जिससमय गलेसें नीचेको जाताहै उससमय पूर्वोक्त श्वास आने जानेका छिद्र उपजिव्हा अर्थात् दूसरी छोटीजो जीभहै उससे ढकजाताहै उसीप्रकार जिव्हा किंचित् पीछेको जाय और अन्ननाडी कुछ ऊपरको तथा आगेको आतीहै इससें नासिकाका पिछाडीका छिद्र रुकजाताहै अत-एव निर्विघ्न गलाधःकरण कार्य सिद्ध होताहै। अन्नादिकका कणिका यदि दैव-वश प्रथम छिद्रमें चलाजावे तो उसीसमय खासीसे वाहर निकलजाताहै. इसी-को धांसगई कहतेहै यदि इसश्वास छिद्रमें गयाहुआ ग्रासादिक अटकजावे तो अवश्य प्राणनाशकी संभावना जाननी। और दूसरे छिद्रमें ग्रासादिक चलाजावे तो छींक आनेसे उसको निकालदेवे, इसीसें जल आदि पीनेमें और भोजनकरनेमें वहुत जल्दीन करनाचाहिये। अन्नही प्राणियोंके प्राणहै ऐसा वेदमें लिखाहै अतएव उस अन्नको विधिपूर्वक सेवनकरे। दोपवर्जित और बलवर्द्धक अन्न भोजनकरना उचितहै अन्नहीरस, अन्नहीरुधिर,अन्नहीमांस, अन्नहीमेद, अन्नहीहड्डी, अन्नहीमज्जा, इसीप्रकार अन्नही शुक्रको प्रगटकरेहै। अन्नहीवल, अन्नतेज उसीप्रकार अन्नही मनकहाताहै चराचर जितनी प्रजाहै सव अन्नसेही प्रगटहोतीहै। अन्नपान विपयक विधि और तत्कालिक कर्त्तव्य क्रिया इत्यादि समुदाका विपय आगे संकीर्ण वर्गमें कहेगे।

भ्रूणजन्मक्रम

पुंवीर्यं स्वलितनार्याधरांविशतिरंहसा। ततोडिम्बाशयंयातित त्ररूपान्तरंव्रजेत्। एकीभूयसमायातो जरायुंडिम्बरेतसी। आ

वरण्यवृतेतत्रवृद्धिंचेतोनिरन्तरम्॥आदौविन्दुनिभोजीवःशेतेग र्भाशयेस्त्रियाः।वदर्यास्थिनिभोमासाच्चतुरस्त्रस्ततोभवेत्। त्रिपक्षात्परतःस्याच्चद्विधाभिन्नकलायवत् । मासद्वयात्तुचगर्भस्यभवेत्सर्वांग संस्थितिः। ततःषण्मासपर्यंतंपुष्टिर्भवतिसंततम्। सप्तमेमासिनयनंभवेत्प्रमुदितंध्रुवम्। मासाष्टमेभवेद्गर्भोननुतिर्यगवस्थितः।अधोमूर्ध्वोर्द्ध्वचरणोनवमेमासिजायते। कुक्षावुषित्वाचनवमासान्नवदिनाधिकान्॥भूमौततःपतेद्गर्भो दशमेप्रकृतेर्वशः॥

अर्थ— रतिक्रियाद्वारा पुरुषकास्खलितवीर्य अतिवेगसैं प्रथमस्त्रीके जरायुमें प्रवेशकरे पीछे डिम्वाशयमें जायकर रूपान्तरको प्राप्तहोताहै। तदनंतर डिम्व और शुक्र मिलकर जरायुमें प्रवेशकरेहै उसजगे एक आवरनीद्वारा आच्छादितहो निरंतर वृद्धिको प्राप्तहोताहै, जीवप्रथमस्त्रीके जरायुमें बिंदुतुल्य होकर रहताहै, एकमहिनेके अनंतर वेरकी गुठलीकेसमान और चोंकोनहोताहै तीनपक्ष (४९ दिन)के उपरांत दोखंडवाले मटरके सदृशहोकर रहताहै. दोमहिनेके पश्चात् गर्भकेमुख उत्पन्नहोयकिंतु नेत्रमुदे रहतेहै. तीनमहिनेमें भ्रूणके सर्वअंग प्रत्यंगस्फुटतरहोय, इस्सैउपरांत छःमहिनेपर्य्यंतक्रमसै उसकी वृद्धिहोतीहै. और इसीसमय यह वालकपेटमें फडकताहै, छःमहिनेके उपरांत वालकके केशोत्पत्तिहोतीहै। तथा सातवेमहिनेसें बालककेनेत्र खुलतेहै, और आठवेमहिनेमें भ्रूणपेटमें तिरच्छाहोकर रहताहै, नवममहिनेमें बालकका नीचेको मस्तक और ऊपरको दोनो पैरकरके निस्सरणोन्मुख होताहै। इसप्रकार बालक नोमहिने और नोदिन गर्भवासकरके दसवे महिनेमें प्रकृतिवश पृथ्वीमें गिरताहै. २१ नम्वरका चित्रदेखो.

गर्भिणीकेप्रतिमासमेउपचार

मधुकंशाकवीजंचपयस्यासुरदारुच। अश्मंतकस्तिलाः कृष्णास्ताम्रवल्लीशतावरी। वृक्षादनीपयस्याचलताचोत्पलसारिवा। अनन्तासारिवारास्नापद्माचमधुयष्टिका।

वृहतीद्वयकाश्मर्यःक्षीरिशृंगत्वचोघृतम् । पृश्निपर्णीवला शिग्रुःस्वदंष्ट्रामधुपर्णिका । शृंगाटकंविसंद्राक्षाकसेरुमधुकं सिता । सप्तैतान्पयसायोगानर्द्धश्लोकसमापनान् । क्रमा त्सप्तसुमासेषुगर्भेस्त्रवतियोजयेत् ।

अर्थ— मधुकादि द्रव्योपलक्षित आधे २ श्लोकमें समाप्ति होनेवाले सातयोगोंको गर्भस्रावमें क्रमसे दूधके साथदेनेचाहिये १ मुलहटी, शाकवीज जीवक और देवदारु. २ अश्मंतक, कालेतिल, ताम्रवल्ली, शतावर ३ वृक्षादनी पयस्या, लता, कमलगट्टा, और सारिवा. ४ अनन्ता, सारिवा, रास्ना, पद्मा, मुलहटी, । ५ दोनोकटेरी, कंभारी, वटादिक्षीरवृक्षोकीडाली, और छाल,तथा घृत । ६ पृष्टिपर्णी, वरिआरा, सहजना, गोखरू, मधुपर्णिका, । ७ सिंघाडे, विस, दाख, कसेरू, मुलहटी, और मिश्री, इसप्रकार ऐसातयोगकहेहैं. ।

दूसरेउपचार

कपित्थबिल्वबृहतीपटोलेक्षुनिदग्धिजैः।मलैःशृतं प्रयुजीतक्षीरंमासेतथाष्टमे । नवमेमधुकानन्तापयस्यासारिवापिवेत् । योजयेद्दशमेमासिसिद्धंक्षीरंपयस्यया । अथवायष्टिमधुकनागरामरदारुभिः ।

अर्थ— कैथ, वेल, कटेरी, पटोलपत्र, इक्षु, निदग्धिका, इनकी जडको दूधमें औटाय उस दूधको आठवे महिने पिवावे । मुलहटी, अनता, कांकोली, सारिवा, इनको दूधमें, औटायकरनोमिमहिनेमें पिवावे । और दसवे महिनेमें कांकोलीको दूधमें औटायकर पिवावे । अथवा मुलहटी, सौठ, और देवदारू इनको दूधमें औटायकर उसदूधको दसमें महिने पिलाना चाहिये ।

मर्यादासेंउपरांतगर्भधारणकेदोष

वृत्तप्रसवायास्तुपुनःषड्भ्योवर्षेभ्यऊ

लित सवमानायाकुमारोल्पायुर्भवति ।

जित। भोंत्री फिर छःवर्षके अनंतर प्रसवहोनेसे उसकी संतान

अल्पायुहोतीहै. इसीसें छःवर्षके अनंतर स्त्रीको निवृत्तगर्भा कहतेहै। इसजगे वमनादिक्रिया गर्भव्याघातकहै अतएव उसकानिषेधहै परंतु प्राणघातक व्याधीकेविषें मृदुद्रव्य बराबर प्रतिप्रसवमें देनीचाहिये सोकहतेहै.

रोगविशेषकरकेगर्भिणीकोवमनक्रियाकहतेहै.

अथगर्भिणींव्याध्युत्पत्तावत्ययेछर्दयेत्।

अर्थ— गर्भिणीके प्राणनाशक रोगहोनेसें वमनकरावे और मधुर, अम्लअन्नकरके अनुलोमक्रियाकरे, तथा संशमनीय मृदु औषध देनी चाहिये, तथा मृदुवीर्य मधुरप्राय और गर्भकेअनुकूल ऐसे अन्नपान गर्भिणीको देने चाहिये- तथा गर्भकेविरुद्ध भी क्रिया मृदुप्राय यथायोग करनीचाहिये।

गर्भिणीकेआहारकानियम

सौवर्णंसुकृतंचूर्णं कुष्ठंमधुघृतंवचा। मत्स्याक्षिकाशंखपुष्पी मधुसर्पिश्चकाञ्चनम्। अर्कपुष्पीघृतंक्षौद्रंचूर्णितंकनकंवचा हेमचूर्णानिकैटर्यः श्वेतदूर्वाघृतंमधु। चत्वारोभिहिताःप्राश्याःश्लोकार्धेषुचतुर्ष्वपि। कुमाराणांवपुर्मेधाबलपुष्टिविवर्धनाः।

अर्थ—सोनेकाचूर्ण, कूठ, मुलहठी, वच इन सब औषधोंको घृतमें उबालेंके चटावे यह१प्रयोग हुआ ब्राह्मी, शंखपुष्पी, घृत, सहत और सुवर्णकेवर्क यह दूसराप्रयोग। अर्कपुष्पी, घृत, सहत, सुवर्ण चूर्ण, और वच, यह तीसरा प्रयोगहै। तथा सुवर्णचूर्ण, कटुनिंब, सपेददूब, घृत और सहत यह चतुर्थ प्रयोगहै। ए आधेआधे श्लोकमें चारप्रयोग कहेहै। ये प्रयोग १ वर्षपर्यंत देनेचाहिये। इसकरके गर्भकी देह, बुद्धि, बल, पुष्टि, इनकी वृद्धिहोवे। किसीकेमतमें १२ वर्ष पर्यंत देना ऐसा लिखाहै। परंतु ये औषध बालकको चटाना चाहिये ऐसा कोई कहतेहै।

बालकोंकोऔषधप्रमाणविश्वामित्रोक्तकहतेहै.

विडङ्गफलमात्रन्तुजातमात्रस्यभेषजम्। एतेनैवप्रमाणेनमा

सिमासिप्रवर्धितः। कोलास्थिमात्रंक्षीरादेर्देयात्भैषज्यकोविदः। इतिश्रीसौश्रुतशारीरेदशमोऽध्यायःसमाप्तोयंशारीरभागः

अर्थ—तत्काल हुए बालकको १ वायविडंग प्रमाण औषधी देनीचाहिये, तदनंतर यहमात्रा प्रतिमास एकएक वायविडंगके समान बढानी चाहिये,-तथा जबतक बालक दूध पीतारहे उसको बेरकी गुठलीके समान औषधिदेवे। और जब अन्नखानेलगे तब गूलरकेसमान मात्रा देनीचाहिये।

इति श्री माथुर कन्हैया लालतनय दत्तराम निर्मिते बृहन्निघंटुरत्नाकरे भाषा टीका विभूषिते शारीरस्थानं प्रथमं पूर्णतामियात्।

आश्विनवद्य १० संवत १९४४.



अथ शस्त्रचिकित्सा प्रारम्भः

अब शस्त्रचिकित्सा लिखनेका यह प्रयोजन है कि मूढगर्भके निकालनेमें मंडलांगुलिशस्त्रोंको लिखाहै दूसरे शिरामोक्ष तथा शारीकमें विशेषकरके शस्त्रचिकित्साकी प्रत्येक समय आवश्यता रहतीहै इसीसै विनाशस्त्रचिकित्साके जाने वैद्यको शस्त्रकर्म करना सर्वथा वर्जितहै. अतएव शस्त्रचिकित्साका प्रारंभ करतेहैं.

अथातोअग्रोपहरणीयमध्यायंव्याख्यास्यामः

अर्थ– अब अग्रोपहरणीयाध्यायकी व्याख्याकरेंगे. (छेद्यादि कर्मके प्रथम यंत्रादि उपष्करको प्रधानकरके जो अध्याय कहीजावे उसको अग्रोपहरणीय कहतेहै.

त्रिविधकर्म

त्रिविधंकर्म पूर्वकर्म्मप्रधानकर्मपश्चा
त्कर्मेतितद्व्याधिंप्रतिप्रत्युपदेक्ष्यामः

अर्थ– कर्म तीन प्रकारकाहै. १ पूर्वकर्म (लंघन विरेचनादि) २ प्रधानकर्म (पाटनरोपणादि) ३ पश्चात्कर्म (बलवर्णाग्निजननादि) एतीनों प्रकारके कर्म रोग २ के प्रति यथास्थलमें लिखेंगे (इसजगे ग्रंथवढनेके भयसैं नहींकहे)

अस्मिन्शास्त्रेशस्त्रकर्मप्राधान्याच्छस्त्रकर्म्मै
वतावत्पूर्वमुपदेक्ष्याम स्तत्सम्भारांश्च ।

अर्थ– इसशास्त्रमें शस्त्रकर्मको प्रधानहोनेसैं प्रथम शस्त्रकर्मको ही कहेंगे, और शस्त्रकर्मके उपष्कर (सामग्री) कोभीकहेंगे ।

शस्त्रकर्मको अष्टविधत्व

तच्चशस्त्रकर्माष्टविधम् । तद्यथा । छेद्यं भेद्यंले
रुयं वेध्य मेष्य माहार्यं विस्राव्यं सीव्यमिति

अर्थ– लंबा विशाल और जिसके अवयव पृथक् २ हो और जो व्रण मर्मोंके आश्रितनहो अर्थात् मर्मोंसे पृथक्हो तथा प्राप्तकालमें शस्त्रकर्म करा गयाहो ऐसाव्रण शस्त्रकर्ममें प्रसंशनीयहै, [प्राप्तकालके कहनेसे बालवृद्धका परित्यागहै, अर्थात् बालवृद्धोंके शस्त्रकर्म न करे अथवा प्राप्तकालसे समय लेना चाहिये, जैसे शीतकालमें अग्निसाध्यव्रणका प्राप्तकालहै । और ग्रीष्मऋतुमें उसका अप्राप्तकालहै, कोई आचार्य प्राप्तकालके स्थानमें (युक्ताकालकृति ऐसा पाठ कहतेहै तहा भलेप्रकार पाकहोगयाहो ऐसा अर्थ जानना]

अब वैद्यके शस्त्रकर्ममें कौन २ गुणहोने चाहिये सो कहतेहै कि, निर्भयहो शीघ्रक्रिया (चीरनेफाडनेमेंशीघ्रकारी) जिसके शस्त्रतीक्ष्ण (पैने) हो शस्त्रकर्म करनेके समय पसीने, कंप, और मोहजिस्को नहोवे । [तथा पक्व अपक्व व्रणके जाननेमें और उसकी क्रियाकरनेमें कुशलहो इत्यादि गुणसंपन्न वैद्य शस्त्रकर्मकरनेमें प्रसंशनीयहै ।

एकेनवाव्रणेनाशुध्यमानेनान्त
राबुध्यावेक्ष्यापरान्व्रणान्कुर्यात् ।

अर्थ–कुशलवैद्य एकव्रणकेशुद्धहोनेसे अपनी बुद्धीसे उसकोदेख उसीप्रकार और व्रणोंको शुद्धकरे अर्थात् जिसरीतिसे एकफोडामें चीरादेकर शुद्ध और अच्छाकरा उसीप्रकार औरभी व्रणोंको शुद्ध और अच्छाकरे।

यतोयतोगतिंविद्यादुत्सङ्गोयत्रयत्रच ।
तत्रतत्रव्रणंकुर्याद्यथादोषोनतिष्ठति ।

अर्थ–जिस २ स्थानमें गति (नाडी आदिकी गतिहो) और जिस २ स्थानमें दुष्टरुधिरका समूहहो उसी २ स्थानमें चीरादेना उचितहै । जैसे दोष (राध) अथवा दोषशब्दसे वातादिक शुद्धहोवे ऐसाजानना।

तत्रभ्रूगण्डशंखललाटाक्षिपुटौष्ठदन्तवे
ष्टकक्षाकुक्षिवङ्क्षणेषुतिर्य्यक्छेदउक्तः ।

अर्थ–तहां, भौह, कपोल, कनपटी, ललाट, पलक, होठ, मसूढे, कूख, वक्षण, (ऊरूकीसंधी) इनमें तिरछा चीरा लगना चाहिये ।

चन्द्रमण्डलवच्छेदान्पाणिपादेषुकारयेत् ।
अर्द्धचन्द्राकृतीश्चापिगुदेमेढ्रे चबुद्धिमान् ।

अर्थ—हाथपैरोंमें चन्द्रमण्डलके सदृश गोल चीरादेवे और गुदा, मेढ्र (भगलिंग) में बुद्धिमान्वैद्य को अर्द्धचंद्रके समान चीरादेना उचितहै ।

विपरीतचीरादेनेकेउपद्रव

अन्यथातुशिरास्नायुच्छेदनादतिमात्रंवेदना
चिराद्व्रणसंरोहोमांसकन्दीप्रादुर्भावश्चेति ।

अर्थ—विपरीत शिरास्नायुके छेदनेसैं घोरपीडा और बहुकालमें व्रण (घाव) का संरोह कहिये भरना होताहै । तथा मांसकंदी कहिये कंदकेसदृश मांसांकुर प्रगटहोतेहै ।

मूढगर्भोदराशोंऽश्मरीभगन्दरमुखरोगेष्वभुक्तवतः
कर्मकुर्वीत । ततःशस्त्रमवचार्यशीताभिरद्भिरातुर
माश्वास्यसमन्तात्परिपीड्यांगुल्याव्रणमभिमृज्य
प्रक्षाल्यकषायेणप्लोतेनोदकमादायतिलकल्कमधु
सर्पिःप्रगाढमौषधयुक्तांवर्तिंप्रणिदध्यात् ।

अर्थ—पूर्व यह कहआयेहैकि, भोजनोत्तर शस्त्रकर्मकरे परंतु अब कहतेहैकि, इतनेरोगोंमें भोजनके पूर्व शस्त्रकर्मकरे । मूढगर्भ, उदररोग, ववासीर, पथरी, भगंदर और मुखरोग, इनमें भोजनके प्रथम शस्त्रकर्म कर्त्तव्यहै. कदाचित् उक्तरोगोंमें अज्ञानवश हो भोजनोत्तर शस्त्रकर्म करेतो कष्टहो । वातकोप और मरणहोवे । और मुखरोगमें आहारको उंगली डारकर जो वमनकरनाहै सोघातकारकहै) शस्त्रकर्मके पश्चात् रोगीको शीतलजलसैं सावधान करके राधनिकालनेके अर्थ व्रणको चारोओरसैं दबावे जैसैं उसके भीतरकी निःशेष राध निकलजावे. तदनंतर उसको क्वाथके जल में भीगेहुए वस्त्रखंडसैं धोयडाले पीछे तिलकल्क, सहत, घृत और औषधसंयुक्त बत्ती उसव्रणमें प्रवेशकरे ।

ततःकल्केनाछाद्यनातिस्निग्धांनातिरूक्षांघनां कवलिकांदत्वावस्त्रपट्टेनबध्नीयाद्वेदनारक्षोघ्नैर्धूपै धूपयेद्रक्षोघ्नैश्चमन्त्रैरक्षांकुर्वीत। ततोगुग्गुलवगुरुसर्जरसवचागौरसर्षपचूर्णैर्लवणनिम्बपत्रव्या मिश्रैराज्ययुक्तैर्धूपैर्धूपयेत्।

अर्थ—तदनंतर तिलकल्कसे उसको आच्छादनकर उसके ऊपर न अत्यतचिकनी और न बहुतरूखी ऐसी मोटी कवलिका (जोभग्नरोगमें ढाक और गूलरकीछालपत्ते आदिसें बनतीहै) देकर कपडेकी पट्टीसें बांधदेवे, पश्चात् पीडाकी नाशक (हींग और लवणादि) तथा राक्षसादिकोंके नाशक (यवसरसोआदि) धूपकी धूनीदेवे, और राक्षसादिकके नाशक मंत्रोंसें रक्षाकरे, तदनतर गूगल, अगर, राल, वच, सपेदसरसो इनका चूर्णकर नीमकेपत्ते नोन और घृतमिली ऐसी धूपसें धूनीदेवे, (व्रणमेंही इसधूनीको न देवे किंतु जिसपररोगी शयनकरे उस शैय्याकी दुर्गंध दूरकरनेको तथा नीलेरंगकी मखियोंके दूरकरनेको धूनीदेवे, क्योंकि व्रणपर मखीबैठनेसे उसमें कृमीपडजातीहै। अतएव घरमेंभी धूनीदेवे इसधूनीसे मच्छर भीनष्टहोतेहै।)

आज्यशेषेणचास्यप्राणान्समालभेत। उदकुम्भाच्चापोगृहीत्वाप्रोक्षयन्रक्षाकर्मकुर्यात्तद्वक्ष्यामः।

अर्थ—धूनीदेनेके अनंतर धूनीदेनेसे बचेहुए घृतसे हृदयादिकोंको तर्पणकरे। तदनंतर वैद्य जलके कलशसे प्रोक्षण कर्त्ताहुआ रक्षाकर्मकरे।

अथरक्षाविधानमंत्राः

कृत्यानांप्रतिघातार्थंतथारक्षोभयस्यच, रक्षाकर्मकरिष्यामिब्रह्मातदनुमन्यताम् १ नागाःपिशाचागन्धर्वाःपितरोयक्षराक्षसाः। अभिद्रवन्तियेत्वांब्रह्माद्याघ्नन्तुतान्सदा २ पृथिव्यामन्तरीक्षेचयेचरन्तिनिशाचराः। दिक्षुवास्तुनिवासाश्चपान्तुत्वांतेनमस्कृताः ३ पान्तुत्वांमुनयोब्राह्म्यादिव्याराजर्षयस्तथा। पर्व

ताश्चैवनद्यश्चसर्वाःसर्वेऽपिसागराः ४अग्नीरक्षतुतेजिह्वांप्राणान्
वायुस्तथैवच। सोमोव्यानमपानन्तेपर्ज्जन्यःपरिरक्षतु ५उदानं
विद्युतःपान्तुसमानंस्तनयित्नवः।बलमिन्द्रोबलपतिर्मनुर्मन्येम
तिंतथा ६ कामांस्तेपातुगंधर्वाःसत्वामिन्द्रोऽभिरक्षतु। प्रज्ञांतेव
रुणोराजासमुद्रोनाभिमण्डलम् ७ चक्षुःसूर्योदिशःश्रोत्रेचन्द्र
माःपातुतेमनः। नक्षत्राणिसदारूपंछायांपान्तुनिशास्तव ८ रेत
स्त्वाप्याययन्त्वापोरोमाण्यौषधयस्तथा। आकाशंखानितेपातु
विष्णुस्तवपराक्रमम्। पौरुषंपुरुषश्रेष्ठोब्रह्मात्मानंध्रुवौभ्रुवौ। ए
तादेहेविशेषेणतवनित्याहिदेवता १० एतास्त्वांसततंपान्तुदीर्घ
मायुरवाप्नुहि। स्वस्तितेभगवान्ब्रह्मास्वस्तिदेवाश्चकुर्वताम् ११
स्वस्तितेचन्द्रसूर्यौचस्वस्तिनारदपर्वतौ। स्वस्त्यग्निश्चैववायुश्च
स्वस्तिदेवाःमहेन्द्रगाः १२ पितामहकृतारक्षास्स्वत्यायुर्वर्द्धतांत
व।ईतयस्तेप्रशाम्यन्तुसदाभवगतव्यथः। इतिस्वाहा १३ एतैर्वै
दात्मकैर्मन्त्रैःकृत्याव्याधिविनाशनैः। मयैवंकृतरक्षस्त्वंदीर्घमा
युरवाप्नुहि।

अर्थ—एवेदात्मक १४ श्लोकसैं वैद्य रोगीकी रक्षाकरे।

रक्षाकेअनंतरकृत्य

ततःकृतरक्षमातुरमागारंप्रवेश्याचारिकमादिशेत् ततस्तृ
तीयेऽहनि विमुच्यैवंबध्नीयाद्वस्त्रपट्टेन नचैनंत्वरमाणोऽप
रेद्युर्मोक्षयेत् द्वितीयदिवसेपरिमोक्षणाद्विग्रथितोव्रणश्चिरा
दुपसंरोहतितीव्ररुजश्चभवतिततउर्ध्वंदोषकालबलादीनवे
क्ष्यकषायालेपनबन्धाहाराचारान्विदध्यात्। नचैनंत्वरमा

णः सान्तर्दोषंरोपयेत्सचारान्विदध्यात्सह्यल्पेनाप्यपचारेणाभ्यन्तरमुत्सङ्गंकृत्वाभूयोऽपिविकरोति ।

अर्थ— इसप्रकार रोगीकी रक्षाकर उसको घरके भीतर प्रवेशकरके आचारिक (आहार विहार जो व्रणितोपासनीयाध्यायमें कहेहे) उनको कहे अर्थात् बहुतडोलना दुष्टभोजनआदिजो अहितहे उनको तथा जो रोगीको हितकारी आहारविहारहे उनकोकहिदेवे, तदनंतर तीसरे दिन आहारविहारसे निवृत्तकरके और व्रणको औषधोंके काढेसे धोयकर कपडेकीपट्टीसे फिरबांधदेवे, परंतु जल्दीसें दूसरेदिनही इसव्रणको न खोलडाले। कारण यहहै कि, दूसरे दिन व्रणखोलनेसे इसमें गाठरहजातीहे और घावबहुतदिनोंमें पुरताहै)तथा तीव्रपीडा होतीहै । पीछे चौथेदिन दोष काल और रोगीके बलका विचार करके बुद्धिमान्पुरुष काढा, लेपन, बंधन आहार, विहार, आचारआदिकरे परतु जिसके भीतर दोष होवे उसव्रणको कदाचित् रोपण न करे। कारणकि वह थोडेसेभी अपथ्य करनेसे वहभीतरसे वढकर फिर भी विकारकरेहै।

तस्मादन्तर्वहिश्चैवसुशुद्धंरोपयेद्व्रणम् । रूढेप्यजीर्णव्यायामव्यवायादीन्विवर्जयेत्।हर्षंक्रोधंभयञ्चापियावदास्थैर्यसम्भवात् ॥ हेमन्तेशिशिरेचैववसन्तेचापिमोक्षयेत् । त्र्यहाद्व्यहाच्छरद्ग्रीष्मवर्षास्वपिचबुद्धिमान्। अतिपातिषुरोगेपुनेच्छेद्विधिमिमंभिषक् ।प्रदीप्तागारवच्छीघ्रंतत्रकुर्य्यात्प्रतिक्रियाम्।

अर्थ— पूर्वोक्त कारणोंसे वैद्य अभ्यंतर और वाह्य[1] शुद्ध[2] (रस, स्थान, वर्ण, गधएचारोजिस्केशुद्धहोवे असे) व्रणका रोपण करे और व्रणभरवीजावे तथापि जबतक वो स्थिर न होवे तावत् कालपर्यंत अजीर्ण, दंडकसरत, स्त्रीसंग इत्यादि कर्मोंको तथा हर्ष, क्रोध, भय, इन्को त्यागदेवे, कोई शंकाकरे कि सदैव तीसरे २ दिन फस्तखोले कि कभी बीचमें भी खोले, इसवास्ते कहतेहैकि, हेमंत, शिशिर, और वसंत इन ऋतुओंमें तीसरे २ दिनशिरामोक्ष

१ अतरशुद्धिलक्षण वातादिवेदनापगम
२ बहि शुद्धिलक्षण विशुद्धवर्णसावसंस्थानगंधाश्चत्वारइति

(फस्त)खोले (कारण यहहैकि इनऋतुओंमें अधिक शीतपडनेसैं शीघ्रपाक-का भय नहींहै) और शरद, ग्रीष्म, तथा वर्षा ऋतुमें दूसरे २ दिन फस्तखोले कारण यहहै कि इनऋतुओंमें गरमी अधिक पडनेसैं शीघ्रपाकका भय रहताहै । (वर्षास्वपिच) इसपदमें चकार धरनेका यह प्रयोजनहै कि यह नियम पैत्तिक व्रणमेंनहींहै अर्थात् पैतिकव्रणको हेमंत शिशिर ऋतुमें यथा नियम मोक्षणकरे अपिशब्दसैं वैशाखको गरमहोनेंसैं दूसरे दिन भी मोक्षणकरे । अथवा पैत्तिक व्रणको ग्रीष्मऋतुमें दोवार खोले और बंदकरे, परंतु इसकानियम नहींहैं बुद्धिमान्वैद्य अपनी बुद्धीके अनुसार रक्तमोक्षणकरे ।

अब कहतेहैंकि यहपूर्वोक्तविधि वैद्यको शीघ्रवढनेंवाले रोगोंमेंमंतव्यनहींहै क्योंकिजैसें जलतेहुए घरको अनेकउपायोंसे शीघ्रशांति करतेहैं उसीप्रकार शीघ्रवढने वाले रोगोंकी शीघ्र चिकित्सा करे. ।

शस्त्रजनितपीडामेंचिकित्सा

यावेदनाशस्त्रनिपातजाता तीव्राशरीरंप्रदुनोतिजन्तोः ।
घृतेनसाशांतिमुपैतिसिक्ता कोष्णेनयष्टीमधुकान्वितेन ।

अर्थ— जो तीव्रपीडा शस्त्रके लगनेसैंहोतीहै वो इसप्राणीकेदेहको अत्यंत दुःखदेतीहै, वह, मुलहटी, महुआ, युक्त गरम घृतके सेकनेसै शांतिहोतीहै. ।

इतिश्रीआयुर्वेदोद्धारेबृहन्निघंटुरत्नाकरेपंचदशस्तरंगः १५

यंत्राध्यायः

अथातोयन्त्रविधिमध्यायंव्याख्यास्यामः

अबयंत्र कल्पनाध्याय अथवायंत्रभेदाध्यायकोकहेंगे

यंत्रोंकीसंख्या

यंत्रशतमेकोत्तरं । तत्रहस्तमेवप्रधानतमंयन्त्रा
णामवगच्छ । किंकारणं ? तस्माद्धस्तादृतेयं
त्राणामप्रवृत्तिरेवतदधीनत्वाद्यन्त्रकर्मणाम् ।

अर्थ—एकसौएक यंत्रहे उनयंत्रोंमें हस्त (हाथ) को प्रधानताहै का-

रणकि, हायके विना सवयत्रोंकी अप्रवृत्तिहै; अर्थात् विनाहायके यंत्रोंसे कोईकार्य नही होताहै । अतएव यंत्रकर्मोंको तदधीनत्वहै ।

यंत्रव्यापिलक्षणपरिभाषाको कहतेहै

तत्रमनःशरीरावाधकराणिशल्यानि,तेषामाहरणोपायोयन्त्राणि । तानिषट्प्रकाराणि । तद्यथा—स्वस्तिकयन्त्राणिसन्दंशयन्त्राणितालयंत्राणिनाडीयंत्राणिशलाकायंत्राणिउपयन्त्राणिचेति ।

अर्थ—तहां मन और शरीरको पीडाकरनेवाले शल्य (कांटेखोवरेआदि) है. उनके दूरकरनेका उपाय यन्त्रहै । वो यंत्र छःप्रकारके है, जैसे १स्वस्तिकयत्र, २ संदंशयंत्र ३ तालयंत्र ४ नाडीयंत्र ५ शलाकायत्र और ६ उपयंत्र इनमें स्वस्तिकयत्र*साथियेके, समान चार अवयववाले होतेहै. संदंशयंत्र संडासीके आकार होतेहै इसीप्रकार औरोंकीभी उनके नामसे आकृति जाननी चाहिये ।

स्वस्तिकादियन्त्रोंकीसंख्या

तत्रचतुर्विंशतिःस्वस्तिकयंत्राणिद्वेसंदंशयंत्रेद्वेएवतालयन्त्रेविंशतिर्नाड्यःअष्टाविंशतिःशलाकाःपञ्चविंशतिरुपयन्त्राणि ।

अर्थ—पूर्वोक्त १०१यंत्रसंख्याको दिखातेहै तहां २४ स्वस्तिकयत्रहै, २ संदशयंत्रहै, २ तालयंत्रहै, २० नाडीयत्रहै, २८ शलाकायंत्रहै, और २५ उपयंत्रहै सबकेजोडनेसे १०१ यंत्रहोतेहै । [द्वेएवतालयंत्रे] इसमें एवशब्दके धरनेसे यहप्रयोजनहै कि शल्पकी आकृति देखकर स्वस्तिकादि यत्र अधिक भी बनाने चाहिये

तानिप्रायशोलोहानिभवन्तितत्प्रतिरूपकाणिवातदला

*-१ कोई आचार्य कहतेहैकि इसजगे [शत] शब्द असख्यवाचीहै अर्थात् यंत्र अनेकहै ।

* गेंहूके चूनसे मंगलकार्योमें स्त्री कुछचौकौन चार लकीर खींचतीहै उसकानाम साथियाहै

भे। तत्रनानाप्रकाराणांव्यालानांमृगपक्षिणांमुखैर्मुखा नियन्त्राणांप्रायशःसदृशानि। तस्मात्तत्सारूप्यादागमा दुपदेशादन्ययन्त्रदर्शनाद्युक्तितश्चकारयेत् ।

अर्थ—वेयंत्र मायलोह (सुवर्ण, चांदी, तामा, लोहा, पित्तल) के होतेहै तथा सुवर्णादि पंचलोह न मिलनेपर उनको [तत्प्रतिरूपकं] अर्थात् हाथीदांत, सींग,काष्ट,आदिके बनावे और इनयंत्रोंके मुखका स्वरूप अनेकप्रकारके व्याल (सिंहव्याघ्रादिहिंसकजीव) मृग (हरिण,ससे,आदि) और काक गीध आदि पक्षियोंके मुखके समान होनाचाहिये । अतएव इनयंत्रोंका स्वरूप शास्त्रसैं और वृद्धवैद्यके उपदेशसै तथा अन्ययंत्रोंके देखनेसैं वा युक्ति (अकल) सैं करने चाहिये । तहां शास्त्रमे लिखाहैकि स्वस्तिकयंत्र१८अंगुलके बनाने चाहिये । और उपदेशके कहनेसैं केवल वृद्धवैद्यकाही ग्रहण नही है किंतु जोइसकर्मको करते रहतेहै, ऐसे शिल्पकारोंके कहनेसैं बनावे। अन्ययंत्र (चीमटा,संडासी,कैंची,चीमटी,नेहन्नी, आदि प्रत्येकदेशोंमें पृथक् २आकृतिकी होतीहै उनको देखकर बनावे जैसैं आजकल यूरोपिअन आदि वलायती मनुष्य बनातेहै. । और युक्तिके कहनेसैं यथाप्रयोजन वनानीचाहिये अर्थात् पुरुषके हाथपैरआदि अवयवोंके विचारसैं बनावे,जैसै. जो छोटेबालकहै उनके लिये यंत्रभी छोटे और बडोंको बडेयंत्र बनाने चाहिये.

समाहितानियन्त्राणिखरश्लक्ष्णमुखानिच ।
सुदृढानिसुरूपाणिसुग्रहाणिचकारयेत् ।

अर्थ—न्यूनाधिक (छोटेबडे) दोषकरके रहित तीक्ष्ण और चिकने मुखके तथा दृढ और सुन्दररूपवाले सुघाट ऐसें यन्त्रबनाने चाहिये । कोईआचार्य कहतेहैकि कार्यभेदसैं किसीयंत्रका मुख तीखाबनावे और किसीका मृदुबनावे तिनमे कंकमुखादि वालेयंत्र खरमुखकहातेहै. । और सिंहास्यादियंत्र श्लक्ष्णमुखकहातेहै ।

स्वस्तिकयंत्राणि

तत्रस्वस्तिकयन्त्राण्यष्टादशांगुलप्रमाणानिसिंहव्याघ्रतर

क्ष्वृक्षवृकद्वीपिमार्जारशृगालमृगैर्वारुककाककङ्कुररचा
सभासशशघात्युलूकचिल्लिश्येनगृध्रक्रौञ्चभृङ्गराजाञ्जलि
कर्णावभञ्जननन्दिमुखमुखानिमसूराकृतिभिःकीलैरवब
द्धानिमूलेंकुशवदावृत्तवाराङ्गाण्यस्थिविनष्टशल्योद्धरणा
र्थमुपदिश्यन्ते ।

अर्थ– स्वस्तिकयंत्र १८ अंगुललंबे, और सिंह, बघेरा, जरख, रीछ, भिडिहा, चीता, बिलाव, स्यारिया (लोमडी) हिरण एर्वारुक (हिरणकाभेद होताहै) ए ९पशु, तथा काक (कौआ) कंक (लंबीचोंचकाबडापक्षीजोमुर्दों कोभक्षणकर्ताहै अथवा कोई सपेदचीलको कंक कहतेहै,) कुरर (टटीहरी) चास (पपैया वा चातक कोई नीलकंठको चास कहतेहै) भास (गौओंके झुंडमें रहनेवाला गीधविशेष परंतु कोई वरमें रहनेवाले मुर्गेको भास कहतेहै) शशघाती (शशारीनामसे प्रसिद्धकोई बाझको शशारी कहतेहै) उलूक (वा गरु–वा–चमगिदड) चिल्ल (चीलनामसेप्रसिद्ध) श्येन (शिकरा वा कुई) गीध, क्रौंच (कोची कोचरी नामसे प्रसिद्ध और कोई कुंजनाम पक्षीको क्रौंच कहतेहै) भृंगराज (कालीचिडिया) अंजली और कर्णावभंजन (एदोनामोंका पर्यायवाचीशब्द लोकप्रसिद्धीसे जानना) और नदीमुख (पत्राटी) ए १५ पक्षीकहेहै इनदोनोपशुपक्षियोंके मुखके समान स्वस्तिक यंत्रोंका मुख बनाना चाहिये और उनयंत्रोंके स्कध (अर्थात् कंठदेश) मसूरके समानगोल और छोटीकीलोंसे जटित करने चाहिये (परंतु कोई कहतेहैंकि यंत्रके तीसरे भागमें कील लगावे) और उनयंत्रोंकामूल अर्थात् पकडनेका स्थान अंकुशके समान कुछनीचा और मुडाहुआ बनावे, येस्वस्तिकयंत्र टूटीहड्डी जो देहके भीतर छिपीहुई रहतीहै उसके निकालनेके लिये कहेहै ।

स्वस्तिकयंत्रोंकी तसवीरदेखो

अथसन्दशयंत्राणि

सनिग्रहोनिग्रहश्च सन्दंशौषोडशांगुलौ भवत

१ जिसओरसे काटेआदिको पकडकर खींचतेहै, उसभागको यंत्रका मुख कहतेहै ।

स्त्वङ्मांससिरास्नायुगतशल्योद्धरणार्थमुपदिश्यते ।

अर्थ— संदंशयंत्र दोप्रकारकेहैं एक सनिग्रह (अर्थात् जिस्कामुखबंद रहे) और दूसरा अनिग्रहहै (जिसकामुखखुलारहे) एदोनोयंत्र १६ अंगुललंबे होने चाहिये ये त्वचा, मांस, नस, स्नायुगत, शल्यके निकालनेके वास्ते कहेहै । संदंशनामसंडासीकाहै । २२ नंबरकेचित्रदेखो

तालयन्त्रम्

तालयन्त्रेद्वादशांगुले मत्स्यतालवदेकतालद्वि तालकेकर्णनासानाडीशल्यानामाहरणार्थम् ।

अर्थ— तालयंत्र दोनोका विस्तार १२ अंगुलका होताहै, इन्होका स्वरूप मछलीके तालके आकार एकताल तथा द्वितालक होताहै, तालकलोहेकी पत्तीका नामहै जिनसैं किवाडकी संधी आपसमे जोडीजातीहै ।

मछलीके तालकहनेसैं इसजगे मछलीका कांटालेना अर्थात् जैसावो पतला-होताहै असे तालयंत्रोंके मुखजानने ।

नाडीयंत्राणि

नाडीयन्त्राण्यनेकप्रकाराण्यनेकप्रयोजनान्येकतोमुखान्यु भयतोमुखानिच, तानिस्रोतोगतशल्योद्धरणार्थंरोगदर्श नार्थमाचूषणार्थं क्रियासौकर्यार्थश्चेतितानिस्रोतोद्वारपरि णाहानि यथायोगपरिणाहदीर्घाणिचभगन्दरार्शोऽर्बुदव्रण बस्त्युत्तरबस्तिमूत्रवृद्धिदकोदरधूमनिरुद्धप्रकाशसंनिरुद्ध गूदयन्त्राण्यलाबूशृङ्गयन्त्राणिचोपरिष्टाद्वक्ष्यामः ।

---

२ वाग्भट ६ अंगुलका दूसरा संदंशयंत्र नासिकाके वालआदि निकालनेको तथा पलकोंके परवाल तोडनेको कहताहै, उसकानाम मुचुंडीहै । इसके मुखमें छोटे २ दांत होतेहैं, और पकडनेकीजगे छल्लासाहोताहै, इसछल्लेके दावनेसैं कामहोताहै । यह गंभीरव्रणोंमेंसे जोअधिमांसहोताहै उसके निकालनेको कहाहै ।

अर्थ– नाडीयंत्र अनेकप्रकारके और अनेक प्रयोजनवाले होतेहै, कोई एकमुखवाले (जैसे रुधिरके निकालनेको अलाबूयत्र, भगंदरयंत्र, और अर्श-यंत्रादि) कोई उभतोमुख होतेहै, (जैसे वस्ती, उत्तरवस्ती, और धूमयंत्रादि) ये सब नाडीयंत्र स्रोतोगत शल्यके निकालनेके लिये बवासीर आदि रोगोंके देखनेकेलिये और अस्थिगतवायु रुधिर और स्तनसंबधी दूधके आचूषण (खींचने) केलिये तथा क्रिया (शस्त्रक्षाराग्निआदिक्रिया) ओंके सुखकरणार्थ कहेहै । इन नाडीयत्रोंके मुख स्रोतोंके द्वारसदृश छोटेबडे और गोलहोने चाहिये, अब उनकेनाम कहतेहै । भगदरयत्र २, एक एकछिद्रका दूसरा दोछिद्रवाला इसीप्रकार अर्शयंत्र २, अर्बुदयंत्र २, व्रणयंत्र १, यह व्रणकी चोडाई लंबाईके समान होनाचाहिये, बस्तियत्र४है, कोई ३ प्रकारके कहतेहै उत्तरबस्ती २, मूत्रवृद्धियंत्र १, दकोदरयंत्र १, धूमयत्र ३,निरुद्धप्रकाशयंत्र१, सनिरुद्धगुदयत्र १, और अलाबूयंत्र १, इन सबयत्रोंको यथाप्रयोजन यथा स्थानमें कहेगे ।

शलाकायन्त्राणि

शलाकायन्त्राण्यपि नानाप्रकाराणि नानाप्रयोजनानि यथायोगपरिणाहदीर्घाणिच । तेषांगण्डूपदशरपुंखसर्पफणवडिशमुखेद्वेद्वे एषणव्यूहनचालनाहरणार्थमुपदिश्येते ।

अर्थ– शलाकायंत्रभी अनेकप्रकारके अनेकप्रयोजनवाले होतेहै, इनको यथायोग गोल और लम्बे बनाने चाहिये, तिनमें गंडूपद (केंचुआ) केमुखवाले यंत्र २, बाणकीपुंखके आकार मुखवाले यत्र २, सर्पफणकेतुल्य मुखवाले यंत्र २, वडिश (मच्छीपकडेनेकी लोहवंशीके) मुखवाले यत्रदो बनावे । ये आठयंत्र, एषण (गंभीरपाकी व्रणोंसें राधरुधिरआदिका निकालना) व्यूहन (निर्माणकरना) चालन,और आहरण (निकालने) के अर्थकेहै ।

मसूरदलमात्रमुखेद्वे किञ्चिदानताग्रेस्रोतोगतशल्योद्धरणार्थम् पद्कार्पासकृतोष्णीपाणि प्रमार्जनाक्रियासु । त्रीण्यन्यानिजाम्बवदनानि । त्रीण्यङ्कुशवदनानि ।

अर्थ– मसूरकीदालके समानमुखवाले दोयंत्रबनावे वोअग्रभागमें कुछ नंवेहुएहोवे ये स्रोतोगत शल्योंके निकालनेके अर्थहै * छः यंत्रोके अग्रभाग रूईसे लिपटेहुए झाडने पोछनेआदि क्रियाके अर्थ कहेहै, तीनयंत्र कलछीके आकार मुख और नीचेमुखवाले क्षार औषधोंके प्रयोगार्थ कहेहै, तीनयंत्र जामनफलके सदृश मुखवाले तीनयंत्र अंकुशके मुखसमान मुखवाले.

षडेवाग्निकर्मस्वभिप्रेतानि । नासार्बुदहरणार्थमेकंकोलास्थिदलमात्रमुखंवल्लतीक्ष्णोष्ठम् । अञ्जनार्थमेकंकलायपरिमण्डलमुभयतोमुकलाग्रं । मूत्रमार्गविशोधनार्थमेकम्मालतीपुष्पवृंत्ताग्रप्रमाणपरिमण्डलमिति ।

अर्थ–ये छःयंत्र अग्निकर्म (दागने) में,अभीष्टहै. । नासार्बुदहरणार्थ एक वेरकीगुठलीके अर्धदलप्रमाणमुख वीचमें नीचा और अंतमेंतीखा ऐसा यंत्र होताहै, नेत्रोंमें अंजनआँजनेकेअर्थ १ यंत्र मटरकेसमानगोल और दोनो प्रान्त फूलकी कलीके समान होताहै. । मूत्रमार्ग विशोधनार्थ एकयंत्र मालतीपुष्पकेवृन्त (जिसमें फूललटकाकरैहै उसडांठरेको वृंत्तकहतेहै) उसके समान बनावे। इन शलाका यंत्रोंका विस्तार आठ अंगुलका होनाचाहिये शलाकानामसलाईकाहै. ।

उपयंत्राणि

उपयन्त्राण्यपिरज्जुवेणिकापट्टचर्मान्तवल्कललतावस्त्राष्ठीलाश्ममुद्गरपाणिपादतलाङ्गुलिजिव्हादन्तनखवालाश्वकटकशाखाष्ठीवनप्रवाहनहर्षायस्कान्तमयानिक्षाराग्निभेषजानिचेति ।

स्रोतोगत शल्यकानिकालना दिखातेहै जैसै नासाशल्य कंठमें जायकर अटकजावे उससमय वैद्य मुखमें नाडीयंत्रडाल तत्तीलोहकी सलाईसैं शल्यको खींचलेवे वाग्भट लिखताहैकि कंठशल्यके देखनेको १० अंगुलंवा और ५ अंगुल चोडा नाडीयंत्रहोताहै, और कमलककडीके सदृश ऊपरके भागमें होवे और १२ अंगुललंबा होनाचाहिये,

अर्थ—अब उपयत्रोंको कहतेहै- मूंजकी रस्सी-वेणीका (तिवलीरस्सी) पट्ट (पट्टी) चामके टुकडे, (पट्ठेआदि) ढाक,और गूलरकीछाल (यह टूटे हुए हाड आदिके ऊपरबाधनेको कामआतीहै) लता, कपडा,लंबा, और गोल अैसा पत्थर, मुद्गर, (काष्ठआदकावनागुरज) हथेली, पैरकेतलुए, उगली, जीभ, दांत, नख, (नाखून) वाल, घोडा, वृक्षकीशाखा, थूकना, प्रवाहन (वमन, विरेचन, आंसू, ए क्रमसे कफपित्त और नेत्रमें रजआदि शल्यदूरकरनेको) हर्ष (प्रसन्नता)अयस्कात (आकर्षक,द्रावक,चुम्बक,भ्रामक,आदिभेदवाला पाषाणविशेष)के वनेहुएपदार्थ,क्षार,अग्नि, और अनेकप्रकारकी औषधए,सब उपयत्रकहातेहै

एतानिदेहसर्वस्मिन्देहस्यावयवेतथा ।
सन्धौकोष्ठधमन्याश्चयथायोगंप्रयोजयेत् ।

अर्थ—ए पूर्वोक्त यत्र सर्वदेहमें तथा देहके सपूर्णअवयवो (हाथपैरों) में तथा संधिकोष्ट,धमनीआदिमें यथायोग वरतनेचाहिये.

अथयन्त्रकर्माणि

यन्त्रकर्माणिनिर्घातनपूरणवन्धनव्यूहनप्रवर्तनचालनविवर्त्तनविवरणपीडनमार्गविशोधनविकर्षणाहरणाञ्छनोन्नमनविनमनभञ्जनोन्मथनाचूषणैषणदारणर्जुकरणप्रक्षालनप्रधमनप्रमार्जनानिचतुर्विंशतिः ।

अर्थ—अबयंत्रोंकेकार्यकहतेहै । निर्घातन (इतस्ततश्चलायमानकरके निकालना] पूरण (तेल,आदिसेवस्तिनेत्रादिकोंकोपूरणकरना) वांधना,व्यूहन (उठेहुएकोकाटकरनिकालना) विवर्त्तन (कमतीबढतीकोगोलकरना) चालन,विवर्त्तन (कानकी पवनके निकालनेको यत्रकोकानमें फिराना) विवरण (-मासरुधिरआदिमेंछिपेशल्यको प्रकाशितकरना) पीडन (दावना) मार्गविशोधन (मूत्र, पुरीष, आदि रुकेहुअेमार्गोंका शोधनकरना)विकर्षण (गडेहुएशल्यको पकडकर खींचना) आहरण (निकालना) आञ्छन (कुछत्रणकेमुखपरशल्यकोलाना) उन्नमन (अध स्थितोको ऊपरलाना) -विनमन

(नीचेकोकरना) भंजन (शिर,कान,आदिका मीडना) उन्मथन (प्रनष्टशल्य-के मार्गमें शलाईडालकर मथनकरना) आचूषण (विषदुष्टस्तनसंबंधीदूधऔ-ररुधिरमें सींगी,तूंबीआदि लगाकरचूसना) एषण (जोखआदिसेंखींचना) दारण (शिरकर्णआदिकेदोटूककरना) ऋजुकरण (टेढोंकोसीधाकरना) प्र-क्षालन (धोना) प्रधमन (नासिकामेंनाडीयंत्रद्वाराचूर्णकाडालना) औरम-मार्जन (पौंछना) ए २४ यंत्रोंकेकर्महै.

अबअनेकशल्याकारकर्मोंकोवाहुल्यहोनेसैंपूर्वोक्तसंख्याकाअनियमदिखातेहै.

स्वबुध्याचापिविभजेद्यन्त्रकर्माणिबुद्धिमान् ।
असंख्येयविकल्पत्वाच्छल्यानामितिनिश्चयः

अर्थ—बुद्धिमान् पुरुष अपनीबुद्धीसैंभी यंत्रकर्मोंको करे क्योंकि शल्यों-को असंख्येयविकल्पत्वहै, अर्थात् अनेकप्रकारकेशल्यहै, उनके निकालके उ-पायभी अनेकहै, अतएव,केवललिखेहुएपरही न रहे, किंतु कुछ स्वबुद्धीचातुरी सैंभी कर्मकर्तव्यहै. यहनिश्चितहै.

अथयंत्रोंकेदोष

तत्रातिस्थूलमसारमतिदीर्घमतिन्हस्वमग्रा
हिविषमग्राहिवक्रंशिथिलमत्युन्नतंमृदुकीलं
मृदुमुखंमृदुपाशमितिद्वादशयन्त्रदोषाः ।

अर्थ—जोयंत्र अत्यंतस्थूलहोः और अशुद्धलोहसैबनाहो, जो अत्यंतलंवा-हो, बहुतछोटाहो जिस्कामुखविकृतहो. और जोएकजगेसैंनपकडे, तथाटेढाहो, शिथिलहो, अर्थात्जोठीकदावेनही, जिसकीकीलआदिऊपरकोउठरहीहो, तथा जिसमेंमृदुकील लगीहो, अथवाढीलीकीलहो, और जिसकामुखनरमहो, तथावि कृतपास कहिये जिसयंत्रके मुखसैं शल्यनपकडनेमेंआवे, येयंत्रोंके १२दोषहै.

एतैर्दोषैर्विनिर्मुक्तंयन्त्रमष्टादशांगुलम् ।
प्रशस्तंभिषजाज्ञेयंताद्धिकर्मसुयोजयेत् ।

अर्थ—उक्तदोषरहित, अठारेअंगुललंबा यंत्र, वैद्यउत्तमकहतेहै, उनको चीरने फाडनेआदिकर्ममें योजनाकरे अर्थात्कार्यमेंलावे ।

स्वस्तिकयंत्रोंकाविषयभेददिखातेहैं.

दृश्यंसिंहमुखाद्यैस्तुगूढंकंकमुखादिभिः ।
निर्हरेत्तुशनैःशल्यंशास्त्रयुक्तिव्यपेक्षयाः ।

अर्थ—जो शल्यदृश्य (दीखते) है उनको सिंहमुखादि यन्त्रोंसें निकाले, और जो छिपेहुएहैं, उनको कंकमुखादियंत्रोंसे धीरे २ निकाले तथा शस्त्र-युक्तिकेअनुसार निकाले.

कंकमुखयंत्रकोप्रधानताकहतेहैं

निवर्त्ततेसाध्ववगाहतेचशल्यंनिगृह्योद्धरतेचयस्मात् ।
यन्त्रेष्वतःकङ्कमुखंप्रधानंस्थानेषुसर्वेष्वविकारिचैव ।

अर्थ— भलेप्रकार प्रवेशहोताहै और निकलताहै तथा शल्यको पकडक-र खींचेहै अतएव सर्वयन्त्रोंमें कंकमुखनामक यंत्रप्रधान (श्रेष्ठ) है, और ये सर्वसंधि धमनी आदिमें अविकारीहै अर्थात् विकार नहीकरेहै ।

॥इतिश्रीवृहन्निघंटुरत्नाकरेपंचदशस्तरङ्गः

अथातःशस्त्रावचारणीयमध्यायंव्याख्यास्यामः।

अर्थ— अब शस्त्रावचारणीय अर्थात् जिस्में शस्त्रोके बनाने और वर्त्तनेकी विधिहै उस अध्यायकी व्याख्याकरेंगे ।

शस्त्रोंकीसंख्या

विंशतिः शस्त्राणि । तद्यथा मण्डलाग्र करपत्र वृद्धिपत्र नखशस्त्र मुद्रिकोत्पलपत्रकार्द्धधार सूचीकुशपत्राटीमुखशरारीमुखान्तर्मुख त्रिकूर्चककुठारिकाव्रीहिमुखारावेतसपत्रक बडिशदन्तशङ्कैषण्यइति ।

अर्थ— शस्त्रबीसप्रकारकेहै, जैसें १ मण्डलाग्र* २ करपत्र, (करोत) ३ वृद्धिपत्र, ४ नखशस्त्र, ५ मुद्रिका, ६ उत्पलपत्रक, ७ अर्द्धधार, ८ सूची, ९ कुशपत्र, १० आटीमुख, ११ शरारिमुख, १२ अन्तरमुख, १३ त्रिकूर्चक, १४ कुठारिका, १५ ब्रीहिमुख, १६ आरा, १७ वेतसपत्र, १८ वडिश, १९ दन्तशंकू, और २० एषणी।

शस्त्रोंकेअष्टविधकर्म

तत्रमण्डलाग्रकरपत्रेस्यातांछेदनेलेखनेच । वृद्धिपत्र न खशस्त्रमुद्रिकोत्पलपत्रकार्द्धधाराणि छेदनेभेदनेच । सूचीकुशपत्राटीमुखशरारीमुखान्तर्मुखत्रिकूर्चकानिविस्रावणे । कुठारिकाव्रीहिमुखारावेतसपत्रकाणिव्यधनेसूचीचवडिशो दन्तशंकुश्चाहरणे । एषण्येषणे आनुलोम्येच। सूच्यःसेवने । इत्यष्टविधेकर्मण्युपयोगः शस्त्राणांव्याख्यातः ।

अर्थ— तहां मण्डलाग्र और करपत्र इनदोनो शस्त्रोंको छेदन और लेखन कर्ममें लेने चाहिये। वृद्धिपत्र, नखशस्त्र, मुद्रिका, उत्पलपत्र, और अर्द्धधारा एशस्त्र छेदन भेदनमें ग्रहणकरनेचाहिये। सूची, कुशपत्र, आटीमुख, शरारीमुख, अंतरमुख, और त्रिकूर्चक, एशस्त्र स्रावकरानेमें लेने, कुठारिका, ब्रीहिमुख, आरा, वेतसपत्रक, और सूचीशस्त्र, एवेधनेमें लेनेउचितहै। बडिश, दंतशंकु, एशस्त्र निकालनेमें लेनेचाहिये। एषणीशस्त्र चूसनेमें और अनुलोमन कर्ममें लेने चाहिये और सूचीशस्त्र सीनेमें लेना इसप्रकार शस्त्रोंके अष्टविध कर्मकी विधिकहीहै।

तेषामथ यथायोग ग्रहणसमासोपायःकर्मसुवक्ष्यते ।

*मंडलाग्रशस्त्र छुराके आकारहोताहै, करपत्रको भाषामें करोत कहतेहै.। वृद्धिपत्रको छुराकहतेहैं। नखशस्त्रको नहन्नी, वा नाखूनतरास कहतेहै। शरारी शस्त्रको कतरनी अथवा कैंची कहतेहै।

तत्रवृद्धिपत्रंवृन्तफलसाधारणेभागेगृह्णीयात् भेदनान्येवं सर्वाणिवृद्धिपत्रंमण्डलाग्रञ्चकिञ्चिदुत्तानपाणिनालेखने बहुशोवचार्यवृन्ताग्रेविस्रावणानि । विशेषेणवालवृद्धसुकुमारतरुणनारीणांराज्ञांराजपुत्राणाञ्चत्रिकूर्चकेनविस्रावयेत् । तलप्रच्छादितवृन्तमंगुष्ठ प्रदेशिनीभ्यांव्रीहिमुखम्। कुठारिकांवामहस्तन्यस्तामितरहस्तमध्यमांगुल्यागुष्ठविष्टब्धयाभिहन्यात् । आराकरपत्रैषण्योमूलेशेषाणितुयथायोगंगृण्हीयात् ।

अर्थ— शस्त्रकर्ममें इन्होंसत्रोंके योगग्रहण (पकडने) का उपाय कहतेहैं । तहा वृद्धिपत्रको डंडीके और फलकके वीचमें पकडना चाहिये । इसीप्रकार भेदनेके सर्वशस्त्रोंमें जानलेना । वृद्धिपत्र और मंडलाग्र इनको ऊपरकी तरफसें पकड लेखनकर्ममें बहुधा इसको कार्यमेंलावे । और इन्ही वृद्धिपत्र और मंडलाग्रोंको डंडीके अग्रभागमें पकड राध रुधिरआदि के स्रावकर्मकर्तव्यहै । विशेषकरके वाल वृद्ध सुकुमार तरुण स्त्री राजा महाराजा तथा राजपुत्रोंको त्रिकूर्चक शस्त्रद्वारा स्रावकर्तव्यहै । हथेलीसे वृन्त (वेंटा वा डंडी) को दाव अंगूठा और तर्जनीउंगलीसे व्रीहीमुखशस्त्रको पकडे । कुठारीके डंडेको वाएं हाथसे पकड दहनेहाथकी मध्यमांगुली और अंगूठेसे दावकेचलावे । आराकरोत और एषणी इन शस्त्रोंको जडमेंसे पकडने चाहिये । और वाकीके शस्त्रोंको यथायोग अर्थात् किसीको वैटेकी जडमें किसीको वेटेके मध्यमें किसीको वैटेके अग्रभागमें ग्रहण करने चाहियें ।

शस्त्रोंकीआकृति

तेषांनामभिरेवाकृतयःप्रायेणव्याख्याताः।

अर्थ—मंडलाग्रआदि शस्त्रोंका स्वरूप उनकेनाम सेही प्रायकहाहै, विशेष कहतेहै

तत्रनखशस्त्रैषण्यावष्टांगुले। सूच्योवक्ष्यन्ते। बडिशो दन्तशंकुश्चानताग्रेतीक्ष्णकण्टकप्रथमयवपत्रमुखे। एष णीगण्डूपदाकारमुखी। प्रदेशिन्यग्रपर्वप्रदेशप्रमाणमुद्रिका। दशांगुलाशरारीमुखीसाकर्त्तरीतिकथ्यते। शेषाणि तुषडंगुलानि।

अर्थ—नखशस्त्र (नेहन्नी) और एषणीशस्त्र ए आठअंगुललंबे होतेहै। और सूचीशस्त्र (सुई) का प्रमाण आगे (अष्टविधकर्मीयाध्यायमें) कहैंगे. बडिशशस्त्र और दन्तशंकू इनदोनोका अग्रभाग कुछ नवाहुआ और तीक्ष्णकंटक (जिसकाकाँटापैंनाहो) तथा प्रथमोत्पन्नयवपत्रके समान होना चाहिये। एषणी शस्त्र कैचुऐंके सदृश मुखवालाहोताहै। मुद्रिकाशस्त्र प्रदेशनी (अगली-उंगली) के आगेके पोरुआके समानहोनाचाहिये। शरारीमुख शस्त्रको कैंची-कहतेहै। वो दशअंगुल लंबी होनीचाहिये। बाकीके शस्त्र छः २ अंगुललंबे होनेचाहिये।

अब शस्त्रोंका प्रमाण और भी ग्रंथांतरोंसैं लिखतेहै। मंडलकेसमान गोलजिसका अग्रभागहो उसको मंडलाग्रशस्त्रकहतेहै। वो दोप्रकारका-है एकतोवहहै कि जिसकी गुलाई उसके छटेभागपर्यंतहो और दूसरा छुरा-के आकारहो इन दोनोकाप्रमाण (लंबाव) छःअंगुलका होताहै। करपत्र (यह कांटेदार होतीहै इसको करोत वा आरी कहतेहै) परंतु कोई १२ अंगुलका करपत्र कहतेहै। वृद्धिपत्र दोप्रकारकाहै। एक अंचिताग्र. दूसरा प्रयताग्र इनमें अंचिताग्र वृद्धिपत्रको छुराकहतेहै। दोनो सातअंगुललंबे पंचांगुलवृत्त और ढाईअंगुलका अग्रभागहोना चाहिये। नखशस्त्रको नेंहन्नीकहते-है। इसका अग्रभाग २ अंगुललंबा १ अंगुलविस्तृत और अर्धअंगुलकीधार होनीचाहिये। अर्द्धधाराशस्त्र ८ अंगुललंबा १ अंगुल विस्तृत और चक्रकेस-मान धारवाला होना चाहिये। कुशपत्रकेसमान कुशपत्रशस्त्रहोताहै। २ अंगु-

१ षड्भागे मण्डलं वृत्तं क्षुरसंस्थानमेववा। मण्डलाग्रस्य जानीयात्प्रमाणन्तु षडंगुलम्। २ अंगुलै रुचकं विद्या दंगुल फलमुच्यते वृत्तंस्याद्द्व्यंगुलं मध्ये कुशपत्रस्य लक्षणम्।

लहडी १ अगुलका अग्रभाग और २ अगुलत्रीचमें कुछगोल होतीहै । आटी-मुख शस्त्रकी डडी ७ अगुल और अंगूठेके समान उसका अग्रभाग होनाचाहिये । आटीनाम आडीपक्षीको कहतेहैं उसके मुखसमान जिसका मुखहो उसको आटीमुख शस्त्रजानना । शरारीनाम लबीचोचके पक्षीको कहतेहै वो दोप्रकारका होताहै एकतो जिसकेकधे सपेदहो दूसरा लालमस्तकवाला होताहै धवल (सपेद) कधे वालेको शरारीकहतेहै । उसके मुखके सदृश मुखजिसका उसको शरारीशस्त्रकहतेहै । इसीकोभाषामें कैंचीकहतेहै । यह १२ अंगुलकी और दोनोपल्ले चलायमान होनी चाहिये । शरारीको भाषामें बगला-कहतेहै अतर्मुखशस्त्रका मुख भीतरहोताहै । वह ८ अगुललवा और अर्द्ध-चद्राकारहोना चाहिये ।

५ त्रिकुर्चकशस्त्र ८ अगुलका तिधारा और १ अंगुलका अग्रभाग होना-चाहिये । और तीनो काटोमें चामल २ भरका फरक रहना चाहिये । इसकी डडी ५अगुलकीकरे, और इसके ऊपर छल्ला२से आकारसे भूषितकरे १कुठा-रिकायंत्रकाबैठा ७॥ अगुललवा उसका अग्रभाग आधेअगुलका होना चाहिये, उसको गोदंतसदृश बनावे, २ब्रीहिमुखशस्त्रकाप्रमाण, भोज इसप्रकार लिखता-हैकि, ६ अंगुललंबा, और दोअगुलकी उसकी डडी और ४ अगुलका अग्र-भागहोना चाहिये, और इसकामुख चामलके समानहो, यह अटकेहुए फांटे-के निकालनेके अर्थ कहाहै, और३ यह चमारोकाशस्त्रहै, इसको १६ अंगुललं-

२ वृन्तं सप्तांगुलं विधात्तस्याग्रे फलमिष्यते । आटीमुखप्रकारहि फलमगुष्ठमायतम् । ४ अष्टांगुलप्रमाणेन जिव्हा धामविधारक । शस्त्रमन्तर्मुखं नाम चन्द्रार्द्ध मिवचोद्धृतम् । ५ अंगुलानि तथा ष्टौच शस्त्र कार्यं त्रिकूर्चकम् । फलै रन्तर्मुखाकारै रगुलै रन्वितं त्रिभि. । एकैकस्यफलस्यैषामन्तरं ब्रीहिसम्मितम् वृत्तं पञ्चांगुलायामं कार्यं रुचकभूषितम् ।

१ कुठारिकाषा वृन्तंस्यात् सार्द्धसप्तांगुलायतम् । फलमर्धांगुलायाम गोदन्तसदृश समम् २ शस्त्र ब्रीहिमुखंकार्य मगुलानि षडायतम् । द्व्यंगुल तस्य वृन्तं-स्यात् तत्फल चतुरंगुलम् । तन्मुख ब्रीहिविस्तार तत्तुसमूढकटकम् ३ आराद्वय ष्टांगुलायामा कर्त्तव्यातु विशाम्पते । तिलप्रमाणन्तुफलतस्याः कार्यसमाहितं । पूर्वांकुरपरीनाह वृत्तगोपुच्छसन्निभम्

बा, और तिलकेसमान अग्रभाग तथा पूर्वअंकुर विस्तृत इसकावैंटा गोपुच्छकेसदृश होना चाहिये, वेतसैपत्रयंत्रका विस्तार १ अंगुलका तीक्ष्णहोनाचाहिये, और ४ अंगुललंबा तथा ४ अंगुलका वैंटा होनाचाहिये। यहभी भोजकाप्रमाणहै। वडिसयंत्र ६ अंगुलकेलंबे दोनोका एकमुख इनदोनोका वैंटा ५॥ अंगुलका और शेषइसका मुखहोनाचाहिये, एकवडिसयंत्र अर्धचन्द्राकृति और नवाहुआहोताहै। इसका विस्तार नीचेके श्लोकसै देखो एषणीयंत्र व्रणके विस्तार माफिक होताहै। उसका मुख कैंचुएकेसमान होनाचाहिये।

उत्तमशस्त्रकेलक्षण

तानिसुग्रहाणिसुलोहानिसुधाराणिसुरूपाणिसुस माहितमुखाग्राण्यकरालानिचेतिशस्त्रसम्पत्।

अर्थ—इन शस्त्रोंको सुघाट, श्रेष्ठलोहके, उत्तमधारवाले, सुहामने, सुंदरमुखवाले, और अकराल, अर्थात् उन्में कोई फांसनहो, अथवा विकरालरूपवाले न होय, एउत्तमशस्त्रकेगुणहै।

शस्त्रोंकेदोष

तत्रवक्रंकुण्ठंखण्डंखरधारमतिस्थूलमत्यल्पमतिदीर्घमति ह्रस्वमित्यष्टौशस्त्रदोषाः। अतोविपरीतगुणमाददीतान्य त्रकरपत्रात्। तद्धिखरधारमस्थिच्छेदनार्थम्।

अर्थ—टेढा, भौतरा, खंडित, कठोरधार, अत्यंतमोटा,अतिपतला, अत्यंतलंबा, अत्यंतछोटा, ए शस्त्रके आठदोषहै। इसीसे एककरपत्र (करोत) को छोडकर अन्य इस्सैं विपरीत गुणवान् शस्त्र लेने उचितहै। खरधारावाला शस्त्र हड्डी काटनेको कहाहै। इसीसे करोत खरधारावाली लेनी।

---

४ तीक्ष्णमंगुलविस्तारं चतुरंगुलमायतम्। अंगुलानि तुचत्वारि वृन्तंकार्यं विजानता ५ वडिशो चापिकर्त्तव्यौ प्रमाणेन षडंगुलैः। स्थानतस्तुतयोरेक एको नात्यापितोभवेत्। अर्द्धपंचागुलंवृन्तं शेषंकार्यं मुखंतयोः। अर्धचन्द्राकृति वक्रं कार्यं नात्यानतस्यतु। स्वाननस्यानतं तस्मात् वडिशस्यभिषग्वरैः। वृन्ताग्र-योरन्तरस्यात् यावदर्द्धांगुलंमतम्। एवं हिक्रियते एतौदशशंकुर्विजानता शंकुवच्चमुखंतस्य कार्यमर्धांगुलायतम्। चतुरस्रं समञ्चैव।

शस्त्रोंकीधार

तत्रधाराभेदनानांमासूरी,लेखनानामर्द्धमासूरी,व्यधनानां विस्रावणानाञ्चकैशिकी,छेदनानामर्धकेशिकीति ।

अर्थ—भेदनेकेनिमित्त वृद्धिपत्र और नखशस्त्र आदिकी धार मसूरकी दालके समान पतली करनी चाहिये, लेखनकेअर्थ मंडलाग्र आदि शस्त्रोंकी-धार मसूरदालकी आधी होनी चाहिये।वेधनेकेलिये कुठारी आदिकी धार और विश्रावणके निमित्त सूची, कुशपत्र आदिकी धारा केश (वालकेसमान) पतली होनीचाहिये । यदिउक्तवृद्धिपत्रादिकोको छेदनेके अर्थ प्रयोगकरेतो उनकी धार आधेवालके समान होनी चाहिये।

शस्त्रोंकीपायना

तेषांपायनात्रिविधाक्षारोदकतैलेषु । तत्रक्षारपायतंशरश ल्यास्थिछेदनेषु । उदकपायितंमांसच्छेदनपाटनेषु । तैल पायितंशिराव्यधनस्नायुच्छेदनेषु । तेषांनिशानार्थंश्लक्ष्ण शिलामाषवर्णाधारासंस्थापनार्थंशाल्मलीफलकमिति ।

अर्थ—उनशस्त्रोंकी पायना (पानीचढाना) तीनप्रकारकीहै, यह लुहारोंमें प्रसिद्धहै । एक क्षारपायना, दूसरीजलपायना, और तीसरीतैलपायना, तहां क्षारपायना अर्थात् क्षारोमें बुझाय कर जो वाढ धरीजातीहै वो बाण, शल्य और हड्डीके काटनेमें कहीहै । और जलपायना मांसकेछेदन पाटनमें जाननी । और तीसरी तैलपायना शिरावेध स्नायुछेद ने में कहीहै । अब कहतेहैंकि, यदि बीचमें धार भोंतरी होजावे उसके घिसनेके लिये साफ चिकनी उडदके रंगकी ऐसी पाषाण (पत्थर) की शिल्ली लेनी चाहिये । और धारके संस्थापनार्थ (ठीककरनेको) सेमरका पट्टा (अथवा चामकापट्टा) होताहै । ये शिल्ली और पट्टा बहुधा नाऊ (हज्जामों)के पास होतेहैं।

शस्त्रकोश

स्यान्नवांगुलविस्तारःसुघनोद्वादशांगुलः ।
क्षौमपत्रोर्णकौशेयदुकूलमृदुचर्मजः । विन्य

स्तपाशःसुस्यूतःसांतरोर्णार्थशस्त्रकः। शला
कापिहितास्यश्च शस्त्रकोशःसुसंचयः।

अर्थ—शस्त्रोंके रखनेका कोश ९ अंगुल चौडा और १२ अंगुललंगा तथा सघन और क्षौम (जोवक्कलसैं बनताहै) पत्ता, ऊन, रेसम, वस्त्र, और नम्रचमडेका बनाहुआ होनाचाहिये, जिसमैं पृथक्क् फांसेके सदृश खनहो तथा शस्त्रोंके वीच २ में ऊनका कपडा लगरहाहो, उस कोशका मुखशलाईसैं ढकाहुआ और अनेक शस्त्रोंकासंग्रहजिसमैं ऐसासुंदरकोश नाईकीपेटीकेसमानहोना चाहिये।

धारकी परीक्षा

यदासुनिशितंशस्त्रंरोमच्छेदिसुसंस्थितम्।
सुग्रहीतंप्रमाणेनतदाकर्मसुयोजयेत्।

अर्थ—जब शस्त्रबालोंको कांटडाले और देखनेमैंभी उत्तमदीखे तबजानेकि धारचढगई। और उन पूर्वोक्त शस्त्रोंके पकडनेका स्थानभी उत्तमहो तथा यथाप्रमाणहो, ऐसे शस्त्रोंको छेदन भेदनादि कर्मोंमैं योजना करनाचाहिये।

अनुशस्त्र

अनुशस्त्राणितुत्वक्सारस्फटिककाचकुरुविन्दजलौकाग्नि
क्षारनखगोजीशेफालिकाशाकपत्रकरीरवालांगुलयइति।

अर्थ—अब बालकआदि जो अशस्त्रावचरणीयहै. अर्थात् जिनको शस्त्रकर्मकरना वर्जितहैं अथवा शस्त्रकर्मके समय शस्त्र न मिलनेसैं उसकर्मको अन्यद्रव्य द्वारा करना, उनद्रव्योंको अनुशस्त्र कहतेहै जैसैं, त्वक्सार (वांस.) स्फटिक, कांच (शीसा) कुरुविन्द (पत्थरकीजातविशेष. अर्थात्शिल्ली) जोख, अग्नि, खार, नख, (नाखून) गोजी (गोभी, कोईसहोडाकहतेहै) शेफालिका (जिसकी डंडी लाल होतीहै और शरदऋतुमैं खिलताहै.) शाकपत्र (महावृक्ष जिसके कठोरपते होतेहै) करील, वाल, और उँगली, ए अनुशस्त्र अर्थात् हीनशस्त्रहै, अथवा शस्त्रोंके तुल्यहै।

अनुशस्त्रोंकेविषय

शिशूनांशस्त्रभीरूणांशस्त्राभावेचयोजयेत्
त्वक्सारादिचतुर्वर्गंछेद्यभेद्येचबुद्धिमान।
आहार्यछेद्येभेद्येपुनखंशक्येषुयोजयेत्। वि
धिःप्रवक्ष्यतेपश्चात्क्षारवन्हिजलौकसाम्।
येस्युर्मुखगतारोगानेत्रवर्त्मगताश्चये। गोजी
शेफालिकाशाकपत्रैर्विस्रावयेत्तुतान्। एष्वे
ष्वेषण्यलाभेतुवालांगुल्यंकुराहिता।

अर्थ—उक्त हीनशस्त्रोंको बालक, और शस्त्रोंसे डरपनेवाले तथा शस्त्र-उपस्थित न होनेसैं कार्यमें लेनेचाहिये। तथा इन्मे प्रथमके चार अनुशस्त्रों-को (वांस, स्फटिक, कांच, और कुरविंदको) छेदन भेदन कर्ममेंलेवे, और नखशक्य आहार्य छेद्य भेद्योंमें नखशस्त्र योजनाकरे। क्षारकर्म, वन्हिकर्म और जोकलगानेकी विधि आगे कहेगे] मुखरोग, और नेत्रके कोएन्मे होनेवाले रोगोंमें गोजीशस्त्र, शेफालिका, और शाकपत्र शस्त्रद्वारा स्राव कराना चाहिये। और एण्य (खीचनेयोग्य) शल्योंमें एषणीशस्त्रके उपस्थित न होनेपर वाल अंगुली और अंकुरादि अनुशस्त्रकार्यमें लानेचाहिये।

अथशस्त्रगुणसंपत्कारणकहतेहै

शस्त्राण्येतानिमतिमान्शुद्धशैक्यायसानितु।
कारयेत्करणैःप्राप्तंकर्म्मारंकर्मकोविदम्।

अर्थ—एपूर्वोक्त मंडलाग्रादि शस्त्रोंको शुद्ध और तीक्ष्णलोहके बुद्धिमान् वैद्य स्वकर्ममें निपुण और पंडित ऐसे लुहारसैं बनवावे। कोई कहताहैकि इनशस्त्रोंको सेडीलोहके और जिस लुहारकेपास सब बनानेके औंजारहो उस्सैबनवावे।

शस्त्राभ्यासकरनेकेगुण

प्रयोगज्ञस्यवैद्यस्यासिद्धिर्भवतिनित्यशः। त
स्मा त्परिचयःकार्यःशस्त्राणामादितःसदा।

अर्थ—शस्त्रकापकडना चलाना आदि प्रयोगके जाननेवालेवैद्यको सिद्धि (आरोग्यसंपादन) सदैवहोतीहै। इसीसें वैद्यको उचितहैकि शस्त्रपरिचय (शस्त्रग्रहणकाअभ्यास) प्रथमसैंही करनाचाहिये।

इतिश्रीआयुर्वेदोद्धारेबृहन्निघंटुरत्नाकरेसप्तदशस्तरङ्गः १७

अथातोयोग्यासूत्रीयमध्यायंव्याख्यास्यामः

अर्थ—अबयोग्यासूत्रीय अध्यायकीव्याख्या करेंगे। योग्या कहिये उत्तमकर्माभ्यास अथवा योग्याकहिये योग्यकास्थापक, उसका सूत्रजिस अध्यायमे हो उसकी व्याख्याकरेंगे।

अधिगतसर्वशास्त्रार्थमपिशिष्यंयोग्याङ्कारयेत्
छेद्यादिषुस्नेहादिषुचकर्मपथमुपदिशेत्।
सुबहुश्रुतोऽप्यकृतयोग्यःकर्मस्वयोग्योभवति।

अर्थ— सर्वशास्त्रोंके अर्थ पढवीगयाहो तथापि गुरू शिष्यको कर्ममार्गमें योग्यकरें और उसशिष्यको छेद्य (आदिशब्दसैं भेद्य वेध्यादि कर्मजानने) और स्नेह (आदिशब्दसैं अनुवासन, वमन, विरेचन, स्वेदनआदि का) कर्ममार्ग बतलाना चाहिये अर्थात् इसप्रकारछेदन इसप्रकारभेदन, इसप्रकारवमन, और विरेचनआदि कर्मकरानेचाहिये। यह विधि गुरू शिष्यको बतावे इसका यहकारणहैं कि बहुतपढा और बहु श्रुतभीहै परंतु जबतक छेद्यभेद्यादि कर्मोंका अभ्यासनहींकरे अर्थात् अपनेहाथसैं चीराफाडी आदि करके नहीदेखे तावत्कालपर्यंत इसकर्ममें योग्यनहींहोवे।

शिष्यकोदिखानेयोग्यकर्म

तत्रपुष्पफलालाबूकालिन्दकत्रपुसैर्वारुककर्कारुक
प्रभृतिषुछेद्यविशेषानदर्शयेदुत्कर्त्तनपरिकर्त्तनानिचो

पदिशेत्। दृतिवस्तिप्रसेवकप्रभृतिषूदकपङ्कपूर्णेषुभे दयोग्याम्। सरोम्णिचर्मण्याततेलेख्यस्य।

अर्थ- तहाकहतेहैकि पेठा, घीया, तरबूज, खीरा, ककडी, कौंला आदिमें छेद्य दिखावे (अर्थात् कहीका कहीं हाथ न चलाजावे इसलिये प्रथम हाथ साधनेको पेठे तरबूजके ऊपर छेद्यकर्मों को दिखावे) तथा कतरना और परिकर्त्तन कहिये चारो ओरसे कतरना दिखावे (अर्थात् ऐसे रोगमे इतनाटुकडा कतरे और अैसे रोगोंमें इसप्रकार चारोतरफसे कतरना यहदिखावे। तथा उसीप्रकार शिष्यके हाथसेभी कतरावे। किजिससे उसको काटने और कतरनेका अभ्यास होजावे) और दृति (भस्त्रा वा धोंकनी) पशूआदिका मूत्राशय, प्रसेवक (वीणाकेनीचे अधिक शब्दहोनेके अर्थजोचमडेसैमढातूवा होताहै) इत्यादिकोंमें जल, कीच, भरकर भेदकर्म (जैसे मूत्रमार्गरुकनेमे सलाई डालकर खोलनाआदि) दिखावे। रोमयुक्तचमडेमें लेखनकर्मको दिखावे।

मृतपशुसिरासूत्पलनालेषुचवेध्यस्य। घुणोपहत काष्ठवेणुनलनालीशुष्कलाबूमुखेष्वेष्यस्य। पनस बिम्बीबिल्वफलमज्जमृतपशुदन्तेष्वाहार्यस्य। मधू च्छिष्टोपलिप्तेशाल्मलीफलकेविस्राव्यस्य। सूक्ष्म घनवस्त्रान्तयोर्मृदुचर्मान्तयोश्चसीव्यस्य।

अर्थ- बकरीआदि मरेपशून्की नसोंमें तथा कमलकीनालमें वेध्यकर्म करके दिखावे। धुनेहुए काष्ठमें पोलेवासमें नरसलकीडडीमें. सूखीघीया इनके मुखपर एष्यकर्म (खीचनेयोग्योंको) दिखावे। कटहर, कंदूरी, वेलफल, इनकीमज्जामें और मृतपशुओंकेदातोंमें आहार्य (उखाडनेयोग्य) कर्मोंको दिखावे। मधुकेछत्तेमें अथवा सहतलिपटेहुएसेमरके पट्टेपर विस्राव्यकर्मोको दिखावे। पतले मजबूतवस्त्रके छोरोपर तथा नरम चमडेके किसीभागमें सीव्य (सींनेयोग्य) कर्मोंको दिखावे।

पुस्तमयपुरुषाङ्गप्रत्यङ्गविशेषेषुबन्धयोग्याम्।
मृदुमांसपेशीषूत्पलनालेषुचकर्णसन्धिबन्धयोग्याम्।

मृदुषुमांसखंडेष्वग्निक्षारयोग्यांउदकपूर्णघटपार्श्वस्रोतस्यलाबूमुखादिषुचनेत्रप्रणिधानबस्तिव्रणबस्तिपीडनयोग्यामिति।

अर्थ— वस्त्रनिर्मित मनुष्यके अंग और प्रत्यंगविशेषोंपर बंधन (बांधनेयोग्य) कर्मोंको दिखावे। नम्रचर्म, मांसपेशी, और कमलनालमें कर्णसंधिबंधनयोग्य कर्मोंको दिखावे। नम्रमांसके टुकडोंमें अग्निकर्म और क्षारयोग्यकर्मोंको दिखावे। जलपूर्णघटपार्श्वोंके छिद्रोंमें और घीया आदिके मुखमें नेत्रप्रवेशन तथा व्रणवस्तिपीडन योग्य कर्मोंको दिखावे।

एवमादिषुमेधावीयोग्यार्हेषुयथाविधि।
द्रव्येषुयोग्यांकुर्वाणोनप्रमुह्यतिकर्मसु।
तस्मात्कौशलमन्विच्छन्शस्त्रक्षाराग्निकर्मसु।
यस्ययत्रेहसाधर्म्यंतत्रयोग्यांसमाचरेत्।

अर्थ—इसीप्रकार बुद्धिमान्पुरुष औरभी पुष्पफलादिकोंमें योग्यकर्मोंको अपनीबुद्धिसैं बतलावे। इसप्रकार द्रव्योंमें अभ्यासकरानेसैं वहशिष्य चीरने फाडने आदिकर्ममें मोहको नहीं प्राप्तहोवे। इसीसैं कुशलहोनेकी इच्छाजिसके उसको शस्त्र, क्षार, और अग्नि इत्यादि कर्मोंके यथायोग्य अर्थात् जिसद्रव्यमें जैसी समानतापाईजावे उसको उसीमें शीक्षा देवे।

इतिश्रीबृहन्निघंटुरत्नाकरेअष्टादशतरंगः १८

अथातोऽष्टविधशस्त्रकर्मण्यमध्यायंव्याख्यास्यामः।

अर्थ—अब अष्टविधशस्त्रकर्म जिसमे अैसीअध्यायकी व्याख्याकरेंगे।

छेद्यकर्मकेयोग्य.

छेद्याभगंदराग्रन्थिःश्लैष्मिकस्तिलकालकः। व्रणवर्त्मार्बुदान्यर्शश्चर्मकीलोऽस्थिमांसगम्। शल्यंजतुमणिर्मांससंघातो

गलशुण्डिकाः। स्नायुमांसशिराकोथेवल्मीकशतपोनकः।
अध्रुपश्चोपदंशाश्चमांसकन्द्यधिमांसकः।

अर्थ—भगंदरादिरोग, कफजन्यगांठ, तिलकालक, व्रणवर्त्मरोग, अर्बुद, ववासीर, चर्मकीलक, हड्डी, और मांसगतशल्य, लहसन, मांससमूह, गलशुंडिका, स्नायुमांस, और नाडी आदिकापचन (सडजाना) वल्मीक, शतपोनक, अध्रुष, उपदंश, मांसकंदी, और अधिमांसक, इतनेरोग छेद्य (छेदनेयोग्य) है।

भेदनेकेयोग्य

भेद्याविद्रधयोऽन्यत्रसर्वजाग्रंथयस्त्रयः। आदितोयेविसर्पाश्चवृद्धयःसविदारिकाः। प्रमेहपिडकाशोफस्तनरोगावमन्थकाःकुम्भीकानुशयीनाड्योवृन्दौपुष्करिकालजी। प्रायशः क्षुद्ररोगाश्चपुप्पुटौतालुदन्तजौ। तुण्डकेरीगिलायुश्चपूर्वंयेचप्रपाकिणः। वस्तिस्तथाश्मरीहेतोर्मेदोजायेचकेचन।

अर्थ— सन्निपातकीविद्रधिकेविना, और सबविद्रधि, तीनप्रकारकीगांठ, प्रथमसेहीबढनेवालीविसर्पवृद्धि, विदारीका, प्रमेहपिडिका, सूजन, स्तनरोग अवमंथक, कुंभिका, अनुशयी, नाडीव्रण, वृन्द, पुष्करिका, अलजी, क्षुद्ररोग, तालुपुप्पुट, दंतपुप्पुट, तुंडकेरी, गिलायु, और जो पूर्वपाकीरोगहै, वस्ति, और पथरीकेहेतुरूपजो रोगहै तथा मेदासे उत्पन्नहोनेवालेरोग ए सब भेदनें योग्यहै।

लेख्ययोग्य

लेख्याश्चतस्त्रोरोहिण्यःकिलासमुपजिह्विका।
मेदोजोदंतवैदर्भोग्रंथिवर्त्माधिजिह्विका।
अर्शांसिमण्डलंमांसकंदीमांसोन्नतिस्तथा।

अर्थ— चारप्रकारकीरोहिणी, किलास, उपजिह्विका, मेदसेमगट दंतवैदर्भ, औरगाठ, वर्त्मरोग, अधिजिव्हा, ववासीर, मंडल, मांसकदी, मांसोन्नति, इतनेरोग लेख्यहै। अर्थात् ऊपरसे छीलनें योग्यहै।

वेध्यऔरएष्य

वेध्याशिरावहुविधामूत्रवृद्धिदकोदरम् ।एष्या
नाड्यःसशल्याश्चव्रणउन्मार्गिणःश्चये ।

अर्थ — अनेकप्रकारकीशिरा (नस वा रग)मूत्रवृद्धि, और दकोदर ए रोगवेध्यहै । सशल्यनाडीव्रण और उन्मार्गिव्रण ए रोग एष्य (चूसकरखींचनेयोग्य) है ।

आहार्यऔरस्राव्य

आहार्याःशर्करास्तिस्रोदन्तकर्णमलाश्मरी। शल्यानिमूढ
गर्भाश्चवर्चश्चनिचितंगुदे ।स्राव्याविद्रधयःपञ्चभवेयुःसर्व
जादृते । कुष्ठानिवायुः सरुजः शोफोयश्चैकदेशजः ।

अर्थ—त्रिविधशर्करा रोग, दन्तमल, कर्णमल, पथरी, शल्य, मूढगर्भ, गुदामें मल कासमूह, एरोग आहार्य अर्थात् निकालने योग्य है। संनिपातकी को त्यागकर पांच विद्रधि, कोढ, पीडासहित वायुरोग, एक अंगकी सूजन ।

पाल्यामयाः श्लीपदानिविषजुष्टस्यशोणितम्। अर्बु
दानिविसर्पाश्चग्रंथयश्चादितस्तुये । त्रयस्त्रयश्चोपदं
शाः स्तनरोगाविदारिका। शौषिरोगलशालूकंकण्ट
काः कृमिदन्तकः ।दन्तवेष्टः सोपकुशःशीतादोदन्त
पुप्पटः।पित्तासृक्कफजाश्चोष्याः क्षुद्ररोगाश्चभूयशः ।

अर्थ—कर्णपालीके रोग, श्लीपद, विषदूषित रुधिर, अर्बुद, विसर्प, वातकी, पित्तकी और कफकी गांठ, उपदंश, स्तनरोग; विदारिका, शौषिर, गलशालूक, कंटक, कृमिदंतक, मसूढेके रोग, उपकुश, शीताद, दंतपुप्पुट, पित्तरक्त, कफसे होनेवाले होठोंके विकार, और बहुतसे क्षुद्ररोग ए सब रोग स्राव्य है ।

सीव्यरोग.

सीव्यामेदःसमुत्थाश्चभिन्नासुलिखितागदाः ।
सद्योव्रणाश्चयेचैवचलसंधिव्यपाश्रयाः ।

अर्थ—मेदसै होनेवाले रोग, चिरेहुए, लिखित (छिलेहुए) सद्योव्रण, और जो चलसंधिके आश्रित है। ए रोग सीव्यहै अर्थात् सीने लायक है ।

नक्षाराग्निविषैर्जुष्टानवामारुतवाहिनः। नांतर्लोहितशल्याश्च तेषुसम्यग्विशोधनम् । पांशुरोमनखादीनिचलमस्थिभवेच्च यत्।अहृतानियतोऽमूनिपाचयेयुर्भृशंव्रणम् । रुजश्चविविधाः कुर्युस्तस्मादेतान्विशोधयेत् । ततोव्रणंसमुन्नम्यस्थापयित्वा यथास्थितम् ।

अर्थ—जो व्रण क्षार, अग्नि, और विषसंयुक्त है उनका सीव्य कर्म न करे। तथा जो पवनके वहनेवाले, तथा जिनके भीतर लोहित शल्य है, उनका भी सीव्यकर्म न करे किंतु ऐसे व्रणोंका शोधन कर्म करे । जिनमें धूल, वाल, नख, आदि होवे और जिसमें चलाय मान हड्डी होवे । इन सबको निकाल कर व्रणको शुद्धकरे यदि पूर्वोक्त धूलवाल न निकाले तो वे व्रणको पचाय अनेक प्रकारकी पीडा करते है अतएव व्रणसैं धूल आदिका विशोधन अवश्य करे पीछे उसको नम्रकर यथास्थित स्थापन करे ।

सीव्येत्सूक्ष्मेणसूत्रेणवल्केनाश्मन्तकस्यवा।शणजक्षौमसूत्राभ्यांस्नाय्वावालेनवापुनः । मूर्वागुडूचीतानैर्वासीव्येद्वोल्लित केशनैः सीव्येद्गोफणिकांवापिसीव्येद्वातुन्नसेविनीम् । ऋजुग्रंथिमथोवापियथायोगमथापिवा ।

अर्थ—जव व्रण शुद्ध हो जावे तव उसको बहुत वारीक डोरेसैं अथवा वक्कलके सूतसे अथवा पटसन वा सन अथवा रेसम, तात, वाल इनसैं सीना

चाहिये। अथवा मूर्वा और गिलोयके टेढेतंतू ओंसे व्रणके दोनो प्रान्त मिलायकर धीरे २ सीना चाहिये। गोफणिका, तुन्नसेवनी, अथवा नख्रग्रंथी ए तीन प्रकार अथवा औरभी जो सीनेके योग्य है उनको जंहाजैसी चाहिये अैसे सिलाई करे।

अथसूची (सुई)

देशेऽल्पमांसेसन्धौचसूचीवृत्तांगुलद्वयम् । आयतात्र्यंगुलात्र्यस्त्रामांसलेवापिपूजिता। धनुर्वक्राहितामर्मफलकोशोदरोपरि। इत्येतास्त्रिविधाः सूचीस्तीक्ष्णाग्राः सुसमाहिताः। कारयेन्मालतीपुष्पवृन्ताग्रपरिमंडलाः।

अर्थ—थोडे मांसवाले प्रदेशमें और सन्धिमें दो अंगुल लंवी और गोल सुईहोनी चाहिये, और तीन अंगुल लंवी और कुछ त्रिकोण सूई मांसल प्रदेश अर्थात् जहां अधिक मांस होवे उस जगेके लिये उत्तम है और धनुषके समान टेढी अैसी सुई मर्मफल कोश, और उदरके ऊपर हितहै। ए तीन प्रकारकी सुई ओंकें अग्रभाग तीक्ष्ण और मालती पुष्पके डाँठरेके समान आगेको गोल होनी चाहिये।

बहुतदूरऔरबहुतसमीपटाँकेलगानेकेदोष

नातिदूरेनिकृष्टेवासूचिंकर्मणिपातयेत्। दुराद्रुजोव्रणौष्टस्यसन्निकृष्टेऽवलुञ्चनम् । अथक्षौमपिचुच्छन्नंसुस्यूतंप्रतिसारयेत्। प्रियङ्ग्वञ्जनयष्टयाह्वरोध्रचूर्णैःसमन्ततः। शल्लकीफलचूर्णैर्वाक्षौमध्यामेनवापुनः। ततोव्रणंयथायोगंबध्वाचारिकमादिशेत्।

अर्थ—जिस समय वैद्यकिसी घावको सीवे तो अत्यंतपास २ तथा बहुत दूर २ टांके न देवे। दूर २ टांके देनेसैं पीडा होती है। और व्रण भरनेसैं रहजाताहै। और वहुत पास २ टांके देनेसैं सब आपसमे मिलजाते है। इस प्रकार यथायोग्य टांके देकर उन टांकोंके ऊपर पटवस्त्र तथा रूईके

गालेद्वारा आच्छादन करे। तथा प्रियगु, सुरमा, मुलहटी, लोध, और शल्लकी फल आदिके चूर्णद्वारा प्रतिसारण करे। तदनंतर नियमितरूप व्रणबंधन करिके रोगीको कर्त्तव्य कर्म बतलावे अर्थात् अमुक कर्म करना तुमको पथ्यहै और अमुक कर्म अपथ्य है।

एतदष्टविधंकर्मसमासेनप्रकीर्त्तितम्।चिकित्सितेषुकात्स्न्येंनविस्तरस्तस्यवक्ष्यते।हीनातिरिक्तंतिर्यक्चगात्रच्छेदनमात्मनः। एताश्चतस्रोऽष्टविधेकर्मणिव्यापदः स्मृताः।

अर्थ—इस जगे यह आठ प्रकारका शस्त्रकर्म संक्षेपसें कहाहै इसको विस्तारपूर्वक आगे चिकित्सा स्थानमें कहेंगे। इस आठ प्रकार शस्त्रक्रियाका हीनता, अतिरिक्तता, तिर्यक्छेद, और अपने देहका छेद होना ये अष्टविध शस्त्रकर्ममें चार प्रकारकी व्यापदि (व्याधि) कहीहै। ये चारप्रकारके दोष रहित वैद्य होना चाहिये।

कुशस्त्रचलानेके अवगुण

अज्ञानलोभाहितवाक्ययोगभयप्रमोहैरपरैश्चभावैः। यदाप्रयुंजीतभिषक्कुशस्त्रंतदासशेषान्कुरुतेविकारान्। तंक्षारशस्त्राग्निभिरौषधैश्चभूयोऽभियुञ्जानमयुक्तियुक्तम्। जिजीविषुर्दूरतएववैद्यंविवर्जयेदुग्रविषाग्नितुल्यम्। तदेवयुक्तंत्वतिमर्मसंधीन्हिंस्यात्सिरास्नायुमथास्थिचैव। मूर्खप्रयुक्तंपुरुषंक्षणेनप्राणैर्वियुंज्यादथवाकथंचित्।

अर्थ—अज्ञानसें, लोभसे, अहितवाक्यके कहनेसे, भय, मोह, और अन्यभावसें यदि वैद्य खोटे शस्त्रका प्रयोग करे तो वो शस्त्र अनेक विकारोंको करेहै। जो चिकित्सक अयौक्तिक अर्थात् युक्ति रहितहो क्षार, शस्त्र, अग्नि और औषधको वारवार प्रयोगकरे उसवैद्यको जीवनेकी इच्छावाला रोगी दूरसेंही त्याग देवे। मर्म और संधिस्थान इनका अतिक्रम करके शस्त्रादि

प्रयोग करनेसें शिरा, स्नायु, और अस्थिपर्यंतका क्षय होकर रोगीका जीवन विनाश होवे। अथवा अनेक क्लेशोंसें प्राणवचे इसीसें मूर्ख वैद्य सें शस्त्रकर्म कदाचित् नहीं कराना चाहिये।

मर्मविद्धकेलक्षण.

भ्रमः प्रलापः पतनंप्रमोहोविचेष्टनंसंलपनोष्णताच। स्त्र स्तांङ्गतामूर्च्छनमूर्ध्ववातस्तीव्रारुजोवातकृताश्चतास्ताः। मांसोदकाभंरुधिरंचगच्छेत्सर्वेन्द्रियार्थोपरमस्तथैव। दशार्धसंख्येष्वपिहिक्षतेषुसामान्यतोमर्मसुलिङ्गमुक्तम्।

अर्थ—पंच मर्मस्थानमें शस्त्र लगनेसें भ्रम, प्रलाप, गिरजाना, मोह, दुष्टचेष्टा, पुकारना, गरमी, अंगोंमें सिथिलता, मूर्च्छा, उर्ध्ववात, वातकी तीव्रपीडा, मांसके धोनेसें जैसा जल निकलेहै ऐसा रुधिर निकले तथा सर्व इन्द्रियोंकी शक्ति का लोप होना ए लक्षण होते है।

छिन्नभिन्नशिराके लक्षण.

सुरेन्द्रगोपप्रतिमंप्रभूतंरक्तंस्त्रवेत्तक्षततश्चवायुः। करोति रोगान्विविधान्यथोक्तान्छिन्नासुभिन्नास्वथवाशिरासु।

अर्थ—शिरा (रग) के छिन्नभिन्न होनेसें जो घावहोजावे उसमेंसे अत्यंत अधिक वीरवहूटीके समान लाल रुधिर और वायु निकले तथा अनेक प्रकारके रोग होते है।

स्नायुविद्धके लक्षण.

कौब्जंशरीरावयवावसादः क्रियास्वशक्तिस्तुमुलारुजश्च। चिराद्व्रणोरोहतियस्यचापितंस्नायुविद्धंमनुजंव्यवस्येत्।

अर्थ—स्नायु विद्धहोनेसें शरीरका कुवडा होना, तथा सर्व अवयवोका रहजाना. सर्व कार्यमें अशक्ति तथा अत्यंत पीडाहो और घावके भरनेमें बहुत दिन लगते है।

सन्धिस्थानमेंक्षतहोनेकेलक्षण.

शोफातिवृद्धिस्तुमुलारुजश्चवलक्षयः पर्वसुभेदशोकौ।
क्षतेपुसन्धिष्वचलाचलेपुस्यात्सन्धिकर्मोपरतिश्चलिङ्गम् ।

अर्थ–संधिस्थानमें घाव होनेसे सूजनकी अतिवृद्धिहो, प्रबलपीडा, दुर्बलता, पर्वस्थलोमें टूटेके समान पीडा, और सूजन तथा संधिकर्मका उपराम अर्थात् अंग चालन विषयमें सामर्थ्यका न होना ए लक्षण होते है ।

अस्थिविद्धके लक्षण.

घोरारुजोयस्यनिशादिनेपुसर्वास्ववस्थासुनशान्तिरस्ति
तृष्णाङ्गसादौश्वपथुश्चरुक्चतमस्थिविद्धंमनुजंव्यवस्येत् ।

अर्थ–अस्थि विद्धहोनेसे दिन रात्र घोरतर पीडा, प्यास, अगोका रहजाना, सूजन और वेदना उपस्थित होवे । अस्थिविद्ध व्यक्तिको वैद्य किसी अवस्थामें आराम नहीं कर सकता ।

मांसमर्मविद्धके लक्षण.

यथास्वमेतानिविभावयेयुर्लिङ्गानिमर्मस्वभिताडितेपु। स्प
र्शन्नजानातिविपाण्डुवर्णोयोमासमर्मस्वभिताडितःस्यात् ।

अर्थ–मांसमर्ममें घाव होनेसे स्पर्श ज्ञानका अभाव, तथा शरीरका पांडुवर्ण हो ।

शस्त्रकर्ममेंकुवैद्यकीनिंदा

आत्मानमेवाथजघन्यकारीशस्त्रेणयोहन्तिहिकर्मकुर्वन्
तमात्मवानात्महनंकुवैद्यंविवर्जयेदायुरभीप्समानः ।

अर्थ–जो कुवैद्य शस्त्रक्रियाकालमें अपने अंगकोहीं शस्त्रसें छेदलेवे ऐसे आत्महननकर्त्ता कुवैद्यसे आयुकी कामनावाले रोगीको कदाचित् शस्त्रकर्म न कराना चाहिये ।

तिर्यक्प्रणिहितेशस्त्रेदोषाः पूर्वमुदाहृताः
तस्मात्परिचरन्दोषान्कुर्याच्छस्त्रनिपातनम् ।

अर्थ—तिरछे शस्त्रके लगनेसैं जो दोष प्रगट होते है वो प्रथम लिख- । वो उक्त दोष जैसें न होवे उस रीतिसैं सावधानीके साथ शस्त्रपात चाहिये.

आगे जो चार श्लोक है वो वैद्य परीक्षामें कहेगे ।

श्री आयुर्वेदोद्धारे बृहन्निघंटुरत्नाकरे एकोनविंशतितरंगः

इतिशस्त्रचिकित्साविधि समाप्तः